



भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

PADAMA PURĀṆA

[VOL.II]

of

RAVISENACĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATION



EDITOR

Pandit, PANNALAL JAN SAAITYĀCHARYA

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA KĀSHĪ

First Edition }
1100 Copies }

MAGHA VIRA SAMVAT 2185
V S, 2015
FEBRUARY 1959

{ Price
{ Rs 10/-

विषयानुक्रमणिका

छन्वीसवाँ पर्व

विषय

७४

राजा जनकजी रानी विदेहाके गर्भमें स्थित होता और भामण्डलके पूर्वमरौठा वर्णन । सीता चित्तोत्सन्ना थी और भामण्डल कुण्डलमण्डित । कुण्डलमण्डितने चित्तोत्सन्ना हरण निना था जिससे उसका पति विद्वल बहुत दुखी होता हुआ मरकर महाकाल नामका अमुर हुआ । पूर्व वैरके कारण वह कुण्डलमण्डितको नष्ट करनेके प्रयत्नमें तत्पर रहने लगा । रानी विदेहाके गर्भसे एक साथ पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ । महानाल अमुर अधिष्ठानने पुत्रों की अपनी स्त्रीका हरण करनेवाला—कुण्डलमण्डित जानकर रोपसे उमल पड़ा और उत्पन्न होते ही उसने उसका अपहरण कर पश्चात् दयासे द्रवीभूत हो उसे आनाशसे नीचे गिरा दिया । साथही उसे दिव्य कुण्डलोसे अलङ्कृत भी कर दिया ।

१-१०

चन्द्रगति विद्याधरने आकाशसे पड़ते हुए पुत्रको भेला और अपनी अपुत्रपत्नी पुण्यपत्नी रानीकी सौंप दिया । पुत्र जन्मका उत्सव मनाया गया और पुत्रका भामण्डल नाम रक्खा गया ।

११-१२

पुत्रापहरणके कारण राजा जनकजी रानी विदेहाका कष्ट विनाश और राजा जनकके दास सान्त्वनाका वर्णन ।

१३-१४

सीता पुनीका बाल्यमाल तथा सीन्दर्यका वर्णन ।

१४

सत्ताईसवाँ पर्व

स्लेच्छ राजाओंके द्वारा राजा जनकके देशमें उपद्रव होना । सहायताके लिए राजा जनकका दशरथकी बुलावा । दशरथका तत्काल वहाँ जाना और स्लेच्छोंकी परास्त करना । दशरथके इस अमृतपूर्व सहयोगसे प्रसन्न होकर राजा जनकका, दशरथके पुत्र रामके लिए अपनी पुत्री सीताके देनेका निश्चय करना ।

१५-२२

अट्ठाईसवाँ पर्व

नारद सीताके प्रहलमें पहुँचे । सीता उस समय दर्पणमें मुग्ध देख रही थी । नारदकी प्रतिफलित दर्पणमें देख सीता भयभीत हो उठी । नारद और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बीच होइल्ला गुन द्वारापालोंने उसे रोकना चाहा । पर नारद जिस किसी तरह वचकर आनाशमार्गमें उड़ बैनास पर्वत पर गये । वहाँ सीतासे बड़ला लेनेका विचार कर उसका चित्रा बनाते हैं और उसे ले जाकर विजयार्थ पर्वत पर स्थित रथनूपुर नगरके राजाके उद्यानमें छोड़ दिये हैं । चित्रपटका देखकर भामण्डल उसपर मोहित हो उठता है । नारदने चित्रपटका परिचय दिया जिससे भामण्डलका व्यामोह दबता गया ।

२३-३०

राजा चन्द्रगतिकी संमतिसे चरलदेव नामका विद्याधर अश्वना रूप रख मिथिलासे राजा जनकको दरकर रथनूपुर नगर ले गया । राजा जनक वहाँका वैभव देखकर प्रसन्न हुआ । विद्याधरोंने राजा जनकके सामने भामण्डलके लिए सीता देनेका प्रस्ताव किया परन्तु राजा जनकने दबताके साथ उत्तर दिया कि मैं दशरथके पुत्र रामके लिए पहलेसे देना निश्चित कर चुका हूँ । विद्याधरों द्वारा भूमिगोचरियाकी निन्दा सुन राजा जनकने कारण उत्तर दिया । अन्तमें 'यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा दौरे तो सीता ले सके अन्यथा भामण्डल लेगा' इस शर्त

परजनक मिथिलामें चापिस आये । मिथिलामें स्वयंवर हुआ और रामने धनुष चढ़ाकर सीताकी रत्नमाला प्राप्त की । लक्ष्मणने भी दूसरा धनुष चढ़ाकर अठारह कन्याएँ प्राप्त कीं । भरतका राजा जनकके भाई जनककी पुत्री लोचनमुन्दरीके साथ विवाह हुआ ।

३०-४४

उनतीसवाँ पर्व

आपादी अष्टाद्विकामें राजा दशरथने भगवान्‌का अभिषेक कर गन्धोदक, सब रानियोंके पास भेजा । सुप्रभा रानीके पास एक वृद्ध कन्धुकी ले गया इसलिए वह देरसे पहुँचा । अन्य रानियोंके पास तरुण दासियाँ ले गई थीं इसलिए जल्दी पहुँच गया । सुप्रभाने इसे अपना अपमान समझ प्राणघात करनेके लिए विष मँगाया ।

४५-४७

कन्धुकी विष लेकर सुप्रभाके पास पहुँचा ही था कि उसी समय राजा दशरथ उसके पास पहुँच गये । राजा तथा अन्य रानियाँ जब तक उसे समझाती हैं तब तक वृद्ध कन्धुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा ।

४७-४८

प्रसन्न होकर सुप्रभाने गन्धोदक शिर पर धारण किया । राजा दशरथने कन्धुकीसे विलम्ब का कारण पूछा तो उसने अपनी वृद्ध अवस्थाको ही उसका कारण बतलाया । उसकी बर्जर अवस्था देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया । उसी समय अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें सर्वभूतहित नामक मुनिराजका आगमन हुआ ।

४८-५३

तीसवाँ पर्व

विद्याधरोंने यथार्थ बात भामण्डलसे छिपा रखी थी इसलिए वह सीताके भिलनेमें विलम्ब देख विवहल हो उठा । निदान, एक दिन लज्जा छोड़ उसने पितृके समक्ष ही अपने भिन्न वस्त्र ध्वजको उपालम्भ दिया । तब विद्याधरोंने सत्र बात स्पष्ट कर दी । भामण्डल उत्तेजित हो उठा और सीताहरणकी भावनासे सेना लेकर अयोध्याकी ओर चला । निदग्ध नामक देशके मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तब उसे पूर्वभरतका स्मरण हो आया जिससे मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर अपने बुविचारोंने प्रति उसे गृह्य घृणा हुई । उसने चन्द्रयान विद्याधरको बताया कि मैं पूर्वभरतमें यहाँका राजा बुण्डलमण्डित था । धर्मके प्रभावसे राजा जनकका पुत्र हुआ । उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ । और आपने यहाँ पलकर मैं पुष्ट हुआ । जिस सीताके व्यामोहसे मैं उन्मत्त हो रहा था वह तो मेरी सगी बहिन है । अन्तमें भामण्डल सत्र लोगोंने साथ अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें स्थित सर्वभूतहित मुनिराजके पास जाता है । चन्द्रयान विद्याधर दोहा लेनेका भाव प्रकट करता है । भामण्डलका निरदगान होता है जिसे मुनकर सीता जागती है । सर्वभूतहित मुनिके पास सत्ररा मिलन होता है । सीता अपने भाईसे मिलती है । दशरथ राजा जनकको खबर देते हैं । राजा जनक सत्रविचार आकर अपने जन्मदूत पुत्रसे मिलकर परम आनन्दका अनुभूत करने हैं । राजा जनक अपना राज्य अपने भाई जनकको सौंपकर भामण्डलके साथ विजयार्थ चले जाते हैं ।

५४-६६

इकतीसवाँ पर्व

सर्वभूतहित मुनिराजके द्वारा दशरथके पूर्व भर्त्ता वर्णन ।

६५-७२

पूर्वभर्त्ता वर्णन मुन राजा दशरथका निरक्त हृदय और भी अधिनि निरक्त हो जाता है । वे मन्त्रियोंके समक्ष अपना अक्षय निधय प्रकट कर रामके राज्याभिषेककी घोषणा करते हैं । रामप दाकर भरतकी माँ देवका, अपना पूर्वस्थान पर माँगकर भरतके लिए राज्य माँगती है । राजा दशरथ अस्मत्समे पड़ जाते हैं । रामके समक्ष वे अपनी इस दुःवस्थाको प्रकट

करते हैं। राम दस्ताके साथ कहते हैं कि अगर भरतको राज्ञ देकर अपने सत्यचरनो रक्षा कीजिये मेरी चिन्ता छोड़िये। इसी बीच भरत संगारने निरक्त हो दीक्षाये लिए महलमे नीचे उतरता है तब राजा दशरथ और राम उसे त्रिम त्रिभी तरह समझा बुझकर रोने लगे। भरतका राज्यभिषेक होता है।

७३-७८

पिताके पाससे उठकर राम अपनी माता अम्बिका (कौशल्या) के पास जाने हैं और उसे समझकर तथा सान्त्वना देकर वनको जानेके लिए उत्तत होने हैं। मीता और लक्ष्मण उनके साथ हो जाते हैं। राम लक्ष्मणके साथ प्रजाके अनेक लोग थे। गुरुकुल समग्र आया और राम लक्ष्मण तथा सीता तीनों ही नगरके बाहर श्री त्रिमन्दिरमें दृढ़ गये। दशरथकी अन्य रानियोने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि आप राम लक्ष्मणको लौटाकर शोकनागरमें डूबने हुए इस कुलकी रक्षा करो परन्तु दशरथके निरक्त हृदयने अब इस प्रयत्नमें पड़ना उचित नहीं समझा।

७९-८५

वत्सीसौ पर्व

राम लक्ष्मण, सीताको साथ ले मध्यरात्रिके समय जब कि सब लोग गहामण्डपमें सो रहे थे मन्दिरके पश्चिम द्वारसे निरालर दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। प्रातः जागनेपर तितने ही लोग उनसे पीछे दौड़े तथा कुछ दूर तक साथ गये। अन्तमें परियाना नामक वनके नीचमें पठनेशाली भरतकी नदीकी राम लक्ष्मण तैरकर पार कर गये परन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर सके। पलम्बरूप तितने ही घर लौट गये और तितने ही दीक्षित हो गये। तदनन्तर राजा दशरथने सर्वभूतहित मुनिराजके पास दौड़ा धारण कर ली। कौशल्या और सुमित्रा पति एवं पुत्रने विना गृहत दुःखी हुई। भरतकी माता देव्या इन दोनोंकी कुलपूर्ण अश्रुता देख भरतसे कहती है कि तू राम लक्ष्मणको लौटानेके लिए जा। मैं भी पीछेमें आती हूँ। तदनन्तर सत्रन वनमें एक सरोवरके तीरपर भरतने राम लक्ष्मणको देखा। सरसा मित्रा हुआ। केका और भरतने वापिस चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। राम वापिस नहीं लौटे। भरत निराश हो वापिस लौट आया और राज्यका पालन करने लगा। उसने युतिमन्त्रके समक्ष प्रतिज्ञा ली कि मैं राम के दर्शनमानने मुनिदीक्षा ले लूँगा। युतिमन्त्रके सबको धर्मका यथार्थ उपदेश दिया। ८६-१००

तैत्तिरीसौ पर्व

क्रम-क्रममे राम लक्ष्मण चित्रकूट वनको पारकर अवन्ति देशमें पहुँचे। वहाँ एक ऊँच देशको देख तनागत दीनहीन मनुष्यसे उसका कारण पूछा। उसने इसी प्रकारमें दशरथपुरके राजा वज्रकर्णका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर सिंहोदरकी उद्दण्डताका वर्णन सुनाया। सिंहोदर और वज्रकर्णके पारस्परिक सङ्घर्षका निरूपण किया और यह बताया कि सिंहोदरने कुपित होकर इस दरे मेरे देशको ऊँच किया है।

१०१-११३

राम लक्ष्मण आहार प्राप्त करनेकी इच्छासे आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मणके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्यपदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर रामके पास आता है। वज्रकर्णके इस आतिथ्य सत्कारका रामके हृदयमें भारी प्रभाव पड़ता है और वे लक्ष्मणकी वज्रकर्णका रक्षाये लिए भेजने हैं। लक्ष्मण भरतका सत्रन वनकर सिंहोदरकी अक्ल टिकाने लगाता है और उसे पराजित वज्रकर्णकी रक्षा करता है। अन्तमें वज्रकर्ण और सिंहोदरकी भिन्नता कथाकर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं।

११४-१२४

चौतीसवाँ पर्व

राम वनमें विराजमान हैं और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते हैं। वहाँ हाथी पर चढ़ा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान दारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आनिध्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अपना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अतर्क कुमारके चेषमें रह रहा था। पूछने पर उसने इसकी आश्चर्यकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिलिहय मेरे जन्मके पूर्वसे ही म्लेच्छ राजाके यक्षों कैद है। उनके अभावमें मैं कुमारका चेष रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम लक्ष्मण सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने म्लेच्छ राजाको आज्ञाकारी बनाकर बालिलिहयको बन्धन मुक्त कराया।

१२५-१३२

पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते करते सीता थक जानी है। प्याससे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गाँवमें ले जाते हैं और सब क्रमप्राप्त कविल ब्राह्मणी यक्षशालामें ठहर जाते हैं। ब्राह्मणीके द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है परन्तु उसी समय लकड़ियोंका भार शिर पर रखे हुए कविल ब्राह्मण आता है और इन्हें अपनी यक्षशालामें ठहरा देता ब्राह्मणीके प्रति रोपसे उबल उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हें घरसे निकलनेके लिए बाध्य करता है। उच्चैजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमें एक बट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते हैं। आकाशमें घनघटा उमड़ आती है। जोरदार वर्षा होने लगती है तथा राम लक्ष्मण सीता असहायकी तरह पानीसे भीगने लगते हैं। यक्षपति अपने अधिष्ठानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कविल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रलुब्ध चित्त हो ब्राह्मणीने साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरजसे बैठकर रामका स्तवन करना है। राम उसे अतिरिक्त धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते हैं। अरकारके बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमें ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली।

१३३-१४६

छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल गीतने पर अब राम उस यक्ष निर्मित रामपुरीसे चन्ने लगे तब यक्षराजने उनसे क्षमा माँगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी दन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणकी चाहती थी पर उनके वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्य कुमारके साथ विवाह करनेके लिए उत्थत हुआ। यह देख, वनमाला आत्म पातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियोंके साथ वनदेवीकी पूजाका यज्ञाका यज्ञा कर वनमें गई और साथसे सब लोगोंने सो जाने पर वह उत्तरीय वस्त्रकी पगो बना मरनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने द्विपे द्विपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राणमुद्घा की।

अपने आपको प्रकट किया। रामके पास सब लोग पहुँचे। राजा पृथिवीवर रानी इन्द्राणीने साथ सज धजकर उनके पास गये। आमोद प्रमोदसे लक्ष्मणका वनमालाके साथ विवाह हुआ।

१४७-१५४

सैतीसवाँ पर्व

राजा पृथिवीवरके सभामण्डपमें राम सुखासीन हैं उसी समय राजा अतिरीर्यका दूत एक पन राजा पृथिवीवरको देता है। उसमें लिखा था कि मैं अबोध्याने राजा भरतके प्रति अभियान कर रहा हूँ अतः सहायताके लिए सदल बल शीघ्र पधारो। रामके पुल्ले पर दूतने भरतके प्रति होनेवाले अभियानका कारण भी बताया। रामका सकेत पाकर राजा पृथिवीवरने दूतका आश्वासन देकर निदा किया। तत्पश्चात् परस्परके विचार निमर्शने बाद, राम लक्ष्मण सीता और पृथिवीवरके पुत्रोंके साथ अतिरीर्यको राजधानीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने नदी गम्भीरताके साथ कर्तव्य मार्गका निर्णय कर, राम-लक्ष्मण सीताको आर्थिमाश्रीके पास छोड़ नर्तकियोंके वेपमें अतिरीर्यके दरबारमें गये। वहाँ उन्होंने अपने अनुपम सगोता और कलापूर्ण नृत्यसे उसे मन्त्र मुग्धकी तरह बशीमूल कर लिया। रत्न जमा हुआ देख नर्तकीने डोंर दिखाते हुए कहा कि तू भरतके प्रति जो अभियान कर रहा है वह तेरी मृत्युका कारण है अतः यदि जीवित रहना चाहता है तो भरतको प्रणाम कर। इस प्रकार अपनी सज्जना और भरतकी प्रशंसा सुन क्रुद्ध हो अतिरीर्यने नर्तकियोंको मारनेके लिए जो तलवार ऊपर उठाई थी लक्ष्मणने उसे लपक कर छीन लिया और उससे ही सब राजाओंको भयभात कर अतिरीर्यको जीवित पकड़ लिया। नर्तकियोंकी यह विचित्र शक्ति देख आगत राजा महाराजा पलायमान हो गये। राम लक्ष्मणने बन्धनबद्ध अतिरीर्यको ले जाकर सीताके सामने रख दिया। उसकी दुःखपूर्ण अवस्था देख सीता दयासे द्रवीभूत हो गई। फलस्वरूप उसने उसे छुड़ा दिया। अतिरीर्यने सब मान छोड़ कर जिनदीक्षा धारण कर ली। राम लक्ष्मण राजनिमेषकी तरह अत्यन्त रूपसे भरतकी रक्षा कर आगे बढ़ गये।

१५५-१६६

अष्टतीसवाँ पर्व

रामने अतिरीर्यके पुत्र विजयरथका राज्याभिषेक किया। अतिरीर्यके मुनि होनेका समाचार सुन भरत उनसे दर्शन करनेके लिए गया। दर्शन कर लमा मोगी, मुनिराजकी स्तुति की। भरतको नर्तकियोंका पता नहीं था अतः वह आश्चर्यसागरम निमग्न था। वनमालाको आश्वासन दे राम-लक्ष्मण आगे बढ़े। क्षेमावलिपुर नगरके गहर सब ठहरे। भोजनावसान्त लक्ष्मण, रामकी आज्ञासे नगरमें प्रविष्ट हुए और वहाँके राजा शत्रुदमनकी शक्तिको फेल कर उसकी पुत्री जिनपद्माको अपने पर आसक्त किया। जिनपद्माका पिता राजा शत्रुदमन सेनाके साथ राम और सीताके पास गया। राम सेनाको आती देख पहले तो आश्चर्यम पड़े परन्तु बादमें यथार्थ बातका पता चलने पर निश्चिन्त हुए। लक्ष्मणका जिनपद्माने साथ विवाह हुआ।

१६७-१७७

उनतालीसवाँ पर्व

राम लक्ष्मण तथा सीताका वराहव्युत्ति नगरमें जाना, भागते नगरवासियोंके द्वारा पर्वतसे आते हुए भयङ्कर शब्दकी सूचना तथा रामके द्वारा उसका अनुसरण। देशभूषण तथा कुलभूषण नामक मुनियोंके दर्शन करने उनका अग्निप्रम देवके द्वारा क्रिये हुए उपसर्गको दूर करना। तथा मुनियोंको वैजल्लान उत्पन्न होना। मुनियों द्वारा पद्मिनीनगरीके राजा विजय पर्वत तथा रानी धारिणीके दूत अमृतस्वरके पुत्र उदित तथा मुदितकी कथाका भ्रान्तिरहित संहित वर्णन, भ्रान्तिरहित देवभूषण तथा कुलभूषण मुनियोंका वर्णन।

१७८-१८४

चालीसवाँ पर्व

वशस्थलपुरके राजा मुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी रामरत्न अभिवादन, रामचन्द्रका दण्डक वन प्रस्थान तथा रामगिरिका वर्णन ।

१६५-१६८

इकतालीसवाँ पर्व

राम लक्ष्मण तथा सीताका कर्णरवा नदीको प्राप्त कर उसमें अवगाहन तथा मुगुति और गुति नामक दो मुनियोंको आहार दान देनेसे पञ्चाश्वर्यकी प्राप्ति । मुनिराजके दर्शनसे गृध्र पक्षीका पूर्वभय शान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दनाके कारण दिव्य शरीरकी प्राप्ति, मुनि द्वारा गृध्रके पूर्वभयका कथन, मुनिराज द्वारा अपने पूर्वभवका वर्णन कर अपने स्थानको प्रस्थान, राम द्वारा गृध्रका 'जटायु' नाम करण तथा उसका रामके आश्रममें निवास ।

१६९-२१०

चत्वारिंशत्तम पर्व

पान दानके प्रभावसे राम लक्ष्मण रत्न तथा मुक्तादि सम्पदासे सम्पन्न हो गये । तदनन्तर वे मनो रथ रथ पर आरुढ़ हो दण्डक वनमें स्वेच्छानुसार भ्रमण करने लगे । नाना छन्दोंमें दण्डक वनका अद्भुत वर्णन । वनके सौन्दर्यसे प्रसन्न हो राम पहले तो लक्ष्मणसे कहते हैं कि जाओ अपनी माताओंको ले आओ फिर कुछ रुक कर कहते हैं कि नहीं अभी वर्षा ऋतु है अतः यातायातमें कष्ट होगा । शरद् ऋतुके सुनहले दिन आने पर मैं रथ जाऊँगा ।

२११-२२१

तैत्तलीसवाँ पर्व

शरद् ऋतुकी निर्मल चाँदनी आकाशमें छिटकने लगी । एक दिन लक्ष्मण वनमें भ्रमण करते करते दूर निकल गये । उन्हें एक ओरसे अद्भुत गन्ध आई उसी गन्धसे आकृष्ट हो वे उस ओर बढ़ते गये । अश्विनके पूछने पर गौतम स्वामीने राजस वश तथा लक्ष्मणका वर्णन किया । एक बॉसके भिड़ेमें शम्भूक सूर्यहास राज्ञ सिद्ध कर दिया था । देवोपनीत राज्ञ आकाशमें लटक रहा था । उसीकी मुगन्धि सर्वत्र फैल रही थी । लक्ष्मणने लरुकर सूर्यहास राज्ञ हाथमें ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसे उन्होंने उसी बॉसके भिड़े पर चला दिया । चलाते ही बॉसोना भिड़ा कट गया और साथ ही उसके भीतर स्थित शम्भूक भी कट कर दो टुक हो गया । शम्भूक, रावणकी बहिन चन्द्रनखाका पुत्र था । वह प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिए आती थी । उस दिन पुत्रके दो टुक देख उसके दुःखका पार नहीं रहा । उसका कण्ठ विलाप आकाशमें गूँजने लगा । कुछ समय बाद राम लक्ष्मणके सौन्दर्यसे उसका मन ह्व गया और वह उन्हें प्राप्त करनेके लिए छुल्लसे कन्या बन गई । राम-लक्ष्मण उसकी मायासे विचलित नहीं हुए ।

२२२-२३१

चत्वारिंशत्तम पर्व

कामेच्छा पूर्ण न होनेपर चन्द्रनखाको पुत्रशोकने फिर घर दनाया जिससे विलाप करती हुई वह अपने पति रघुदूषणके पास गई । रघुदूषणने स्वयं आफर पुत्रको मरा देखा । उसका कंधा उबल पड़ा । वह राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिए उठ पड़ा हुआ । रघुदूषणने रावणको भी इस घटनाकी खबर दी थी । रघुदूषणना इधर लक्ष्मणके साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायताके लिए आता है सो बीचमें सीताको देख मोहित हो उठता है । छुल्से सिंहनाद कर रामको लक्ष्मणके पास भेज देता है और सीताको एकाकिनी देख हर ले जाता है । जटायु शक्ति भर प्रयत्न करता है पर सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है । रघु-भूमिमें रामको देख लक्ष्मण घटित घटनाकी आशङ्कासे दुःखी हो उन्हें तत्काल वापिस भेजते हैं । पर राम वापिस आनेपर सीताको नहीं पाते हैं । उसके बिना कण्ठ विलाप करते हैं । २३२-२४३

पैतालीसवाँ पर्व

लक्ष्मण रावणदूषणको निष्प्राणकर जब रामके पास आते हैं तब उन्हें सीतारहित देख बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण अपने उपकारी निराधित निष्पाधरका रामको परिचय देते हैं। उसी समय निराधित सेना सहित रामके समीप आ पहुँचता है। रामकी बहुत खुति करता है। लक्ष्मण उससे सीता हरणकी बात कहते हैं। निराधितने अपने मन्त्रियोंको सीताका पता लगानेका आदेश दिया। अर्कबटीका पुन रत्नबटी सीताका रोदन सुन रावणके पीछे दौड़ा परन्तु रावणने उसकी आकाशगामिनी निष्पा छीनकर उसे नीचे गिरा दिया। वह समुद्रके मध्य कम्बु नामक द्वीपमें पड़ा। निष्पाधरोंको सीताका पता नहीं लगा। अनन्तर निराधितके कठनेसे राम अनकार पुर (पाताल लका) गये। वहाँ सीताकी निरहानलमें झुगसने रहे। २४४-२४९

छियालीसवाँ पर्व

रावण सीताको लेकर लकामें पहुँचा। वहाँ परिचमोत्तर दिशामें स्थित देवारण्य नामक उद्यानमें सीताको ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगा। शीतलवती सीताने उसकी समस्त प्रार्थनाएँ दुक्ता दीं। रावणने माया द्वारा सीताको मयमीत करनेका प्रयत्न किया पर वह कर्तव्य पथसे रक्षमान भी निचलित नहीं हुई।

रावणकी निमलम्भजन्म दुर्दशा देख मन्दोदरीने उसे बहुत समझाया पर तब व्यर्थ हुआ। रावण की दुर्दशासे दुखी हो मन्दोदरी सीताको समझानेके लिए गई पर सीताने ऐसी कष्टकार दी कि मन्दोदरीको उत्तर नहीं सूझ पड़ा। प्रातःकाल होने पर रावण पुनः सीताके पास गया पर सीताकी अनुकूल नहीं कर सका। मन्त्रियोंद्वारा प्रकृत बातपर गम्भीर विचार विमर्श हुआ और लकाकी रक्षाके उपाय किये गये। २५२-२६८

सैंतालीसवाँ पर्व

विट सुग्रीवके द्वारा उपहृत होनेके कारण किष्किन्धापुरीका स्वामी सुग्रीव दुःखी होकर इधर उधर भ्रमण करता फिरता था। उसी समय वह विराधितकी पाताललंकामें आया। विराधितने उसका सम्मान किया। वहाँ रामके साथ उसका परिचय हुआ। मन्त्रियोंने रामसे सुग्रीवकी दुःखद दशाका वर्णन किया जिसे सुनकर रामने उसकी सहायता करना स्वीकृत किया। रामने जानर वृजिम सुग्रीव साहसगति निष्पाधरको निष्पाण किया। सुग्रीवकी तेरह कन्याओंने रामकी वरा***। २६९-२८०

अड़तालीसवाँ पर्व

राम सीताके निरहसे सतप्त है। सीताका पता चलानेमें सुग्रीवको मिलभ युक्त देख लक्ष्मण उसके प्रति कुपित होते हैं। सुग्रीव रामके पास आकर क्षमा मागता है और अपने सेनकोंको सीता का पता लगानेका आदेश देता है। रत्नबटीने पता दिया कि सीताको लकाधिपति रावण हर कर ले गया है। रावणका नाम सुन निष्पाधरोंके होश टपड़े पड़ जाते हैं। रामके प्रयत्न आग्रह पर जानर यह कहकर सहयोग देनेको तत्पर होते हैं कि रावणकी मृत्यु कोटिशिला उठाने वालेके द्वारा होगी ऐसा अनन्तरीर्थ सुनीन्द्रने कहा था सो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावणके साथ युद्ध करनेके लिए उत्तम हो सकते हैं। लक्ष्मणने उरी समय जानर कोटिशिला उठा दी। जानर उनकी शक्तिमा विश्वास कर युद्धके लिए तैयार हुए। २८१-२८८

उनचासवाँ पर्व

सुग्रीवने हनूमान्को बुलानेके लिए अपना कर्मभूति नामका दूत भेजा । इसने हनूमान्से खरदूषण की मृत्युका समाचार कहा जिससे उसके अन्तःपुरमें शोक छा गया । विट सुग्रीवके नाशका समाचार सुन हनूमान्की दूसरी स्त्री पद्मरागा प्रसन्न हुई । रामकी महिमा सुन हनूमान् उनके समीप आया और विनीत भावसे उनकी स्तुति कर सीताके पास राम सदेश भेजनेके लिए लंका गया ।

२६६-३०७

पचासवाँ पर्व

लंका आते समय हनूमान् मार्गपतित मातामह महेन्द्रके नगरमें पहुँचा वहाँ उसके द्वारा किये हुए माताके अपमानका स्मरण होनेसे उसे बहुत रोष उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसे बलपूर्वक परास्त किया । हनूमान्का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जनाके साथ मिला । ३०८-३१२

इक्यावनवाँ पर्व

दधिमुल द्वीपमें स्थित मुनिशेके ऊपर दावानलका उपसर्ग हनूमान्ने दूर किया । समीप स्थित गन्धर्व कन्याओंने त्रियासिद्ध हो जानेके कारण हनूमान्के प्रति कृतज्ञता प्रकट की । रामको गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्ति हुई ।

३१३-३१६

बावनवाँ पर्व

अचानक अपनी सेनाकी गति रुक जानेसे हनूमान् आश्चर्यमें पड़ा । आगे बढ़ कर उसने मायायम कौटकी ध्वस्त कर दिया । और थोड़ी देरमें ही वज्रायुधको प्राणरहित कर दिया । तदनन्तर उसकी पुत्री लक्ष्मिन्दरीके साथ हनूमान्का विवाह हुआ ।

३१७-३२३

त्रेपनवाँ पर्व

हनूमान् लंकामें जाकर सर्व प्रथम विभीषणसे मिलता है और रावणके दुष्कृत्यका उसे उपालम्भ देता है । तदनन्तर विभीषणकी विवशताका विचार कर मन्दोद्यानमें जाता है । वहाँ शरोक वृक्षने नीचे सीताको देण्ड अपने जन्मको सफल मानता है । वह उसकी गोदमें रामप्रदत्त अण्डा छोड़ता है । सीता उसे बुलाती है । वह प्रकट होकर विनीतभावसे सीताके समक्ष आता है और सीताके लिए रामका सदेश सुनाता है । ग्यारहवें दिन रामका सदेश पाकर सीता आहार ग्रहण करती है । मन्दोदरी आदिके साथ हनूमान्का सवर्ण होता है । हनूमान् उद्यानकी स्तुति प्रस्त करता है । बन्धन बढ़ होने पर रावणके समक्ष उपस्थित होता है परन्तु अन्तमें बन्धन तोड़ तथा लंकाको नष्ट भ्रष्ट कर रामके पास वापिस आ जाता है । ३२४-३४३

चौवनवाँ पर्व

चारिस आकर हनूमान्ने रामकी सीताका सब समाचार सुनाया उसका चूड़ामणि उन्हें अर्पित किया । साथ ही सीताकी दयनीय दशाका भी वर्णन किया । चन्द्रमरीचि त्रियाधरकी प्रेरणासे उत्तेजित हो सब त्रियाधरोंने रामको राख ले लंकाकी ओर प्रस्थान किया ।

३४४-३५०

पचपनवाँ पर्व

लंकाके समीप पहुँचने पर राक्षसोंमें खोम उत्पन्न हो गया । इन्द्रजित् और विभीषणमें पर्याप्त वाक्स्पर्ध हुआ । रावणसे निरस्तर प्राप्तकर विभीषण लंका छोड़ कर रामसे आ मिला । ३५१-३५७

छप्पनवाँ पर्व

रावणकी अक्षोहिणी आदि सेनाका वर्णन ।

३५८-३६०

सत्तावनवाँ पर्व

लंका निजामिनी सेनाकी तैयारी तथा लंकासे बाहर निकलनेका वर्णन ।

३६१-३६६

अट्ठावनवाँ पर्व

नल और नीलके द्वारा हस्त और प्रहस्तका मारा जाना ।

३६७-३७०

उनसठवाँ पर्व

श्रेष्ठिकके पूछने पर गौतम स्वामी द्वारा हस्त प्रहस्त और नल नीलके पूर्वमवस्थाका वर्णन ।

३७१-३७३

साठवाँ पर्व

अनेक राजसौंका मारा जाना तथा राम लक्ष्मणको दिव्यास्त्र तथा सिद्धबाहिनी और गवहवाहिनी विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन ।

३७४-३८४

इकसठवाँ पर्व

सुग्रीव और भामरगडलका नागपाशसे जँधा जाना तथा राम लक्ष्मणके प्रभावसे उनका जन्म-मुक्त होना ।

३८५-३८७

चासठवाँ पर्व

वानर और राजसंरंशी राजाओंका युद्ध, मिथिल्य और रावणका सवाद, योद्धाओंकी रणोन्मादिनी चेष्टाएँ और रावणके द्वारा शक्तिका चलाया जाना । शक्तिके लगनेसे लक्ष्मणका मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पडना ।

३८८-३९५

तिरसठवाँ पर्व

शक्ति निहत लक्ष्मणको देख राम विलाप करते हैं ।

३९६-३९८

चौसठवाँ पर्व

इन्द्रजित् मेनकाइन तथा कुम्भकर्णने मरनेकी आशकासे रावण दुखी होता है । लक्ष्मणके घायल होनेका समाचार सुन सीता भी बहुत दुखी हुई । एक अपरिचित मनुष्य द्वारा लक्ष्मणकी शक्ति निजालनेका उपाय बताया जाता है, वह अपना परिचय देता है । विशल्याने पूर्वभर्षों तथा उसके वर्तमान प्रभावका वर्णन कर वह रामको सात्वना देता है ।

३९९-४०७

पैंसठवाँ पर्व

उस अपरिचित प्रतिचन्द्र निद्याधरके बचनेसे हर्षित हो रामने हनुमान् भामरगडल तथा अंगदको तत्काल अवस्था मेंजा । अवस्थामें छोम पैल जाता है । अनन्तर द्रोणमेघके पास भरतकी मा स्पर्श गई और विशल्याकी सखा मेजनेकी व्यवस्था की । विशल्याके सखा पहुँचते ही लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे शक्ति निराल कर दूर हो गई और रामकी सेनामें हर्ष छा गया । विशल्याका लक्ष्मणके साथ निगद हुआ ।

४०८-४१४

पद्मपुराणम्

श्रीमद्भरविपेणाचार्यकृतम्

पञ्चचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

पद्मविंशतितमं पर्व

भक्तो जनकमग्रन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निवेद्यामि यद्वृत्तं भगवद्विमानसः ॥१॥
 भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदन तस्याः प्रयत्नतः चिरं सुरः ॥२॥
 जगद् श्रेणिको नाथ सं गर्भं केन हेतुना । देवो ररथ विज्ञानुमेतद्विष्णुमि^३ शिष्यताम् ॥३॥
 उवाच गीतमो राजा नाम्ना चक्रधरोऽभवत् । स्थाने चक्रपुरामिच्छे भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥
 तयोश्चित्तोन्मत्तापयं कन्या गुरुदेव स सा । रराज सितमृदुरौलेखनी वर्णश्रुति ॥५॥
 राक्षः पुरोहितस्यास्य भूमकेशस्य पित्रलः । स्वाहादुश्चिन्मत्रोऽर्धाते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥
 विद्यालामन्तयोर्गोसादभ्योन्मद्वत्तपेतसोः । विद्याधर्मावगाहश्च ज्ञापतेऽवहितामनाम् ॥७॥
 पुरा संमत्तः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ता इतोर्विश्रम्भसम्भवः ॥८॥
 सत्तावात् प्रणयोपतिः प्रेमैत्रं पञ्चहेतुकम् । दुर्मोचि बन्धने कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गीतमर्यामो राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अथ राजा जनकका पृत्तान्त कहता हूँ मो तुम साधवान बिच होकर सुनो ॥१॥ राजा जनकको विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी । उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमे गीतमर्यामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक पञ्चध्वज नामका राजा था । उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोन्मत्ता नामकी कन्या उत्पन्न हुई । यह कन्या गुरुके घर अर्थात् बादशाहमे रहिया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुरोभिष होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित भूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पित्रल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोन्मत्ता और पित्रल इन दोनोंका चित्त परस्परमे हवा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिरचित्तवालोंकी ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो बूट न मरे ऐसे कर्मका बन्ध होना है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥

अथासौ ज्ञातसद्भावा तेन चित्तोत्सवा रह । द्वियतेस्म महारूपा कीर्तिदुर्गंशा यथा ॥१०॥
 दूर देश 'यदानाणि तदज्ञानाणि सुबन्धुभि । इता प्रमाददोषेण मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
 कन्यया मुदितश्रीर पिङ्गलो धनवजित । न विभाति यथा लोभी तृष्ण्या धर्मवजित ॥१२॥
 विदग्धनगर चाप दुर्गम परराष्ट्रिणाम् । वहि कृत्वा कुर्वी तत्र तस्यौ नि स्वकपाटके ॥१३॥
 ज्ञाविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठादिविक्रयात् । अनुरक्षति ता पत्नीं मग्नो दारिद्र्यसागरे ॥१४॥
 पुत्र प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रभयकर । ज्ञातोऽत्र प्रवरावली राजा कुण्डलमण्डित ॥१५॥
 तेन दधान्यदा बाला निर्यातेन कथञ्चन । हतरच पञ्चभिर्बाणैर्मारस्याभूत् सुदु खित ॥१६॥
 प्रखल्य प्रोपिता दूती तथा राज्ञी भृपालयम् । यथासीत् कमलामेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥
 तदा तद् सुख रेमे प्रीत कुण्डलमण्डित । उर्वरया सह सरनो यथासाधलक्ष्म्य ॥१८॥
 तत स पिङ्गलाक्षोऽपि भ्रान्त स्वगृहमागमत् । तामपरयन् विशालार्थी मग्नो वैयुर्यसागरे ॥१९॥
 विस्तोर्णेन किमुक्तेन सोऽय विरहदु खित । न कश्चिद्भगते सौख्य चक्रारुढ इवाकुल ॥२०॥
 हतभार्यो द्विजो दीनस्त राजानमुपागमत् । ऊचे चाग्नियन् मे राजन् पत्नी वेत्तापि चोरिता ॥२१॥
 भाषिताना दरिद्राणामात्मना च विशेषत । नारीणा पुरुषाणा च सर्वेषा शरः नृप ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलकी चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया । जिस प्रकार अपयशके द्वारा कीर्तिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवाका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोको उसका पता चला । जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको घुरानेजाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकारका धर्महीन लोभी मनुष्य तृष्णासे सुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्ध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहाँ कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिये नृण, काष्ठ आदि बँचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥

उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आई । देखते ही वह कामके पोंचो बाणसे ताड़ित होकर अत्यन्त दुःखा हो गया ॥१६॥ उसने गुप्तरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतीने उसे राज्ञिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुखकी दूतीने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलद्वार उर्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल यका-मोदा अपने घर आया तो उस विशाल लोचनाको न देखकर दृष्टरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गीतमस्यामी कहते हैं कि अधिक बढ़नेसे क्या ? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रारुढकी तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गई थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाने पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सनका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र

अमायं धूर्तमाह्वय समायं पायिवोऽज्जीवत । विराय मा कृया माम जायास्यान्निग्रयतामिति ॥२३॥
जगादेति च तत्रैकः सविकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पीदनस्थानवर्मनि ॥२४॥
छान्त्यार्यागृन्दमप्यस्या^२ तपः कर्तुं समुद्यता । विनिवर्तय तां चिप्र किं विरीषि प्रत्र द्विज ॥२५॥
को वा प्राप्स्यकाशेऽस्या दधत्यास्तर्ह्यीं तनुम् । वरस्त्रागुमपूर्णाया हरन्त्यास्तर्ह्यं जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्थाय बद्ध्वा परिकरं ददम् । दद्याव रंहसा विद्यो अष्टारवत्वरको यथा ॥२७॥
पीदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । अष्टद्व। पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्या नरैः क्षूरैर्गालघातैः ॥ तर्जनैः । यष्टिलोष्टप्रहारैश्च नूरं निवासितो भृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परिवलेयामवमानं वथं तथा । अनुभूय परं दीर्यमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥
रतिं न समते क्वापि रहितः प्रियया सदा । शुष्यन्वहनि रात्री च वतितोऽग्नाविभोरगा ॥३१॥
विशालपङ्कजवने दागामिमिव पर्यवति । सरोऽपि^४ माहमानोऽग्नी दहते विरहाग्निना ॥३२॥
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारैः^५ ददर्श गगनाग्ररम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्त^६ च ममेव रचित्ताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसा हृष्टो धर्मं शुभ्राय तत्प्रतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशंस जनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
• अहो परममाहात्म्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो भास्कर इवोदितः ॥३६॥

तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्तमन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि चिलन्ध मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्रीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्रीको वो पथिकोंने पीदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ यह आर्यिकाओके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जय कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही यह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दीड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दीड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पीदनपुरके मन्दिरों तथा उपयनोंमें अपनी स्त्रीकी बहुत खोज की । जय नहीं मिली तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापिस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें घिसा देकर नाना प्रकारकी डाँट दिसाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थान भ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ स्त्रीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था । वह अग्निमें पड़े हुए सोंपके समान रात दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनकी दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रवेश करते समय विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा । एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिग्गम्बर आचार्यको देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनि-राजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिन-शासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन भगवान्के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभावसे सहित है । मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही

नक्तदिवसमुप्यन् स तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शरीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥१०॥
 ततोऽप्यौ बालचन्द्रेण सेनान्या जावमापयत । उद्दिग्ध इव कम्मारय मन्त्र नभः स्पृश्यमे ॥११॥
 उद्देगकारण भद्र मम भण्डितक परम् । इयुके वायव्येण प्रतिजेय समाश्रितः ॥१२॥
 शिरःप्रमाथयिष्या त पाप मण्डितक तव । मन्त्राश नागमित्यामि धनमेतन्मया कृतम् ॥१३॥
 इति राज पुन कृत्वा सगर रोपमुदहन् । यत्नेन चतुरद्रेण सेनानागैर्नुमुषत ॥१४॥
 चित्तोत्थरा समापुनचित्तो मुक्तान्यवेहित । प्रमादबहुलो निद्रमूलमृषपनायति ॥१५॥
 भ्रष्टातलो कृतान्तो मण्डित गण्डितोत्तम । हलया बालचन्द्रेण गत्वा यदो मृगो यथा ॥१६॥
 शृङ्गातरलराज्य त निर्वास्य विपयान् कृती । बालचन्द्राभरण्यस्य समीप पुनरागमन् ॥१७॥
 ततस्त्वेन मुमुष्येन कृतमुस्पदमुन्धर । पर प्रमोदमापन्नाभरण्य सुखमन्वमन् ॥१८॥
 शरीरमात्रचारी तु मण्डित पादचारक । पर्यन्त धरणीं दुःखी पश्चात्ताप समाहृत ॥१९॥
 परिप्राप्यात्मपद भ्रमणाना महामननाम् । नञा च शिरसाधार्य धर्म पत्रच्छ भावत ॥२०॥
 द्रु वित्ताना दरिद्राणा धनिताना च बान्धवै । व्याधिमपीडिताना च प्रायो भवति धर्मधी ॥२१॥
 प्राप्नोये यस्य भगवन् शक्तिर्नस्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्म कश्चिन्न विद्यते ॥२२॥

सका । सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के नीलमें स्थित चूहेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४६॥
 यह रात दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूझता जाता था । भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी कार्य भी यह अनादरसे करता था ॥५०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ ! आप सदा उद्दिग्ध-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥५१॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र ! मेरे उद्देगका परम कारण कुण्डलमण्डित है । राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! 'पापी कुण्डलमण्डितको वश किये दिन मैं आपके समीप नहीं आऊँगा' मैंने यह व्रत लिया है ॥५२-५२॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ सेनापति चतुरङ्ग सेनाके साथ आनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्तनामे जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सत्र चैत्रार्णव छोडकर प्रमादसे परिपूर्ण था । उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके थे । लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । सत्र प्रकारका उद्यम छोडकर वह एक क्षीमें ही आसक्त हो रहा था । सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जानर उसे मृगकी भौंति अनायास ही बोध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्य पर अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापिस आ गया ॥५७॥ इस प्रकार उस उत्तम सेनानिके द्वारा जिसकी वसुधामें पुन सुख शान्ति स्थापित की गई थी ऐसा अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सत्र राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसने पास बचा था । ऐसा वशामें वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था । सत्रा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता रहता था ॥५९॥ एक दिन वह भ्रमण करता दिग्भ्रमर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा । वहाँ आचार्य महाराजने शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पादित मनुष्योंकी बुद्धि प्राय धर्मम लगती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तत्परा जय म० । २. हे राजन् । असावयिष्या = त स्वयमहृत्वा । ३. पापमण्डितक ल० ।

४. देशात् ।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतुःस्रजपरायण । एतद्विच्छामि विज्ञातुं प्रसीद व्याकुलस्य मे ॥६३॥
 गुरुं प्रोवाच वचनं धर्मं प्राणिदयां स्मृता । मुच्यन्ते देहिन् पापैरामनिन्दाविमर्हणैः ॥६४॥
 हिंसायां कारणं घोरं शुभशोणितसम्भवम् । पिशितं मा भक्ष्य त्वं शुद्धं चेद्धर्ममिच्छसि ॥६५॥
 प्राणिना मृत्युभीरुणा मांसैश्चर्मप्रसेविकाश्च^२ । पूरयित्वा ध्रुवं याति नरकं पापमानव ॥६६॥
 शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्गग्रहणादिभिः । नास्ति सधारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिणं ॥६७॥
 तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिन् । नरकाच्च परित्राणं कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥
 सर्वजातिगता जावा बान्धवा पूर्वजन्मसु । स्युरमा भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥
 पश्चिमस्यमृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादपि कूरा मधुमासाद् गतिं वनेषु ॥७०॥
 न वृक्षाजायते मांसं नोद्विज्य धरणीतलम् । नाम्भक्ष पक्षयक्षापि सद्ब्रह्मण्यो ययौपधम् ॥७१॥
 पश्चिमस्यमृगान् हवा वराकान् प्रियजावितान् । शूरैरुपायते मांसं तस्मान्नृनन्ति दयापरा ॥७२॥
 स्तन्येन वधितं यस्यां शरीरं ता मृता सताम् । महिषीं मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमा ॥७३॥
 माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदरा । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयन्त्यधमो नरः ॥७४॥
 इह वमापटल मेरोरधस्ताद् सप्तकं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवनवासिनः ॥७५॥
 सकपाय तपः कृत्वा जायन्ते तत्र देहिन् । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विता ॥७६॥

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६३॥ अथवा चारों सज्जाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापीसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइये ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नाङ्कित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गद्गाँ आदि करनेसे मनुष्य पापीसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका भयकर कारण तथा शुरु और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरप मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुँडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वैप धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यका रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं हैं ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं । अतः मांसभक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-उन्धुआको खाता है यह सममना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न ओपधिके समान किन्हीं उनमें द्रव्यासे उत्पन्न होता है । किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पत्नी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने फटकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयाका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियों हैं उनमें से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनगासा देव रहते हैं । जो मनुष्य कपायसहित तप करते हैं । वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव कहलाते

१. मृच्छसि म० । २. उदरदरीम् । ३. निषिद्धलिङ्गधारणं । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् ।

५. मूरान् म० । ६. शन्येन म० । ७. यस्या म० ।

अधस्तस्या चितेरन्या दारुणः पद् च भूमयः । नारका यामु पादस्य मुञ्जने कर्मजः कर्म ॥७७॥
 कुरूप दारुणाराधु दुःस्पर्शः श्मान्तप्रतिताः । उपमोक्तिनदुःखानां कारणीभूतविप्रहा ॥७८॥
 कुम्भीपाकास्थिमस्थानं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा शास्मली क्रूरवृष्टका ॥७९॥
 असिपत्रवनच्युताः धुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलद्गनिनिभास्तोषणोद्द्वीका निरन्तराः ॥८०॥
 तेषु ते तीमदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादा^२ घानकाश्चामुधारिणाम् ॥८१॥
 नारकयोर्गुह्यमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । नियते नारकैश्च विमेषमपि विधमः ॥८२॥
 प्रज्ज्वलमिह तिष्ठाम इति ध्यात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैर्भरिश्च ते ॥८३॥
 ज्वलद्द्वारकुटिले दग्धा भक्ष्या इवानिले । विरमं विहिताग्रन्दा विनिगूय कथञ्चन ॥८४॥
 नारकाग्निमयप्रस्ताः प्रासा वैतरणीजलम् । चण्डचारीर्मिनिभूयो दहन्ते वह्निनोऽधिष्ठम् ॥८५॥
 असिपत्रवन वातरक्ष्याप्रवासाया युतम् । पतद्भिस्तत्र द्वापन्ते चक्ररङ्गदादिभिः ॥८६॥
 विशिष्टनामिकाकर्णस्कन्धजह्वादिभिः । कुम्भीपाके^३ नियुज्यन्ते चान्तरोजितवर्णिनाः ॥८७॥
 प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु क्रूरावेपु विह्वलाः । पुनः शैलेषु सिध्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्तराः ॥८८॥
 उह्वयन्तेऽतिगुह्येषु पादपेष्वप्यकारिषु । तावन्ते मुद्गरावातेर्महद्भिर्मस्तके तथा ॥८९॥
 जलं प्राथम्यमानानां कृष्णाणानां प्रदीयते । ताम्रादिकल्ल तेन दग्धदेहाः सुदुःखिताः ॥९०॥

हैं तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते हैं ॥७७-७८॥ रजप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियाँ और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते हैं ॥७७॥ वे नारकी कुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोंके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटोंसे युक्त शास्मली वृक्ष है ॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा क्षुरोंकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥८१॥ यहाँ अर्घ-अह्वल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वही पर व्याहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव बनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं वसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़ कर विरस शब्द करते हैं । यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरङ्गोंके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, पद्म, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके रण्ड-रण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जङ्घा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए लूनी मानो घर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भीपाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी षड़े आदिमें भर कर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोलुओंमें उन विह्वल नारकियोंको फेंक दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्या कर देने वाले बहुत ऊँचे वृक्षों पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा वड़े-वड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी माँगते

१. शास्मली क्रूरवृष्टका क० । २. मागादिवाक्का म० । ३. चन्द्र म० । तीव्र व० । ४. पानेन युज्यन्ते ।

५. चान्त म० । वात ३० ।

द्रुवते नास्ति तृणा न इत्यतोऽपि बलादभी । पाप्यन्ते तदतिक्रूरैः संदशव्यावृत्ताननाः ॥६१॥
 प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्यान्मथ्य^४ दायते । पादः क्रूरवचोभिस्तैस्तेषां कल्मषकर्मणाम्^५ ॥६२॥
 तेषां निर्दग्धकण्ठानां दहते हृदयं पुनः । निष्कामन्ति पुरीतन्ति^६ निर्भिद्य जठरं सह ॥६३॥
 परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका यत्प्रपद्यन्ते वस्तुवर्णयितुं चमः ॥६४॥
 इति ज्ञात्वा महादुःखं नरकं मांससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥६५॥
 अत्रान्तरे जगादैवं कुण्डलस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्हरयते वद ॥६६॥
 गुरुरूचे न यो मांसं खादत्यतिदृढव्रतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दृष्टिविशेषतः ॥६७॥
 उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमतः । मांसमुर्नेर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवन्ति ॥६८॥
 यः पुनः शीलसम्पन्नो जिनशासनभाषितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणी सौधर्मादिषु जायते ॥६९॥
 अहिंसा प्रथमं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसास्त्रिवृत्तस्य जायतेऽन्यन्तनिर्मला ॥७०॥
 दयावान् मद्भवान् योऽपि श्लेष्मश्चाण्डाल एव वा । मधुमांसास्त्रिवृत्तः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥७१॥
 मुक्तमात्रः पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा^७ ॥७२॥
 सम्यग्दृष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्धोमान् भुव^८ स्वर्गनिवासिनाम् ॥७३॥

हैं उनके लिए तामा आदि धानुओंका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनकी शरीर जल जाता है तथा अल्पन्न दुःखी हो जाते हैं ॥६०॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जवर्दस्ती संढारशीसे मुँह फाड़ कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥६१॥ पाप करने वाले उन नारकियोंको खमीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दुष्ट घचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोसे रूंदते हैं ॥६२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं । यही नहीं पेट फोड़ कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥६३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त करते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥६४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमें महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥६५॥

इसी बीचमें जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंकी क्या गति होती है सो कहिये ॥६६॥ इसके उत्तरमें गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढतासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥६७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह स्वपयसादिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमें रहती है ॥६८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गोंमें उत्पन्न होता है ॥६९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गई है । जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥७०॥ जो परिग्रही श्लेष्म अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥७१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥७२॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह

१. अश्माम् । २. व्यावृत्ताननः म० । ३. प्रपात्य म० । ४. वक्षस्यान्मथ्य म० । ५. ६२-६३ श्लोऽप्योर्य पाठः '२' पुस्तकमन्त्र । पुस्तकान्तरेषु त्वित्यं पाठोऽस्ति 'प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्यान्मथीने । तेषां निर्दग्धकण्ठानां दहते हृदयं पुनः ॥६२॥ निष्कामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य जठरं सह । जलता फललेनाशु तेषां कल्मसकर्मणाम् ॥६३॥ ६. अशानि । ७. यथा म० । ८. विशुः क०, रा०, ग० ।

हृद्याचार्यस्य घनं ध्रुवा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्यः इदितोऽगुप्यतेऽपि ॥१०५॥
 प्रणिपत्य गुनं मूर्ध्ना मधुमांसत्रिजर्जनम् । जग्राह शरणोपेनं मर्माधानं च दर्शनम् ॥१०५॥
 कृत्वा चैष्ये नमस्कारं गुरोर्द्विगुणायमां तथा । निष्क्रान्तः न^२ ततो देशादिनि चिन्तामुपगतः ॥१०६॥
 मातुः सहोदरो भ्राता कृतान्तममपित्रमः । ध्रुवं मे मादनः मोक्षं अविष्यत्पश्यन्मम ॥१०७॥
 राता भूत्वा पुनः शशुं जेष्यामांति मुनिश्रितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽमातातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
 श्रमाविदुःखपूर्णस्य मजतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुष्यां शो रेदे पारिपत्यभयार्जितैः ॥१०९॥
 सन्धियु त्रिदधमानेषु मिधमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽप्रागं^३ मरणं तस्य दौष्टिजम् ॥११०॥
 मुच्यते समये यस्मिन् जीयं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव पश्यते देवः^४ शेषपुण्यादिवरपुत्रः ॥१११॥
 गर्भे च^५ तौ विदेहाया विधिना परियोजिता । परस्य कर्मानुमात्रस्य त्रिचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
 एतस्मिन्नन्तरे सायु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजः महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
 भयनेऽप्रथिता स्मृत्वा धर्मस्य च फलोदयम् । दुष्यौ चित्तोत्सवा बनेति तावज्जने यथाविधि ॥११४॥
 दुष्टया किं तथा कृत्यं वयायो कुण्डलमण्डितः । वेनाहं प्रापितोऽस्तथा विधुरा मिहागंरे ॥११५॥
 पत्न्या जनकराजस्य गर्भमाधिराज मण्डितः । साकमन्येन जावेन विवेद स्थित इष्यमी ॥११६॥
 मृतां तापदिवं देवीं पुनलं किं समानया । गर्भं हितप्रयोगिण्या स्तनपारित प्रयोजनम् ॥११७॥

निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके घन मुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अनुभव धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सन्म्यदर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है तो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिरसे राजा होकर निश्चिन्त ही शत्रुको जीतूंगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी ही दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६-१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था । बीचमें पूर्वभयमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियों छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी । अन्तमें समस्त संसार जितसे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डलमण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥ भाग्यवरा वे दोनों ही जीव राजा जनरुकी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए । गीतमस्यामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मोदयकी यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहाँ उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है ? वह कुण्डलमण्डित कहाँ है जिसने मुझे बिरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त कराई थी ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानमे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनरुकी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा

१. चैत्यनमस्कार य० । २. सततं ख० । ३. न विधने प्रागं यन्मातृ, व० पुनके शिष्यम् ।

४. तस्मिन् म० । ५. देवी शेषपुण्यादिवः सती व० । ६. चित्ती म० । ७. यन्य म० ।

ततो निर्लुङ्गित सन्त पाप मण्डितक ध्रुवम् । नेष्यामि यद्दह दु ख तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥
 इति सचिन्तयन् क्रुद्ध पूर्वकर्मानुष-घत । देवो रचति त गर्भं समृद्ध्याणिना करम् ॥११९॥
 इति ज्ञात्वा चम कर्तुं दु ख जन्तोर्न कस्यचित् । कालव्यवहित तद्धि कृतमामन एव हि ॥१२०॥
 कालेनाथ सुत देवी प्रसूता युगल शुभम् । सुत दुहितवर चान्ते जहार पृथुक सुर ॥१२१॥
 आस्ताल्य मारयाम्येव शिलाया पूर्वमण्डितम् । इति ध्यात पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
 धिदमया चिन्तित सर्वं ससारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्त्वर्थात कथ बुध ॥१२३॥
 मृगस्यापि पुरा दु ख २श्रामण्ये न कृत मया । सर्वारम्भनिवृत्तेन ३तपोवीजधवाहिना ॥१२४॥
 गुरोस्त्वय प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं द्युतिमाप्तोऽस्मि करोमि दुरित कथम् ॥१२५॥
 स्वल्पमप्यजित पाप अत्रयुपचय परम् । निमग्नो येन ससार चिर दु खेन दह्यते ॥१२६॥
 निर्दोषभावो यस्तु दयावान् सुसमाहित । स्थित करतले तस्य रत्न सुगतिसञ्ज्ञकम् ॥१२७॥
 धृगवान् सप्रदायैव तमलकृप बालकम् । कुण्डले कर्णयोस्वय चक्रे दास्ताशुमण्डले ॥१२८॥
 पर्णलक्ष्मीं ततो विद्या सक्रमय्य शिखी सुर । सुखदेशे विमुच्यैन गतो धाम मनावितम् ॥१२९॥

मरणको प्राप्त होगी इसलिये यह युगल सन्तानको उत्पन्न करे पीछे देखा जायगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दु ख प्राप्त कराऊंगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दु ख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमें वह दु ख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पड़ाइकर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह यह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे ससार (जन्म मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥ पूर्वभयसे मुनि अवस्थामे जय मैं सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी कौबरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दु ख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसाद से अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अत अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ सचिन्त किया हुआ थोड़ा पाप भी परम बुद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे ससार-सागरमें निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दु खसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है जो दयालु है और जो अपने परिणामाको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमें दया उत्पन्न हो गई जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमें देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहिनाकर उसे अलकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलक्ष्मी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

नक्त शय्या स्थितेनासावुद्याने नमस पतन् । विद्याभूतेन्दुगतिना ददरो सुखभाजनम् ॥१३०॥
उडुरात किमेव स्याद् विद्युन्खण्डोऽयवा च्युत । वितर्क्यति समुपय ददरो वृषुक शुभम् ॥१३१॥
गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्या पुष्पवतीध्रुते । वरशय्याप्रसुसाया जह्वादेशे चकार स ॥१३२॥
ऊचे वैता^१ हुतस्वान उच्छिष्टोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं शये बालक परय सप्रसूतासि शोभनम्^२ ॥१३३॥
तत कान्तकरस्पर्शसौख्यसप प्रबोधिता । शय्यात सहसोचस्यौ सा विघूर्णितलोचना ॥१३४॥
नर्मक च ददर्शानिसुन्दर सुन्दरानना । तस्यास्तदशुजालेन निद्राशेषो निराकृत ॥१३५॥
पर च विस्मय प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना । कयाप जनितो नश्य पुण्यवत्या स्त्रिया शिशु ॥१३६॥
सोऽबोचद्वयिते जातस्तवाय प्रवर सुत । प्रतीहि सशय मा गारुवत्तो धन्या परा ॥ का ॥१३७॥
साबोचप्रिय वन्ध्यास्मि कृतो मे सुतसम्भव । प्रतारितास्मि दैवेन किं मे^३ भूय प्रतार्यते ॥१३८॥
सोऽबोचदेवि मा शङ्का कार्षीं कर्मनियोगत । प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणा जप्यते गर्भपभव ॥१३९॥
साबोचद्वस्तु नार्मव कुण्डले त्वत्तिचारणा^४ । ईदृशी मन्थलेकेऽस्मिन् सुरत्ने भवत कुत ॥१४०॥
सोऽबोचदेवि नामेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तव्य पतन्नेव गगनाद्वाहती मया ॥१४१॥
^५मयादुमादितस्तेऽय सुत मुकुलसम्भव । लक्षणावि वदन्त्यस्य महापुरगभूमिकम् ॥१४२॥
श्रम कृत्वापि भूयास भारमूढा च गर्भनम् । फल तनयलाभोऽत्र सत्ते जात सुख प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने व्यानमे स्थित था सो उसने आकाशसे पडते हुए सुरके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई विजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा सशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योंही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचमें ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुष्पवती रानी की जाँघों के बीचमें रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि ! उठो, क्या सो रही हो ? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त स्पर्शसे उत्पन्न सुररूपी सन्पत्तिसे जाग्रत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और श्वर उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥ ज्योंही उस सुन्दरसुरीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योंही उसकी किरणाके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गई ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती खाने उत्पन्न किया है ? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । विश्वास रखो, सशय मत करो, तुमसे बढ़ कर और दूसरी धन्य स्त्री कीन हो सकती है ? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय ! मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं देवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गई हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि ! शङ्का मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियां प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह तो बताओ कि इसने कुण्डल लोकोत्तर क्या है ? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये ? ॥१४०॥ इसने उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि ! इस विचारसे क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उद्युलभ उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है यह पुत्रलाभ रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल

॥ प्रमुखाया म० । २. चैता क० म० । ३. हुतस्वान म० । ४. शामिनम् म० । ५. भूप म० ।

६. त्वत्तिचारिणी म० । ७. मया तु मादित म० ।

कुञ्चिजातोऽपि पुत्रस्य य कृत्यं कुरुते न ना^१ । अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४४॥
 तव सोऽयमपुत्राया सति पुत्रो भविष्यति ।^२ अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि शोभने ॥१४५॥
 एवमस्त्विति सभास्य देवा सृतिगृह गता । प्रभाते सुतजन्मास्यास्तुष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
 ततो जन्मो सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथनूपुरे । सप्रवृत्त समागच्छद् विस्मिताशेषबान्धव ॥१४७॥
 रत्नकुण्डलभानूना मण्डलेन यतो वृत् । प्रभामण्डलनामास्य पितृभ्या निमित्त तत ॥१४८॥
 अर्पित पोषणायासौ धाम्या लीलामनोहर । सर्वान्त पुरलोकस्य करपद्मभुवत ॥१४९॥
 विदेहा तु हते पुत्रे कुररीवत्कृतस्वना । बन्धूनपातयद् सर्वान् गम्गारे शोकसागरे ॥१५०॥
 परिदेवनमेव च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वास वेन भातोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
 विष्णुस्य कथ तस्य पापस्य प्रसूतौ करी । भ्रष्टान जातमात्र त्वा गृहीतुं श्रौचैतस ॥१५२॥
 पश्चिमाया इवाशया सन्धेवेय मुता मम । स्थिता स तु परिप्राप्तो मन्दाया पूर्वव सुत ॥१५३॥
 ध्रुव भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजित । तदेव फलितं कर्म न कार्यं बाजवजितम् ॥१५४॥
 मारितास्मि न किं तेन पुत्रघोरणकारिणा । पुरु प्राप्तास्मि यद्गुह्यं समागत्यार्द्धवैशसम्^३ ॥१५५॥
 इति तां कुर्वतीमुखैर्विह्वला परिदेवनम् । समारवासयदागत्य जनको निगदन्निदम् ॥१५६॥
 प्रिये मा गा पर शोक जीवयेव शरीरज^४ । हत केनाप्यसौ जीवन् द्रव्यसे ध्रुवमेव हि ॥१५७॥

अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुञ्चिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे प्रिये^१ । वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते^२ ! तुम्हारे पुत्र नहीं है सो यह तुम्हारा पुत्र हो जायगा । इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर रानी प्रसूतिकागृहमे चली गई और प्रातः काल होते ही इसके पुत्र जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथनूपुर नगरमें पुत्रका जन्मोत्सव किया गया । इस उत्सवमें आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भार्गव ध्रुव रिरतेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाआसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोम भ्रमरके समान सचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धाम्यको सौंपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुआ को शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स ! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुम्हें हर ले गया है ? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुम्हें अबोध बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे हागे ? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामें आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और संध्याकी भाँति यह पुत्रो स्थित रह गई ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार दा क्या नहीं डाला । जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये^३ ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर ले गया

दरपते नेदयते भूयः पुनर्जावलोत्पते । पूर्वकर्मालुभाप्तेन जाये रोदिपि किं वृथा ॥१५८॥
 व्रत स्वास्थमिमं लेखं सुहृदो नायवाम्यहम् । पातां दशरथस्त्वेमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
 स चाह च मुतस्याशु करिष्यामि गवेपणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वं चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
 दयितां सान्त्वयित्वैवं लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रप्राच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
 मयामन्वेपितस्ताभ्यां नासी दृष्टो यदार्भकः । मन्द्रीकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण बान्धवाः ॥१६२॥
 नासावासीजनस्तत्र पुरुषः प्रमदायवा । यो न वाप्यपरीतादस्तच्छोकेन वर्णादृतः ॥१६३॥
 शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकीं बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योषितामङ्गदेशे
 पृथतनुभवकान्या लिम्पतां दिवसमूहम् ।
 विपुलकमलधातां श्रीरिवासीं सुकण्ठा
 शुचिहसितसितास्या बर्धताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥
 प्रभजति गुणसत्त्वं येन तस्यां समृद्ध
 भजदलिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
 तदतिशयमनोज्ञां चाल्लभमान्विताङ्गा
 जगति निगदितासी भूमिसान्धेन सीता ॥१६६॥
 वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छाद्यपाणिः
 शिखितमणिसमतेजः शैशवंघातयन् ।

है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देसोगी ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी
 दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगी है । इसलिए हे प्रिये ! ध्यर्थ
 ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्थस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार बतलानेके
 लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ यह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोसे
 समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी रोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको
 सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक
 शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी रोज की । पर जब वहाँ पुत्र नहीं
 दिखता तब सब बन्धुजन शोकको मन्दकर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई
 ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र सम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे
 व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो
 अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होने वाली स्त्रियोंकी गोदमें निरन्तर वृद्धिगत हो रही थी । वह
 अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको ललित करती थी । वह विपुल कमलोंको
 प्राप्त लक्ष्मीके समान-सी जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हाथसे उसका मुल
 शुश्रूष हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका
 समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमें अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न
 होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्ष्णोंसे युक्त उस जानकी को लोग भूमिकी
 समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीव लिया
 था, उसके हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके

जितसमदनहसखीगतिः सुन्दरभू-
 वंकुलसुरमिवत्रामोदयदालिप्तुन्दा ॥१६७॥
 अतिमृदुमुज्ज्वाला शङ्खशस्त्रानुमध्या
 प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरः ।
 स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोज्ज्वलाद्भिः
 प्रभवदतिविशालच्छायावच्चोजयुग्मा ॥१६८॥
 प्रवरभवनकुक्षिप्यत्युदारेषु कान्त्या
 विविधविहितमायां लब्धवर्णा पर सा ।
 सततमुपगतान्तःससकन्याशताना-
 मतिशय रमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥
 अपि दिनकरदोषिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः
 सुरपतिमहिषो वा कापि वा सा सुभद्रा ।
 यदि भजति तदीयाश्चङ्कशोभां कथं चि-
 त्प्रपन्नमतिमनोशास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥
 विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य बुद्ध्या
 दशरथतन्त्रयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।
 जनरुणरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां
 ययु रविनरसङ्गत्योजिता पद्मलपनीः ॥१७१॥
 इत्यार्षे रविपेणाचर्यश्रोके पद्मचरि ते सीताभामण्डलोत्पत्त्यभिधानं
 नाम पद्मनिशतितमं पर्व ॥२६॥

धारक केशोके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हँसिनी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसकी मुखके सुवाससे उसके पास भौरांके समूह में डराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वक्रके समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके ठठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहलोंके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चोँदनी, इन्द्रकी दन्द्राणी, और चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिकी कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विद्वानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ संपर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्यके द्वारा श्रोक्त पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करने वाला छद्मीसर्वां पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधरात्रेन्द्रश्चारुवृत्तान्तविस्मृत । पप्रच्छ गणिनामग्र्यं नूतनप्रथयान्वित ॥१॥
 किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनवभूयुता । रामस्य येन सा तस्मै तेन उद्धृष्टा निरूपिता ॥२॥
 तदा करतलासहद्विगुणीभूतदन्तभा । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
 शृणु रामन् प्रवक्ष्यामि रामस्याश्लिष्टकर्मण । यत् प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुपुद्गिता ॥४॥
 दक्षिणे विजयाद्वयं कैलासाद्वेस्तथोत्तरे । अन्तरेऽत्यन्तवद्वत् सन्ति देशा महान्तरा ॥५॥
 तत्रार्धवर्षरो देशो नि सयमनमस्कृति । निर्विदग्धजनो धोरम्लेच्छलोक्ममाकुल ॥६॥
 मयूरमालनगरे कृतास्तनगरोपमे । आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्धवर्षचारिणाम् ॥७॥
 पूर्वोपरामत्तकोण्यां यावन्तो म्लेच्छवभवा । कषोत्तगुणकाम्योजमङ्गनाद्या सहस्रश ॥८॥
 गुप्ता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विविधायुधैः । आन्तरङ्गतमं प्रोत्वा परिवार्य सप्ताधना ॥९॥
 आर्यानेताजनपदान् प्रचण्डान्तररहस । उद्गासयन्त आग्रमुदिति कारयन्वनिता ॥१०॥
 देश जनकराजस्य ततो व्याप्तु समुद्यता । शरमा हव नि शेषमुपप्लवविधायिन ॥११॥
 जनकेन च साकेता युधान प्रेषिता दुतम् । आन्तरङ्गतमं प्राप्तमूर्त्तदशरथस्य ते ॥१२॥
 विज्ञापयति देव त्वा जनको जनवत्सल । पौलिन्दपरचक्रेण समाक्रान्त महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुन नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन् । राजा जनकने रामका पेसा कौनसा माहात्म्य देता कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया ? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसङ्गसे जिनके दाँतोंकी कान्ति दूनी हो गई थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् । मुनो, संम्लेशहीन कार्यको करनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयार्द्र पर्यन्तके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुतसे देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धवर्षर नामका देश है जो असयमी जनोके द्वारा मान्य है, घूर्तजनोंका जिसमें निवास है तथा जो अत्यन्त भयकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमें यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है । उसमें आन्तरङ्गतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्योज, मङ्गून आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके राक्षस तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सप्त साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरङ्गतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो व्यासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरङ्गतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् । प्रजा-

१. नूतनप्रथयान्वित क०, ए० । २. तत्रार्धवर्षरीदेशे व० । ३. मयूरमालानगरे क०, ए० ।

४. आन्तरङ्गतमे क०, ए० । ५. मङ्गुन्याया व० । ६. प्रेषिता क०, ख०, व० । ७. आतासन्तजना तेन दूतलेन वदन्त ये (१) क०, ए० । ८. प्राप्त व० । ९. पौलिङ्ग्य म० ।

आर्यदेशाः परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्धासितजगत् । एकवर्णा प्रजा सर्वा पापा कर्तुं समुद्यता ॥१४॥
 प्रजासु विप्रनष्टासु जावाम् किं प्रयोजना^१ । चिन्त्यतामिति किं कुर्मो ब्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
 किं वा दुर्गं ममाश्रित्य निष्ठाम् समुद्भजना । नदीकालि^२ द्भागान् वा गिरि वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥
 अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिता । सनिरुध्म^३ समागच्छत् परसैन्य भयानकम् ॥१७॥
 साधुगोभ्रावकाणां प्रजामेता सुक्विलाम् । सत्यक् सधारयिष्यामस्यकत्वा जीव सुदुस्महम् ॥१८॥
 अतां प्रवामि राजरुचा^४ यत्स्वया पाल्यते महा । तत्र राज्यं महामागं स्वमेव हि जगत्पति ॥१९॥
 यजन्ते^५ भावत सन्तो यावन्त श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन^६ व्रीह्याद्यैर्यदवाजकै^७ ॥२०॥
 'मुक्तिचान्तिगुणैर्युक्ता यच्च ध्यानपरायणा । सप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधन गगनाग्ररा ॥२१॥
 महा-तश्च पुरस्कारा यच्चैव भवनाविपु । विधायन्तेऽभिषेकाश्च विमाना चाणकर्मणम् ॥२२॥
 'प्रजासु रक्षितास्त्वेतत्सर्वं भवति रक्षितम् । ततश्च धर्मकामार्थाः प्रेत्य चेहृष भूभृताम् ॥२३॥
 बहुकोपो क्रेशो यः प्राप्तं पालयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसाद^८ समरनुते ॥२४॥
 हिसाधर्मविहानानां यच्छ्रुता यागदक्षिणाम् । क्रुहते पालनं यश्च सत्यं भोगा पुनर्मुव ॥२५॥
 धर्मार्थकाममोक्षानामधिकारा महतीले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा कुत ॥२६॥
 नृपबाहुबलच्छाया समाश्रित्य सुखं प्रजा । ध्यायन्त्यात्मानमन्यमास्तथैवाश्रमिणो बुधा ॥२७॥

वत्सल राजा जनक आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१३॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश नष्ट भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उपाड दिया है । वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस वशामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें जावें ? ॥१५॥ हम मित्रजनके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोंसे व्याप्त इस निष्ठल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन् ! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा करते हैं । अङ्कुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने घान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पौंच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्मल्य मुनि मुक्ति चान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोंको नष्ट करनेवाले जितेन्द्र भगवान्की बड़ी बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाआके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होने पर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले लोगोंको जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुन प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंकी धर्म अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाआके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंकी ही वे अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका आश्रय

१ किं प्रयोजनम् म० । २ नदीकीही द्रमणान्या म० । ३ सत्रिकक्ष म० । ४ राजस्त्वम् म० ।
 ५ जयते क०, स० । ६ प्रधानेन म० । निषानेन व० । ७ यवजीवकै व० । ८ युक्ति म० ।
 ९ प्रजा सुरक्षितास्त्वेतत् म० । १० समश्रुतम् म० । ११ पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देश समाश्रित्य साधव कुर्वते तप । पष्ठमश नृपस्तस्य लभते परिपालनान् ॥२८॥
 नथैवमिति तत्सर्वमुपश्रित्य^१ नराधिपः । द्रुतं रामं समाहूय^२ राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२९॥
 मुदितैः विह्वलैर्भरानानन्दा समाहता^३ । आजगमु सचिवा सर्वे गजवानिसमाकुला ॥३०॥
 जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिष्पूरितान् । बद्ध्वा परिकरं द्यूराभ्यमाना समागता ॥३१॥
 चारुपुरनिस्त्वाना दधाना वेपथ्वीतम् । वस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागता^४ दित्रय ॥३२॥
 आठोपमादश दृष्ट्वा क्रिमेतदिति शङ्कितम् । राम दशरथोऽजोच्च पाल्येमां सुतं वितम् ॥३३॥
 रिपुचरमिहायात यद्देवैरपि दुर्जयम् । विजेष्ये तदहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
 ततो राज्ञीव नयनो राघवो नृपमग्रवीत् । विमर्शं तात सरम्भमस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥
 किं कार्यं पशुमशैस्तेरसभापैर्दुरा ममि । येषामभिमुखीभाव प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥
 न ह्याख्त्वा विरोधेन क्षुब्धयन्ति वरवारणा । न चापि तूदादार्थं^५ सञ्चरति विभावसु ॥३७॥
 तत्र प्रयातुमस्माकं दुष्यते पञ्च शासनम् । इत्युक्ते हर्षिताङ्गस्त पतिष्वग्यं पितृप्रदात् ॥३८॥
 १५ बाहू सुकुमारान् पद्मं पद्मनिभेक्षण । कथं तां सहसे जेतुं न प्रत्येयहमर्भकं^६ ॥३९॥
 सोऽजोच्च सद्य उत्पन्नो भूशमलवोऽपि पावकः । कथं ब्रूहि विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
 बाहू सूर्यस्तमो घोरं घुत्तीरं कृष्णगण्डय च । एको नाशयति विप्रं भूतिमि किं प्रयोजनम् ॥४१॥

लेकर प्रजा मुझसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥
 जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका
 छठवों भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अधानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत
 हो गये ॥२९॥ किङ्करोने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजाई । हाथी और
 घोडासे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देवीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण-
 कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे सुन्दर राश्र हो रहा था तथा
 जो उत्तमोत्तम वेप धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियों पिदारोंमें बख्तालकार ले लेकर आ गईं ॥३२॥
 यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तत्र राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र !
 तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवाके द्वारा भी
 दुर्जय है । मैं प्रजाके हितकी वाञ्छासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने
 राजा दशरथसे कहा कि हे तात ! अथानमं नोध क्यों करते हो ? ॥३५॥ आप रणकी इच्छा
 से जिनने सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुरूप भापाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता
 है ? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज शोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रईको
 जलानेके लिए तत्पर हाता है ॥३७॥ वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिये ।
 ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म ! अभी
 तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमारहै, तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम
 उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल
 उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन
 है ? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता
 है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥

१. मुपश्रित्य ज०, ब०, क०, ख० । २. दातुं राज्यम् म० । ३. समाहता म० । ४. पटलेष्वागताः
 म० । ५. तत्परो भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्यय करोमि । ८. अर्भक म० । ९. सद्यमुत्पन्नो क०, ख०, म० ।

तत सहस्रोमाङ्गो नृपो दशरथ पुन । प्रमोद परम प्राप्तो विपाद च सनात्परम् ॥४२॥
 सख यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामपि स्थिति । उसहन्ते प्रयातु यदिहानुमपि जीवितम् ॥४३॥
 अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुपि नाश्नुते । मरण गहन प्राप्त पर यद्यपि जायते ॥४४॥
 इति चिन्तयतस्तस्य कुमारो रामलक्ष्मणौ । पितु पादाब्जयुगल प्रणम्योपगतां वहि ॥४५॥
 तत सर्वाङ्गकुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसंपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनी ॥४६॥
 चतुरङ्गबलोपेतौ पूर्यमाणौ विभूतिभि । सप्रयाती रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
 पूर्वमेव तु निर्यातो जनक सोदरान्वित । अन्तर योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
 शत्रुशब्दममृष्यन्तो जनकस्य महारथा । विविशुर्मल्लसघात मेघवृन्दमिव प्रहा ॥४९॥
 प्रवृत्तश्च महाभीम सप्रामो रोमहर्षण । बृहत्प्रहरणाटोप आर्यमल्लभटाकुल ॥५०॥
 जनक कनक इष्टा पर गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणा घटाम् ॥५१॥
 वर्षरैस्तु महासैन्यैर्भर्त्स्यैर्भवे पुन पुन । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वाङ्ग वेष्टित ॥५२॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त पद्म सौमित्रिणा सह । अपार गहन सैन्यमपश्यन्नास्त्रलोचन ॥५३॥
 इष्टा तस्य सितच्छत्र विशीर्षा शत्रुवाहिनी । समसा सन्तति स्कीता पीर्णमासीद्विभु यथा ॥५४॥
 आश्वासितश्च बाणौपैर्जनको ध्वस्तकङ्कट । तेन जन्तुर्यथा दु खो धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुन परम प्रमोद और विपादको प्राप्त हुए । उनके नेत्रासे आँसू निकल पड़े ॥४२॥ सख त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जय तत्र आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शास्त्र चलानेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्ष्णोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरङ्ग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ़ होकर चले ॥४६-४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था । जनक और शत्रुसेनाके बीचमें जो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए मल्लसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े बड़े शस्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा मल्ल योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महाभयकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक सकटमें पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ मल्लोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयकर थी इसलिए उसने बार बार भग्न होनेपर भी भी राजा जनककी सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे । पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रकी देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट हो गई जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देख कर नष्ट भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आश्वासन

राघवो रथमारुढो युक् चपलवाजिभि । कवचोदातितवपु हारकुण्डलमण्डित ॥५६॥
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिष्वज । प्रकाणंकोल्लवणच्छूरो घरीणीवीरमानस ॥५७॥
प्रविशन् विपुल सैन्य लाट्या लोहवसल । सुमटै पर्यमाण सन् भायकं ह्व रश्मिभि ॥५८॥
सरस्व जनक प्रातः कनक च यथाविधि । बल व्यचसयच्छूरोरिमवत् कदलावनम् ॥५९॥
तत्रैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसहस्रान् । चवर्षं वायुना नुब सागरे जलदो यथा ॥६०॥
निरितानि च चक्राणि शर्त्ताश्च कनकानि च । शूलैर्प्रकटनिर्घातान्येवमाद्यावच्छिपत् ॥६१॥
सौमित्रिमुजनिमुत्तैस्तौ पतद्भिरितस्ततः । म्लेच्छदेहा^१ न्यह यन्त द्रुमा परशुभिर्घटा ॥६२॥
भग्न शरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निर्मिच्छवत्स । केचिच्छिबभ्रुप्राया निपतन्ति सहस्रश ॥६३॥
ततः परान्मुक्ताभूता लोहकण्टकाहिना । तथापि लक्ष्मणस्तेषामनुधावति पृष्ठतः ॥६४॥
अनिवार्यं समालोक्ष्य तः सौमित्रि कृपाधिपम् । अपरे म्लेच्छराट्कुल समन्तात् सौमनागता ॥६५॥
दृढवृद्धादिर्निर्वापै कुवाणा भैरव रवम् । चापासिधमज्जुला हृतसयातपट्कय ॥६६॥
रश्मवस्त्रशिरःप्राया केचिद्वर्धरधारिण । असिधेनुकरा क्रूरा नानावर्णाङ्गधारिण ॥६७॥
केचिन्निन्नाभ्रनक्षत्राणां शुक्रपत्रविषोऽपरे । केचिद्वर्मसकाशा केचित्ताग्रसन्निविध ॥६८॥
कटिसूत्रमणिप्राया पत्रचावधधारिण । नानाधातुविलसाङ्गा भ्रमराकृतशेखरा ॥६९॥

दिया-धैर्य दधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके द्वारा दु सरी प्राणीको आश्रयसग दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र अश्वल घोडासे जुते हुए रथ पर सवार थे, उनकी शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे । उनकी ध्वजामें सिंहका चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिट रहा था तथा उनकी मन श्रुधियोंके समान घीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुरोभित हो रहे थे मानो किरणसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नवासे भरे रामने जनक और कनक दोना भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी फेलाके घनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्र पर जल बर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदल पर कान तक टिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीव्र चक्र, शक्ति, कनक, शूल, मकच और चन्द्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खून बर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ासे वृक्ष फट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी धुपासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रासे म्लेच्छोंके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोंकी इस सेनामें बाणसे कितने ही योद्धाओंका वत्स स्थल छिन भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन बट आनेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओंका वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गई थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देखकर म्लेच्छरूपी तिट्ठ सत्र ओरसे लोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ बड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और झुण्डके झुण्ड बनाकर पट्टिकरूपमें गड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बोंधे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रङ्गके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अङ्गुनके समान काले थे, कोई सूर्ये पत्ताके समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रङ्गके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बोंधे हुए थे, पत्ताके वस्त्र पहिने हुए थे, नाना धातुआसे उनके शस्त्र लित थे, फूलकी

वराहभद्रशना विशालपिठोदरा । विरेजु सैन्यमध्ये^१ तु कुञ्जा इव पुष्पिता ॥७०॥
 अपरे शवरा रेजुभीषणयुधपाणय । पांनजह्वाभुजस्कन्धा असुरा इव दुषिता ॥७१॥
 निर्दया पशुमासादो मूढा प्राणिवधोद्यता । आरम्य जन्मन पापा सहसारम्भकारिण ॥७२॥
 वराहमहिपथ्याघ्नकृकवद्वादिनेतव । नानायानच्छुद्धच्छास्तस्वामन्ता मुमापणा ॥७३॥
 नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातव । सागरोमिनिभाश्रण्डा^३ नानाभीषणनिस्वना ॥७४॥
 लक्ष्मणवमापर वम् ध्रुव्वा^४ शबरनारदा । निजसामन्तवातेन प्रेरिता पुररहस ॥७५॥
 अधावल्लक्ष्मणस्तेषा निपाताय समुद्यत । यथानहु समूहाना महावेगो गजाधिप ॥७६॥
 मृगमाना निपेतुस्ते स्वरेव वसुधातले । विदुदुवुरसट्याश्च भ्रात्र्या विवृतमूर्तय^५ ॥७७॥
 तत सधारयन् सैन्य^६ मान्तरद्वतमो नृप । सम सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिगुप्त स्थित ॥७८॥
 सेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते भेरेव मृधे । लक्ष्मणस्य धनुरिच्छन् बाणै सततवर्षिणि ॥७९॥
 हृषाण वावदात्ते लक्ष्मणो विरथाकृत । समारणजव सावत्पन्नो रथमचोदयत् ॥८०॥
 लक्ष्मणस्योपनातश्च रथोऽन्य क्षेपवजित । अपारमदहत् सैन्य राम कक्षमिवानल ॥८१॥
 कारिचच्चिक्वेद बाणांघ्रे काश्चिस्कनकृतोमरै । चक्रै शिरासि क्षेपाचिकुञ्जितौष्ठान्यपातयत् ॥८२॥

मञ्जरियोंसे उन्हाने सेहरा बना रक्ता था ॥६६॥ कौडियोंके समान उनके दाँत थे, बड़े मटफाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृत्तके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयकर शस्त्र थे, और जिनकी जोंपें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही स्लेच्छ गर्वाल असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खाने वाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कङ्क आदिके चिह्न उनकी पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयकर थे तथा नाना प्रकारके बाहन, चहर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धामें जिन्होंने अन्धकार उपपन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका बेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षीमको प्राप्त हुए स्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बैलोंके समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसीप्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गई जिससे वे अपने ही लोगोंसे छुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरद्वतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सम्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथ-रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगगाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुका सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और नौमर नामक शस्त्रोंसे

१. सैन्यमध्य म० । २. सहस्रारम्यकारिण म० । ३. चन्द्रा म० । ४. शरदनीरदा म० । ५. यथा नदत्समूहाना म० । ६. विवृतमूर्तय म० । ७. सधारयन् म० । ८. आन्तरद्वतम एतन्नामा स्लेच्छरूप । ९. समारणजवात्तवत् म० ।

ननाश भयपूर्णा च यथाशं म्लेच्छराहिनी । निजस्तचामरद्वयप्रचयवापममाकुला ॥८२॥
 निमिषान्तरमात्रेण रामेयान्तिष्ठकर्मणा । म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कथाया इव साधुना ॥८३॥
 आगतौ यश्च मन्थेन निष्पार्ष्णोदधिर्धया । भीतोऽर्चवैदर्शभिः सोऽयं म्लेच्छराज्ञो विनिर्मृतः ॥८४॥
 पराद्भुङ्गोऽवृत्तैः कर्लाभिः किमेभिर्निहतिरिति । मौमिनिगा ममं रामः कृतां निवृत्ते सुगम् ॥८५॥
 भर्मा भयाकुला म्लेच्छा विहाय विजिगीषुताम् । आश्रित्य सहाविन्ध्यादीन् समयेनावनन्धियरे ॥८६॥
 कन्दमूलफलाहारारत यन् रौद्रकर्मताम् । राघवाद् भयमापन्ना वैनतेयादिवोरगाः ॥८७॥
 ३सानुजः ४सानुजं पद्मो ५विग्रहे शान्तविग्रहः । विषयं जनक इष्टं जनकाभिमुखोऽग्रमन् ॥८८॥
 प्रजासपरमानन्दः १ रेमे विरमितमानया । राज्ञः पृथिवी सर्वा भूया इत्युक्ते यथा ॥८९॥
 धर्माधिकात्मसक्तैः पुरुषैर्भूषितं जगन् । ध्यतांताहिममरोधैर्नृपैर्नृम्बर यथा ॥९०॥
 माहाभ्यादमुतो राजन् दुहितः लोकमुन्दरी । जनकैः प्रसन्नेन राघवस्य प्रकृतिरता ॥९१॥

काट डाला तथा जिनके आँठ टूट्टे हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चनरलसे नीचे गिरा दिये ॥८२॥ दूढ़े-कूढ़े चमर छत्र ध्वजा और धनुषोंसे व्याप्त म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इन्द्रानुसार नष्ट हो गई—इधर-उधर भाग गई ॥८३॥ जिस प्रकार साधु कथाओंको शृणु मरमे नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८४॥ जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दश घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥ इन निमुख नपुंसकोंको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचार कर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुग धूर्त्य युद्धसे लौट गये ॥८६॥ भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इन्द्रा छोड़ सन्धि कर सन्धि और विन्ध्य पर्वतोंपर रहने लगे ॥८७॥ जिस प्रकार सोंप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे । वे कन्द मूल फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सन्धि दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमें जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई जनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सम्मुख चले गये ॥८९॥ तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिनका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी वृत्तगुणके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥ जिस प्रकार हिमके आवरणसे रोहित नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म अर्थ कामसे आसक्त पुरुषोंसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥ गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोकमुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथाशान्दम् यथासाम्लेच्छम् ० । २. विनिर्मृतः म० । ३. सन्दनगः । ४. अनुजनिहित जनक सहितमिति यावन् । ५. पद्मो-विग्रहः ० । ६. निषिताधिपम् । ७. निषिन्धुम् । ८. संमविस्मित म० ।

उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्य बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक स्व ननु कर्म दुसाम् ।
 'समागमे गच्छति हेतुभाव वियोजने वा सुज्ञनेन साकम् ॥६३॥
 सोऽह महात्मा भुवने समस्ते गत प्रताप परम सुभाग्य ।
 गुणैरनन्यप्रमितैरपेतो रविर्यथोद्भाति^२ परो मयूर्यै ॥६४॥

इत्यापे रविपेणाचार्य प्राक्ते पद्मचरिते स्नेच्छपराजयसंकीर्तन नाम
 सप्तविंशतितमं पर्य ॥२७॥



इस विषयमें यह कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुण्योंके साथ संयोग अथवा वियोग होनेमें कारणभावको प्राप्त होता है ॥६३॥ परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त ससारमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें स्नेच्छाके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवां पर्य समाप्त हुआ ॥२७॥



अष्टाविंशतितमं पर्व

ईदृक्पराक्रमोऽदृष्टो नारदः पुद्विस्मयः । हृति न लभते कापि रामसंकयया विना ॥१॥
 श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दानुमनीष्टेति प्रकटा मर्वविष्टे ॥२॥
 अचिन्तयस्य पर्यामि कन्यां तामद्य कौटुम्भीम् । शोभनेर्लक्ष्मणैरेव रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
 पद्मगर्भदलं यस्मिन् कृत्वा स्ननतटे रहः । भकान्तया सरश नेदमिति बुद्ध्यावलोकने ॥४॥
 समये नारदस्तस्मिन् सीतालोकनलालसः । विशुद्धहृदयः प्रापदास्त्रोहं च तद्गृहम् ॥५॥
 ततो दर्पणमन्त्रात् जटामुकटभीषणम् । नारदाय वपुर्वीक्ष्य कन्या ग्रामममाकुला ॥६॥
 हा मातः कोऽयमग्रेति कृत्वा प्रस्खलितस्वनम् । विशेष गर्भमवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
 नारदोऽनुपदं तस्या विशलतिकुलहलः । नारीभिर्द्वारपालीभिः सावष्टममगन्ध्यत ॥८॥
 वाचस्तस्य च तामां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन सप्रापुर्भ्राः स्वप्नपुर्भ्राः ॥९॥
 गृहतां गृहतां कोऽयं कोऽयमिदुदतस्वनाः । कुञ्जितोष्ठाधरान् दृष्ट्वा सखान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
 नारदः परम विभ्रज्जयमुच्छ्वेपथुः । ऊर्ध्वरोमा न्वमुपय विभ्रान्तोऽष्टावदावले ॥११॥
 अचिन्तयस्य हा कष्टं प्राप्नोऽस्मि जनन पुनः । निष्क्रान्तोऽस्मि महादावान् पक्षी ज्वालाहती यया ॥१२॥

अथानन्तर जो हम प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके विना वही भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमें प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उम कन्याको देखूँ तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कौसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीताके महलमें पहुँचा जय कि वह एकान्त स्थानमें पद्मगर्भ मणिका एक लण्ड अपने स्नन तटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लाजसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमें ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गई ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्थाधारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गई । उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुलहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमें भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे यत्पूर्वक रोक लिया ॥८॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच चढ़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर लज्जित और घनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ ये पुरुष पकड़ो-पकड़ो कीन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे । जो आँठ चाब रहे थे, शरनोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कंप कँपों लूट रही थी, और रोमाञ्च लड़े हो गये थे । रीर, जिस क्रितो तरह वह आकाशमें लड़कर कैलास पर्वत पर पहुँचा और वही विभ्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं वड़े कष्टमें पड़ गया था । वचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओंसे मुहत्सा पक्षी किसी बड़े ड्रावानलसे बाहर निकलता

शनं शनस्ततः कम्प तद्दिन्यस्तेत्तणोऽमुचत् । ममाजं च ललाटस्थान् स्वेदविन्दन् स्थवावस ॥१३॥
 समाधौ स्खल्य पाणिजटाभार समाकुलम् । मुहुः स्मृता च निश्वासा-मुमुचे दीर्घवेगिन ॥१४॥
 ततः स्वैर भयाद् भ्रष्टो दृष्यानेव प्रकोपवान् । निश्चलस्थितस्योपाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
 अदुष्टमानसः पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्रापमवस्था मृत्युयोचराम् ॥१६॥
 अहो प्रौढकुमार्यास्तच्चेष्टित दुष्टविग्रमम् । गृहातोऽस्मि नयेनैव कृतान्तसदृशैर्नरैः ॥१७॥
 वव मे पापाधुना याति व्यवसने पातयामि ताम् । नृयाम्यातोद्यमुक्तोऽपि किमुतातोऽयस्युत ॥१८॥
 विचिन्तयैव द्रुत गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सातारूपं पटे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
 चक्रारोपवने चन्द्रगते २ ब्रीडनसन्ननि । उत्सृज्य च बहिस्तस्यौ पुरस्याप्रकटात्मक ॥२०॥
 अन्यथापि तमुद्देशं कुमारैर्वदुभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽज्ञौ रममाणः समाययौ ॥२१॥
 तत्राज्ञानान् समालोक्य स्वसारं चित्रगोचराम् । हाश्रुतिस्फुटिमुक्ताः प्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
 ततः शोचति निश्वासाभ्युन्नतेऽयन्तमायतान् । शुष्यति क्षिपति क्लृप्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
 न रात्रौ न दिवा निद्रा लभते ध्यानतत्पर । उपचारेण ३ कान्तेन न जातु सुखमरनुते ॥२४॥
 पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि ४ यवैश्च ५ यथा भृशम् । करोति शोडनं भूय सतापी जलकुट्टिमे ॥२५॥

है उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशा में लग रहे थे । तदनन्तर धीरे धीरे उसने शरीरको कँपकँपी छोड़ी ओर ललाटपर स्थित पसीनेकी घड़ी-बड़ी वूँदें पोछीं ॥१३॥ उसने कोंपते हुए हाथसे अपनी बिसरी हुई जटाएँ ठीक कीं । यह करते हुए जब उसे बार बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी लम्बी सोंसे छोड़ने लगता था ॥१४॥ तत्पश्चान् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अङ्ग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेको इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशाझूटा हो गई ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जावेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही सकटमें डालूँगा । मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचार कर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तम ब्रीडा भवन था वसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अधानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ ब्रीडा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अङ्कित बहिन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, शान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था । वह रात दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था । सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुप्त नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष

मीनमाचरन्ति स्मिन्ना करोति च कथां मुहुः । मह्योत्तिष्ठति स्वयं यानि भूयो विजयते ॥२९॥
 ततो ब्रह्मगृहीतस्य महर्गमैत्रिचेष्टितैः । ज्ञानं तद्भक्तुरग्र्यं कारणं मनिगागिमिः ॥३०॥
 जगदुर्ध्वमन्योन्यं कन्येयं केन चिन्विता । परोऽत्र निहितो गेहे श्यादु वा नारदचेष्टितम् ॥३१॥
 ततः श्रुत्वा कुमारं समाकुलं स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य वन्द्यतां प्रियन्तो दर्शनं ददौ ॥३२॥
 आदरेण च तैः पृष्टः कृतपूजानममृतिः । मुने वयस्य कन्येयं दृष्ट्वा वर भवनेर्त्ता ॥३३॥
 महोरगाहना दिं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । मय्यलोर्कं समाधाता श्रुत्वा दृष्ट्वा कथं वन ॥३४॥
 'भक्तद्वारस्तनोऽनोचद् विनयं परमं बहन्' । भूयो भूयः स्वयं गच्छन् विमग्नं कल्पयन् शिरः ॥३५॥
 अरुणप्र मिथिला नाम पुरा परमसुन्दरा । इन्द्रकेतोः सुतस्तत्र जनको नाम पार्थिवः ॥३६॥
 त्रिदेहेति प्रिया तस्य मनोवन्धनकारिणा । गोत्रसंबन्धमूलेषु रीतेति दुहित्वा तयोः ॥३७॥
 त्रिदेवैकमयी तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाष्प मा याः त्रिपादं स्व तदेयं सुलभं हि ॥३८॥
 रूपमात्रेण यातोऽमि किमस्या आवर्माश्रयम् । ये तस्या विप्रमा भद्र कर्तव्यं वर्णयितुं वमः ॥३९॥
 तथा पितं समाकृष्टं तत्रेति किमिहमुक्तम् । धर्मस्थाने इव वद् मुनीनामपि मा हरेद् ॥४०॥
 आकारमात्रमत्रैतत्तस्या स्वयं मया पटे । लावण्यं यत्तु सत्स्वत्तन्मयमेव ततोऽदरात् ॥४१॥
 नववीवनसंभूतकान्तिसागरवीथिषु । सा तिष्ठति तरन्तीत्य संमग्ना स्तनतुम्भयोः ॥४२॥

करता था मानो उन्हें विषमय ही समझता हो। यह संतापसे युक्त होकर बार-बार जलमें मींचे हुए फर्शपर लोटता था ॥२५॥ वह मीन बैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी ही गईं मानो उसे भूत लग गया हो। तदनन्तर घुड़मान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है? इस महलमें यह चित्रपट किसने रक्खा है? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने मुना कि हमारे कार्यसे मामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशङ्क होकर उसके बन्धुभाँके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने! कहां आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अन्नना है या पृथिवी पर आई हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देगी है? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलावा हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है जहाँ इन्द्रकेतुसे प्रार्थनाको प्राप्त हुआ जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधने वाली विदेहा नामकी प्रिया है। उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है। यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानी सर्वग्य ही है ॥३४॥ मामण्डलके भाई-बन्धुभाँसे ऐसा कहकर उसने मामण्डलमें कहा कि हे वालक! तू विपादकी प्राप्त मत हो। यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रमें ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन ममर्थ है? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह तो धर्मन्याय में सुन्दररूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तकी भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैं चित्रपटमें उमरा यह केवल आकारमात्र ही अङ्कित किया है। उमका जो लावण्य है वह तो उमीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नव वीवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरङ्गोंमें ऐसी जान पड़ती

१. नारकः । अवधारः म० । २. महन् म० । ३. गच्छद्विग्नं म० । ४. इन्द्रकेतोः मृतः ॥४॥

५. ता म० ।

तस्या श्रोणी वरारोहा कान्तिसप्लाविताशुभा । वासितोन्मूलयेत्^१ स्वान्त समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
 युवन्वा भवन्मन्यस्य सेव कस्योचिता मवेत् । बल वस्तुनि कुर्वन्^२ जायता योग्यसगम^३ ॥४१॥
 द्युक्त्वा चरितार्थं सन्नारदोऽगान्मनीषितम् । दध्वा^४ भामण्डलोऽप्येव स्मरसायकताडित ॥४२॥
 हृषिष्ठ प्रमत्तान् न लभेय बदीदृशम् । न जीवेय तदावरय स्मरकुलितमानस ॥४३॥
 धारयन्ती परा कान्तिमय मे^५ हृदयस्थिता । कय न^६ कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
 दहति त्वचमेवाकर्षे बहिरन्तश्च भनमथ । अन्तद्विरसित सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
 द्वयमेव ध्रुव मन्थे प्राप्तव्यमधुना मया । तथा वा समय साक मरण वा स्मरेषुभि ॥४६॥
 अनान्तमिति^७ ध्यायन्नशने शयने न च । न प्राप्तये न चोद्याने धृति भामण्डलोऽगमन् ॥४७॥
 क्षिपोऽथ नारद सत्त्वा कुमारसुखकारणम् । ससश्रम समुद्दिन्वा^८ पितुरस्य न्यवेदयन्^९ ॥४८॥
 नाधानर्भसमुद्गेन^{१०} नारदेनाहता पटे । चित्रीकृषाङ्गना कापि^{११} रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
 समालोक्य कुमारस्ता विह्वलाभूतमानस । धृति न लभते कापि त्रयवा दूरमुज्जित ॥५०॥
 मुहुस्ताम्रीभते कम्पा साताशब्द समुष्परन् । करोति विविधा चेष्टा वायुनेव वशीकृत ॥५१॥
 उपायश्चिन्तयतामासु तस्योपाद्वितु धृतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्भोजनादिपरामुख ॥५२॥

हैं मानो तनहरी कलशोंके सहारे तैर हो रही हो ॥३६॥ कान्तिसे खल्लको तिरोहित करने वाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जायें तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़ कर फेंक दे ॥४०॥ आपकी छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकता है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थान पर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणासे ताडित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥४२॥ धृति मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस खोरनको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ॥४३॥ परम कान्तिको धारण करने वाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ बाहरी चमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है । इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं । एक तो उस स्त्री रत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब रित्रियोंकी पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने अद्विज होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पितारा नारद ही हैं । वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपट पर अङ्कित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है । लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुए के समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करवा रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना पीना सब छोड़ दिया है । इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते हैं तब तक

१ न्मूलयेत् म० । २ पुमान् । ३ योग्यसमागमसहित । ४ शीघ्रम् । ५ हृदय स्थिता म०, ज० ।

६ च म० । ७ मतिव्यापन् म० । ८ समुद्दिन्वा म० । ९ न्यवेदयन् म० । १० तयानर्भसमुद्गेन न०, नार्थानर्थं व० । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरहटनेन । ११ वापि म० ।

ततश्चन्द्रगतिं ध्रुवा नाशमेता समाकुल । आगत्य कान्तथा साकं मुगमेरमभारत ॥५३॥
 भव सत्वां प्रिया पुत्र सुचेता भोजनादिका । अयं वृणोमि ता कन्या भवतो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
 'परिसान्त्वनं मुक्तं कान्तां रहस्यन्त्रायणोऽयम् । प्रमोदं च विषादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥५५॥
 आर्ये विद्याभूता कन्या सत्यस्य प्रतिमोऽस्मिता । भूगोचराभिमन्यन्थ कथमम्भामु युयुते ॥५६॥
 क्षमागोचरस्य नित्यं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुगच्छाया तदा तु का ॥५७॥
 तस्मान् केनाप्युपायेन कन्याया पितरं प्रियम् । इहैव नययाम्याशु नान्यं पन्था निरागते ॥५८॥
 नय युक्तमयुक्तं वा तमेव ननु मन्यमे । तथापि तावत् वाक्यं ममापि हृदयङ्गमम् ॥५९॥
 ततश्चपलवेगाद्यं श्रूयमाहूय मान्तरम् । कर्णनापेन विज्ञातवृत्तान्तमक्रोशून् ॥६०॥
 आज्ञाशनेन मुणोऽभ्यां मिथिला स्वरितो ययौ । हृष्टहृत्पुत्राभोदमूत्रितामित्रं पश्चिनाम् ॥६१॥
 अथतायां राधारमोतिवैषमुपाश्रित । विज्ञापयितुमुद्युक्तो गोमहिर्द्वैश्वराजनाम् ॥६२॥
 'शशांते यथा जातं समाश्रम्यस्तदापरं । शुधाव च जनीयम्यो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥६३॥
 निर्ययौ च पुराणं प्रमोदोद्देशेनैकैर्बुक् । ईषाद्वये च तं सति नवर्षावनमगतम् ॥६४॥
 'उद्दामान् मनोवर्गं भाव्यप्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावतं तनुवक्रोदरं चलम्' ॥६५॥

उमके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाय ॥५३॥ तदनन्तर चन्द्र-
 गति विद्याधर इस समाचारको सुनकर घबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुनः इस प्रकार
 बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करा । मैं तुम्हारे मनमें स्थित
 इस कन्याको घरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५४-५५॥ इस प्रकार पुत्रको
 सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विषाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें
 अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५६॥ हे आर्य ! विद्याधरको अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका
 भूमिगोचरियोंसे साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥५६॥ इसके सिवाय एक बात
 यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करने पर भी यदि उसने
 कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिए कन्याने प्रिय पिताको
 किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥
 स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य
 कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक भृत्यको आदरपूर्णक बुलाकर उसके कानमें सत्र
 वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही
 उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण इस मुगन्धिसे सूचित कम-
 लिनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह
 गाय, भैंसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह
 जिस देशमें घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था ।
 राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनीं ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग
 और कौतुहसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने
 नव यौवनसे युक्त उस घोड़ेकी देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनसो अपनी ओर
 रींचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देखीयमान हो रहे थे, दक्षिण अङ्गमें महान्

१ परिशान्त्य म० । २ चन्द्रगति । ३ नययाम्याशु म० । ४ मन्यत म० । ५ हयवपन् ।

६ महिषाश्व क०, ख० । ७ देशघाता ख० । ८ उद्दामान म० । ९ उद्दामान च० । १० मनयोग म० ।

१०, नम् म०, ज० ।

सुराफाग्रेर्मदज्ञानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोह दघतं^१ प्रोथवेपथुम् ॥६६॥
 ततः^२ शुद्धप्रमोदः सन् जगाद् जनको मुहुः । ज्ञायतामेष कस्यायः प्राप्नो निर्दामतामिति ॥६७॥
 ततो द्विजगणा ऊचुः प्रियोद्योयतचेतसः^३ । राज्ञस्य न^४ नाशेऽपि तुरङ्गो विद्यते समः ॥६८॥
 कैवर्ता पृथिव्यां तु^५ राज्ञामीदम् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्वयेयता ॥६९॥
 रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानीमः^६ स्यूरिष्टोऽमुना समः ॥७०॥
 नूनं भवन्तमुदिश्य कृतवन्त परं तपः । सृष्टोऽयं विधिना सप्तिरतः स्वोन्मितां प्रभो ॥७१॥
 ततोऽसौ^७ विनया निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । मन्दुरां कुङ्कुमाद्राङ्गः प्रवलचारुचामरः ॥७२॥
 सत्कृतो मासमात्रोऽस्य ययो कालो गृहीतितः^८ । उपचारैरलयौग्यैः सेव्यमानस्य सन्ततम् ॥७३॥
 पारकोऽत्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य^९ सदेहे ग्रहणं दृश्यतामिति ॥७४॥
 ततोऽसौ मुदितस्त्रुग्मास्त्रुग् वरवारणम् । उद्दिष्टपाद्विस्तेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥
 दूरे च सरसो दुर्गे स्थितं दृष्ट्वा वर द्विपम् । जगादानय तत्त्रिपं कचिदर्यं महाज्वम् ॥७६॥
 दौकितश्च स मायायः सद्यः स्फुरितविग्रहः । आहरोह स तं यातश्चोत्पत्य तुरगो नभः ॥७७॥
 हाहाकारं नृपाः कृत्वा वहन्तः शोकमुद्धतम् । निवृत्ताः सहसा भीता विस्मयव्याप्तमानसाः ॥७८॥

आवर्त धी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापोके अप्रभागसे वह पृथिवीको तावित कर रहा था । उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मृदङ्ग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५-६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोंसे कहा कि मालूम किया जाय कि यह किसका घोड़ा घन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्परचात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ज्ञाक्षणांसे कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवाग् घोड़ेकी दुहरी रस्तीसे बौधकर घुड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर गोम्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे शोड़ा फड़कुर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुङ्ग गजराज पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप रड़ा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथु म० । २. शुद्धः प्रमोदः ब०, म० । ३. प्रियभाषणपरमानसाः । ४. न ना काऽपि म० । ५. ॥ म० । ६. अयः स्थूलीष्टोऽ ब० । ७. विनयैर्निन्ये ब० । ८. मन्दुराकुङ्कुमाद्राङ्गप्रचलचारुचामरः म० । ९. सत्कृतो म० । १०. गृहीतितः ब० । ११. सदेहे म०, क० । सदेहे र० ।

ततो नदीगिरीन् देशानरण्यानि च मूरिश । प्रयाति लहयन् ससि मनोजदनिवारण ॥७६॥
 नातिदूरे ततो दृष्ट्वा प्रासादं पुनमुज्ज्वलम् । हियमाण स शाखाया दद लग्नो महातरो ॥८०॥
 अवतीर्य ततो वृष्टाद् विश्रम्य च सविस्मय । चरणान्यां परिक्रामन् प्रययौ स्तोकमन्तरम् ॥८१॥
 ददर्श च महानुन्न शाल चामाकरामकम् । गोपुरं च सुरलेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥
 नानाजाताश्च वृक्षाणां लतानालम्बयोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनान् ॥८३॥
 सभ्याभ्रच्छ मकराणां प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवा प्रासादराजस्य कुवाणानि त पराम् ॥८४॥
 ततोऽसौ यद्गमालस्य दक्षिणो दक्षिणे करे । केसरीवातिनि राङ्ग प्रविवेश स गोपुरम् ॥८५॥
 अपरयथा परिस्तीता पुष्पज्जातीर्बहुस्त्रिय । मणिकान्धनसोपाना वार्पाश्च स्फटिकाम्भस ॥८६॥
 रमणाश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चल्पपल्लवसघातान् कृतसंगीतपद्मान् ॥८७॥
 ततश्च माधवीनुन्नपालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसम्पनेन चक्षुषा चारुक्रान्तिना ॥८८॥
 रनवातायनेयुक् मुक्तापालकशोभितै । शातकीम्भमहास्तम्भसहस्रवृत्तधारणम् ॥८९॥
 नानारूपमकाणं मेकमृद्वसमप्रभम् । वज्रपद्ममहापादमद्भासाद् भवनं नृप ॥९०॥
 अचिन्तयच्च किं न्वेतद्विमानं पतितं रतं । वासवस्य हतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापिस लौट आये ॥७८॥

अतानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह घोडा अनेक नदी, पहाड, देश और पर्वतोंको लँपता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७६॥ तदनन्तर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देवप्रर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखासे मजबूतीसे झूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विभ्रम किया फिर पैरोंसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमयकोट और उत्तमोत्तम रत्नासे युक्त तोरणसे समुद्रासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताआके समूहसे युक्त, फल और फूलोंसे समृद्ध, तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियों देखी ॥८३॥ जिनके शिखर सभ्याके बादलोंके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमें स्थित थे तथा जो भवनोंके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोंकी भी उन्होंने देखा ॥८४॥ तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेफर सिंहके समान निशङ्क हो गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने वहाँ चहलँ चिते हुए रङ्ग भिक्वों अनेक प्रकारके फूल देखे । जिनकी सीढ़ियाँ मणि और स्वर्णकी बनी हुई थी तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी वायुदियों देखी ॥८६॥ जिन्हें देवप्रर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर दूर तक फैल रही थी, जिनने पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ भ्रमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने सुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रोंसे माधवी लताआकी ऊँची जालीने बीच मेंकर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मोतियाकी जालीसे सुशोभित रत्नमय भरोसासे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारों बड़े बड़े सम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरोंके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिपट्टके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देवप्रर ने विचार करने लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योंने द्वारा हरण किया हुआ

१. नदीगिरींशान् म० । २. प्रासादं पुनमुज्ज्वलम् म० । ३. कुवाणामिनि म० । ४. तत्परम् म०, न० । ५. वार्पा च म० । ६. पीत म० । ७. कियेतद्विमानं म० । ८. आवासात् ।

पातालादुद्धृत किं वा नागेन्द्रस्यावभास्य । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डन ॥६२॥
 अहो मे ययुना^१ तेन भद्रेणोपकृत परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वेरभावलोकितम् ॥६३॥
 विवेश चिन्तयन्नेव भवनं तन्मनोहरम् । सम्पुञ्जवदनाम्भोजो ददर्श त्रिजिनाधिपम् ॥६४॥
 हुताशनशिखागौरं पूर्णचन्द्रविभाजनम् । पद्मासनस्थितं तुङ्ग^२ जटामुकुटधारिणम् ॥६५॥
 प्रातिहार्यसमायुक्तं हेमतामरसाचितम्^३ । चित्ररत्नकृतच्छायं तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥६६॥
 ततोऽञ्जलिपुत्रं मूर्ध्नि कृत्वा हस्तनूरुह । प्रणामं प्रयत् कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छामुपागतं ॥६७॥
 क्षणेन प्राप्य सज्जां च स्तुतिं कृत्वा सुसंस्कृतम् । विस्मयं जनकस्तस्यां विस्मयं परमुद्वहन् ॥६८॥
 कृताब्दश्रवणश्च मायां सहस्रं सत्वरः । खड्गविद्याधरो मूत्वा सत्राप रथनपुरम् ॥६९॥
 स्वामिने चावदक्षवा तुष्टो जनकमाहृतम् । रत्नकाननसर्वांते स्थापितं जिनवेरमनि १००॥
 आगतं जनकं ज्ञात्वा परं हर्षमुपागमत् । आस्रवर्गेण सयुक्तश्चन्द्रयात्रो महामना ॥१०१॥
 गृहीत्वा च परां पूजां नानाबाह्वनसकुलः । मनोरथरथारूढो वयं जिनवराहवत् ॥१०२॥
 दृष्ट्वा तन्मुनहस्तैः यमागरक्षकपरमोज्ज्वलम् । त्वयं शङ्खमहानादमाविष्टो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
 ततो हरिगजद्वीपिनागहसादिबाहिनाम् । पुरुषाणामिदं मध्ये विमानं स व्यलोकयत् ॥१०४॥

इन्द्रका कीड़ागृह है ? ॥६१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥६२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥६३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनैन्द्रभगवान्के दर्शन किये । जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥६४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनैन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलासे उनकी पूजा की गई थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥६५-६६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनैन्द्रदेवकी नमस्कार किया । नमस्कार करते करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥६७॥ क्षण भरके बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुदूर सुसंस्कृत स्तुति की । तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ निराश हो वहीं बैठ गया ॥६८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥६९॥ उसने सतुष्ट होकर अपने स्वामीके लिये नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनककी आया जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एव नाना बाहनासे युक्त चन्द्रगति आप्तवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१-१०२॥ जिसमें तुरही और शङ्खाका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस

१ अश्वेन । २ तुङ्गब्जा-ब०, क०, ख० । ३ सुवर्णकमलपूजितम् । ४ मनाहरोद्याननेष्टिते ।
 ५ सुमहासेन्य २० ।

अग्निन्तयच्च ते नूनमेते विद्याभूतो^१ जना । विनयाद्द्विगिरेरुर्ध्वं ये वमन्ताति मे श्रुतम् ॥१०५॥
^२मप्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थिति । शोभते परमो द्राप्या कोऽपि विद्याधराऽपि ॥१०६॥
 एव चिन्तापरे तस्मिन्नृपतौ दैवयुद्धम् । सप्तापन्वैयभवन् सम्मदी^३ नतविग्रह ॥१०७॥
 दृष्ट्वा दैन्यापि प्राह भाममौम्यपरिग्रहम् । जनक तिमपि घ्यावस्तस्यौ मिहासनान्तरे ॥१०८॥
 भक्त्या शराङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनानां परमस्तुतिम् ॥१०९॥
^४विपद्वां च विधायाङ्गे सुखरूपा प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ विनयुणामरम् ॥११०॥

चतुष्पादिकावृत्तम्

त्रिभुवनधरदमभिद्रुतमतिरुच्यपूजाविधानविनिहितचित्तै ।
 प्रणत सुररुपभगणै प्रणमत नाथ त्रिनेन्द्रमन्त्रयसीरुधम् ॥१११॥
 रूपभ सतत परम वरद मनसा वचसा शिरसा सुजना ।
 भजत प्रवर विलय प्रणत विहित सरल दुरित भवति ॥११२॥
 अतिशयपरम विनिहत दुरित परमगतिगत नमत निनवरम् ।
 सर्वसुरासुररुजित पाद शोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥
 उत्तमलक्षणलक्षितदेह नामि त्रिनेन्द्रमह प्रपलाभा ।
 भक्त्या विनमितसर्वज्ञनाथ नलिमात्रविनाशितभक्तभयम् ॥११४॥

आदि नाना बाहनोंपर स्थित पुरुषाके मध्यमे एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह निचार करने लगा कि निश्चय ही ये विद्याधर हैं जो कि विजयाद्वै पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमें अपने विमानमें बैठे हुए जो कान्तिमान् पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरों का राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजने सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा निधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुखकारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तानों लोकोंके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशय पूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे त्रिनेन्द्रदेवको हे भक्त्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन रूपभदेव भगवान्को मनसे, वचनसे शिर फुकार कर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार करो जो कि अतिशयोक्ते उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी साधनासे उन जिनेन्द्रभगवान्की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणासे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नमाम्भूत कर

अनुपमगुणधरमनुपमकाय विनिहलभवभयसकलकुचेष्टम् ।

कलिमलघनपटविनयनदत्त प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥

इति गायति दैवेन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययो भयमु सृज्य जनको नाम शोभन ॥११६॥

ततश्चन्द्रायणोऽशोचदीपचलितमानस । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥

उरगाणा पति किं स्यान् किं वा विद्याधराधिप । सखे चद्रुकुत प्राप्नो भवान् किं सज्जोऽपि वा ॥११८॥

मिथिलानगरातोऽह प्राप्नो जनकसज्जक । हतो मायातुरङ्गेण नभश्चरमहीपते ॥११९॥

इत्युक्ते जनकेनैतावन्योन्य २ शतमानसो । इच्छाकाराञ्जलि ३ कृत्वा सुखासीनी बभूवतु ॥१२०॥

क्षण स्थि वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितै । जनिताभ्योन्यसन्मानौ सौ विश्रम्भ समीयतु ॥१२१॥

ततश्चन्द्रायणोऽशोचद्धामान् कृत्वा कथा-तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्व मिथिलापतिरीक्षित ॥१२२॥

अरित ते दुहित्वा राजन् लक्षणैरन्विता शुभै । कर्णगोचरमायाता मम मूरिजनाननात् ॥१२३॥

सा भामण्डलसञ्ज्ञा मपुत्राय प्रदायताम् । स्वया विहितसम्बन्ध मन्ये स्व परमोदयम् ॥१२४॥

सोऽशोचन् सर्वमेतस्यात् कृन् विद्याधराधिप । किन्तु ४ दशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥

सुहृच्चन्द्रगतिरूपे सा कस्मात्तस्यकल्पिता । सोऽशोचन् ५ यतामस्ति भवता चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

दिया है और जिन्हे नमस्कार करने मात्रसे भक्ताका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्य जन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले हैं, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने ससाररूपी समस्त कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोक्ते पवित्र हैं अथवा अत्यन्त पवित्र हैं ॥११५॥

तदनंतर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवाके स्वामी हैं ? या विद्याधराके अधिपति हैं ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले हैं ? और यहाँ कहाँसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥११९॥ क्षणभर उठकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२०॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिने कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२१॥ हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोंसे युक्त कन्या है ॥१२२॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए । आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२३॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥१२४॥ मित्र चन्द्रगतिने कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गई है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२५॥

१ नागशोभन अ० । २ प्रीतिमानसौ ज० । प्रतिमानसौ म० । ३ उल्लि कृत्वा म० । ४ दशरथ मुत्स्य रामचन्द्रस्य ।

धनगौरनयपूर्णा मदाया मिथिलापुरी । अर्द्धवर्गैस्तेल्लेच्छराध्यत सुदारुणैः ॥१२७॥
 अर्पादयन्त प्रचा सर्वा स्वद्विषन्त धनो करा । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त ध्रावकाणा महाभनाम् ॥१२८॥
 ततो महाहवे जाते रचिस्वा मा सङ्गानुजम् । पद्मेन विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्नया ॥१२९॥
 लक्ष्मणश्चानुपस्तस्य शत्रोपमपराक्रम । कुराने शाम्न निय महाविनयमयुत ॥१३०॥
 यदि नाम न तसैन्य ताम्या स्याद् विजित द्विषा । म्लेच्छलोकं सपूर्णा तत स्यादग्निला मही ॥१३१॥
 विवेकाहितास्ते हि लोकपादामया इव । महोपाता इवायन्तभोपणा निषदारुणा ॥१३२॥
 प्राप्य तौ गुणमूर्णौ सुपुत्रौ लोकवत्सलौ । इन्द्रवज्रवने राज्य सुख दशरथोऽभवत् ॥१३३॥
 तस्य राज्येऽधुना जाते नयरीर्यविलासिन । वातोऽपि नाहरत् किञ्चित् प्रनाना पुरमम्पदाम् ॥१३४॥
 तत प्रयुपकार क करोमिति समाकुल । न रात्रौ न दिवा निद्रा सप्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥
 रचिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो सम । कश्चित् प्रयुपकारोऽस्ति किमुताधिव्यगोचर ॥१३६॥
 हत महोपकारेण प्रताकारविधर्मितम् । मन्ये नृगमिवास्मान भोगश्रीतिवराद्भुज ॥१३७॥
 नवरीवनमपूर्णा इष्टा दुहितर शुभाम् । गता विरलता शोक शोकान्धनेऽपि मे तत ॥१३८॥
 तया कल्पितया तस्य रामस्य पुस्त्येभ्यः । नावेव शोकचलधेस्तारितोऽहं सुजातया ॥१३९॥
 ततो नमश्चा ऊर्ध्वान्धर्मावृत्तानना । अहो मानुषमात्रस्य बुद्धिस्तप न शोभना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसांके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्ना-
 से परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रचा पीड़ित होने लगी,
 धन धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव ध्रावकाके धार्मिक पूजा निधान आदि
 अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ । सो उस महा-
 युद्धमें रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवासे भी दुर्नय उन समस्त म्लेच्छोंको
 पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा
 विनयसे सहित है । यह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके
 द्वारा म्लेच्छोंकी यह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे
 भर जाती ॥१३१॥ ये म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंकी पीडा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान
 थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयकर और निपके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे
 सम्पूर्ण तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर रात्रा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके
 समान राज्यमुपना उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित रात्रा दशरथके
 राज्यमें इस समय इना भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य
 मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३४॥ इस उपकारके बदले में उनका क्या उपकार करूँ
 इसी बातकी आशुलतासे पिता क्रुते हुए मुझे न रातमें नीड आती है न दिनमें ही ॥१३५॥
 रामने मेरे प्राणोंकी जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिकका तो
 चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दना हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार
 करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपकी मैं वृणके समान तुच्छ समझता हूँ । मैं केवल भोगोंके
 भयमें परानुमय हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवरीवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ
 पुत्री पर पड़ी तब शोकने स्वानमे भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने
 अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीसे लिप उसकी देना सकल्पित कर लिया और नाचकी भोंति इस
 पुत्रीने मुझे शौररूपी सागरमें पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनने मुझपर अन्धकार छा रहा था ऐसे निवाधर बोले कि अहो ! तुम एक

म्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । प्रशंसामि परां शक्तिं भूमिगोचरिणो^२ बुध ॥१४१॥
 म्लेच्छनिर्घोनात् स्तोत्रं त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युत नन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥
 शिशोविपफले प्रीतिर्नि स्वस्य^३ वदरादिषु । ध्यात्स्वस्य पादपे शुष्के स्वमात्रं खलु दुस्तयज ॥१४३॥
 कुसुम्य धं परिष्वज्य चित्तिगो^४चरिणा मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण सम्बन्धमधुना सह ॥१४४॥
 वयं महासम्पदो देवैः सहस्रो ज्वोमचारिण । वयं भूमिगोचरा क्षुद्रा सर्वथैवातिदुःखिता ॥१४५॥
 जनकोऽजोचन्दयन्तविपुल 'चारुसमा' । न तच्छरोति यद्वाप्यं स्तोकस्वातुपयोभृत ॥१४६॥
 अन्यन्नेधनवन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥१४७॥
 असत्यया अपि मातङ्गा मदिनं कुर्वन्ते न तत् । वेशरी यत्किंशोर सश्चन्द्रनिर्मलवैसर ॥१४८॥
 ह्युच्यते 'कोऽपि जोऽयर्थं समं कृतमहारवा । भूमिचेष्टा समतत्त्वा निन्दितु गगनायना' ॥१४९॥
 विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता नित्यं स्वेदसमन्विता । शौर्यसम्पत्परित्यक्ता शोचनीया घराचरा ॥१५०॥
 वद तेषां पशूनां च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन त्रया त्वय वा दुर्बुद्धिस्तान् विक्वन्धसे ॥१५१॥
 उवाच जनको धीर हा कष्टं किं श्रुत मया । वसुधाराज्ररत्नानां निम्नत पापकर्मणा ॥१५२॥
 कथं त्रिभुवनव्यसितो वशो नाभ्येयमभव । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्तो लोकपावन ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त हो क्षुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमि-गोचरियाँकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनको स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है । अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४२॥ बालककी विपफलमें, दरिद्रकी बैर आदि तुच्छ फलोंमें और कौएकी सूखे वृक्षमें प्रीति होती है । सो कहना पड़ता है कि प्राणीका स्वभावन कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी क्षुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलका धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सधन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मद्रको भगानेवाले असत्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित है, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते हैं, शूरावीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तुने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! घड़े कष्टकी बात है कि मुक्त पापीको भूमि-गोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या मिजगत्तमें प्रसिद्ध तथा लोकको

१ प्रशंसाम् म० । २ गोचरिणोर्बुधं म०, गोचरिणो बुधैः म० । ३ दरिद्रस्य । निःश्वस्य म० । ४ गोचरिणामत म० । ५ लवणसागर । ६ चन्द्रमण्डल म० । ७ केऽपि नोत्यर्थं (?) । ८ विद्याधरा ।

अहन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥१५४॥
 पञ्चदश्याणमग्राप्तिः पुंसां वदत खेचराः । स्वप्नेऽपि जानु किं दृष्ट भगद्भिः तेष्वाराज्नी ॥१५५॥
 इक्ष्वाकुवंशसभूता गोप्पदीकृतमिष्टयाः । अनोचितपरपद्मया महारत्नममृदय ॥१५६॥
 सुरेन्द्रकीर्तितोदारकीर्तयो गुणमागरा । व्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
 पुष्योऽनरण्यराजस्य तत्र वशी महा-मनः । जात-सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभजन् ॥१५८॥
 यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । भूर्नां वदति यस्याज्ञां शेषामिन् जनोऽपि ॥१५९॥
 घतस्रो यस्य सम्पन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आत्मा ह्य महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
 शतानि वनरारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्ष्यनिर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
 पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । दक्षिणनिर्जितहिममायुः कीर्त्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥
 स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शीर्षेण यो महापद्मं जयेदपि सुविधम ॥१६३॥
 अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिर्जितविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरामनम् ॥१६४॥
 वायसा अपि गच्छन्ति नभसः तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥१६५॥
 ग्रहणं वा भवन्तिः किं यत्र देवाधिपा अपि । त्रियन्ते भूमिभूतैर्नमन्तः क्षितिमस्तकाः ॥१६६॥
 ह्ययुक्ते रहसि स्थित्वा सन्मन्य गगनापनः । ऊर्ध्वं वेत्ति कार्याणि जनकैः प्रामाण्यम् ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगन्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंको पञ्च कल्याणकोंकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखा है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोप्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका द्वेष नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमङ्गला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको गोपाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलङ्कारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियों हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमा को जालनेवाली पोंच सौ स्त्रियों और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनमें हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिङ्गन करती है, जिसने अपनी धीप्तिसे सूर्यको, कीर्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रकी जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चढ़ते हैं यह कहाँ सो आकाशमें तो कौए भी चढ़ते हैं । इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए । इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नष्टीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

पद्मो दृढमण इत्युच्चैर्गजित वहसे वृथा । अथ विप्रैस्तथ कश्चित्तोऽस्माद्भज निश्चयम् ॥१६८॥
 समय शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनु । इदं च सागरावर्तममरै कृतस्वर्णम् ॥१६९॥
 इमे वाणासने कर्तुमाधिष्ठे यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयो शक्तिं ज्ञास्याम किं बहुदितै ॥१७०॥
 वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभि प्रसभं पश्य तामानातामिहान्यथा ॥१७१॥
 तत परममियुक्त्वा धनुषा वाच्यं दुर्ग्रहे । मनकाद् व्याकुलाभाव जनको मनसागमत् ॥१७२॥
 तत कृपा जिनेन्द्राणा पूजा स्तोत्रं तु भावत । गदासारदिसंयुक्ते पूजा नाते शरासने ॥१७३॥
 उपादाय च ते शूरा जनकं च नमश्चरा । मिथिलाभिमुख जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
 तत कृतमहाशोभं समद्वलमहाजनम् । विवेश जनको वेरम परैरलोकावलोकित ॥१७५॥
 विद्यामयुधशाला च समारूढ्य नमश्चरा । बहन्त परमं गर्वं नगरस्य बहि स्थिता ॥१७६॥
 जनकस्तु सखेदाह कृपा क्रिञ्चिस भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भोजे तत्पुंसाहवर्जित ॥१७७॥
 तत्र श्रोतमनारागिनिनाताभि सुविभ्रमम् । चन्द्राशुचयसकाशैश्चामरैरभिर्वीजित ॥१७८॥
 उष्णद्वारगतिनि श्वासान् विमुञ्चन् विपमानसम् । दधत्या विविध भावमभाष्यत विदेहबा ॥१७९॥
 का क कामिस्त्वया दृष्टा नारा यतेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि सश्रित ॥१८०॥

कहा कि हे जनक । तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उलूख हैं' इस गजनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो यदि मेरे इस कहनेमें कुछ सशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् । हमारी शर्त सुनो । यह वज्रावर्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त नामका धनुष है । देव लोग इन दोनों की रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरासहित करनेमें समर्थ हो जायेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे । अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त धनुषको चढाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं यदि वे उक्त धनुष नहीं चढा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आयेगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठाक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोंकी शर्त स्वीकार तो कर ला परन्तु उन दुर्मात्रा धनुषोंको देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भाग्य पूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा, हल आदि शस्त्रासे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गई ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पड़े और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गई थी, और जिसमें महाजन लोग मङ्गलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया । प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद विव्रित था ऐसे जनकने कुछ थोडासा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा । उल्लाह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियों, हाथ भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोसे उसे हवा कर रही थीं तथापि वह अत्यन्त विपन्न, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था । उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावोंको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन सी कामिनी आपने देखी है जिसने वियोगसे इस

‘प्राहता कापि सा नारी कामिनीगुणरिनिता । इति या स्मरस्तस्य^१ भवन्तं भानुकम्पने ॥१८१॥
 नाथ वेदय मे स्थानं येन तामानयामि ते । भवद्दुःखेन मे दुःख जनस्य सङ्गस्य वा ॥१८२॥
 उदारे सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽमि नो तथा । प्रावमानमया येन एति न लभमे भृशम् ॥१८३॥
 उत्तिष्ठ भज नि शेषाः त्रिधा राजज्जोषिता । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः^२ ॥१८४॥
 इत्युक्ते पाथिवोऽथोचत् कान्तो प्राणगरीयसीम् । अन्यथा मेदितस्यास्य किं मे चित्तस्य मेघने ॥१८५॥
 शृणु देवि यतोऽवस्थामाहसीमहमागतः । अपरिज्ञाततृचान्ता किमर्थमिति भाषमे ॥१८६॥
 तेन मायानुरङ्गेण नीतोऽहं विजयाचलम्^३ । समयेनामुना तत्र भुक्^४ पथा रगाग्निनाम् ॥१८७॥
 ब्रह्मावतंसधिज्य चेदनुः पद्यं करिष्यति । ततः स्वात्तरस्य कन्येय तनयस्य ममान्वयः ॥१८८॥
 कर्मावुभावनस्तस्य मया सात्वन्तोऽपि वा । प्रतिपदमभाष्येन सन्धानस्यामुपेयुः ॥१८९॥
 सनुप्रावर्तसंज्ञेन^५ तच्छायेन समन्वितम् । आनांसं पेर्यैर्यैरहिं स्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥
 मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिगम्यतावृत्तौ । यत्रन्वलन^६ नुस्वस्य दुर्निरोपस्य तेजसा ॥१९१॥
 ‘कृतान्तमेव त्रिभुवननाहृष्टमपि स्वन् । अनधिज्यमपि हरैर मीप्सु तिष्ठ यनारतम् ॥१९२॥
 ‘अधिज्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन^७ मदिचं ध्रुवम् । हरिष्यते रगै कन्या मामपेशीव जम्बुकान् ॥१९३॥
 विंशतिर्वासरागां च वस्तुन्यत्र कृतोऽश्विः । बलाहोत्ता वराहोऽय भूयोऽस्माभिः^८ वाञ्छिता ॥१९४॥

अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥ जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे संतप्त हुए आप पर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ । आप वह स्थान बतलाइये जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पापाणहृदयाने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अर्घार हो रहे हैं ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए । यदि शरीर है तो अनेक इन्द्रियत ब्रियाँ हो जावेंगी ॥१८४॥

बिदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय यल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे पित्र हो रहा है । उसे इस तरह रोद क्यों पहुँचा रहा हो ? ॥१८५॥ हे देवि । मुनो, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ । तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्थ पर्वतपर ले जाया गया था वहाँ विद्याधरके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम ब्रह्मावर्त धनुषको डोरी-सहित कर लेंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुरषी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो बन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्दभाग्यने उसकी यह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये हैं और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष ब्रह्मानिने समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है । इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो । बिना सींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हर कर ले जावेंगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगालके मुखसे मांसकी हलीको हर ले जाते हैं ॥१९३॥ इस कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चित की

१. पामरी । २. स्मरस्तस्य म० । ३. पापाणस्तुङ्गोरेचता । ४. इष्टा । ५. विजयार्थगिरिम् ।

६. रामः । ७. स्वीकृतम् । ८. सख्येन म० । ९. दिग्मालानन्द ज०, ख०, क० । १०. कृतान्तायेन तन्मुद्र म०, ख० । ११. अधिज्येन ह्येयस्मिन् म० । १२. मत् मल्लभायात् ।

एवमुक्तेऽक्षसपूर्णलोचना सहस्रामवत् । विदेहापहत बालमस्मरच्च प्रसन्नतः ॥१६५॥
 अतीतागामिशोकप्रथममिति पांडितेव सा । चकार चारिनेत्राग्या कुररीव कृतस्त्वना ॥१६६॥
 परिदेवनमेव च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवण^१ चेतसामलम् ॥१६७॥
 कौरवाम मया नाथ देवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यच्च सनुष्ट हर्तुं कन्या^२समुद्यतम् ॥१६८॥
 स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेय सुचेष्टिता । मम ते बान्धवाना च प्रेमभावो जनस्य च ॥१६९॥
 दु खस्य यावदेकस्थ^३ मान्त्वं गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे^४ कृतसन्निधि वर्तते ॥१७०॥
 शोकवर्तनमग्नौ ता कुरुष्व रदतीमिति । नियम्याश्रु^५ भियोवोचदत्तः शोकसमाकुलः ॥१७१॥
 अल कान्ते रदित्वा ते ननु कर्माजित पुरा । नर्तयत्यन्विल लोकं नृत्ताचार्यो हर्सा परः ॥१७२॥
 अथवा मयि विश्वस्ते हृतो दुष्टेन बालक^६ । अग्रमत्तस्य बालां त्व हर्तुं शक्नोऽस्मि को मम ॥१७३॥
 भक्तिप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । पृष्टाम्पि दयिते वस्तु जानाम्येतत् सुखाग्रहम् ॥१७४॥
 सारैरेवविधैर्थास्यैः कामेन कृतसान्त्वना^७ । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृच्छ्रावस्थिता ॥१७५॥
 ततो धनुर्गृहमान्त्वे विशाला रचितवनि । स्वयंवरायमाहूता पापिवा सकलाः क्षितौ ॥१७६॥
 प्रेषितः कोशलो दूतः^८ पद्माद्याः समुपगताः । मातापित्रादिसुपुत्रा जनकैर्नामिष्वजिताः ॥१७७॥

गई है । इसके बाद यह कन्या जबर्दस्ती ले जाई जावेगी । फिर इस बेचारीको हम कहाँ देर सकेंगे ? ॥१६४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसङ्गसे ऊँ अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१६५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोन ओरसे पीड़ित हो रही थी । इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१६६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोंके चित्तको अत्यन्त द्रव्यभूत करती हुई इस प्रकार घिलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने देवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिसका यह पुत्रके द्वारा सनुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१६७-१६८॥ उक्त चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाग्यबन्धव एवं परिवारके लोगोका प्रेमभाजन है ॥१६९॥ मैं पापिनी जब तक एक दुःखका अन् नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥१७०॥ राजा जन स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आघातसे फँसकर कष्ट रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है । निश्चयसे पूर्व जन्ममे अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है । यही सब बड़ा नर्तकाचार्य है ॥१७१-१७२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ । देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन सम है ? ॥१७३॥ हे प्रिये ! 'आपजनोंके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़िए ही मैंने तुमसे पूछा था । मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुपुत्रको धारण करनेवाली हो हो ॥१७४॥ पतके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिस सान्त्वना दी गई थी ऐसी विदेहा बड़े बड़े शोकको हलका कर चुप हो रही ॥१७५॥

तदनन्तर जहाँ घनुष रक्सा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनाई गई और उस स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥१७६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राजा आदि चारों भाई माता पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सम्मान कि

१. द्रविण म० । २. देतस्य म० । ३. तावदेकमे म० । ४. नियम्याश्रु म० । ५. सान्त्वया ज० । ६. यमायाः । ७. मातृपिता-ज०, क०, ख०, घ० ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरा । कन्यासप्तशता-तस्या सीता शूरभगवता ॥२०८॥
 प्रान्तेषु सर्वसामन्ता नैरमनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विवित्र लीला महाविभववतिन ॥२०९॥
 तत स्थित्वा पुरस्तस्य बन्धुकी सुबहुधृत । जगाद् दारशब्देन हेमवेत्रलताकर ॥२१०॥
 राजपुत्रि पराचस्य पद्मोष्ठी पद्मलचन । अयोध्याधिपतेराय पुत्रो दशरथश्रुते ॥२११॥
 लक्ष्मीमान् लक्ष्म्यशायमनुजोऽस्य महाद्यति । भरतोऽय महागडु शत्रुघ्नोऽय सुचेष्टित ॥२१२॥
 सुतेर्दशरथोऽमीभिर्मुणसागरमानसे । धमुषा शान्ति निर्दग्धमयाङ्कुरममुद्रवाम् ॥२१३॥
 हरिवाहननामाय धीमानेय धनप्रम । अय चित्रस्य कान्तो दुर्मुखोऽय प्रभाववान् ॥२१४॥
 श्रीमन्मयो जयो भानु सुप्रभो मन्दरो बुध । विशाल श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबल शिरो ॥२१५॥
 ज्येष्ठ्ये च महासत्त्व । महाशोभासमन्विता । विशुद्धवशासम्भूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तप ॥२१६॥
 कुमार । परमोन्माहा गुणभूषणराजिण । महाविभवसम्पन्ना भूरिविज्ञानकोविदा ॥२१७॥
 गणोऽयमन्य शैलान्सुराज्ञोऽस्यायमुत्तम । रथोऽस्याय महाभोगो भगोऽस्याय कृताञ्जल ॥२१८॥
 साकारयपुरनाथोऽयमय रन्ध्रपुराधिप । गवीशुमदधीशोऽयमय नन्दनिकाधिप ॥२१९॥
 विभु सूरपुरस्यायमेव कुण्डपुराधिप । अय मगधराजैश्च काम्पिष्यविभुरेव च ॥२२०॥
 अपमिष्वङ्कमम्भूतो नृपोऽय हरिवंशज । अय कुरुकुलानन्दो भोजोऽय वसुधापति ॥२२१॥
 इत्यादिवर्णनायुक्ता श्रयन्तेऽमी महागुणा । इद त्वदर्थमेतेषा समारब्ध परीक्षणम् ॥२२२॥

॥२०८॥ तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारों ओर नाना प्रकारकी लीला की कसे हुए समस्त सामन्त बड़े ठाट नाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रज्ञों जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला बन्धुकी सीताके सामने खड़ा होकर उभरकर बोला कि हे राजपुत्र । देखो यह कमल लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिकी धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बड़ी बड़ी भुजाओं की धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाभाषी धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके द्वय गुणोंने सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं । इनकी पृथिवीमें भयने समस्त अङ्गुलीकी उत्पत्ति भस्म कर दी गई है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिकी धारण करनेवाला सुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्रस्य है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसङ्ग है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह बुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिरो अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महा पराङ्गी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोन्माही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमें निपुण हैं ॥२१६-२१७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा पीढ़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और यह आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इमरा सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह माङ्गल्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है यह गवीशुमद देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और काम्पिष्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इन्द्रावतशर्म उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुला आनन्द नाथ है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महा

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति यो नर । कुमारि वरणीयोऽमो भवत्या पुरुषोत्तम ॥२२३॥
 क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणा स्वविक्रयणम् । वज्रावर्तधनुस्तेन दौकिताश्चारुविभ्रमा ॥२२४॥
 आर्मावमु कुमारेषु धनुर्मुञ्चति पावकम् । त्रिधुमदासमाकार निधसद्दीप्णोरगम् ॥२२५॥
 चभ्रुस्तत्र द्रुत केचिद्भुज्जालसमाहतम् । प्रस्ता पिवाय पाणिभ्या पराचानत्त्वमाश्रिता ॥२२६॥
 तस्थुर्द्वरत एवा ये दृष्ट्वा स्फुरितपद्मगान् । कम्पमानसमस्ताङ्गा निमालितविलोचना ॥२२७॥
 'केचिज्जराकुल' पेनु जितान्वये 'गिराज्जिता' । द्रुत पलायिता केचिदेके मूर्ध्नामुपागता ॥२२८॥
 केचिपद्मगवातेन चित्ता मर्मरपत्रवत् । अपरे स्तम्भमाधाता स्थिता शान्तदंयोऽपरे ॥२२९॥
 केचिद्भुज्यदि स्थान गमिष्यामो निज तत । जीवदानानि दास्यामश्चरगौ देहि देवते ॥२३०॥
 'ऊचुरन्येऽन्यनाराभि सेवा मानसवासिन' । श्रियमाणा करिष्यामो रूपिष्यापि क्रमेतया ॥२३१॥
 अन्ये जगुरिय नून वैनापि कूरुचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया कथार्यं वृषिवाचिताम् ॥२३२॥
 अन्ये जगु किमस्माक कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्याम समय साधवो यथा ॥२३३॥
 तत पद्म सनुतस्थी वरकामुक्कलालस । हुड्डीके च 'महानागमन्थरा गतिमुद्धहन्' ॥२३४॥
 आमादतिशुभे तस्मिन् रूप भेदे धनुर्मिजम् । सुचारुपरम सौम्यमग्नेवासी' गुराविव ॥२३५॥

गुणवान् सुने जाते हैं । तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२३॥ हे कुमारि ! जो पुत्र इस वज्रावर्त धनुषको चढा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा बरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सत्र राजाओंको वह कञ्चुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार त्रिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयङ्कर साँप फुँकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोंके पास आते हा अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी जालाओंसे ताड़ित चक्रुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अङ्ग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए सोंपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग वरसे आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती मन्द हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्खोंको प्राप्त हो गये ॥२२८॥ कितने ही लोग सोंपोंकी बापुसे सूखे पत्रके समान डब गये, कितने ही अन्ड गये और कितने ही लोगोंको खड़ि शान्त हो गई अर्थात् वे शोभाहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोंको दान देवेंगे । हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे । भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उत्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदीमत्त गजराजके समान मन्थर गतिकी धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१ चारुविभ्रमा म० । २ शीघ्रम् । ३ पराङ्मुततम् । ४. केचिद्भुजकुल म०, केचित्पद्मकुल ज० । ५. वाग्म दहिता । ६. देवि ज० । ७ ऊचुरन्येन नारीभि म० । ८. वागम्य । ९ महागजमन्थरा । १०. द्याव ।

ततो विस्त्रयमादाय धनुर्द्वेष्ट्य चाशुक्लम् । समारोपयद्युन्मैर्ध्वनितं त्रिपुलप्रभम् ॥२३६॥
महाजलधरध्वानशङ्किमि शिखिभि कृतम् । मुक्तेकारवैद्यं यद्विस्तारमण्डलं ॥२३७॥
अलातचक्रमकाशं सजातो दिवसाधिप । मुवर्णरजमाच्छ्रया द्वावान् व्योमसाहस ॥२३८॥
साधु साज्विति वेदानां चमूय नममि स्वन- । ननुतुल्यन्तरा केचिन्मुञ्चत पुण्यगृहता ॥२३९॥
ततोऽग्निनङ्कहारविराकृतविष्टयम् । आचक्रय धनुः पद्म सम्प्राप्तं चननादिन ॥२४०॥
विरलाभूतनिशोपहृपाक सकलो जन । वदन्वर्तमिव प्राप्नो ब्राम्हणति प्रसूतमानय ॥२४१॥
प्रधातयूगिताम्भोऽपलाशापिकान्तिना । चतुषा स्मरचापेण सीता राम निरैवत ॥२४२॥
रोमाञ्चाधितसर्गाणां धधर्ती परमजगन् । प्रीता राम दुडौके सा मीढाविनमितामना ॥२४३॥
पार्श्वस्थया तथा रणे स तथा सुन्दरो यथा । यथायमिति दृष्टान्तं यो भवेत् स गतप्रय ॥२४४॥
अवतारितमौर्वीकं स कृत्वा सायकालयम् । तत्पदो विनयसम्पन्नं स्वाम्ने साताया सह ॥२४५॥
सकण्ठहृदयं स्तौता रामानन्दिरुचय । भाव कमपि सम्प्राप्ता नृपसहस्रमाध्वना ॥२४६॥
क्षुब्धार्हपारनिस्वान सागरावर्तकामुङ्कम् । तावत् क्षप्सणोऽधिज्य कृत्वास्त्रालयगुह्यतम् ॥२४७॥
शरे निहितदृष्टिं त समालोक्य नमश्चरा । वदन्तो देव मा मेति मुमुक्षु कुसुमोकरान् ॥२४८॥
आहूय कान्तं क्रूर मौर्वीपराववृत्त १ । अवतार्य य प्रपन्न्य पार्श्वं सुविनयस्थित ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उजागर कर प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरु के समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर एवं सीमाव्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३६॥ तदनन्तर रामने वल्ल ऊपर चढ़ाकर निशङ्क हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर जोरसे त्रिपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोंकी महागर्जना समझ करसे केकाभूति छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैला कर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गई ॥२३८॥ आकाशमें 'साधु' 'साधु'—'ढोऊ-ढोऊ' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी दृष्टारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने रौंका ॥२४०॥ जिसकी समस्त इन्द्रियों विफल हो गई थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सन लोग भँवरमें पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ बायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उलूक माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे तिसका मुख नीचेकी ओर मुक्त रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमें रखी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपमासे 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नर समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमें ही क्षुभित समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त नामक धनुषकी लक्ष्मणने प्रत्यञ्चासहित कर जोरसे उसकी दृष्टार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर बाणपर शक्ति लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए त्रिधाधराने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे

विज्ञान्ताय तथा तस्मै विद्यायुच्यन्द्रवर्धन । अष्टादश ददौ कन्या विद्यैवाप्रौढिका इति ॥२५०॥
 विद्याधरै समागत्य परम भवद्वरिते । वृत्तान्ते कथिते तस्मिन्चन्द्रश्चिन्तापरः स्थितः ॥२५१॥
 वृत्तान्तमिममालोच्य भरत पुरुषिस्मय । अशोचदेवमामान मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥२५२॥
 कुलमेक पिताप्येक एतगोममं चेदशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्या न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
 अथवा किं मनो व्यर्थ परलक्ष्याभितप्यसे । पुरा चारुणि कर्माणि न कृतानि भूवं त्वया ॥२५४॥
 पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाद्वचमरिविगजला । ईदृशी पुरुषुष्यस्य पुनो भवति मामिनी ॥२५५॥
 कलाकलापनिष्ठाता विज्ञाना केवया तत । विज्ञाय तनयाकृतं कर्णं प्रियमभाषत ॥२५६॥
 भरतस्य मया नाथ शोकवह्निरुत्तम मन । तथा कुरु यथा नाथ निर्वेद परमृच्छति ॥२५७॥
 अल्पय कनको नाम जनकस्यानुचो नृप । सुप्रभाया ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
 स्वयंवराभिध भूय समुद्योष्य नियोज्यताम् । तथाय यात्रयायाति नाम्थ त भावनान्तरम् ॥२५९॥
 तत परममियुक्त्वा वार्ता दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुचेतसः ॥२६०॥
 यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्ववासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये नित्य निनम् ॥२६१॥
 ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमप्यगम् । नचरगगनमध्यस्थशर्वरावरविभ्रमम् ॥२६२॥
 उपासतुमनोदामा कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरत वरं सुप्रभा भरत यथा ॥२६३॥

धनुषको खींचकर और फिर उतारकर चलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी धिनयसे आ बैठा ॥२४६॥ उस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धि-
 मती अठारह कन्याएँ दीं ॥२४७॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरने वापिस आकर जब
 यह समाचार कहा तब चन्द्रगति निद्याधर चिन्तामे निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देरकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिसे मनमें
 प्रवोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥
 कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं । पर इन दोनों अर्थात् राम लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य
 प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी
 लक्ष्मीसे मनकी व्यर्थ ही क्या संतप्त किया जाय ? निश्चित ही तूने पूर्वभवंमें अच्छे कार्य नहीं
 किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान
 उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओंके समूहमें निष्ठात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केक्याने
 पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृदयबल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ । मुझे भरतका मन
 शोकयुक्त दिखाई देता है । इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाय ॥२५६-
 २५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोकसुन्दरी नामा
 कन्या है ॥२५८॥ सौ स्वयंवर विधिकी पुन घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत
 कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत
 ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचाई
 ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे
 उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नचत्रोंके
 समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण
 करनेवाली एवं सुगुणके समान कान्तिसे सयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

अयन्तविपरीताय परय श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽर्था मन्त्रबुद्धं मन् कन्यया मोहित पुन ॥२६०॥
 विन्वा पाथिका मयं जम्मु स्थान यथायथम् । अरुधुश्च विक्रयागस्या यधुवर्गनमागम ॥२६१॥
 पाद्व येन हृन् कर्म मुद्ग्ये तादृक् स तच्छम् । ननुसन् कोदवान् कथिदस्तुने शक्तिमपदम् ॥२६२॥
 केतुनोरगमालाभिमग्निताया महापुती । आगुल्लकुसुमापूर्णाविराग्यन्त्रमनि ॥२६३॥
 सशस्त्रनृपनिस्वानपूरिताभिलषेरमनि । मिथिलाया तयोराग्रे विवाह परमोग्य ॥२६४॥

द्रविणेन तथा लोके सकलो परिपूरित ।
 महाप्रलयमायान देहाति ध्वनित यथा ॥२६५॥
 ये विवाहोत्सव इष्ट स्थिता भूया सुतेतम् ।
 परम प्राप्य सम्मान ययुस्ते स्व स्वमाह्वयम् ॥२६६॥

द्रुतचिलन्वितवृत्तम्

सकलविद्वजनिर्गतकर्मण्य परमत्पथवानिधिरतिन ।
 पित्रनारितममद्रुतपद परमरन्विभूषितविग्रहा ॥२६७॥
 विविधयानसमाकुलसैनिका जलनिधिस्वननृपनिनादिता ।
 विशिखरभ्युदयेन मुकोशला दशरथस्य मुता वधुके तथा ॥२६८॥
 समन्त्रलोकिमुत्तमविग्रहे पुरि तदा वधुके सकलो जन ।
 रहितसामिहृतस्वप्न क्रिय श्रयति शानपथ श्रुशमाकुल ॥२६९॥

धरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिशो धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चन्द्रर्त्तको पुरा था ॥२६०-२६३॥ गौतमस्यामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मोकी अत्यन्त विपमता देखो कि प्रबोधको प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुन मोहित हो गया ॥२६४॥ सन राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने यन्धुवर्गके वाचमं निश्चा करते हुए रहने लगे ॥२६५॥ जिसने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोडा धोये हैं वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२६६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजाई गई थी, जो महान्तिशो धारण कर रही थी, जिसके वाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटना ठर फूटोसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शत्रु एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२६७-२६८॥ उस समय घनसे सन छोड़ इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् विलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२६९॥ उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सम्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७०॥

अथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त ससारमें फैल रहों थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित का था, जिनके शरीर वल्लभ रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियाँसे व्यूथ थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शत्रु करनेवाले तुरही बन रही थी ऐसे दशरथके पुत्र तथा बहुओंने बड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७१-२७२॥ उस समय उत्तम शरीरका धारण करनेवाले बहुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ा

कृतसमस्तजन्मप्रतिमाननाः पुरगुणस्तवसन्नतमूर्तयः ।

स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुताः सुधियः स्थिताः ॥२७४॥

समवगाय जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।

कुरुत कर्म युधैरभिनन्दितं भवत येन स्वेरधिकप्रभाः ॥२७५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं
नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥



व्यग्रतासे राजमार्गमें आ गये ॥२७३॥ जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर विनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्यनामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें रामलक्ष्मणको स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अष्टाईसवें पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥



एकोनविंशत्तमं पर्व

आपादधवलाष्टम्या प्रभृ यथ नराधिप । महिमान् जिनेन्द्राणा प्रयत कर्तुमुद्यत ॥१॥
 सर्वो प्रियास्तदा तस्य तनया वान्यवस्तथा । विधातु चिननिष्ठानामिति कर्तव्यमुद्यता ॥२॥
 पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्छूर्णानि सादर । कश्चिद् ग्रन्थाति माह्वानि ^१दन्धवर्णं सुभक्तिषु ॥३॥
 वासपयुदक कश्चिद्रवयत्पर चितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धाम् कश्चिद्बहुविधगुणान् ॥४॥
 द्वारयोभा करोत्यग्नौ ^२बामोभिरतिभासुरै । नानाधानुरसै कश्चिद्भुते भित्तिमण्डनम् ॥५॥
 एव जन परा भक्ति बहून् प्रमदपुरित । चिनपूजामसाधानात् पुण्यमार्गवदुत्तमम् ॥६॥
 तत सर्वसमृद्धिना कृतमम्भारसस्त्रिधि । चकार स्तनपन राजा जिनाना मूर्धनादितम् ॥७॥
 अष्टाहोपोषित कृत्वाभिपेक्ष परम नृप । चकार महतीं पूजा पुष्पं सहजकृत्रिमै ॥८॥
 यथा नन्दीधरे द्वीपे राज सुरसमन्वित । जिनेन्द्रमहिमानन्द भुङ्क्ते तद्वदेव स ॥९॥
 ततः सद्ययाताता महिषाणा नराधिप । ^३प्रजिघास महापूज ^४शान्तिगान्धोदक कृती ॥१०॥
 तिसृणा सहस्रोर्द्धाभिर्नीज शान्त्युदक हुतम् । प्रतोत्ता मस्तके चक्रुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
 वृद्धकन्धुक्तिनो हस्ते दत्त चिनवरोदकम् । अग्राप्य सुप्रभा कोप शोक च परम गता ॥१२॥
 अर्चितयष्ट सो सगर्वा बुद्धिरेवा महोद्भूत । वदेता मानिता नाह शान्तिवारिविस्तर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आपाद शुक्ल अष्टमीसे आष्टाहिक महापर्व आया । सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियों, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-प्रतिमाओंके विषयमें निम्नांकित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल बनानेके लिए बडे आदरसे पाँच रङ्गके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमें निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रासे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवाल्लोको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एव आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनान जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका सचय किया ॥६॥

तदनन्तर सत्र प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमें तुरहीका निशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् शरण रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोंसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमें जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सत्र परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जन रानियों घर पहुँच गईं तब बुद्धिमान राजा दशरथने सबके लिए महा पत्रित, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरण स्त्रियों ले गई इसलिए जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बडी श्रद्धासे मस्तकपर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए वृद्ध चक्रवर्तीके हाथ भेजा था इसलिए उसे शोत्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे

को वात्र नृपतेर्दोष प्राय पुण्य पुरा मया । नाजित येन सम्प्राप्ता 'निकारमिदमोदशम् ॥१४॥
 पुण्यवत्तु इमा श्लाघ्या महासौभाग्यसयुता । पूत यासा अभिर्दाम्बु प्रीत्या ग्रहितमुत्तमम् ॥१५॥
 अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । शरण मरण मन्ये ताप शान्त्यति ना-यथा ॥१६॥
 विशासमज्जमाहूय साण्डागरिकमेककम् । जगाद् भद्र नाट्येय त्वयेद् वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
 विपेणा यन्तपरम मम ज्ञात प्रयोजनम् । तदानय द्रुत भक्तिर्मयि चेत्तत्र विद्यते ॥१८॥
 गत्वा स यावदन्विष्य श्रियं त्यक्तशक्तिम् । तावत्तत्पगृह गत्वा सातिष्ठत् सस्तमात्रिका ॥१९॥
 नृपतिश्चागतो वीक्ष्य प्रियास्तित्तस्तया विना । समन्विष्यागमत्तस्या समीप त्वरितक्रम ॥२०॥
 अपश्यच्च मनश्रीरिमशुकच्छविग्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पे शक्यष्टिभिव स्थिताम् ॥२१॥
 गृहाण तविद् देवि च्चेष्टमित्यवदच्च स । प्रेम्णो दशरथश्चैत देश प्राप्याश्लोढ ध्वनिम् ॥२२॥
 हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च श्रुत्वा । निराक्रोद् भुजिष्यन्त तत्तल्पे क्षोपविष्टवान् ॥२३॥
 राजानमागत ज्ञात्वा सहसा सप्रयोधिता । चित्तावुपविबिम्बन्ती कान्तेनाष्टे निवेशिता ॥२४॥
 अवाचि च प्रिये कस्मात् कोप प्राप्ता त्वमोदशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥
 सर्वतो मरण दुःखमन्यस्मादुत्त परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःख वद कोदशम् ॥२६॥
 त्व मे हृदयसर्वस्व दयिते वद कारणम् । ण्णेनापनय यस्य करिष्यामि वराननै ॥२७॥
 श्रुत वेमि जिनेन्द्राणा सदसद्वर्गति कारणम् । तथापि मतमोदक ते धिक्कोप ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥ अथवा इसमें राजाका क्या दोष है ? प्राय-
 फर मैंने पूर्व भवमें पुण्यका सचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे विरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥
 ये तीनों पुण्यवती तथा महा सौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं
 उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही
 शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ । अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो
 सकता ॥१६॥ यह विचार कर उसने विशास नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह
 बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विपकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है । इसलिये यदि
 तेरी सुभमे भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विपके नामसे अत्यन्त शक्ति होता हुआ भाण्डारी
 उसे रोजता हुआ जय तक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीर
 को शिथिल कर पड़ा रहती ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको
 देखकर रोज करते हुए शीघ्र ही उसके समाप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुराने-
 वाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥
 इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विप लो । भाण्डारीके इस शब्दको
 वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्ख !
 यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया
 और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा
 उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा
 कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने
 जीवनसे भी निस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सन दुःखोंसे अधिक दुःख है । सो जिस
 अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह
 तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे सुमुखि ! शीघ्र ही वह कारण
 बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करने-

प्रसोदं देवि कोऽप्यापि कोपस्यात्रमरन्तत्र । प्रसादश्चानिपर्यन्तप्रकोपा हि महाश्रियः ॥२१॥
तथोक्तं नाथ कः कोपस्तत्रापि मे दुःखमोदकम् । समुपश्रं न यदाति शान्तिं पश्यन्त्या^१ पिना ॥२०॥
देवि तत्करदुःखमिषुनैवममापत । शान्त्यग्न्युदानमन्यामां सम नेति कुतो यद् ॥२१॥
एतेन केन कार्येण हीनाह निदिता त्वया । यद्वक्षिणपूर्वसिम वक्षिता पण्डितानुना ॥२२॥
यावदेवं तद्वक्ष्येयं तावदाद्याति कञ्चुकी । देवि जैनाग्न्यु नायेन तुभ्य दत्तमिति सुगम् ॥२३॥
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अथि सुग्ये प्रसादस्य स्थाने प्राप्तामि किं कथा ॥२४॥
पस्यास्माकं जगुप्साभिदांसीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्टेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥२५॥
हृदशी नाम मायस्य सम्प्रीतिर्भवेत्तीं प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे^२ प्रकुप्यमि ॥२६॥
प्रसोदं दयितस्यास्य एग्नस्त्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपरार्धेऽपि ननु सुगन्ति योषितः ॥२७॥
दयिते नित्यते पायः कोपो दारणमानमे । तावत्सत्तारमौख्यस्य विघ्न जानीहि शोभने ॥२८॥
विषादयितुमस्माकमाभमानमुचितं ननु । किंवत्र जिनचन्द्रागां^३ वारिणा नः प्रयोजनम् ॥२९॥
सपत्नीभिरपि प्रीतिमिति सान्निवृत्तया तया । चक्रे शान्त्युदकं मूर्तिं रोमाञ्च^४ विवेतगाप्रया ॥३०॥
ततः प्रकुपितोऽवोषद् राजा कञ्चुकिनं तनम् । व्याक्षेपः क नु ते जातो वदापमदं^५ कञ्चुकिन् ॥३१॥
ततो भयाद्विरोपेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकीं कथमप्यूषे चित्तजानुशिराञ्जलिः ॥३२॥

वाले जिनशास्त्रको तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गई ? इस प्रगाढ़
अन्यकारत्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२९॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे
क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महाम्निषीं होवाँ हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक
ही रहता है ॥२६॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐमा
दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे
देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए
तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐमा कौन-सा कार्य
देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोरा नहीं
दिया उसे आज क्यों धोरा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जब तक यह सन रह रही थी कि
तब तक वृद्ध कञ्चुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया
है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके
स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देव, हम लोगोंके लिए वो निन्दनीय दासियाँ
गन्धोदक लाई हैं पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कञ्चुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामी
की ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ?
॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे चड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं । अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण
स्त्रियाँ अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जब तक पतिपर क्रोध
किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥
वास्तवमें तो हमलोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था । इसलिए सन
अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका
शरीर रोमाञ्चसे सुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कञ्चुकीसे कहा कि हे नीच कञ्चुकी ! वना तुझे यह
विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ मयसे जिसका समस्त शरीर विगेषकर कोंपने लगा था ऐमा

१ हृदये स्थापिता हृच्छादानांता वज्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलिन्तेऽस्य भूरिश ॥४३॥
 २ सखत्कार मुहु कुर्वन् स्फुरवन्नघरी^३ मुहु । हृदय सम्पृक्तान् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥
 परचान्मस्तकभागस्थश्चन्द्राशुसितमूर्द्धज । मन्दवाताहतघेतचामरोपमकूर्चक ॥४५॥
 मत्तिकाध्वनद्व्यातवत्तितरोहितकैकस । धवलध्रुवलिच्छ-नशोणप्रभनिरीक्षण ॥४६॥
 अभिलक्ष्यशिराजालमवेष्टितचलत्तनु । असम्पूरितपुस्ताभ कृच्छ्रादासोऽपि धारयन् ॥४७॥
 हिमाहत इवायर्थ कपोलौ कम्पयन् रलयौ । विवस्वया मुहुर्जिह्वा स्थानानि स्खलिता नयन् ॥४८॥
 अप्येकाक्षरनिप्यति मन्यमानो महोसवम् । वर्णान्तराभिसधानाद् वर्णमन्य समुचरन् ॥४९॥
 सप्तानवर्जितान् वर्णान् परमध्रमकारिण । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजङ्गरान् ॥५०॥
 जराधीनस्य मे नाथ किमागो भूत्यव सल । सम्प्राप्तोऽसि यत् कोप देव विज्ञानभूषण ॥५१॥
 पुरा करिकराकारमुज कर्कशमुचतम् । पीनोत्तुङ्ग महोरस्कमालानमदशोऽहम् ॥५२॥
 आसान् मम वपु शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणा कारण परमोदयम् ॥५३॥
 अभूता वर्णने देव शक्तौ^४ हस्तिकपाण्यो । करौ पाण्यिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदक ॥५४॥
 उच्चावचा चिति वेगात् पुराह परिलययन् । राजहंस इवावात नाथ स्थानमर्भाप्सितम् ॥५५॥
 आसात् दृष्टेवष्टभस्ताड्यो मम पार्थिव । आमन्त्र्येऽपि चित्तेरीश यादयेन तृणोपमम् ॥५६॥

कञ्जुकी पृथिवीपर घुटने और शिरपर अञ्जलि रखकर किसी तरह बोला ॥४३॥ उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बड़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोंपर ररे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥४३॥ यह बार-बार रसकारता था, बार-बार आँठ चलाता था, और बड़ी कठिनाईसे उठाकर पास ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चमरके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पङ्कके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रुकुटियोंकी बलिसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चञ्चल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधवने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह बल भी बड़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताडित हुएके समान दोनों शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लडखड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोंपर बड़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले दूटे फूटे वर्णोंको वह जीर्ण शीर्ण कोंटेके समान बड़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७-४८॥ हे भृत्यपत्सल, स्वामिन् । मुझ घुट्टेका क्या अपराध है ? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव । आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँडके समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जङ्घाएँ आलान अर्थात् हाथी घोंघनेके खम्भोंके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृति वाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२-५३॥ हे देव । हमारे ये हाथ पहले सुन्दर कियाङ्गोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिकी मैं वेगसे लौंघ जाता था, हे स्वामिन् । मैं राजहंस पक्षीके समान मन-चाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४-५५॥ हे राजन् । मेरी दृष्टिमें इतना बल था कि

अह्नात्नरदृष्टीनां मनसां च महास्थिरम् । आशानमेतदाम्बुमे शरीरं चाग्निध्रुवम् ॥५७॥
 लालितं परमैर्ममै प्रसादेन विमुक्तम् । निमग्नचित्तमेतन्मे कुम्भप्रमितं साम्प्रतम् ॥५८॥
 अथतः यः पुरा शक्तिं रिपुदारणमारिणीम् । करेण यद्विष्णोः तेन आम्बुयामि साम्प्रतम् ॥५९॥
 विज्ञान्तपुराङ्कृष्टगरामनसमं मम । वृष्टास्थि स्थितमात्रान्मे मूर्ध्नि मृचोऽग्निप्रदिग्मा ॥६०॥
 दन्तस्थानमवा वणिञ्चिन् क्वापि गता मम । उष्णवर्णोऽम्बुया तापमशक्तः ह्य मेजितुम् ॥६१॥
 आलम्ब्ये यदि नो यद्विमेतां प्राणगरीषसां । श्रितां पतेज्जः परमिदं हतशरीरकम् ॥६२॥
 वर्लासां घनंते वृद्धिरन्माहस्य परिचयः । राजन् अस्मिन् देहेन यदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
 'अवध्वानमसु कायं ज्ञया जर्जरंकृतम् । नाथ धनुं च शक्नोमि चाग्रे वस्तुनि का कथा ॥६४॥
 नितान्तपटुतामात्रि ह्योकाणि पुरा मम । सप्रयुदेष्टमात्रेण न्धितानि जडघेतव ॥६५॥
 पद्ममन्त्रं यच्च ज्ञामि पतन्धनं यच्च दुर्घटम् । श्याममेवाश्लिष्य दृष्ट्वा पर्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
 गोत्रजन्मसमायातमिदं राजकुलं मम । यत् शक्नोमि न त्वत्कमपि प्राप्येदृशीं दृशाम् ॥६७॥
 पत्रं कमित्रैतन्मे शरीरं व्रापि चाग्रे । जैत्रपाहारतो मृत्युर्ममरप्युद्गमोपमा ॥६८॥
 न तथामल्लभ्योर्मे स्वामिन् सज्जायते मयम् । अशरणमसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
 श्यामेपो मे कुतः कश्चिदपतस्तनुमीदृगोऽयम् । भवदाज्ञा प्रतीत्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

जिससे मैं राजाको भी तुम्हारे समान तुच्छ समझना था ॥५६॥ अत्यन्त स्थिर और सुन्दर
 खिलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोकी दृष्टि और मनको बांधनेके लिए आलानके समान था
 ॥५७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोंसे लाड़-प्यार किया था पर इस
 समय कुम्भिके समान यह निघट गया है ॥५८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओंकी विचारण करनेकी
 शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥५९॥ मेरी पीठकी दृष्टी गुरुवीर मनुष्यके
 द्वारा चींचे हुए धनुषके समान भुक्त गई है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आशान्त हुएके समान
 नष्ट हो गया है ॥६०॥ दौंतांके स्थानसे उत्थित होनेवाले मेरे वर्ण (ल सयर्ग ल और स) कहीं
 चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो उष्णवर्णों (श प स ह) की उष्मा अर्थात् गरमीसे
 उत्पन्न सन्तापको सहनेमें असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥६१॥ यदि मैं प्राणोंसे भी अधिक
 प्यारी इस लाठीका सहारा ॥ लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥
 शरीरमें बलि अर्थात् सिनुइनोंकी वृद्धि हो रही है और उस्ताहका हास हो रहा है । हे राजन् !
 इस शरीरसे मैं सौंसे ले रहा हूँ यही आश्चर्यको बात है ॥६३॥ हे नाथ ! आज-कलमें नष्ट हो
 जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ किन्तु दूसरी बाप
 वस्तुकी तो क्या ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियों अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थी पर इस
 समय नाममात्रकी ही स्थित हैं मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पर अन्य स्थानपर रखता
 हूँ पर सम्भल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतलकी अपनी
 दृष्टिसे काला-ही-काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परासे चला आ रहा
 है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर
 पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥
 हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्यमें होनेवाली
 आपके चरणोंकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके
 जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे तिलम्ब अथवा कार्यान्तरमें

स ख नाथ जराधीन मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमर्हसि नो कर्तुं धीर धत्स्व प्रसन्नताम् ॥७१॥
 निश्चयं तद्बोधे राजा गण्ड कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुवाच नत् ॥७२॥
 जलज्जुद्धनिस्सार कष्टमेतच्छरीरकम् । सन्ध्याप्रकाशसकाश यौवन बहुविभ्रमम् ॥७३॥
 सौदागिनाचरस्यास्य कृते देहस्य मानवा । आरम्भन्ते न किं कृत्य नितान्तं दुःखसाधनम् ॥७४॥
 अस्मिन्नाह्नापाह्नभङ्गतुल्या प्रतारका । भोगिभोग्यमाभोगास्तापोषचयकारिण ॥७५॥
 विपयेषु यदायत्तं दुःप्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्दिग्दर्शनां सुखेनावभासते ॥७६॥
 आपातरमणायानि सुखानि विपयादयः । किंवाक्कफन्तुल्यानि चित्र प्रार्थयते जन ॥७७॥
 पुण्यवन्तो महोसाह । प्रबोध परम गता । विपयद् विपयान् दृष्ट्वा वे तपस्यन्ति सज्जना ॥७८॥
 कदा नु विपयास्त्वयं च निर्गत स्नेहचारका । आचरिष्यामि जेनेन्द्र तपो निर्वृत्तिकारणम् ॥७९॥
 सुखेन पालिता क्षोणा भुक्ता भोगा यथोचिता । विरान्ता जनिता पुत्रा किमद्यापि प्रतीक्ष्यते^३ ॥८०॥
 अन्वयव्रतमस्माकमद यत्सुनरे श्रियम् । दत्त्वा सवेगितो धीरा प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
 चिन्तयित्वाप्यसाधेव राजा कर्मानुभावत । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रमि ययी ॥८२॥
 यः प्राप्स्ये यद्वा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तप्राप्स्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥
 किमपि ततोऽतीते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विविना क्षोणसङ्केत महता वृत्त ॥८४॥

आसन्न कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं हैं । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कञ्चुकीके घचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलकी वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके घट्टलेके समान नि सार है और अनेक विभ्रमों—विलासोंसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भङ्गुर है ॥७३॥ विजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य आरम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके घटाक्षोंके समान ठगनेवाले हैं, सोंपके फनके समान भयङ्कर हैं और सन्तापकी वृद्धि करने वाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूल्य प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक हैं वे आरम्भमें ही मनोहर सुख रूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोंकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विपके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़ कर तथा स्नेह रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥ यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राश्वलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्नानी कहते हैं कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल

१ रागसारायहत् । २ आवरिष्यामि म० । ३ प्रतीक्ष्यते म० ।

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनि । नगरीं ता समापासीन्मन पर्यवेदक ॥८॥
 'सरयवाश्च तटे कालं ध्यान्त सङ्गमतिष्ठितम् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवान्मानसत्रिय ॥९॥
 प्राग्भागेऽपि स्थिता केचिद् गुहास्थान्ये तपस्विनः । केचिद् विविक्तगैर्हेषु केचिर्जनेन्द्रवरमसु ॥१०॥
 नगानां कोट्यध्वन्ये यथाशक्तियमुद्यता । तपांसि चक्षुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥११॥
 आचार्यस्तु विविक्तैर्षां पुण्यां उत्तरपश्चिमाम् । तप समुचितक्षेत्रे विशालमतिमुन्दरम् ॥१२॥
 उद्यानं सुमहावृक्षं सयूषं ह्येव वारणम् । प्रविशेशासदृशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम् ॥१३॥
 तस्मिन् शिखरतले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशुनामङ्गनाना च पण्डुकाणां च दुर्गमे ॥१४॥
 द्वेपिनोऽपि सुकेऽसी मूढमप्राणिविवर्धिते । दूरावष्टमिशालस्थ स्थितो नागतरोरथ ॥१५॥
 भारतेण्डमण्डलं ज्ञातो गम्भीरं प्रियदर्शनम् । वर्षां चपयितुं तस्यै कर्माणि च महामता ॥१६॥
 सम्प्राप्तश्च महाकालः प्रवासितनमैरव । प्रस्फुरद्विजदुर्गोऽष्टद्वारधारधरत्नवि ॥१७॥
 तत्रैव चित्रं लोकस्य हृततापं दिवाकरम् । मयात् पलायितं कापि स्पृष्टुं धारान्वकारत ॥१८॥
 जातमुर्वीतलं सम्पक्कं कम्बुकेन हृताहृतम् । वदन्ते सुमहान्तो वाचिषासितरोरथ ॥१९॥
 जायते प्राप्तकम्पानां चित्तोद्भ्रान्तिं प्रवासिताम् । अस्ति चारामनं जैनो जनोऽयं च निषेवने ॥२०॥

व्यतीत होनेपर बड़े भारी सघसे आरुत, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मन पर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, निधिपूर्णक पृथिवीमें विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें आये ॥८॥-८॥॥ जिनके मन वचन कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संयका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने यके हुए संयको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥९॥ सघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर बनके सघन प्रवेशोंमें, कितने ही गुफाओंमें, कितने ही शून्य गृहोंमें, कितने ही जिनमन्दिरोंमें और कितने ही वृक्षाकी कोटरोंमें ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥१०॥-११॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिये उन्होंने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमें जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमें यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया । उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षांसे सहित था । आचार्यके साथ अधिक भीड़ नहीं थी । अपने आपको मिलाकर कुल दश ही मुनिराज थे । वह उद्यान पशुओं, रिपों और नपुसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेपी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओंसे शून्य था । ऐसे उस उद्यानमें जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थीं ऐसे एक नाम गृहके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिखरतल पर विराजमान हुए ॥१२॥-१३॥ आचार्य महाराज सूर्यनिम्नके समान देवोप्यमान, गम्भीर, प्रियदर्शन और उग्राहृदय थे तथा कर्माका जय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥१४॥

तदनन्तर जो विदेशमें जाने वाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करने वाला था, चमकता हुई त्रिजलीसे रम्य था तथा जिसमें आठों दिशाओंके मेघोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा । वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोको सताप पहुँचाने वाले सूर्यको टोंट ही रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥१५॥-१६॥ प्रथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रक्खी हो । तरङ्गोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बढने लगीं ॥१७॥ और जिन्हें कँप-कँपी छूट रही थी ऐसे प्रवामी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी । ऐसे वर्षाकालमें जैनो लोग निरन्तर

भूरिशोऽवग्रहाश्चकुमुनय इतिगोचरा । ख्यानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥१८॥
 अथ भेरानिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । दोषान्ते कोशलानायो विबुद्धो^२ भास्त्रो यथा ॥१९॥
 ताम्रचूडा खर रेणुर्दम्पताना वियोजका । सारसाश्चन्द्राकाश्च सरसीपु नदीपु च ॥१००॥
 भेरीपणवर्दीणाद्यैर्गतिश्च सुमनोहरै । न्यातृत्तश्चैत्यगोहेषु जायते विपुलो जन ॥१०१॥
 विघूर्णमाननयन सकलरुणलोचन । विमुञ्चते जनो निद्रा प्रियामिव ह्रियान्वित ॥१०२॥
 प्रदीपा पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रभ । विकास यान्ति पद्मानि कुमुदानि निमीलनम् ॥१०३॥
 ध्वस्ता ग्रहादय सर्वे दिवाकरमराचिभि । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥
 एव प्रभातसमये सपत्नेऽयम्तनिर्मले । कृचा प्रयङ्गकर्मणि नमस्कृत्याचित जिनम् ॥१०५॥
 आरुह्य वासिता भद्रा कुथापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथाना सेव्यमानोऽमरत्रिपाम् ॥१०६॥
 देवो देवो नमस्कृत्तुं मुनींश्चैवाल्यास्तथा । महेंद्रोदयमुर्वीशो ययो ह्यत्रोपशोभित ॥१०७॥
 विष्टपानन्दजननाभिभूतिस्तस्य भूभृत । राजन् सबसरेणपि शस्य कथयितु न सा ॥१०८॥
 मुनिरायातमात्र सन् गुणरत्नपयोनिधि । ओत्रयोगोचर तस्य सप्राप्तस्तन मण्डले ॥१०९॥
 करेणोत्तरीयांलौ राजाभितपरिचुद् । महाप्रमोदसपूर्णं विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥११०॥
 विन्यस्य भक्तिसम्पन्न पादयो कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्य शिरसा स नमोऽकरोत्^४ ॥१११॥

खड्गधाराके समान फठोर व्रत धारण करते हैं ॥६७॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमें चलनेकी श्रद्धा प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सन मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥६८॥

अथानन्तर प्रातः काल होने पर शङ्खके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥६९॥ श्रीपुरणिक वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नदियोंमें विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी और जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणन तथा बीणा आदिके मनोहर गीतोंसे आकर्षित हो बहुतेरे मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र धूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया । कमल विकासको प्राप्त हुए और कुमुद निमीलित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् क्षिप्त गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनैन्द्रभगवान्को नमस्कार किया । तदनन्तर मनोहर मूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी बन्दनाके लिए चला । देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार हृत्त्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनिया और जिनचैत्याल्लयोंको नमस्कार करता हुआ महेंद्रोदय नामा उद्यानमें पहुँचा ॥१०७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नाके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोंमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एव महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेश किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणामें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

१ निशान्ते प्रभाते इत्यर्थ । २ विबुद्धो म० । ३. रण, रेणु, रेणु-शब्द चतु । ४. करिणीम् ।

५. नमस्करोत् (१) म० ।

ततः सिद्धान्तसंबद्धामशुणोद् गुरुतः कथाम् । अनुयोगान्वत्तांतां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थितिं कुलभराणां च वंशाश्च बहुधागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संघेन नगरं पार्थिवोऽविरात् ॥११४॥

मन्दारकान्ताच्छुन्दः

दत्त्वा स्थानं चणमवनिमृत्संविष्टं स चित्तिशो
कृत्वा जैनीं गुणगणकथां विस्मयेवातिपूर्णः ।
अन्तर्गृहं प्रविशति तदा मज्जनादिप्रियाश्च
प्रातश्चक्रे विपुलविभवः स प्रजापत्यमित्यः ॥११५॥
सम्पूर्णानां परममहसा चन्द्रकान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमेर्मण्डितानाम् ।
श्रीगुरुष्वानां परमविनयं विभ्रतीनां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रश्मिं तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथैराग्यसर्गभूतहितागमामिधानं
नाम एकोनविंशत्तमं पर्वं ॥२६॥

सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य,
युग, कुलकरोकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे
सुना । तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमें वापिस
प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर निकटवर्ती मन्त्रियों और राजाओंसे जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर तथा
उन्हें विदाकर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया । यहाँ विपुल वैभव तथा प्रजा-
पतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर
जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रहीं थीं, नेत्र और
हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर
रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलनिषाको सूर्यको भेँटि आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमें
ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्य
और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

त्रिंशत्तमं पर्व

ततः काला गतः क्वापि घनौघडमरा नृप । प्रोद्ययो पुंकरं धौतमण्डलाप्रसमप्रभम् ॥१॥
 पद्मापलादिनलनपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । सम्भूना हृदय यद्दृद् बभूव विमल जलम् ॥२॥
 शरत्काल परिप्राप्तः प्रमट् कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता घटना पक्वजिता ॥३॥
 विघ्नस्तभावनायोग्यास्त्रराशिसमविप । चणमात्रमदरयन्त धौलेया क्वचित्चित् ॥४॥
 सन्ध्यालोकलामोष्टा अमोत्सनातिविमलाम्बरा । निशानववभूमांति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
 चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिता । बाध्य पद्मवनम्राग्यद्रानहसैविराजिरे ॥६॥
 भामण्डलकुमारस्य साता चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनाचितमप्येव जातमग्निसम जगत् ॥७॥
 अरयाकपिताद्गोर्सां परित्यज्यान्वदा त्रपा । पितु पुर पर मित्र वसन्तध्वनमप्रवात् ॥८॥
 'दार्घ्यसूत्रो भवानेव परकायैषु शातल' । 'गणरात्रमिदं दु ख तस्या मे गतचेतस' ॥९॥
 उद्वेगविपुलावर्तं प्रयाशानलपौ मम । निमर्जन सत्वे कस्मादावर्ते नावलम्बनम् ॥१०॥
 इत्यातं ध्यानयुक्तस्य निशम्य गदित बुधा । सर्वे 'गतप्रभोभूता विपाद् परम यदु ॥११॥
 तान् बाध्य शोकसन्तप्तान् वारणानिव शृण्वत । भावजितशिरावाढा चण भामण्डलोजगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोंके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश मँजे हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमे उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामाजनाको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओंके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पासे प्रकट रूपसे हसता हुआ शरदकाल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गई ॥३॥ जिनमे निजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रुईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोंके रण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर आँठ था, चोदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नव वधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और सदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलजनमे घूमते हुए रातहँसासे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरदऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिये जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा लोड पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूयी हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमे अत्यन्त मन्द हैं । उस सीतामे जिसका चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गईं । फिर भी तुम्हे चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमे उद्वेगरूपी बड़ी-बड़ी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमे मैं डूब रहा हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्या नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी निद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विपादको प्राप्त हुए ॥११॥ तदनन्तर उन सत्रको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियाके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नीचा

१. नृप म० । २ उन्मत्तकृपाणतुल्यप्रभम् । ३ मेघलेया, घनलेया म०, ख० ब० । ४ विलम्बेन कार्यकारी । ५ मन् । ६ बहुना रात्राणां समूह । ७ गतयेगत म० । ८ निरस्यत म० । ९ गतप्रभा भूता म० ।

सृष्टेस्तुतनोऽप्योक्तं क्रिमताप्युपगुह्यते । निवेतनां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
 ततस्ते कथयाद्भुतमस्मै सर्वं यथाविधि । चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमप्युत्क्रान्ताधराः ॥१४॥
 जनरो याल कन्यायां इहैवास्माभिराहृतः । याचितश्चातिथ्यनेन पद्मस्योपे प्रकटिताम् ॥१५॥
 उक्तप्रयुक्तमालाभिरस्माभिस्तेन निजितैः । धनूस्त्रयावधिश्चैव कृतमन्मग्नग्रैः किल ॥१६॥
 धनूस्त्रयलता तस्य रामस्याद्विष्टकर्मणः । गार्दूलस्य क्षुधानां च मांसेषां यथार्थिना ॥१७॥
 कन्या स्वयंवरा माध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनशायिणीरूपरितविग्रहा ॥१८॥
 भगलेन्दुसुरा बाला मद्नेन समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्याममा वनितामवत् ॥१९॥
 न चापे साम्प्रतं जाते गदासीरादिसंयुगे । अमराधिष्ठिते नापि कन्या त्रैलोक्यमुन्दरी ॥२०॥
 अवि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णैरगदानवैः । रामलक्ष्मणवीरास्त्वामादृष्टे तै शरात्मने ॥२१॥
 प्रमद्य साधुना हतुंमशक्या त्रिदशैरपि । क्रियुनाप्यन्तमस्माभिर्निस्सार्यनुगं विना ॥२२॥
 पूर्वमेव तना कम्पाप्रेति चेन्मन्वते शिशोः । यज्ञामाना दशाम्यस्य जनकस्य सुतन्मपुः ॥२३॥
 अयमप्य कुमारैव विनीतः स्वस्यतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधानुं विधिमप्यथा ॥२४॥

फर चुणभरके लिए लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अद्यनरु इस बातको क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जाये ॥१३॥

तदनन्तर उन सयने चन्द्रयानको आगे कर लड़कड़ाते अक्षरोंमें सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हमलोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यज्ञपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना सङ्कल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥ उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुपरब्रजकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमेंसे जो भी धनुपरब्रजको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुपकी शर्त इसलिए रखी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुपरब्रजरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूरसे पीड़ित सिंहके लिए मांसको डली अर्पित की गई हो अर्थात् रामने धनुप चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गई । वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयकी हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लाघवसे उसका शरीर भर रहा था, तद्वन् चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१८॥ वे सागरावर्त और यज्ञावर्त नामा धनुप आजकलके धनुप नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके देवोंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकमुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जवरुंस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनरुका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

तत रयवरोदन्त श्रृङ्गा भामण्डलो द्विया । विपादेन च सम्पूर्णं कृच्छ्रं चित्तांतर गत ॥२५॥
 निरर्थंमिदं ज म विद्याधरतया समम् । यत् प्राकृतवत् कश्चिन्न सम्प्राप्तोऽस्मि ता प्रियाम् ॥२६॥
 इर्ष्यायाधरातश्च सभामाह हसन्नसौ^१ । का व खेचरता भाति मनता भूमिगोचरात् ॥२७॥
 आनयाम्यय सकंया स्वय निजिग्य भूचरान् । न्यासापहारिणा कुर्वे यक्षाणा च विनिग्रहम् ॥२८॥
 इयुत्तवामो^२ सुमन्त्र विमाना वियदुद्गत । पुरकाननसम्पूर्णं पृथिवातलमैवत ॥२९॥
 तता दृष्टिगता तस्य विदग्धविषये ब्रमात् । महाभ्रसकटे रम्ये नगरे चामसेविते ॥३०॥
 दृष्ट मया कदाप्यतदिति चित्तामुपागत । जानिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स मूर्च्छनम् ॥३१॥
 पितुरन्त तता नात सचिवैराकलामकै । चन्दनद्रवसिक्ताङ्ग प्रमदामि प्रबोधित ॥३२॥
 अयाय दक्षनेत्र च हसिन्वा तामिरोच्यत । कुमार युक्तमेतत्ते कातर वमनुत्तमम् ॥३३॥
 अष्टद्वानिचयार्थं निरशपरहितप्रपै । गुरुगामप्रतो मोह यःप्राप्तोऽसि विषक्षण^४ ॥३४॥
 भज देवरनाथाना कया देव्यधिकप्रभा । जनजल्पमक स्वर्थं वृत्त सुन्दर मा कृया ॥३५॥
 ततोऽमाप्रवादेश प्राद्विशोकनतानन । धिग्मया घनमोहेन विरुद्ध चिन्तित महत् ॥३६॥
 नाचानामवि नायस्तमारश कर्म युज्यते । नहो कर्मभिर्यथमशुभैरभिषेधित ॥३७॥
 एकस्मिन्पुषित कुक्षौ वापि सार्धमह तथा । दुष्कर्मविगमाऽज्ञाता कथाद्वित साधुना मया ॥३८॥
 ततस्तन शोकभारेण पादित चन्द्रविक्रम । अङ्कमारोप्य चुम्बित्वा पप्रच्छ पुहवित्तमय ॥३९॥

तन्तन्तर रयवरोदन्त श्रृङ्गा भामण्डल लज्जा और विपादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधरका जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोध से युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तो आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंकी जीतकर रयव ही उस उत्तम कथाको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी घोड़ेरका अपहरण करनेवाले यक्षाका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमानमें बैठकर आकाशमें जा उड़ा । वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा प्रमोदल देखा ॥२९॥ तन्तन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतासे युक्त विदग्धनामन देशमें अपने पूर्वभयसे मनोहर नगर पर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा है । इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियाने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर मीचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियाने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अन्धकी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्याका समस्त प्रयोजन जिना देगे ही गुन्तनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक वात्सल्यसे धारण करनेवाली विद्याधर राजाआकी अनेक कन्याएँ हैं जो उन्हें तुम प्राप्त दोआ । हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे भिन्नपर दो, जो मैंने तीव्र मोहमें पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तयन किया ॥३६॥ ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंकी भा करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मात्तु वरमा चेना दिग्माहं ? ॥३७॥ मैंने अपने साथ एक हा टरमें शयन किया है । आन पाप परमेश्वर उदय मन्द हुआ इसलिये किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पादित भामण्डलका मोहमें गिरकर बहुत भारी आश्रयसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पृष्ठने लगा

यद् पुत्रकं कल्पितदीदृश भाषितं त्वया । सोऽश्वीषत्तान वक्ष्य चरितं शृणु मामहम् ॥४०॥
 पूर्वजन्मनि धान्येऽग्निम् नृपः । अभूत् परराष्ट्राणां प्रसक्तो मण्डितप्रतिः ॥४१॥
 सर्वस्यामरुनीं रथात् सन्त रिप्रहन्निधः । पालको निम्नलोक्षस्य महाविभक्त्ययुतः ॥४२॥
 हता तय मया जाया शिष्याशुभकर्मणा । माययाऽपाकृतश्चानी गतः ब्रह्मनिदु गितः ॥४३॥
 ततोऽनरण्यमेनान्या गमितस्तनुरोपताम् । पर्यङ्गं धरणीं वापि प्राप्तोऽग्निं मुनिमश्रयम् ॥४४॥
 यत्र त्रिलोक्युत्थानां सर्वज्ञानां महामनाम् । मन भगवतां प्राप्तमहंतां पावन मया ॥४५॥
 तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शामनतो मया । अनामिषं मन शुद्धं गृहीत क्षुद्रशक्तिना ॥४६॥
 शामनस्य जितेन्द्राणामहो माहात्म्यमुगमम् । तथापि यन्महापापा नावर्तानां हिम दुर्गतिम् ॥४७॥
 अनन्यशरण्येन व्रतेन नियमेन च । स्वमन्येन जीरेन विदेहाकुचिमागमत् ॥४८॥
 सुमेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं पुत्रम् । केनायवद्वन्तश्चाथ गृध्रेण विहितं यथा ॥४९॥
 नक्षत्रगोचरातीतं तेन नीतोऽस्मि पुण्ड्रम् । अर्था नून न्य वन्दार्या हता जाया मया पुरा ॥५०॥
 मारुधार्माति सेनोच्चैः भूयः कृतानुकम्पनम् । जनैरग्निं विमुक्तः स्वान् कुण्डलाभ्यामनूहृतम् ॥५१॥
 पतन् वीक्ष्य तदा रात्रापुच्छाने परमे तथा । गृह्णाता तान् दत्तोऽग्निं जायायै कथाश्रिता ॥५२॥
 सोऽहं भव्यप्रसादेन तदङ्गे वृद्धिमागतः । पर विद्याधरत्वं च हनदुर्लभिनियः ॥५३॥
 ह्युपवत्वा विररामार्सां विस्मय च जनो गतः । हाकारयहुलं शब्दं कुर्वन् कल्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३६॥ कि हे पुत्र ! कह, तुने ऐसा कथन किमलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित मुनि ॥४०॥

पूर्व जन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशोंको छूटनेवाला, समस्त वृथिधोमं प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१-४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उदयसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणकी मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सत्र सम्पत्ति हरकर मेरे पास बैठल मेरा शरीर ही रहने दिया । अन्तमें अन्यन्त दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोंके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकोंसे पूज्य, सत्र पदार्थोंको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार भोक्तृत्वात् व्रत वाश्य किया । मैं अत्यन्त लुब्ध शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो जित शासनका बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनरुकी विदेहा रानीके उदरमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुप्तपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गोप मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नक्षत्रोंसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया । यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलोंसे अलंकृत कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयापु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोदमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओका धारक हुआ और बहुत ही लाड़ प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर मामण्डल चुप हो रहा तथा उपनित

इमं चन्द्रगतिः ध्रुवा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतरुं^१ वन्द्यं विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥
 भूतमाग्रमति त्यक्त्वा सुनिश्चित्या मकर्मणाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥
 आर्त्तायं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यानाय् पादमूल स्वरान्वितः ॥५७॥
 भगवान् ॥ हि सर्वत्र विष्टे प्रथितात्मकः । गुणरश्मिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥
 महेंद्रोदययानं तमभ्यर्च्य प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽवादीदेवं मूर्धाहिताञ्जलिः ॥५९॥
 भगवंस्त्र्यम्बदेन सप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृहवासतः ॥६०॥
 पद्मस्त्विति तेनोक्ते^२ तार भैरवः^३ समाहिताः । भामण्डलः पर चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥
 कलं प्रवरनारीभिरीनं यशस्वनानुगम् । जगज्जं तूर्यसङ्घातः करतालसमन्वितः ॥६२॥
 श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । ह्युच्चैर्वन्दिनां नादः सज्जे प्रतिनादवान् ॥६३॥
 तेनोद्यानसमुपेन नग्देन धोत्रहारिणा । नक्त कृतो विनीतायां कृत्तविद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥
 ऋषिसत्त्वन्धमुद्धान् भ्रूवा जैनाः प्रमोदिनः । जाता जना विषण्णाश्च मिष्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥
 रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गा विस्फुरद्गमलोचना । सीता सिन्धामृतेनेव वृक्षधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
 अचिन्तयद्य को न्येव जनको यस्य नन्दनः । जयतीति मुहुर्नादः भूयतेऽयन्तमुन्नतः ॥६७॥
 वनकल्याणप्रो राजा ममापि जनकः पिता । जातमाग्रश्च मे भ्राता हतो यः किं न्वसो भवेत् ॥६८॥

समस्त लोग हाहाकार करते तथा भक्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्र-
 गति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त
 हुआ । उसने लोक-धर्म अर्थात् क्ली-सेयनरूपी वृत्तको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका
 बन्धन जाना, इन्द्रियोंके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका
 ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और यही शीघ्रतासे
 सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥ भगवान् सर्वभूतहित
 भव्य जीवांको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहमें समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥
 महेंद्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भाव-
 पूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ भक्तसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् !
 मैं गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना
 चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'पद्मस्तु' ऐसा कहने पर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभायना की ।
 जोर-जोरसे भेरियों घजने लगीं, उत्तम रिष्योंने बोंसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया,
 करतालके साथ-साथ अनेक वाद्योंके समूह गर्जना करने लगे । 'राजा जनकका लक्ष्मीशास्त्री
 पुत्र जययन्त हो रहा है' यन्दीजनोंका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा
 ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस भोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको
 निद्राग्रहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवालों इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग
 परम दर्पणों प्राप्त हुए और मिष्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर
 सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गई हो, उसके समस्त अङ्ग रोमाञ्चसे
 व्याप्त हो गये तथा उसका बाँया नेत्र फट्फटने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक
 क्यों है जिमका कि पुत्र जययन्त हो रहा है । यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा
 है ॥६७॥ राजा जनक वनकरा बढ़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा

१. वन्द्यं म० । वन्द्या क० । २. भूतमाग्रमति म० । ३. यात्यन्त व० । ४. उच्यैः । ५. नारंभे स०,
 म० दुर्लभः । ६. यशस्वनानुगं म० । ७. रिष्याश्च म० ।

प्राचेति सोदरस्नेहसुसप्लावितमानसा । मुक्कण्ठ स्तोदासौ पदिदेवनगरिणा ॥६६॥
 ततो रामोऽभिरामाङ्ग धोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिषि वैदेहि भ्रान्तोऽवेन वरिता ॥७०॥
 भवत्या ययसौ भ्राता श्वो ज्ञातास्मो न सशय । अथगान्य कचित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन स्मि ॥७१॥
 कारणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् । इत विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणः ॥७२॥
 कातरस्य विपादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विपादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ॥७३॥
 एव तयो समालाप दम्पत्यो कुर्वतो क्षपा । कृपयैव गता शीघ्रं जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
 ततो दशरथं कृत्वा प्रत्यङ्गं वस्तु म्यादर । नगरातो विनिष्क्रान्तं ससुतं साङ्गनाज्जन ॥७५॥
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णां परयन् स्नेहवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्नं सामन्तशतपूरितं ॥७६॥
 इषाचक्रे च दैवेन्द्रपुरतुष्य विनिमित्तम् । क्षणाद्विद्याधरैः स्थानं तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥
 पताकातोरणैश्चित्रं रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविशेत् तदुद्यानं सायुलोकसमाकुलम् ॥७८॥
 नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुरुं गुणगुरं भूष । दृष्टोद्दयने भागेश्वन्द्रयानस्य दीक्षणम् ॥७९॥
 नमश्चरैः समं पूजां कृत्वा सुमहतीं गुरोः । एकपादे निविष्टोऽसौ सर्वयानध्वमङ्गतः ॥८०॥
 श्रीमभामण्डलोऽप्येकं पार्श्वमाश्रित्य स्नेहैः । समस्तैः सहितस्तस्थी किञ्चिच्छोकमिश्रोद्बहन् ॥८१॥
 स्नेहरा भूचराश्चैते सुनयनान्तिकं स्थिताः । शुभ्रबुगुङ्क्तो धर्ममनगारं तथैतरम् ॥८२॥
 चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमोहितम् । शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं धृष्टभयावहम् ॥८३॥

गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥६८॥ ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोंमें कहा कि हे वैदेहि ! भाईके शोकसे निराश हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करेंगे इसमें सशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन हैं वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे वल्लभे ! विपाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विपाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गई सो मानो क्यासे ही शीघ्र चली गई और प्रातःकाल सम्बन्धी मङ्गलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अङ्गसम्पन्नवीं कार्य कर आदरसहित पुत्रों और स्त्रीजनोके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोंकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षणभरमें ही विद्याधरोंके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोंसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोंसे अलङ्कृत एवं मुनिजनोंसे व्याप्त उस महेंद्रोदय नामा उद्यानमें प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोंसे श्रेष्ठ सर्वभूतहितनामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगुप्तिका दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोंके साथ गुरुकी बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ बुद्ध शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियाका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है,

भयनीवा यमासाद्य लभन्ते सशयोक्तिम् । सम्यग्दर्शनसम्पन्ना गाँवणिन्द्रसुख महत् ॥८४॥
 क्वचित् केवलमासाद्य लोकलोकप्रकाशनम् । लोकाग्रामारमारुह्य भजन्ते नैर्दुर्त^१ सुखम् ॥८५॥
 तिर्यग्नरकुट्वाग्निज्वालाभि परिपूरित । ससारो मुच्यते येन त पन्थान महोत्तमम् ॥८६॥
 सर्वप्राणिहितोऽजोचन्मन्दगैरितनिस्वन । प्रह्लाद सर्वचिन्तानां जनयन्किदितपिल ॥८७॥
 सन्देहतापविच्छेदि तद्वचोभू मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटं पात प्राणिभिः प्रीतमानसे ॥८८॥
 तना दशरथोऽपृच्छत् सजाते वचनान्तर । चन्द्रकीर्ते स्मरोन्द्रस्य वैराग्य नाथ किंकृतम् ॥८९॥
 साता तत्र विशुद्धात्मा ज्ञानुमिच्छुः सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥९०॥
 शुद्धात्मा भगवानूषे शृणु राजन् विचित्रताम् । जावाना निमित्तामेता^२ कर्मभिः स्वयमजितै ॥९१॥
 संसारे सुचिर भ्रमत्वा जाबोध्यमतितु पित । कर्मानिरेरित प्राप्तश्चन्द्रेण^३ द्युतिमण्डल ॥९२॥
 अपित पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलहारक । स्वसार च समालोक्य गाढाकरुण्यकमागत ॥९३॥
 जनक कृत्रिमरवेन हतश्चापस्त्वयवरा । जाता विदेहजा चिन्ता परा भामण्डलोऽगमत् ॥९४॥
 अस्मरच्च भव पूर्वं मूर्च्छित पुनरवसीत् । पृष्ठश्चन्द्रेण चाबोचदित पूर्वभवकृपाम् ॥९५॥
 भरताथ विदग्धात्ये पुनरे कुण्डलमण्डित । अधामिकोऽहरत् कान्ता पिङ्गलस्य मन प्रियाम् ॥९६॥

मङ्गलरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और छुद्रजनोको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८५॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भव्यजीव नि सन्देह स्वर्गका महामुख प्राप्त करते हैं ॥८६॥ और कितने ही लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अप्रभाग पर आरुह्य हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥८७॥ तिर्यञ्च और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निही ज्वालाओंसे भरा हुआ यह ससार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८८॥ ऐसे मार्गका पथन उन मुनिराजने किया था । वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरकी धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंकी जाननेवाले थे ॥८९॥ जिनके चित्त प्रसन्ननासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने अपने पर्णरूपी अञ्जलिपुटसे खून पान किया ॥९०॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ । विद्याधरोंके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है ? ॥८६॥ वहीं पासमें बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भाईकी जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे तब्र हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥८७॥ तब विशुद्ध आत्मके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् । अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निमित्त जीवोंको इस विचित्रताको सुनो ॥८८॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक ससारमें भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है । अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ । चन्द्रगतिने पावन पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा । जब यह तृष्ण होकर स्त्रीपियक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी वहिन सीताका चित्रपट देकर अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥८९-९०॥ सीताकी मँगनी करनेके लिए मायाभयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुष-स्वयवर हुआ और उमने स्वयवरमें राजा दशरथके पुत्र रामकी वर लिया । इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताही प्राप्त हुआ ॥९१॥ अकस्मात् इसे पूर्व भयका स्मरण हुआ जिससे यह मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिने इसका कारण पूछा तब यह अपने पूर्व भयकी बातों इम प्रकार कहने लगा ॥९२॥ जि मैं भरत क्षेत्रने विदग्धनामा

यात्नेदुहृतसर्परो विपयात् स निराकृत । श्रमणाश्रममासाय प्राप मतमनामिषम् ॥६७॥
 धर्म्यप्यानगतं कृत्वा कालं कलुषवर्जितं । जनस्य विदेहाया ससहायस्तनु धित ॥६८॥
 अरण्यात् पिङ्गलं प्राप्नो दृष्ट्वा शून्यकुण्डरकम् । कोट्रानलज्वाणगदाहदु रस समासवान् ॥६९॥
 'यद्दृशं दु खितोऽप्राचीक्षेत्राम्बुकृतदुदिन । दृष्ट्वा स्यात् पुण्डरीकाक्षी 'मेत्येमुन्मत्तप्रियम् ॥७०॥
 हा कांत इति 'कृजश्च विलापमकरोदिति । प्रभावती सवित्री ता तात चक्रध्वज च तम् ॥७१॥
 विभूतिमतिदुःखा च बान्धवारच 'सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्राप्या विदेशमसि' सन्नता ॥७२॥
 रूचाहारकुचैश्च मदर्थं सेवित स्वया । मामुत्सृज्य ह यातासि सर्वायवसुन्दरि ॥७३॥
 खिन्नोऽसौ धरणा दु ख भ्राम्वा सगिरिकाननाम् । त्रियोगवह्निना दग्ध सो कण्ठस्तपसि स्थित ॥७४॥
 सतो देव चमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनिं किमेता सा कान्ता सम्यक्त्ववजिता ॥७५॥
 स्वभावाग्नेयसम्पन्ना भूयो वा मानुषी भवेत् । जावितान्ते जित सृष्ट्वा हि वा देवत्वमागता ॥७६॥
 इति ध्यायन् त्रिनिदिच य स्तन्परदि प्रनोषयान् । वासो शत्रुर्दुरामेति शाचा कुत्सितनाथितम् ॥७७॥
 प्रसूतमेकं कृत्वा शान्तं कर्मनियोगत । बालं मुमोच जायेहि वदन् विद्यालघूकृतम् ॥७८॥

नगरमे कुण्डलमण्डित नामका राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमे रहनेवाले पिङ्गलनामक ब्राह्मणकी मनोहर स्त्रीका हरण किया था ॥६६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमें उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया । अन्तमें मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममें पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिष अर्थात् मांस त्यागका व्रत धारण किया ॥६७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा फलपतासे रहित होकर मैंने मरण किया और मरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें जन्म धारण किया । जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी बात कि यह भी उसी विदेहाके गर्भमें उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥६८॥

पिङ्गलने जन जङ्गलसे लौटकर बुदिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे भुलस ही गया हो ॥६९॥ वह उसके दिना पागल जैसा हो गया, उसके नेत्रोंसे लगातार दुर्दिनकी भोंति आँसुओंकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर यह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥७०॥ वह हा कान्ते ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमें प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयाँको छोड़कर विदेशमें आई थीं ॥७१-७२॥ तुमने मेरे पीछे रुपा सूखा भोजन और अशोभनीय घट्ट प्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वायवसुन्दरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गई हो ? ॥७३॥ ऐन्द्रसिन् तथा वियोगरूपी अग्निसे जला हुआ पिङ्गल पहाड़ों और वनोंसे सहित प्रथियामें दुःखी होकर चिरकाल तक भटकता रहा । अन्तमें तप करने लगा परन्तु उस समय भी उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥७४॥

तदनन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी यह प्रिया सम्यक्त्वसे रहित होकर तिर्यश्चयोनिकी प्राप्त हुई है ॥७५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुन मानुषी हुई है या आयुके अन्त समयमें जिनेन्द्रदेवका स्मरण कर देव पर्यायकी प्राप्त हुई है ? ॥७६॥ ऐसा विचार कर तथा सन निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दुष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुत्सिमें ही विद्यमान है ॥७७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो वैरका बदला लेने

ज्योऽस्माकृतादृहासावा रात्रौ प्राप्त पतस्त्वया । तदा स्मरसि किं नेद पुष्पव वै समपित ॥१०६॥
 प्राप्तो भवप्रसादेन विद्यापरविधिर्मया । नून माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरा ॥१०७॥
 द्युक्ते विस्मय प्राप्ता सर्वा वैवाधरी सभा । चन्द्रायणश्च सविन्मो न्यस्य भामण्डले ध्रियम् ॥१०८॥
 माता पिता च ते व स दुःख शोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रौ सव यच्छेयेवमुक्त्वा समागत ॥१०९॥
 जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थिति पुन । इति मीतो भवादेप चन्द्र प्रप्राग्यमासवान् ॥११०॥
 भ्रान्तरे विदेहाजः सख्य परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादाभा मयि कस्मात् पर प्रभो ॥१११॥
 तत सर्वहितोऽवोचस्त्रिवोष द्युतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थितौ ॥११२॥
 दाहग्राम तु विप्रोऽभूत् विमुचिस्तस्य भामिना । अनुकोशातिभूतिश्च तनय सरसा स्तुपा ॥११३॥
 ऊर्ध्वा मात्रा सहप्राप्त कथानाख्योऽयदा द्विज । अहरत् सरसा सार धनमन्दर्गतं च यत् ॥११४॥
 अतिभूतिरश्च तद्भेतो शोका बभ्राम मेदिनाम् । ततो निष्पुरुषे गोह शेष स्वमपि लुण्ठितम् ॥११५॥
 विमुचिर्दक्षिणाकाशा देशान्तरगत पुरा । भ्रवा कुलकुम्भमनिलवृत्तस्वरयान्वित ॥११६॥
 जार्णवस्त्रावरोपाङ्गामनुकोशा सुविह्वलाम् । सान्त्वयिष्या तया सार्धमुर्वा चावेष्टुमुद्यत ॥११७॥
 प्रजाभि पृथिवापृष्ट कथ्यमान न्यस्तत । अवग्रिज्ञानकरणैर्जगद् येनावभासितम् ॥११८॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मादयसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपर्णा विद्यासे लघु कर 'जीते रहो इन शम्पाका उच्चारण कर आकाशसे छोडा ॥१०८॥ जिसम चौदनी अदृहास कर रही थी ऐसी रात्रिम आकाशसे पडते हुए उस बालकको आपने पकडा था और अपनी रानी पुष्पवताके लिए सौंपा था । क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०६॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया । यथार्थमे विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहिन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधराका समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति ससारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे मातापिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोंको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥

तदनंतर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भम स्थित होता है, ऐसा विचार कर चन्द्रगति ससारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचम भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे मातापिता पूर्व भवम जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥

दाहग्रामम एक विमुचि नामका ब्राह्मण था उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था । अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कथान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा धरके भातरका सारभूत धन दोनाका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीको खोजमे प्रथिवापर भ्रमण करने लगा । इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी बचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था । वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापिस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसका स्त्री अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रहा है और उसके शरीरपर जीर्णशीर्ण फटे चिथडे ही रोप रह गये हैं । तब उसने उसे सान्त्वना दी और कथानको माता ऊरीके साथ पुत्रको हूँदनेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवी

तमाचार्यं परिप्राप्तः पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महारोगो नष्टचित्तस्तुयामत्रः ॥१२२॥
 दृष्ट्वा गणेश्वरीमृद्धिं श्रुत्वा च विविधां स्थितम् । तीर्थं सन्नेगमायाच विमुचिर्मुनितां गतः ॥१२३॥
 पार्वे कर्मलकान्ताया आर्याया सुममाहिता । सममूर्यानुकोशापि प्रमथ्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
 त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः कृत्वाकालमलोलुपः । लौकान्तिकं गता लोकं निवालोऽमनाकुलम् ॥१२५॥
 अतिभूतिप्रश्रुतयो हिसावादस्य शंसकाः । द्वेषताः सयतानां च कुप्यानां दुर्गतिं गता ॥१२६॥
 मृगीन्सं सरसा प्राप्ता वलाहकनगोरसि । श्यममाता च्युता यूथान्मृता दावानलहता ॥१२७॥
 जाता मनस्विनीदेव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रयोगस्य प्रथमात् पापकर्मणः ॥१२८॥
 कथानः क्रमशो भूत्वा पारसीकः क्रमेणकः । मृत्वा पिङ्गलनामाभूद्भूमिदेशस्य मन्दनः ॥१२९॥
 हनस्ताराचमरसि सोऽतिभूतिः प्रमादभूत् । रघुनैर्बिलुप्तसर्वाङ्गमैत्यस्य पतितोऽन्तकः ॥१३०॥
 अध्याप्यमात्रं गुरुणा यशोमित्रं पुनः पुनः । अश्रीपादहर्तां स्तोत्रं मुञ्चवाण्य आर्जितम् ॥१३१॥
 दशवर्षसहस्रायुः किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
 अहर्त्तं पिङ्गलः कन्या तथा कुण्डलमण्डितः । यद्वाप्य पुरावृत्तः सम्बन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥
 योऽप्यी विमुचिरित्यामीन् मोऽयं चन्द्रगतिर्नृपः । अनुकोरां तु जायाम्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥
 कथानोऽयं सुरो हर्ता सरसा हृदयोत्सवा । उरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रमादस्य ॥१३५॥

तलपर भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमें एक आचार्य है जिन्होंने अपने अधिष्ठानसे इस जगन्मोको प्रकाशित कर रक्खा है सो वह उनसे पुत्रकी याता पूछनेके लक्ष्यमें उनके पास गया । विमुचि महारोगसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधूका पता न लगने से अत्यन्त दुःखी था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तपःशुद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीर्थ पैराम्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कथानकी माता उरी इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और उरी ये तीनों प्राणी महानिखुद, धर्म ध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आहुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूति तथा कथान दोनों ही हिंसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोंसे द्वेष करनेवाले थे । इसलिए छोटे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमें गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा वलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमें मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगीके मुण्डसे बिलुडकर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पाप धर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कथान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ । फिर मरकर भूधरेशका पुत्र पिङ्गल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भव भ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पतियोंने इसका समस्त शरीर नाच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको बार-बार अर्हन्तमगवायका स्तोत्र पढ़ा रहे थे सो सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिङ्गलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया । इन सबका जो पूर्व भवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कथान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, उरी विदेहा हुई और अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथ श्रुत्वा त वृत्तान्तमशेषत । भामण्डल समारिलप्य वाष्पपूर्णनिरीक्षण ॥१३६॥
 अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा मृगम् । आनन्दवाष्पलोलाक्षा सभायामभवज्जना ॥१३७॥
 उद्गर्णमानननैव प्रीत्या त वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदता स्नेहादघातोदृष्टतबाहुका ॥१३८॥
 हा श्रात प्रथम दृष्टे मयावासीतिशब्दिनी । तमारिलप्य चिर सीता रुदित्वा घृतिमागता ॥१३९॥
 सभापित स रामेण सभ्रमालिङ्गितश्चिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलेनेन सादरम् ॥१४०॥
 नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठ तत स्नेहमूचर । उद्यानात् प्रमदापूर्णो निरीयु सुविराजिता ॥१४१॥
 भामण्डलेन समन्य द्रुत दशरथो ददौ । लेख जनकराजस्य नात गगनयायिना ॥१४२॥
 प्रेषित भानुमार्गेण तस्य हसष्टन वरम् । यान विद्याधरैर्वीरैर्मूर्तिभि परिवारितम् ॥१४३॥
 प्रभामण्डलमादाय ततो भूत्यातिक्रान्तया । सुष्ठो दशरथोऽशोभा सुत्रामसरथोऽविशत् ॥१४४॥
 अद्यानसर्वकोरोमावुपचार पर नृप । प्रीतो भामण्डले चक्रे सर्वलोकसमन्वित ॥१४५॥
 रम्ये सुविपुले सुगो वायुद्यानविभूषिते । गृहे दशरथोद्दिष्टे तस्थो भामण्डल सुखम् ॥१४६॥
 दारिद्र्याभोचितो लोक परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिपत्य प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
 गत्वा पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वक्षितो दिष्ट्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
 प्रवाप्य चापित लेख सुहृदप्रत्यय परम् । प्रमोद जनक प्राप रोमाञ्चापितविग्रह ॥१४९॥
 भद्र किं किमय स्वप्न स्वाज्ञाप्रप्रत्ययोऽयथा । एहि डीकस्व डीकस्व तैवस्वाद्य परिप्लवे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र ओंसुओंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिङ्गन किया ॥१३६॥ उस समय सभामे जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमे बहुत भारी रोमाञ्च निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके ओंसुओंसे चञ्चल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवशा मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुम्हे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गई और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८-१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिङ्गन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१४०॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उप-वनसे बाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश मार्गसे आ रहा था, हसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुतसे विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामें प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा घापी और बगीचासे सुशोभित महलमें सुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रकी बोंचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या

इत्युक्तवानन्दवाप्येग तरत्तारकलोचन । साक्षा पुत्रमिव प्राप्त ऐश्वर्यार स सपत्न्ये ॥१५१॥
 नम्रतापरिहारेण देहस्य वक्षभूषणम् । ससम्भ्रम ददौ तस्मै मुदा नृचमिवाचरन् ॥१५२॥
 समेति बन्धुलोकोऽस्य यावद्विष्यामिबर्द्धक । तावत्तद्गानमायात छादयद्गगन रवा ॥१५३॥
 अष्टच्छतस्य वृत्तान्तभूतस्थ पुन पुन । उक्त विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
 ततो यान समारह्य समस्तैर्वन्धुभि समम् । निमेषेण परिप्राप्नो विनीतां त्वय्यनौदिताम् ॥१५५॥
 भवतायाम्बरादाशु पुत्रमालिङ्ग्य निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ क्षणा मूर्च्छामुपागत ॥१५६॥
 प्रबुध्य च विशालं चक्षुषा वाष्पवारिणा । आसेचनकर्मचिष्ट तनय पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
 माता त मूर्च्छिता हृष्टा परिष्वज्य प्रबोधिना । आचक्रन्द सुकारुण्य तिरश्चामपि ह्वयती ॥१५८॥
 परिदेवनमेष च चक्रे पुत्रक ह। कथम् । इतोऽसि जातमात्रस्य केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
 त्वदाचाञ्छितया देहो दग्धोऽय बह्निबुल्लया । भवद्दर्शनतोयेन विराजिर्वापितोऽय मे ॥१६०॥
 धन्या पुष्पवत्ता सुखी या तैःश्रानि शैशवे । प्रोदता धूमराण्यके निहितानि सुसुम्नितम् ॥१६१॥
 चन्दनेन विलितस्य कुङ्कुमस्थासकाञ्छितम् । दधत शैशव दृष्ट कीमार ते तया वपु ॥१६२॥
 नैराश्यामल्लमुत्सृज्य स्तनाभ्या च पयस्विररम् । सुपुत्रसङ्गमानन्द विदेहा परम गता ॥१६३॥

यह रूप है ? अथवा जाग्रत दशामे होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है । आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रबाहक विद्याधरका ऐसा आलिङ्गन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस रूपसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र रोप रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिरें ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जन तक इकट्ठे होते हैं सब तक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अष्टम् हो बार बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोंने सब वृत्तान्त ज्योंका-त्यों घड़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त आई बन्धुओंके साथ विमानपर आलूट हो निमेषमात्रमे अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर वहाँने पुत्रका गाढ आलिङ्गन किया । आलिङ्गनजन्य मुरसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल भर रहा था ऐसे निशाल लोचनोंसे वृत्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिङ्गन कर हर्षातिरेकसे मूर्छित हो गई और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यञ्चाकी भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है । आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामे प्रीड़ासे धूलधूसरित तेरे अङ्ग अपनी गोदमे रक्खे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुरोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है । एव शैशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे धुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसु और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा । वह उत्तम पुत्रका सङ्ग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥

१. वृत्तमिवा म० । २ यावद्विद्यामिबर्द्धक म० । ३ त्वय्यनौदिता ख० । ४. 'त'णसेचनक वृते वासुधन्तो यस्य दर्शनात्' ।

अहंश्चासनदेवीव जृम्भेरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्यौ भग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६४॥
 मासमात्रमुपि वातो बन्धुमद्वयमोदिता । पद्मो भामण्डलेनोचे विनय विभ्रता^१ परम् ॥१६५॥
 वैदेह्या शरण देव त्वमेवोत्तमबान्धव । छन्देऽस्या वर्ततां येन नो घातुद्वेगमेपका ॥१६६॥
 स्वसार च समालिख्य स्नेहादेना^२ सुचष्टिताम् । उपादिशदसौ भूयो भूय प्रवरमानस ॥१६७॥
 मातालिङ्गागदत् सीता सुते श्वसुरयो प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्यां श्लाघ्यता येन गच्छसि ॥१६८॥
 सर्वानामन्य विन्यस्य कनके मिथिलेक्षिताम् । गृहात्वा पितरौ यात स्थान भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीणास्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।
 विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धु साता च पत्नी गुणरूपपूर्ण ॥१७०॥

उपजाति

अधिष्ठते देवगणैश्च चापे सकण्ठे सारंगदादियुक्ते ।
 लब्धे सुरैरन्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मानिलयश्च मृत्यु ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इदं जनो यः सुविशुद्धचेता शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
 अभाष्टयोगानहजश्चिराय रविप्रभोऽसौ लभते शुभामा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागममभिधानं नाम निश्चतुर्थं पर्व ॥३०॥

जिस प्रकार पेरावत क्षेत्रमें जृम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देखी रहती हैं उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव । सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बान्धव हो । आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगकी प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुरोभित बहिनका स्नेहशर आलिङ्गन कर उसे बार बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटा । तू अपने सास ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाकी प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनकके लिए सौंपकर माता पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर । पूर्व भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो । धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोंका राजा भामण्डल जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एव देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये । लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्ट जनोंके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥

एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूषः सद्यन्धुरनरूप्यजः । इमां विभूतिं संग्राह्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तत्रैव विदितं सर्वं तन्नो ब्रूहि महायशः ॥२॥
इति पृष्टो महातेजा जगाद् मुनिपुङ्गवः । निरवघं तथा तत्त्वं यथा सर्वज्ञमापितम् ॥३॥
स्वसंशयमशेषं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राचीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥
गया जन्मानि भूतेषु परिप्राप्तानि यानि तु । वेषयेकमपि मो तेषां तत्सर्वं विदितं त्वया ॥५॥
तान्पहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्पुत्र्यतामिति । भवत्पसाद्तो मोहं निराकृतुमर्हं यजे ॥६॥
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं भवान् दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः साधुरिदं वचनममर्वात् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्वथ्य संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न रथयेकेन संसारो भ्रान्तोऽयैरपि संभृतः । चिन्वानैः कर्मभिः कर्मदुःखसज्जनो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिल उद्दिष्टा उक्तमाधममर्थमा ॥१०॥
'अमा'यो च तथा 'अमा'यी सैद्धी' च गतिरुत्तमा । पुनरावृत्तिनिमुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
सर्वं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तमोहेनान्यैर्हरयते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनांसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पारकर क्या किया ? ॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञादचने कहा है वैसा कहता हूँ तुम्हें ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुतसे जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमेंसे एक भी भयको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपको पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए तब राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नाङ्कित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा । तुमने इस संसारमें समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्माका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्मोद्यसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएँ उत्तम मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गई हैं ॥१०॥ उनमेंसे अधम्य जीवकी दशा अधम्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धाकी उत्तम है । जिनैन्द्रभगवान्ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है ।

अद्वासवेगदानानां हिंसादिष्वनिवृत्तिनाम् । चतुर्गतिकसवर्ता गतिरुपगतमोरजा ॥१३॥
 अमव्याना गतिः क्लिष्टा विनाशपरिवर्जिता । अम्याना तु परिज्ञेया गतिनिवृत्तिभ्राविनी ॥१४॥
 धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रभृतान् कायानाश्रिताश्रेतनाभृत ॥१५॥
 जीवराशिरनन्तोऽयं विद्यते नास्य सत्त्वः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
 'अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोगिकृतान्वयम् ॥१७॥
 सिद्धाः सिद्धयन्ति सेव्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथञ्चन ॥१८॥
 यः सन्देहकलङ्गेन तिष्ठति पापकर्मणा । 'अमावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धावता ॥१९॥
 कुत श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं सम्यक्स्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
 आयुषकर्मनिर्माके^१ वैष्टिताना सन्नन्ततः । मिथ्याधर्मानुरक्ताना स्वाहिताद्दूर^२वर्तिनाम् ॥२१॥
 सेनापुरेऽयं दीपिन्या उपास्तिर्नाम^३ भावन । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णः निरगलम् ॥२२॥
 'अश्रद्धाणां सरभन्तसरस्वेदधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासक्तशब्दिका ॥२३॥
 प्रयत्नवति स्वयं नाम यच्छ्रुन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन विद्यमानं सुभूयषि ॥२४॥

इन्द्रियरूपी व्रणरोगसे पीडित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और सवेगसे रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाली गति अर्थात् ब्रह्मा होती है । उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अमव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अमव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और भावी समस्त आकाश अलोक कहलाता है । ससारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि पदकायकी धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है । इसका क्षय नहीं होता है । इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर अचर पदार्थों अर्थात् त्रस स्थावर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित हैं तथा नाना योनियोंके जीवइनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पाप कर्मके कारण सशयरूपी कलङ्कसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्कारसे रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित हैं उसके धर्म और धर्मके फल कहींसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी काँचलीसे सब ओरसे वेष्टित हैं, जो मिथ्या धर्ममें अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था । उसको दीपिनो नामकी स्त्री थी । वह दीपिनो मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषकी धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे । वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेको

१ अनादिमन्त म० । २ अशकृतस्य धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३ विज्ञान म० । ४. निर्माके वैष्टिताना म० । ५. दुःखवर्तिना । ६. गृहस्थ इति । ७. अश्रद्धानात् म० ।

एवमादिमहादोषा कुर्वीर्यपरिमाविता । कालमेव्याध्रमज्जोमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥
 उपास्तिर्देहि देहीति समभ्यस्याधरद्वयम् । पुण्यकर्मानुभावेन पुरेन्द्रैकपुराद्वये ॥२६॥
 सुतोऽमृद् भद्रधारिण्योभोग्यवान् बहुवान्धव । धारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
 देशकालप्रप्रेक्ष्य साधुभ्य शुद्धमावत । दत्तासी धारणा समयकाले सत्यत्रय विघट्टम् ॥२८॥
 विदेहे घातकीखण्डे मेरोरुत्तरत कुरी । मुञ्चत्वा पत्न्यत्रय भोग समारूढम्विघट्टम् ॥२९॥
 स्युतोऽत पुष्कलायया नगर्यां नन्दिघोषत । वसुधाया समुपबो नामतो नन्दिवर्धन ॥३०॥
 नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यान प्रबुद्धवान् । नन्दिवर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
 यशोधरमुने पार्ष्वं प्रमज्ज्य सुमहत्तप । कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनु त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
 गृहिप्रमत्तमासक्तो नमस्कारपरायण । पूर्वकोटीं महाभोगान् भुक्त्वा श्रीनन्दिवर्धन ॥३३॥
 सन्यासेन तनु त्यक्त्वा प्रयात पद्म दिवम् । तत्परच्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥
 ख्याते शशिपुरे स्थाने विजयाद्वनगोत्तमे । सूर्यज्योऽभवद् विद्युज्जलाया रत्नमालिन ॥३५॥
 भग्यदा सिंहनगर रत्नमाली महानल । प्रस्थितो विग्रह कर्तुं यन्नासी वज्रलोचन ॥३६॥
 रथे प्रमात्स्वरैर्दिग्यै पदातिगजवाजिभि । नानाशस्त्रहृत्त्वान्तै सामन्तै सुमहाबलै ॥३७॥

अनुमोदना करती थी। यदि कोई दानादि सत्कार्योर्मि प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी। इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतूहलकी भावनासे युक्त थी। इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयङ्कर तथा पाररहित ससार सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२७-२९॥ इसके विपरीत उपास्ति 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें मद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एव अनेक वन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ। उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥ वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभाजसे आहार देता था। जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर घातकीखण्डद्वीप सम्पन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान कुञ्जेत्रमें आर्य हुआ। वहाँ तीन पत्न्य तत्र भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ यहाँसे च्युत होकर पुष्कलायती नगरीमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्ररोधको प्राप्त हुआ और नन्दि-वर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा। तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमें लीन एव पञ्च-नमस्कार मन्त्री की आराधना करनेमें तत्पर था। वह एक करोड़ पूर्वतक महाभोगोंको भोगकर तथा सन्याससे शरीर छोड़कर पद्मम रत्नगंगमें गया। यहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेर पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्थ पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युज्जलाके सूर्यजय नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महा बलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

त दशोष्ट धनु पाणि कवचावृतविग्रहम् । ^१दग्धुकाममरिस्थान क्रोधादानेयविधया ॥३८॥
 रयाग्राहृदमायान्त वेगिन भीषणाकृतिम् । नभस्थ सहसा कश्चिदमरोभिद्रोधाविति ॥३९॥
 रत्नमालिन् किमरब्धाभिद सरममुसुज । विवृष्यस्व वदाम्येष वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥
 इहासीद् भारते वास्ये मांसादोऽन्नमकर्मकृत् । गान्धारायां भूतिर्ह्यीष्टदुपमन्युः पुरोहितः ॥४१॥
 साधो. कमलगर्भस्य धृत्वा ^२व्याकरण च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥
 पञ्चपत्न्योपम स्वर्गे तेनायु समुपाजितम् । उपमन्यूपदेशेन ^३भस्मसाक्षावमाहृतम् ॥४३॥
 मुञ्चते सुकृत चासाववस्कन्देन चारिभिः । प्रपन्य हिसितः सारमुपमन्युः पुरोधसा ॥४४॥
 पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ जर्जरकृतः । सम्प्राप्य ^४जाप्यमप्राप्तमितरैर्दुःखभाजनैः ॥४५॥
 पुनस्तत्रैव गान्धारायां भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धारायां पुरोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥
 दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासीत् ततो मृत्वा ^५शतरेऽहं सुरोऽभवम् ॥४७॥
 स त्वं 'भूतिपुत्रो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य' भूदुना ^६ ॥४८॥
 कर्मोत्प्रेत सताकारि यथवा कर्म दारुणम् । ^७क्लिञ्जाप्येन मृतस्वासाच्छर्करानरकं गतः ॥४९॥
^८मया स्नेहानुबन्धेन ततस्त्व सम्प्रबोधितः । अयमुद्बुध्य जातोऽसि रत्नमाली स्वरोश्वरः ॥५०॥

सामन्तोसे सहित था ॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओंठ बस रहा था, जिसके हाथमें धनुष था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविधासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयङ्कर आकारका धारक था । ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमें स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८-३९॥ कि हे रत्नमालिन् ! तूने यह क्या आरम्भ कर रक्सा है ? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

‘इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था । उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था । राजा और पुरोहित दोनों ही मासभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका सञ्चय किया कि उससे स्वर्गकी पाँच पत्न्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया । उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया । उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३-४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमें घायल हो अन्य दुःखी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पञ्च नमस्कार मन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान पुत्रकी योजनगन्धारा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५-४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग में देव हुआ । इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमें मृग हुआ सो वहाँ दावानलमें जलकर उसने अकामनिर्जरा की उसके फलस्वरूप वह क्लिञ्ज नामका नीच पुरुष हुआ । उस पर्यायमें तूने जो दारण कार्य किये—तीव्र पाप किये । उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७-४८॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ

१ दग्धु काम 'तु काममनसोरपि' इति मल्लवः दग्धुकामम्० । २ जगद् । ३ व्याख्यानम् । ४ उपमन्यूपदेशेन व्रत त्यक्तम् । ५ उपमन्यु पुरोधसा म० । ६ जप्य म० । ७ शतारस्वर्ग । ८ भूतिनाम रूपः । ९ दावदग्धस्य म०, रा० । १० नीचपुरुषेण । ११ क्लिञ्जाप्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरक प्रातः । १२ मदा म० ।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखान्मुख्यदितरच सः । सूर्यज्ञयस्तु न राज्ञे विद्याय कुलनन्दनम् ॥५१॥
वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्पर निर्वेदमीयुग । सूर्यज्ञयेन सहित सन्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥
रत्नमाली पुनर्नानादुर्गोत्तिष्ठस्तमानसः । ययौ शरणमाचार्यं सौम्य तिलरुमुन्दरम् ॥५३॥
सूर्यज्ञयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमन् । च्युतोऽनरण्यराज्येः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
स्वल्पेन सुहृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवेः । न्यग्रोधवाजवद्बुद्धि सम्प्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
नन्दिद्वर्धनकाले ते नन्दिधोषविता च यः । सोऽह ग्रैवेयकाद् अष्टः सर्वभूतहितोऽभवत् ॥५६॥
यो भूतिरपमन्युश्च तावेतो तद्गशानुगौ । जनको कनकश्चेति जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
संमारे न परः कश्चित्ताण्मीयः कश्चिद्वृत्तसा । सैषा शुभाशुभैर्जन्तोर्द्वर्तपरिवर्तना ॥५८॥
उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो धीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
सर्वावरसमेतश्च सम्पत्य चरणौ गुरोः । प्रगम्य च विशुद्धात्मा प्रविशेत् सुकोशलम् ॥६०॥
पूर्वं च मानमे चक्रे सार्वभूमोऽथ रथम् । पद्माय सुधिये दत्त्वा साधवीया श्रये गतिम् ॥६१॥
धर्मात्मा सुस्तिरो रामस्त्रिसमुद्रं वसुन्धरात् । अनुपालयितुं शक्नो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
विन्तवत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराह्मुने । मुख्यार्थाहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥
तिरोधान गता वापि स्वच्छज्योत्स्नापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमभीतेव सरिरहनिरीक्षणा ॥६४॥
प्राप्तः प्रालेयसपातं विच्छायांकृतनारजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

जाकर तुम्हें सन्तोषा जिसके प्रभावसे निकल कर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५१॥
तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ? इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गदियोंसे
भयभीत हो गया । इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो
गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यजयके पुत्र कुलनन्दको राज्य
देकर तिलरुमुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५२-५३॥ तदनन्तर सूर्यजय तप कर
महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥
सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भयोंमें बटवीजकी तरह
शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५॥ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिद्वर्धनकी
पर्यायमें जो तैरा पिता नन्दिधोष था वह तपकर ग्रैवेयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूत-
हित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और अपमन्युके जीव थे वे पुण्यके
प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है
और न अपना है । शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता
है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्व भयका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिघोधको प्राप्त
हुआ तथा सत्र प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके सन्मुख हुआ ॥५९॥
सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल
हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पञ्च-
बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक
राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत
क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुक्त और मुक्तिके
लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चोदनी
ही जिसका वस्त्र था, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद्-
श्वरुपी स्त्री हिमसे ढरकर हो मानो कहीं जा छिपी ॥६३॥-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे

स्फुटिताधरपादान्ता पृष्ठन्यस्तपदचरा । दन्तवीणाकृतस्त्राणा रुच्यव्याकुलमूर्धजा ॥६६॥

तितिरिच्छदन्च्छायप्रोदोद्भवा विभावसो । सततासेवनात् कुचिपूरणाद्यनवेतस ॥६७॥

शरीरच्छायाया तुल्या प्रपन्नप्रपुनच । दुर्गेहिनीवच शब्दैरत्यन्त तैतमानसा ॥६८॥

काष्ठाद्यानपनासका दिवाभास्करतापिता । कुडारादिधरा स्त्रियो दधाना किण्वर्करा ॥६९॥

शाकाम्बलकाद्यन्तपरिपूरितकुचय । दुस्त्र नयन्ति तत्काल दुष्कृतीषु घनोज्झिता ॥७०॥

वरप्रासादपातास्तु शीतसूत्रमहारिभि । सर्वाताङ्गा वरैर्वसैर्धूपानोदानुबन्धिभि ॥७१॥

पद्मस स्वादुसम्पन्न हेमरत्नमादिपात्रगम् । मुञ्जाना मुरमिस्तिग्धमाहार निजलीलया ॥७२॥

कुङ्कुमप्रविलिप्ताङ्गा असितागुरुधूपिता । अर्धोणधननिर्मिता गवाक्षकृतवीरणा ॥७३॥

शीतवृषादिसम्प्राप्ता विनोद परम सदा । माल्यमूपपसम्पन्ना सुभाषितकपोचता ॥७४॥

विनीताभि कलाशुभि मुरूपामि सम नरा । क्रीडन्ति वरनाराभि सदा पुण्यानुभाषत ॥७५॥

पुण्येन लयते सौख्यमपुण्येन च दुःखिता । हर्मणामुचित लोक सर्व फलमुपायते ॥७६॥

तदा दशरथो भीमो मृश ससारवासत । निर्वैत्यालिङ्गनकिर्षा विरक्तो भोगवस्तुत ॥७७॥

द्वा स्वभावापचरमिन्म्यस्तजालुकर द्रुतम् । यद्वाह्य स्वसामन्तान् मन्त्रिभि सहितानिति ॥७८॥

नियुन्यात्मसम द्वारे शासन तेन सहृतम् । आगतास्ते नमस्कृत यथास्थानमवस्थिता ॥७९॥

जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥७४॥ जिनके आँठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने पिचड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल रुखे तथा त्रिपरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जाँघें तीतरके पट्टेके समान मटमैली हो गई थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुपफलके बल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्योंके चञ्चलरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिन्न गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमें लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो धट्ट पट जानेसे कठोर कन्धोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजो आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्तकालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६-७०॥ और इनसे विपरीत जो अस्त्रीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमें रखे हुए, छह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र मरौलोंकी ओर भौंका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदकी प्राप्ति होते रहते थे, माला तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभाषितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योद्वयसे क्रीडा करते थे ॥७१-७३॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है । प्राणी अपने कर्मोंके अनुरूप ही सप्त प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय ससारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रोके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर पुटने और इस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे मद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान

१. नष्ट-० । २ वाद्ययानयथायक्य म० । ३ तत्सप्त म० । ४ दुःखिनी माया दुःखिता ।

५ मुक्तिव्यापारलेपगमिणी । ६. भाष्यस्तुन स०, ब०, न० ।

नायाज्ञाय किं कृयमिति शोकेन भृशता । विनीता जगदे^१ संसर् प्रव्रजामीति निश्चितम् ॥८०॥
ततस्तन्मन्त्रिणोऽशोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मत्तावस्थां तवाधुना ॥८१॥
जगादासीं समचं भो नन्वेतत्सकल जगत् । शुक्लं तृणमिवाजलं दहते मृत्युवह्निना ॥८२॥
अप्राप्तं यदभ्युदयानां भव्यानां ग्रहणेचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसीध्वयदम् ॥८३॥
त्रिलोके प्रकटं सूर्यं विशुद्धसुषोमोष्मिणम् । श्रुतं नम्युनितो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमिति निर्मलम् । गुरुपादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निवृत्ते ॥८५॥
नानाजन्ममहावतां मोहपङ्कजमाकुलाम् । कुतर्कप्रादुसर्ग्यां महादुःखोमिसन्तताम् ॥८६॥
मृत्युकुहोलयंयुक्तां कुट्टिजलनिभराम् । समाकन्दमहारावां विधर्मजववाहिनीम् ॥८७॥
भयापगां मम स्मृत्वा नरकाग्नोपिपासिनीं । परयताङ्गानि कम्पन्ते वित्रासेन समन्ततः ॥८८॥
वृषावोषत मा^३ किंकिदात्मानं मोहिता नृशम् । समस्तः प्रकटे देवे जुताः स्थान रवी सति ॥८९॥
अमिषिष्ठत मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
हृत्पुके निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विगतमस्तकाः ॥९१॥
लिङ्गन्तो भूमिमङ्गुल्या बाष्पाकुलनिरीचनाः । षण्णेन निष्प्रभाभूतास्तस्थुर्मानं समाश्रिताः ॥९२॥
प्राणेश निश्चितं श्रुत्वा^४ निष्प्रण्यप्तसंश्रयम् । एकाभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

दूसरे पुरुषको नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया । सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥७९॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है ? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण करूँ' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियों तथा गण्यमान-अमुग राजाओंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपकी ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमें क्या कारण है ? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये ! यह समस्त संसार सृष्टे वृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अव्यय जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो अव्यय जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सूर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुप्तको देनेवाला है, तीन लोकोमें प्रकट है, सूर्य है । विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावों में मग्नस्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही सुक्तिका मार्ग है । गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमें नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कोचइसे भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलांसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयङ्कर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो । भयसे मेरे अङ्ग सघ ओरसे फस्मित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही बुद्ध मत कहिए अर्थात् मुझे सोचिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमें सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो सकता है ? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्दिष्ट हो तपोवन में प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका हृद निश्चय जानकर मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए । सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अङ्गुली से भूमिकी रोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमें प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चिनरूपसे निष्प्रण्यप्तको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

वनोदान् प्रस्तुतान्मुक्त्वा वाष्पप्रितलोचनाः । भूषणस्वनभूषिष्ठ रुद्रुः प्रमदाङ्गनाः ॥६४॥
 पितर तादृश इष्टा भरतः प्रतिमुदवान् । अचिन्तयद्दहो कष्ट दुःखेवं स्नेहबन्धनम् ॥६५॥
 अव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता रागयुता काश्य प्रमया कर्तुमिच्छतः ॥६६॥
 आपृच्छया न मे किञ्चि कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥६७॥
 देहेनापि किमेतेन व्यापियेहेन नाशितः । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगेषु ॥६८॥
 जन्तुरेक एवायं मयापद्रवसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुप्यते परिवर्तनम् ॥६९॥
 ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येजितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥७०॥
 कथं मे न भवेन्नर्त्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥७१॥
 एष चिन्तामुपेतायाः परम व्याकुला मनः । तस्या चरोऽभवत्स्वित्ते गन्वा च त्वरितं ततः ॥७२॥
 भ्रात्या परमया इष्टा सावष्टभं नराधिपम् । जगादार्थासिने स्थित्वा तेजसा पुरुषान्विता ॥७३॥
 सर्वेषां भूभृता नाथ पत्नीनां च पुरस्त्रया । मनीषितं ददामांति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥७४॥
 वर सम्पत्तिं तं वक्ष्ये मयां सत्यसमुपजला । दावेच तेऽखिल लोकं कीर्तिर्भ्रमति निर्मला ॥७५॥
 ततो दशरथोऽबोचद् गृहि त्व दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व पदिदं ते यच्छाम्येव वराशये ॥७६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रिन ही परम शोकको प्राप्त हुआ ॥६३॥ स्त्रियोने जो वितोद प्रारम्भ कर
 रग्ये थे उन्हें छोड़कर औसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे
 रुदन करने लगीं ॥६४॥

पिताको विरक्त देखा भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि
 अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥६५॥ वह सोचने लगा
 कि सम्प्रदानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थान् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन
 है ? जय ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यको चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥६६॥
 मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण
 जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥६७॥ रोगोंके परस्वरूप इस नरवर शरीरसे
 भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या
 प्रयोजन हो सकता है ? ॥६८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी घुत्तोंसे
 व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

तदनन्तर कलाओंके फलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर
 अत्यधिक शोक करने लगी ॥७०॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही भेदे
 नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं । इन दोनोंको रोकनेके लिए
 मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त
 व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगनेकी बात याद
 आ गई ॥७२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत
 भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त
 राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा' । सो हे नाथ ! इस समय
 यह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके
 प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥७३-७५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये !
 तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो

इयुने मुवती वाष्पमवोचज्ञातनिश्चया । कथ नाथ त्वया चेत् कृत निष्पुनमीदृशम् ॥१००॥
 वद किं कृतमस्माभिर्वेनासि त्यक्नुमुद्यत । ननु जावितमायत्तमस्माकं त्वयि पाथिव ॥१०१॥
 अत्यन्त दुर्घरोदिष्टा प्रमज्ज्या जिनसत्तमै । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामथ भवता कृता ॥१०२॥
 देवेन्द्रसदृशैर्मैरिदं ते व्यलितं वपु । कथं वक्ष्यति^२ जावेशं श्रामण्यं विविधं परम् ॥१०३॥
 एवमुक्तो जगादासी कान्ते सत्त्वस्य को भर । चान्द्रितं वद कर्तव्यं स्वयं यास्यामि साम्प्रतम् ॥१०४॥
 इयुक्ता लिखतीं घोषीं प्रदेदिन्या नतानना । जगाद् नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदायताम् ॥१०५॥
 ततो दशरथोऽवोचप्रिये कास्मिन्नपन्नपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तं साम्प्रतं गृह्यतामसी ॥१०६॥
 एवमस्तु शुचं मुञ्च निर्मणोऽहं त्वया कृत । किं वा कदाधिदुःखं ते भया जनिमतमग्नया ॥१०७॥
 पद्म लङ्घनसयुक्तमाहूय त्वं कृतान्वितम् । ऊचे विनयसम्पन्नं किञ्चिद्विगतमानस ॥१०८॥
 वास्तु पूर्वं रमे घोरे कलापारगयानया । कृतं केकयसा साधु सारण्यं मम दक्षया ॥१०९॥
 तदा तुष्टेन पत्नीना भूभृता च पुरो मया । मनापितं प्रतिज्ञातं नातं न्यासं वसेत्तया ॥११०॥
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽपुना । किमप्याकृतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विना ॥१११॥
 प्रतिज्ञाय तद्देवानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रमज्ज्यां भरतं कुर्यात् ससारात्मन्यनोदित ॥११२॥
 इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । भ्रमेच मम लोकेस्मिन्कीर्तिवितथोद्भवा ॥११३॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी ओसू डालती हुई बोली कि हे नाथ । आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? यथाइए, हमलोगाने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगाको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् । आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्‌के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ । आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगासे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये । समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता । जो मुझे करना है उसे मैं अथ अवरुध ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रवेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ । मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये । इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे शृणु मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लङ्घनासे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ स्निग्ध वचनसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स । कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सतुष्ट होकर मैंने पत्निया तथा राजाआके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह पाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने यह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी राजास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दाजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो ससारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस ससारमें सर्वत्र

इयुते मुञ्चती चाप्पमवोषज्जातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेत् कृतं निष्ठुरमादशम् ॥१००॥
 चद्रं किं कृतमस्माभिर्देनासि त्वन्तुमुञ्चत । ननु आवित्तायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०१॥
 अत्यन्तं दुर्घरोदृष्टः प्रव्रज्या जिनसत्तमै । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामयं भवता कृता ॥१०२॥
 देवेन्द्रसदृशैर्भगैरिदं ते खलितं वपुः । कथं वक्ष्यति जावेयं धामप्यं विविधं परम् ॥१०३॥
 एवमुक्त्वा जगादासी कान्ते सत्त्वस्य को मरः । वान्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यास्यामि साम्प्रतम् ॥१०४॥
 इयुक्ता लिखतीं शोणीं प्रदेक्षिन्या नतानना । जगाद् नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥१०५॥
 ततो दशरथोऽवोचरिष्ये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तं साम्प्रतं गृह्यतामसी ॥१०६॥
 एवमस्तु शुभं मुञ्च निर्ऋणोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यथा ॥१०७॥
 पद्मं लक्ष्मणसयुक्तमाहूय च कृतानतिम् । ऊचे विनयसम्पन्नं किञ्चिद्विगतमानस ॥१०८॥
 वत्स पूर्वं रणे घोरं कन्यापारतपानया । कृतं कैकयया सन्धुः सारथ्यं मम दक्षयः ॥१०९॥
 तदा तुष्टेन पत्न्या भूयता च पुरो मया । भर्गवित् प्रतिज्ञातं नातं न्यासं वने तथा ॥११०॥
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना । किमप्याहूनमाप-ना निरपेक्षा मनस्विना ॥१११॥
 प्रतिज्ञाय तद्देवतां दद्याम्यस्यै न चेन्मृतम् । प्रव्रज्यां भरतः कुर्वान् ससारात्मन्वोऽङ्कितः ॥११२॥
 इयं च पुत्रशोकेन कुर्वान् प्राणविवर्जनम् । अनेन मम लोकेस्मिन्-नर्कीति वितथोद्वहः ॥११३॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी बेकयी ओसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? यथाइय, हमलोगने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगासे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केरुयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या मार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता । जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रवेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केरुयीने मुरझा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे श्रृणु मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्ष्मणसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ रिक्त चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाक्री पारगामिनी इस चतुर केरुयीने पहले भयकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सन्तुष्ट होकर मैंने पत्निया तथा राजाआके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने यह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दाजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो ससारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दोक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस ससारमें सर्वत्र

वनोदान् प्रस्तुताभ्युक्त्वा वाष्पपूरितलोचना । भूषणस्वनभूयिष्ठ रुद्रदुः प्रमदक्षिणाः ॥६४॥
 पितरं तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिवृद्धवान् । अचिन्तयद्दहो कष्टं दुःखेयं स्नेहवन्धनम् ॥६५॥
 अव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रवृत्त्या कर्तुमिच्छतः ॥६६॥
 आश्रय्या न मे किञ्चि कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥६७॥
 देहेनापि किमेतेन व्याधिगेहेन नाशिता । वान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगेषु ॥६८॥
 जन्तुरेकैक एवायं भवपादपसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुलने परिवर्तनम् ॥६९॥
 ततः कल्पकलापज्ञा भरतस्येक्षितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥७०॥
 कथं मे न भवेन्नसां न च पुत्रो गुणालयः । दूतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं मुनिश्रितम् ॥७१॥
 एव चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुला मनः । तस्या वरोऽभवच्चित्ते गत्वा च स्मरितं ततः ॥७२॥
 प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावधम मराधिपम् । जगादाधोऽन्ते स्थित्वा तेजसा पुष्कलान्विता ॥७३॥
 सर्वेषां भूभृतां नाथ पत्नीनां च पुरस्वया । मर्त्तापितं ददामीति यदुक्तं प्रसादिता ॥७४॥
 वरं सम्प्रति तं यच्छु मया सत्यममुञ्जला । दानेन तेऽखिलं लोकं कर्तिभ्रमंति निर्मला ॥७५॥
 ततो दशरथोऽबोद्धुं शूहि त्वं दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्टं ते यच्छाम्येष वराशये ॥७६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥६३॥ स्त्रियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रफते थे उन्हे छोड़कर ओसुओसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणाका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करते लगीं ॥६४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥६५॥ वह सोचने लगा कि सम्पन्नानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥६६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥६७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नरवर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥६८॥ मोहसे अन्या हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी घृष्टीसे व्याप्त इस दुःखदायी अदवीमें भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

सदृशर कलाओंके चलापको जाननेवाली केकयी चैष्टाओसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥७०॥ वह सोचने लगी कि भर्ता औरगुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उत्सह हैं । इन दोनोंको रोफनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर भोगनेकी बात याद आ गई ॥७२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा' । सो हे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥७३-७५॥ सदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्रायकी धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो

इत्युने मुञ्चतो वायमयोचज्जातनिश्चया । कथं वायं त्वया चेत् कृतं निष्ठुरमीदृशम् ॥१००॥
 वद किं कृतममामिषेनासि त्वन्तुमुद्यत । ननु जावितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०१॥
 अत्यन्तं दुर्घरोहिणं प्रयत्नया जिनसत्तमै । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामस्य भरता कृता ॥१०२॥
 देवेन्द्रसरौमार्गेतिदं ते लालितं वपुः । कथं वक्ष्यति जावेरा भ्रामण्यं विविधं परम् ॥१०३॥
 एवमुक्त्वा जगादासी कान्ते सत्त्वस्य को भर । वाञ्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यास्यामि सप्तप्रतम् ॥१०४॥
 इत्युक्त्वा लिखतां शोणं प्रदेक्षिन्वा नतानना । जगाद नायं पुत्राय मम राज्यं प्रदायताम् ॥१०५॥
 ततो दशरथोऽनोचद्विषये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तं माम्प्रतं गृह्यतामसी ॥१०६॥
 एवममुं शुचं मुञ्च निर्वर्णोऽहं त्वया कृत । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यया ॥१०७॥
 पत्रं लक्ष्मणस्युक्तमाहूय च हृतानितम् । ऊचे विनयसम्पन्नं किञ्चिद्विगतमानस ॥१०८॥
 वत्स पूर्वं रणे घोरे कल्पापराधानया । कृतं वैकुण्ठया सारु सारप्य मम दक्षया ॥१०९॥
 तदा तुष्टेन पत्न्याना भूयता च पुरो मया । मनीषितं प्रतिज्ञातं नासं न्यासवमेतया ॥११०॥
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं था ज्ञेऽनुना । किमप्याहूतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विना ॥१११॥
 प्रतिज्ञाय तदेवाती ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । धनं यथा भरतं कुर्यात् ससारालम्बनोन्मिक्त ॥११२॥
 इयं च पुत्रलोकेन कुर्यात् प्राणविरज्जनम् । भ्रमेन मम लोकेस्मिन्कीर्तिर्वित्तोद्योत्तवा ॥११३॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी औसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? यथाइए, हमलोगाने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगाका छाड़नेके लिए बच्य हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्‌के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगासे पाण्डित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीने इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ वता । जो मुझे करना है उसे मैं अन अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिने इस प्रकार कहनेपर प्रवेशिनोनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको पोंदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोडी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोडो, आज तुमने मुझे श्रृणु मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्ष्मणसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर बुद्ध रिपुन चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयाने पहले भयकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सनुष्ट होकर मैंने पत्निया तथा राजाआके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोडा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी दास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दानिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो ससारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रने शोकसे प्राण छोड देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस ससारमें सर्वत्र

मर्पादा न च नामेयं यद्विहायाप्रजं क्षमम् । राज्यलक्ष्मोवधूमहं कर्नोयान् प्राप्यते सुतः ॥१२३॥
 भरतस्यागिरले राज्ये दत्ते स त्व सलक्ष्मणः । क्व गच्छेत्परम तेजो दधानः पञ्चगोचरम् ॥१२४॥
 तदहं वत्स नो वेष्टि किं करोमीति^१ पण्डित । अर्थात्तदुत्तरेगोरुचिन्तावातान्तरस्थितः ॥१२५॥
 ततः पद्मो जगादैव विप्रद्विजयमुत्तमम् । सद्भावप्रतिचेतस्कः पाद्व्यस्तनिरोद्धगः ॥१२६॥
 तात रक्षामनः सच त्वज्जास्मपरिचिन्तनम् । शक्यस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥१२७॥
 जानेन ननु पुत्रेण तन्मनस्य गृहपिगा । येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः ॥१२८॥
 पुनाति श्रापते चायं पितरं येन शोभतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रश्च प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२९॥
 सभापुरातनी यात्राक्षेयं वर्नते तयोः । सावज्ञं निहन्मीति^३ कटोरोद्धतमानसः ॥१३०॥
 सीयाद्वतरन्वेगाहोक्काकारनादितः । निरदो भरतः पित्रा स्नेहविवर्णचेतसा ॥१३१॥
 उपविश्याह्मणोऽप्यपरिष्वज्य सचुम्बितम् । इति चाभिदुषे भूमीं तिष्ठामुर्वशगः पितुः ॥१३२॥
 राज्यं पालय वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्राप्तव्यं तु करोम्यहम् ॥१३३॥
 भजे तावत्पुत्र पुत्र सारं मनुजजन्मनः । नवेन वयमा कान्तः वृद्धः सम्प्रवृत्तिपतिः ॥१३४॥
 इत्युक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि मां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव बाल उरणमेव वा ॥१३५॥
 गृहाभ्यन्तरे महाबलमभूयते धर्मसंज्ञयः । अशरणः दुर्जनैः कर्तुं कुर्वते राज्यसंगतः ॥१३६॥

फैल जावेगौ ॥१२०॥ साथ ही यह भयांदा भी नहीं है कि समर्थ वड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्यलक्ष्मणरूपी कौका समागम प्राप्त कराया जाय ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मणके साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ । तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो । अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण बहुत भारी चिन्ताकी बातके मध्यमे स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि परों पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम बिनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता जी ! आप अपने सत्य-श्रवती रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए । यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्सन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वहाँ कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोकको प्राप्त न हों ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उमरी रक्षा करे वही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जन तक पिता-पुत्रके बीच सभाकी अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तब तक मैं संसारको नष्ट करूँ ऐसा हृद् निश्चयकर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा । यह देव लोग हाहाकार करने लगे । पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका । वह पितारका आज्ञाकारी था अतः स्वयं सामने पृथिवीपर गड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठारकर उमका आलिङ्गन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर । मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ । इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दोहा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१२९॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नर्यान वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३०॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा वरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३१॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहयात्रामें भी तो धर्मका संचय सुना

इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीकेशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहमेदिनः ॥१३५॥
 मुनीनां वत्स वेषाद्विद्वेनेनेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु स्वधन्यवस्थिनः ॥१३६॥
 इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्त्यभ्यासः सुनिश्चितः ॥१३७॥
 अपि चानुक्रमानुक्तिर्न ममान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतद्गानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
 कामार्थिणा पर दाहं यजन्तः कुमिता नराः । जिह्वाधमाद्रकायाणि कुर्वन्ते न च निर्मुक्तिः ॥१३९॥
 निक्षिप्यते हि कामाग्नी भोगसर्वियंथा यथा । नितरां वृद्धिमायाति तापकृत् तथा तथा ॥१४०॥
 भुक्त्वा भोगान् दुरुपादान् दुरचान् क्षणभंगिनः । नियतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
 अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्ममार्गकम् । करोमि विविचारण्ये तपोनिर्मुक्तिनारणम् ॥१४२॥
 अथ गेहेऽपि लभ्येत ध्येयो जनकैर्भूतम् । एतमेव कुर्ये कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
 तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाभ्यनुमोदते । एतच्चातस्य तातार्थं प्रवदन्ति विचक्षणः ॥१४४॥
 जीवित वनितामिदं पितर मातरं धनम् । आतर च परित्यज्य याति जांबोऽपमेकः ॥१४५॥
 सुचिरं देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं वृक्षिमागच्छेन्मनुष्यभवनभोगकैः ॥१४६॥
 पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद् वत्स धन्योऽसि विबुद्धो भग्यकेशरी ॥१४७॥

जाता है । यद्यपि छुद्र मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! जो इन्द्रियोंके वशीभूत है तथा काम क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवम् मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है । अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए धरम रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिता जी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी । मैं तो इसी भयसे प्राप्त करूँगा । अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है । क्या गरुड़ वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ छुद्र मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम बाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमें ज्यो-ज्यो भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है । ये देखते-देखते क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिता जी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए । जिससे मैं धनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिता जी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी मुक्त धरम भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महा बुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका नातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला हो जाता है ॥१४५॥ जो अभाग्य चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये । हर्षसे उनके शरीरमें रोमाञ्च

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचिप्रणयस्य मे । स्वयां कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
 शृगु सारव्यनुष्टेन मयाजी^१ जीवसशये । प्रतिज्ञात जनन्यास्ते वाञ्छित नृपसाच्चिकम् ॥१४९॥
 ऋणता तच्चिर नांतमहाह^२ 'वाचितोऽजया । राज्यं प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानतः' ॥१५०॥
 स त्व निष्कण्टकं तात राज्यं शक्नोम कुरु । असत्यसर्धा^३ कीर्तिर्मे माघमीलिखिलं जगत् ॥१५१॥
 इयं च तव शोकेन परमेणाभितापिता । माता श्रियेत सांख्येन सततं लालिताद्विका ॥१५२॥
 न करोति यत पातं पित्रो शोकमहोदधो । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्ददन्ति सुमेधसः ॥१५३॥
 ततः पद्मोऽपि तत्पाणी गृहीन्वैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया परयन् दृष्ट्वा मधुरनिस्वन ॥१५४॥
 तानेन भ्रातरश्च यत्कोऽन्यस्तद्गदितुं क्षमः । नहि सागरस्त्वानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
 वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरचातु शशिनिर्मला ॥१५६॥
 इयं च शोक्तताज्ञा माता यद्याति पञ्चताम् । न तद्युक्तं महाभागं नन्दने स्वादरो सति ॥१५७॥
 पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतं प्राज्ञं श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
 नद्या गिरावरण्ये वा तत्र वासं करोम्यहम् । सत्रं कश्चिज्ज्ञानाति कुरु राज्यं वयेऽस्ति सत् ॥१५९॥
 'भागं सर्वं परित्यज्य ग्रन्थानामपि सश्रितः' । न करोमि वृथिव्या ते काञ्चि^४ पीडा गुणालय ॥१६०॥
 माध्वमीदीर्घमुष्णं च सुष्ठु तावन्नवाञ्जयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रक्ष न्यायपरायण ॥१६१॥

निकल आये । वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सबमुच ही तू प्रतिवोधकों प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥१४८॥ फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया । तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४९॥ सुन, एकवार युद्धमें मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था । उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी । उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूंगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना शृणु था सो इसने आज मुझसे मांगा है । इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य क्षीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र ! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमें भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर मुझसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें हम प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है । इसलिए राज्य कर जिससे पिताको चन्द्रमार्गे समान निर्मल कीर्ति फेले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं । फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ? ॥१५८॥ मैं किसी नशके फिनारे पर्वत, अथवा धनमें वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सरेगा इसलिए तू इन्द्रानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोने आलय ! मैं अपना सत्र भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ । मैं पृथ्वी पर तुझे बुद्ध भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम सांस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी वात

१. युद्धे, मयाजी म० । २. प्राणिनाञ्जया म० । ३. अपत्यमपान म० । ४. महाभागं ए० । ५. भोग म० ।

इच्छादृष्टा कुल श्रीमद्भूपयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुल भ्रात शशा ग्रहकुल यथा ॥१६२॥
 भ्राजते प्रायमान सन् वाक्य त्वत्पुत्रकस्य यत् । लक्ष्यवर्णैरिदं आनुभ्रातृत्र परिकीर्तितम् ॥१६३॥
 इयुष वा भावत पादो शिरसा भूललक्ष्मणा । पितु प्रणम्य तत्पारस्वन्निरगता लक्ष्मणान्वित ॥१६४॥
 अत्रागते नृपो मूर्खा सम्प्राप्ताऽपि न कनचिन् । ज्ञात स्तम्भसमायुक्तवपु पुस्तसमाकृति ॥१६५॥
 स नृणं धनुरादाय गवा न वा च मातरम् । आपृच्छुष्य ता च गच्छामि तत्रदन्त्यमहीमिति ॥१६६॥
 सखी व मूर्खया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । क्षण कृत परिप्राप्तसज्ञा चास्त्राकुलेक्षणा ॥१६७॥
 ऊचेऽपराजिता' हा एव व म क प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्त्यजमि सचेष्टं क्षिप्वा शोकमहोदधी ॥१६८॥
 मनोरथशतै पुत्र स्व प्राप्ते दुर्लभो मया । प्रारोह इव शम्बाया मातुरालम्बन सुत ॥१६९॥
 परिदेवनमेव ता कुर्वन्ती हृदयङ्गमम् । जगाद् प्रणत पप्रो मातृमक्षिपरायण ॥१७०॥
 अग्न मा गाद् विपाद त्व दक्षिणस्थामह दिशि । निरूप्य सश्रय योग्य नेप्थ्यामि त्वा विसशयम् ॥१७१॥
 तातेन पृथिवी दत्ता जननावरदानत । भरतायेति ते कर्णजाह नूनमुपागतम् ॥१७२॥
 अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्यादौ मलयेष्ववा । अन्यस्मिन् वर्णवस्थान्ते परव मात कृत पदम् ॥१७३॥
 मयि स्थिते समापेऽस्मिन् लोके भास्करसमते । आज्ञैर्धर्मयोषी कान्तिर्मरुतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥
 तत प्रदत्ता माता जगादात्यन्तदुःखिता । पुत्र विनतमाक्षिप्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

मान और न्यायमे तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहाके समूहको अलंकृत करता है उसी प्रकार तू इच्छाकुआके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलंकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके यचनकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्णक पिताके चरणामे प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमे यद्यपि राजा दशरथ मूर्खको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नही चला क्याकि वे जिस रम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी रम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष छठा कर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गई सो मानो दुःखका ज्ञान रोकर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब ओंछामे ओंसु भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमे डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७-१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ो मनोरथोंके याद मैंने तुम्हें पाया है । जिस प्रकार शास्त्राका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमे चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृमक्षिमे तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विपादको प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशामे योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी शराय नहीं है ॥१७०-१७१॥ 'पिताने, वेऋयो माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमे किसी महाअटवीमे, विन्ध्याचलमे, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमे हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जत्र तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥

तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

तनयाद्यै मे गन्तुमुचितं भवतां समम् । कथं त्वाहमपश्यन्ता प्राणान् धारयितुं क्षमो ॥१७६॥
 पिता नाधोऽपथा पुत्रं कुलस्त्राणां धर्मो गतिः । पितातिशान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सवः ॥१७७॥
 जीवितस्य स्वमेवैव सांप्रत मेऽवलम्बनम् । स्वयापि रहिता माह वद गच्छामि का गतिम् ॥१७८॥
 सोऽशेषदुर्लभं चित्तिस्त्वन्तर्ककंशः । भवत्या विपमा पद्मया गतुं सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
 तस्मादेक एवाह विधाय सुलमाश्रयम् । यानेन केनचिन्नेप्ये भवन्तीत्यजनं कुत ॥१८०॥
 यथा दृष्टवामि ते मातं पादाब्जे तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतुं त्वा मुञ्च कार्यविचक्षणे ॥१८१॥
 एवमुक्ते विमुक्तं सन् परिसान्ध्यं सुभाषितैः । पुनश्च पितरं प्राप्तप्रबोधं प्रणिपत्य स ॥१८२॥
 शप मातृपुत्रं तन्वा परिसान्ध्यं सुभाषितैः । अविपण्णमहाचेता सर्वन्यायविचक्षणे ॥१८३॥
 भ्रातृगणपरिष्वङ्गं कृत्वा सम्भाषणं तथा । सातायां सदनं प्राप्तं प्रेमनिर्भरमानसः ॥१८४॥
 प्रिये त्वं तिष्ठ चाग्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । सतो जगाद साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
 मन्त्रिणो नृपतांश्च सर्वान् परिवर्गं च सादरम् । आगच्छच्छ्रेष्ठं त्वं गोपि भाग्याल्लापताकुलः ॥१८६॥
 प्रीत्या सवर्धितं भूय कृतालिङ्गनमादृतम् । मित्रवर्गं सत्पादाच्च पुनरुक्तं स्ववर्धयत् ॥१८७॥
 स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवाग्णान् । निरगच्छपितुर्गोदान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोती हुई, नम्राभूत पुत्रका आलिङ्गनकर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुमने निना दैये में प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूँगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति भवया पुत्र ये तीन ही कुलरता स्त्रियोंके आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति शीघ्र लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पथरीसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँचीनीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर मुखकारी कोई स्थान ठीककर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अब आपका छाड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणाका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके समझनेमें निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दें ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमरकार पर अनेक मधुर वचनासे उन्हें सान्त्वना दी, भाई उन्धुओंका आलिङ्गन कर उनके साथ मधुर सम्भाषण किया और तदनन्तर जिनका उद्गार हृदय निषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमें निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले—“कि हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ । तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि ‘जहाँ आप रहेंगे वही मैं भी रहूँगी’ ॥१८५॥

इसके पश्चात् रामने समाप्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे वड़े आदरके साथ पूछा । नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनसे साथ बढ़ी तत्परतासे यातालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापिस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरे पर्यन्तके समान स्थिर था ऐसे राम,

आहुर्दीकन् द्रुत^१ चारु^२ सामन्ता वानिवारणम् । पद्मेन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८६॥
 विदेशगमनोद्युक्त दृष्ट्वा त जानकी मृगम् । श्रीमदशुक्लमर्चिता रिक्त्रमपन्नोचना ॥१८७॥
 प्रणम्य श्वसुर शत्रूणां पृच्छ्य च सुहृज्जनम् । विनीतानुययौ नाथ पौरोमात्र मुराधिपम् ॥१८८॥
 दृष्ट्वा ह्यमुपगत गन्तु स्नेहविभ्रममानम् । लक्ष्मणोऽपिन्तवन् क्रोध वह्नयनलक्ष्मन्^३ ॥१८९॥
 अन्यायमोदश कर्तुं कथं तानेन नादितम् । स्वार्थससन्ननिवाशं धिक् स्त्रेणमनपेक्षितम् ॥१९०॥
 अहा महाबलवान्वाप्य ज्यायान् पुराणमतम् । मुनेरपादश स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९१॥
 किमद्यैव करोम्यन्या सृष्टिमुत्सृज्य दुर्चनान्^४ । भरतस्य वलादाहो करोमि विमुखा श्रियम् ॥१९२॥
 त्रिधातुरय^५ सामर्थ्यं भगमि विरमृजितम् । निरुद्धं पादयोज्यैष्ट करोमि श्रीमन्सुकम् ॥१९३॥
 न युक्तमयथा चित्तं जातमोपायानुस्य मे । क्रोधं कर्तुं मोहान्धनपि दीक्षामुपाश्रितम् ॥१९४॥
 किमनेन विचारेण कृतेवानुचिनेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रतं बहु ॥१९५॥
 मितकूर्तिसमुपस्थितिं शतान्या हि न पितुः । तूष्णामेवानुगच्छामि अपाद्याम् सायुकारिणम् ॥१९६॥
 प्रशमय्य स्वयं क्रोधमिवादाय शरासनम् । प्रणम्यादृष्ट्य चारीष जनं गुरुपुरस्सरम् ॥१९७॥
 महाचिन्तनमग्नौ मार्गपाङ्क्तताकृतिः । लक्ष्मीनित्यवचस्कं पद्मस्वानुवदं ययौ ॥१९८॥
 पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वयं वहुर्वाणौ तौ धारामिन् यनाग्रभसा ॥१९९॥

मुख्य-सुरय घोडा तथा हाथियोंको स्नेह पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पडे ॥१८६॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर घोडे और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८६॥ पतिको विदेश गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भा, सास श्वसुरकी प्रणामकर तथा मित्र जनोंसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है वसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०-१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें छलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ यह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी वृद्ध भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभानको विचार हो ॥१९२-१९३॥ अहो ! बड़े भाई राम महाबलवान् हैं तथा पुरुषार्थ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके समान दुर्लभ वृद्ध तो मुनिके भी जन्म कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनाको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालें या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे निम्न कर दें ? ॥१९५॥ मैं आप विधाताकी चलनती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोंमें पड़कर बडे भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बडे भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बडे भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्तकर, घनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोंसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महा प्रियसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेप भूया थी, तथा उसका वक्षस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००-२०१॥ उस समयका दृश्य बडा ही करुण था । सीताके साथ राम लक्ष्मण आगे बडे जाते थे और माता पिता परिवार तथा

परिसान्त्वगमृतिग्या प्राप्ताग्या निश्चय परम् । कृच्छ्रास्त्रिवर्तितौ ताम्या प्रणिपत्य पुन पुन ॥२०३॥
 निर्वर्त्यमानवभूनां समूहेनान्यताविमौ । राजमेहाद्विनिष्क्रान्तो देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
 यत्ते किमिदं मात वस्येदं मतमोदशम् । अभाग्येय पुरी कष्टमयवा सकला महा ॥२०५॥
 यामाप्तेन सम दुःखमेताभ्या सह गम्यते । महाशक्ताविमौ कृच्छ्राद्धरणीधरगह्वरात् ॥२०६॥
 पश्य शीता वध याति नार्थेनैशानुमोदितम् । अस्या सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
 अहो परमधन्येय जानका रूपशालिता । विनयाशुकसवाता भर्तारं यानुगच्छति ॥२०८॥
 अस्माकमपि नारीनामेपैव भवताद् गति । उदाहरणभूतेय भर्तृदेवतयोपिताम् ॥२०९॥
 पश्य मातरमुदिम्या नेत्रास्तुष्ट्याचिताननाम् । पृथ लक्ष्म्यापरो गन्तुमुद्युक्तो ज्वायसा समम् ॥२१०॥
 अहो प्रातिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो विनयसम्भार श्रीमताऽस्य विरानते ॥२११॥
 भरतस्य किमाहूत कृत दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मयोपा व्यवस्थिता ॥२१२॥
 कालं कर्मधरो देव स्वभाव पुरुष क्रिया । नियतिर्वा करोत्येव त्रिविधं क समहितम् ॥२१३॥
 वर्ततेऽनुचितं पाद क गता स्थानदेवता । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्नसमूहत् ॥२१४॥
 इमाराम्या सम गन्तुमुद्युक्ते सकले पते । पुरी दून्यगृहा जाता नष्टासौप्तसमुत्सवा ॥२१५॥
 पुण्यप्रकरमपूर्णा समस्ता द्वारभूमय । पिच्छ्रत्वं समानीता शोकपूर्णजनाधुनि ॥२१६॥

शेष दो पुत्रों के साथ धारा प्रवाह ओसुओसे मानो वर्षा कर रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई दृढ़ निश्चयकी प्राप्त थे और सात्वता देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें गिरकर माता पिताको बड़ी कठिनाईसे बापिस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-धन्धुओको बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता ! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा किसका मत था ? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहनेसे सब दुर दूर हो जायगा । ये दोनों ही दुःख रूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार करनेमें अत्यन्त समर्थ हैं ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? पतिने इसे साथ चलने की अनुमति दे दी है । देवर इसका सत्र काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो ! जो विनय रूपी यक्षसे आश्रित होकर पतिके पीछे पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है—यही भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियाँकी भी ऐसी ही गति हो । यह पतिव्रता स्त्रियोंके लिए उदाहरण स्वरूप है ॥२०९॥ अहो ! देखो, जिसका मुख ओसुओसे भीग रहा है ऐसी माताको छोड़कर यह लक्ष्मण धड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो ! इस लक्ष्मण की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनयका समूह धन्य है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया ? राम लक्ष्मण के भी यह कीन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥२१२॥ यह सत्र काल, कर्म, ईश्वर, देव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति हो कर सकती है । ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कीन कर सकता है ? ॥२१३॥ यह सत्र यज्ञ अनुचित हो रहा है । इस स्थानके देवता कहाँ गये ? उस समय लोगारी भाइसे इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग रामलक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्युक्त हो रहे थे इसलिए नगरीके समस्त घर गूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घराके दरवाजाका जो भूमिर्धो पहले फूलावे समूहसे व्याप्त रहती थी वे उस समय शीघ्रसे भरे

जनस्योत्सायमाणस्य चरुषिण्यो नरोत्तमैः । वाचये सागरस्येयं विधाभ्यन्ते महानिलै ॥२१७॥
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि सम्भाषणसमुद्यतः । दाक्षिण्यपरमं पश्यो मेने विघ्नं पदे पदे ॥२१८॥
अन्यत् इव त द्रष्टुमसमञ्जसमीदृशम् । मन्दं मन्दं गृह्यते रविरस्तमुपागमन् ॥२१९॥
रविणा दिवमस्थान्ते स्थिताः सर्वमरीचयः । ज्येष्ठचक्रघरेणैव सम्पदो मुनिमिच्छता ॥२२०॥
दधाना परमं रागमुचिताम्बरयोगिनी । अन्विषाय रवि सन्ध्या सीता दायरार्थं यथा ॥२२१॥
ततो विरोधविज्ञानविघ्नसनविषादिना । रामयज्योद्भवनेव तमसा व्याततं जगन् ॥२२२॥
अनुपयानुक्रमस्य कर्तुं लोकरस्य वचनम् । ससीती तावरेणस्य स्थानं प्राप्ता उपामुने ॥२२३॥
भवान्तकस्य भवनं नित्यालङ्कृतपूजितम् । चन्दमाम्भोजलितम् विद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
दर्पणादिभिर्भूतं सत्ससीती सप्रदक्षिणम् । प्रजिष्टाग्रनपेक्षी तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
नृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रभ्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिरुद्धं ब्रुहस्पित् ॥२२६॥
स्त्र्यापचित्वा धनुर्वर्मं पुण्डरीकनिभेक्षणौ । जिनेन्द्रचन्दनं दृष्ट्वा तौ वरां पतिमामती ॥२२७॥
मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलम्बितभुजद्वयम् । श्रावण्यमामुरोरस्कं व्यननिरसोपलक्ष्यम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आँसुआँसे पड़िछल अर्थात् फर्दम युक्त हो गई थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें चौभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पड़िछायों चौभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विघ्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गई थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार गुत्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सन सम्पत्तियों छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमें सूर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमकी धारण करनेवाली तथा उचित-अन्यर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अन्यर अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके विशेष ज्ञानको मग्न करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको घोरता देनेके लिए सीता सहित वे दोनों दुःख सागरालके समथ अरहनाथ भगवान्के मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारको मग्न करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा अलङ्कृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मङ्गल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था । सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे गह्रित राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्षकी इच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंकी धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ मोक्षकी ओर लटक रही थीं, जिनका वस्त्र स्थल श्रीवत्सके चिह्नसे

३. पद-तयः । विरुषिण्यो म० । २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन । ३. तौ + अरेणस्य = अरनायस्य स्थान मन्दिरम् । ४. चन्दनाम्भोजलितम्

सम्पूर्णचन्द्रवदन विबुद्धकमलेश्चणम् । अस्मर्यसर्गिनिर्माणविश्वमष्टादश जिनम् ॥२२१॥
 प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरौ । स्थितो तत्र विभाव्या चिन्तयन्ती सुहृज्जनम् ॥२३०॥
 तत्र तावुपितौ ज्ञावा मातरः पुत्रवत्सलो । एतत्तु वाण्याकुलाः स्नेहात् परिध्वज्य पुनः पुनः ॥२३१॥
 पुत्राभ्यां सह सम्मन्य दर्शने वृत्तिवर्जिता । दोलारूढसमात्मानो जग्मुर्दशरथं पुनः ॥२३२॥
 सर्वांसामेव शुद्धीनां मनः शुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथा लिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथा लिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥
 ततस्तः गुणलावण्यरूपवेषमहोदया । जग्मुर्मधुरवादिन्य प्रिय मन्दरनिश्चलम् ॥२३४॥
 कुलपोत निमज्जन्त प्रिय शोऽरुमहार्णवे । सधारय ससौमित्रि विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥
 सोऽगोचरं ममायत्त जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाण चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥
 जन्मस्य पुत्रराग्यापैर्मांसं कश्चिद्विवाभ्यताम् । नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥
 पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टानामिष्टाया दर्शनेषु वा । बान्धवाना सुखाना च जीवितस्य धनस्य च ॥२३८॥
 असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचिन्स्थितिस्तथैव । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२३९॥
 *पुत्रवत्यो भवन्त्योऽत्र निवर्तयत सन्तुतौ । *उपमुद्ध्य सुविश्रब्धा पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२४०॥
 त्यक्त्वाऽप्याधिकारोऽहं निवृत्त पापपेष्टितात् । भवादुग्र भय प्राप्त करोमि चरित मुनेः ॥२४१॥

सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिधिम्बकी रचना भुलाई नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन वचन कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्र वत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आईं। उस समय उनके नेत्र ओंसुआसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिङ्गन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा-सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते वृत्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चञ्चल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गईं ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। खी पुत्र और पति दोनोंका आलिङ्गन करती है परन्तु परिणाम जुदे-जुदे रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर शुण लावण्यरूप वेष आदि महा अभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टयादिनी रानियाँ मेरके समान निश्चल पतिके पास गईं और बोलीं कि हे बल्लभ ! शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापिस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकार रूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म जरा और मरणरूपी व्याधियोंके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादिंक इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको वृत्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको छोटा छो और निश्चिन्त होकर पुत्र भोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो रात्रिका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पाप पूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका

आर्याच्छुन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रमीदासोन्यम् ।

भेजे रविसमतेजाः सखलकुम्भावाभिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यापे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथप्रव्रज्याभिधानं
नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥३१॥



हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोंकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४०॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्यके द्वारा कथित
पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला
इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षण नीत्वा निद्रान्तौ घटकद्वयो । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
विधाय जानकी मध्ये जिन नत्वा सारुमुको । सुवेपो प्रस्थितौ दीपैः पश्यन्ताविव कामिनः ॥२॥
कश्चित् सुरतखिलाद्गो बाहुषज्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढा निषेयते ॥३॥
कृत्वापराधकः पूर्वं कोपिनो कश्चिद्व्रजनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
अपरो मानमुन्मूय कान्तया स्मरतस्तया । कृतक कोपमायात सुवासिभः परिसंख्यते ॥५॥
सुरतायास्तखिलाद्गो देहे वस्यचिद्व्रजना । लीना सत्त्वमिव प्राप्ता गाढा निद्रा निषेयते ॥६॥
नवसङ्गमना कश्चिन्माया विमुञ्जतिनीम् । कृच्छ्रात् प्रस्तावमानीय सम्भाषयति संमदी ॥७॥
कस्मैचिद्वर्षधैगुण्य कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेद्यस्यसमै विलम्ब्य कृतमाननः ॥८॥
कश्चिन् परगृह प्राप्नो धूर्तः सङ्कुचितान्तरम् । उद्भासयति माज्जरं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
अपर कृतसकेता द्यूष्यदेवकुलान्तरे । कुलदमाकुलीभूतो मुहुस्तथाय वीक्षते ॥१०॥
चिरादुपगत कश्चिद् घनरोपाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण यथा मेखलया खलम् ॥११॥
अभिसारिकया सारुमन्य प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति त्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम लक्ष्मण, उस मन्दिरमें कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्ध रात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेंद्र भगवान्को नमस्कार कर कबच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले । वे सीताको बीचमें करके चल रहे थे । दोनों ही उत्तम वेपके धारक थे तथा दीपक हाथमें लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोंमें कामी जनोंकी देखा ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर संभोगसे विभ्र हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवज्जभाको भुजारूप पञ्जरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार सूठी शपथके द्वारा उसे विरवास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर जुदा बैठा है और उसकी स्त्री कामसे संतप्त हो उसे मधुर वचनसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके जपसे जिसका शरीर स्विन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमें इस तरह लीन होकर गाढ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अमेठको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठे नवोढा पत्नीको यड़ी कठिनाईसे अनुमूल कर हर्ष पूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ शरीरमें बैठे मिलायको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सुने मठमें आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिये वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिका प्रेमी देरसे आया था इसलिये वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेरखलासे बांधकर उत्तरीय धरनेसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्तकर धुत्तेके

इति^१ नियुहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्ती^२ वीक्ष्यमाणी च^३ वृत्तान्तं जग्मतु शनैः ॥१३॥
 अवहारेण^४ निर्गम्य पुरीतः पश्चिमेन च । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणीं दक्षिणां दिशम् ॥१४॥
 त्रियामान्ते ततोऽप्रपद्ये सामन्ता वेगवाहिनः । राक्षसेण सम गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
 यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्जनकारिणः । समीपं रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
 ते चक्षुर्गोचरीकृत्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसम्पन्नाः पद्भ्यामेव दृढीकृते ॥१७॥
 प्रणिपत्य च भावेन सत्तम सम्प्रभाषिरे । यावत्ताज्जन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययी ॥१८॥
 प्रशशसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्री समागतः ॥१९॥
 भयास्पृष्टादि नैताभ्यां सममेवा सुमन्थरा । ततः कथमिष प्रपज्यामेतौ पवनरहस्यौ ॥२०॥
 ह्य नः सुमती माता परमप्रियकारिणौ । एतस्याः सदस्यां नाम्ना प्रशस्तास्ति क्षिताविह ॥२१॥
 तौ सीतागतिचिन्तन्वाग्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गन्तुतिमात्रमप्यात्र सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
 सत्त्वानि बहुरूपाणि परयन्ती क्षितिमण्डले । सरांसि कञ्जरव्याणि तत्संख गगनस्थराः ॥२३॥
 आपूर्यमाणपर्यन्तौ वेगवह्निर्नराधिपे^५ । पनागमे नदीगङ्गाकालिन्दीप्रवहादिषु ॥२४॥
 प्रामत्तैर्मदनैरेषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिदत्तमौ ॥२५॥
 केचिदध्वजलेदेन सामन्ता व्रजतोस्तयोः । पश्चादज्ञापियन्तौ विवृता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य झरोखों और मण्डपोंसे कामीजनोंको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिछनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको फानोंकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोंको घोरता देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्ण जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेगसे धोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे देखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणामकर जब तक उनके साथ यथा क्रमसे यात्रात्ताप करते हैं तब तक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना यहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि ह्य, न्यो, हस्ये, पसाहस्ये, ही, राजपुत्रोंको, शास्त्र, कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोंको किस तरह प्राप्त कर सकते हैं ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है । इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम रामलक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यानकर गन्तुति प्रमाण मार्गकी ही मुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोंसे सुरोभित जालाच और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षा श्रुतुमं गङ्गा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ प्राम, सेट, मंट्य, पोप तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम वीरोंका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके रेतसे दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं है तब वे उनसे कहे

१. गराहप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणी म० । ३. वृत्तान्तो म० । ४. लघुनाहारेण, अपहारेण (१) म० । ५. वेगवह्निर्नराधिपे म० । ६. पनागमेनदी गंगा म० ।

अपरे प्रपया केचिर्ज्ञातान्ये भक्तिवत्पराः । अद्यञ्च विनयात् पद्मयां दत्त्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
 ततो हरिगजमातसङ्कुलारावभैरवाम् । परियात्राटवीं प्राप्नो लीलया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
 तस्यां बहुलशर्षयां सुख्यध्वान्तां महानगैः । निम्नज्ञां शर्वरीमेतौ शबराश्रितरोधसाम् ॥२९॥
 तस्या रोधसि विध्रम्य नानास्वादुफलोचिते । काश्चिन्मवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥
 महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिध्रयाः ॥३१॥
 ततस्ते निम्नज्ञां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डदेगोर्मिसघातनिमित्तोदरनिश्चिताम् ॥३२॥
 उन्मग्नप्रवल्ग्राहकृतकल्योलसङ्कुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥
 महाद्रिकन्द्रास्फालप्रतिस्फुकारनादिनीम् । उद्धर्तमानर्मानांगस्फुरद्भास्कररोचिषम् ॥३४॥
 उद्धृततमस्फुकारजातदूरगशीकराम् । उड्डीयमाननिरुपमयपूर्णपत्रद्वयाम् ॥३५॥
 सन्प्रासकम्पमानाङ्गा अगूराम सलक्ष्मणम् । समुत्तारय नापात्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
 भृत्यानां भक्तिपूर्णां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाचय जानकि मुहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
 ध्रुवमादिगदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । हुदीकिरे प्रसन्नश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
 ततस्तान् राघवोऽजोबद्धिधन्वो रोधसि स्थितः । अधुना विनिवर्तयन् भद्रा भीममिदं वनम् ॥३९॥
 भस्माभिः सह पुष्पाकमिवानेवैषं सङ्गमः । पृथा नद्यवधिर्जाता भवतीत्युत्पद्यजिता ॥४०॥

विना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने ही सामान्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर धिनय पूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर रामलक्ष्मण लीला पूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उष शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्ण-पत्रकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था । वही, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी । रामलक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्रामकर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो पापिस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुरोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उत्तरते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टंकारसे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंसे व्याप्त थी, लहरोंके समूहका आपातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें दूट-दूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सू-सू' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तेजेवाली मझलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थी, जिसमें उत्थाव करनेवाले नाकोंकी सूंकारसे जलके छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीकी देखकर सब सामान्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे । ये लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाय ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्तिसे भरे हुए हम सेवाका पद्म प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी यात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका व्धारण करते हुए वे दोन सामान्त उस नदीमें बूढ़ पड़े तथा नाना प्रकारको चेष्टाएँ करते हुए गहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सभसे कहा कि हे भले पुत्रों ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयङ्कर है ॥३९॥ हमलोगोंके साथ तुम्हारा

तातेन भरतः स्वामी सर्वेषां वो निवेदितः । विसाप्तस्तातमावृत्य तिष्ठत चित्तिपालिनः ॥४१॥
 तनस्ते पुनरिन्धुसुनीयास्माकं मवान् गतिः । प्रसादं कुरु मा त्वाचीरस्मान् कारुण्यकोविदः ॥४२॥
 निराश्रयाकुलोभूता त्वेव रहिता प्रजा । वद क शरणं यातु सदशः कस्तवापरः ॥४३॥
 व्याघ्रसिंहगर्जनादिव्यालब्रालममाकुले । वयामो भवता साधर्मरूपे न विना दिवि ॥४४॥
 न नो निर्वर्तते चित्तं प्रतियामः कथं वयम् । सहत्तरत्नमेतेन हर्षाकेशमिति ननु ॥४५॥
 किं नो गृहेण किं भोगैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः । भवता नररत्नेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
 श्रीडास्यपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जानुचिन् । सम्मानेनापुना कस्माद्भ्रान्तोऽस्ययन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
 कोऽपराधो वदास्माकं भवचरणरेणुना । परमां वृद्धिमेतानां भक्तानां भृत्यवत्सलः ॥४८॥
 अहो जानकि लक्ष्मीश रचितोऽयं शिरोज्जलिः । प्रसादयन्ममोश नः प्रसादो भवतीरयम् ॥४९॥
 सीमा लक्ष्मीधरश्चैवमुपमानो सुदक्षिणी । तस्यतु पद्मादाप्रम्यस्तनेत्री निरञ्जरो ॥५०॥
 ततः पद्मो जगादेव भरतामुत्तरं स्फुटम् । निवर्तन्त्वमप्य भद्रा यातोऽहिम सुवसाम्पनाम् ॥५१॥
 इयुवना निरपेक्षी तौ परमोष्माहमङ्गता । अचनेरतुरन्वन्तगम्भीरा तौ महापताम् ॥५२॥
 उत्तीर्णः सरित पद्मो जानकी विकचेष्टणाम् । करेण सुवसादाय पद्मिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥
 अम्भोविहारविजाननुधयो सा तयोधुनी । नाभिदन्ता बभूवोद्धा श्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था । अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गई है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पितामहे तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीके शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ ! हमारी गति तो आप ही हैं इसलिए हे दया-निपुण ! प्रसाद करो और हमलोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है आप ही कहो किसी शरणमें जावे ? आपके समान दूसरा है ही कौन ? ॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमें रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता है फिर हम कैसे लौटें ? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जय आप जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है ? भोगोंसे क्या मतलब है ? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है ? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥४६॥ हे देव ! श्रीडामाँमें भी कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वञ्चित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यों हो रहे हो ? ॥४७॥ हे भृत्यवत्सल ! हमलोग आपके चरणोंकी धूलिसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए हैं । बताइये, हमारा क्या अपराध है ? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी संबोधित करते हुए कहा कि हे जानकि ! हे लक्ष्मण ! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर मस्तकपर लगता हूँ आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक ये दोनों रामके चरणरुमलोंके आगे दृष्टि लगाये हुए चुपचाप खड़े थे—‘क्या उत्तर दिया जाय’ यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मन्त्रपुरुषो ! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइये, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महा नदीमें उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) में कमलिनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताकी हाथमें लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

तदातिशोभते सीता पद्महस्तवलक्षिता । सुघोरा धीरिवोचुर्द्वयतपत्रभूदस्थिता ॥५५॥
 पारगः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स क्षणात् । वृक्षैरन्तर्धिमायातश्चेतस्तमनविग्रहः ॥५६॥
 विप्रलापं ततः कृत्वा महान्तं साग्रलोचनाः । भवनाभिमुखीभूताः केचिकृच्छ्रेण भूयुतः ॥५७॥
 तदाराम्यस्तनेप्रास्तु केचिपुस्तमया इव । तस्थुः प्राच्यापरे मूर्त्ता निपेतुर्धरण्यातले ॥५८॥
 त्रियोष्य केचिदशोचुर्निष् संसारमसारकम् । धिग्मोयान्मोर्गिर्भोगामान् भङ्गराग्नीतिभाविनः ॥५९॥
 ईरयामपि दूराणां यथावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणमस्त्यसु किमेरुष्वग्रकस्तुषु ॥६०॥
 विषोऽगमरणेषाधिराज्यसज्जनभाननम् । जलबुद्बुदार्दनरसारं कृतम् पिक् शरीरकम् ॥६१॥
 भाग्यवन्तो महालक्ष्मणे नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रूमङ्गुरौ लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
 इति निर्वेदमापन्ना यद्बो नरसत्तमाः । श्रमज्याभिमुर्जिताः पद्मस्तत्र रोषिताः ॥६३॥
 भयेह्याश्रिते तुर्व विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिरयाममहालोकहमालया ॥६४॥
 अनुसल्युश्च तं नानापुत्रजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादुभक्तसम्पन्नान्तपटुपदम् ॥६५॥
 दूरशुभं विधिकेषु देशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायसंभक्तमानसान् पुक्तेजसः ॥६६॥
 ज्ञेये तापमस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुज्जिननायस्य भवनं शृङ्गमुज्ज्वलम् ॥६७॥
 रम्येष्वदिनितगेषु काननेषु सरित्सु च । तत्र काले मदी प्रायो मूपितासौजिज्ञानालयैः ॥६८॥

जल-श्री-झाके ज्ञानमें मिथुन थे अतः चिरकाल तक उत्तम झीड़ा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए यह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गई थी ॥५१॥ उस समय रामकी इच्छे-लोपर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी परमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५२॥ इस प्रकार तिनका शरीर चित्तकी रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पारकर क्षणभरमें वृक्षांसे अन्वर्हित हो गये ॥५३॥

तदनन्तर जिनके नेत्रांसे आँसू भर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५४॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदि के पुतलोंके समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५५॥ और कितने ही प्रबोधकी प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा सोंपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नरवर भोगोंको धिक्कार है ॥५६॥ जहाँ इन जैसे शूर धीरोंकी भी यह अवस्था है यहाँ एरण्डके समान निःसार हमलोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥५७॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलेके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरकी धिक्कार है ॥५८॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भाँहके समान पञ्चल लक्ष्मीकी छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवाद् हैं ॥५९॥ इस प्रकार वैराग्यकी प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सम्भ्रान्त हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६०॥

तदनन्तर उन्होंने दूरे भरे वृक्षांकी पहिच्छसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६१॥ मन्दिरका यह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्द रसके आस्वादसे गूँजते हुए भ्रमर वहाँ धमण कर रहे थे ॥६२॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बँठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंकी देखा ॥६३॥ मलकपर अञ्जलि यौनकर सब लोगोंने उन्हें घीरे-घीरे यथा क्रमसे भजस्कार किया । तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जितमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६४॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतोंके मुन्दर नितम्बोंपर, यनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६५॥

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभाषणाः । रत्नसम्भवगम्भीरं सत्यतेज्जं हृदीक्षिरे ॥६४॥
 प्रणम्य शिरसा तस्य सवेगभरवाहिनः^२ । नाथोत्तारय सत्सारादस्मादिति वमापिरे ॥७०॥
 सत्यकेतुगर्णाशेन तथास्त्विति कृतध्वनौ । जम्बुस्ते परमं तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥
 विद्रुघो विजयो मेरुः क्रूरः संप्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥
 विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एवमाद्या नृपा धर्मं नैर्ग्रन्थं समशिश्रियन् ॥७३॥
 साधनानि भटास्तेषां गृहांचा नगरां गताः । द्रुतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रपान्विताः^४ ॥७४॥
 अगुन्रतानि सगुह्यं केचिप्रियमधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिवुद्धिविभूषणा ॥७५॥
 सम्यग्दर्शनमात्रेण सन्तोषमपरे गताः । श्रुत्वातिदिमलं धर्मं जिनानां जितजग्मनाम् ॥७६॥
 सामन्तैर्बहुभिर्गं वा भरताप निवेदितः । वृत्तान्तो सुस्थितश्चायं ध्यापन् किमपि दुःखितः ॥७७॥
 अथानन्तरपराजयं^५ तनयः सुप्रबोधनः । राज्याभिविज्ञं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
 क्रिषिपत्रवियोगेन सन्तप्तं चित्तमुद्वहन् । शोकाम्मोदनिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥
 कृतमानवतमप्युर्ध्वं विरूपय समाकृण्वन् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
 गुरूपजां परां कृत्वा ह्राससतिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिथिले धमणधिया ॥८१॥
 अयाप्येकविहारस्य शुभं ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकैर्न कलुषं तस्य जग्यते ॥८२॥
 अन्यद्वा योगमाश्रित्य दृष्ट्वावेवं विचक्षणः । विहं स्नेहं भवदुःखानां मूलं बन्धमिमं मम ॥८३॥

यहाँ लज्जाल भाषनाको धारण करनेवाले सत्य लोग जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कारकर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६४॥ यहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सत्य लोगोंने शिर मुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ ! हम लोगोंको इस संसार-सागरसे पार कीजिये ॥७०॥ इसके उत्तरमें मुनियोंके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योंही 'तथाम्नु' यह शब्द कहा त्योंही 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सत्य लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विद्रुघ, विजय, मेरु, क्रूर, संप्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिगम्बर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोंको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अगुन्रत ग्रहणकर निर्ग्रन्थमुद्राके धारकोंकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारकी जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवणकर मात्र सम्यग्दर्शन से ही सन्तोषकी प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुनसे बैठा था परन्तु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देने पर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागरमें डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक शुकके समीप गये और यहाँ बहुत भारी गुरु पूजाकर वहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोकके कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन योगारूढ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्यग्धी दुःखों

१. सागर २. गम्भीरस्तम् । २. वादिनः म० । ३. निद्रुघो म० । निर्दुघो म०, ल० ।

४. त्रपान्विताः म० । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दाराः पितृभ्रातृमुतादयः । जगतास्ते ममानादो ससारे गणनोक्तिभक्ताः ॥८४॥
 अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च संप्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥
 अन्योन्यभक्षणानि तिर्वक्त्रे च चिरं मया । प्राप्तानि ॥ स्वशल्यानि बहुरूपासु योनिषु ॥८६॥
 श्रुता सन्नतितनित्वानां वशवीणातुगामिनः । भूयश्च परमानन्दश्चिच्छदारणकारिणः ॥८७॥
 स्तनेष्वप्यन्तरसां पाणिर्ललितो नेत्रहारिणः । पुनः कुठारघातेन दुर्बलेन पृथक्कृतिः ॥८८॥
 आस्वादितं महावीर्यमन्नं सुरभिः पद्मसम् । त्रपुसीसादिकललं पुनश्च नरकान्नौ ॥८९॥
 वीक्षितं परमं रूपं मनोद्वेषणकारणम् । पुनश्चात्यन्तविप्रासकारणं दत्तवेषधुः ॥९०॥
 आघ्रातः स विरामोदो गन्धो मुदितपटपटः । पुनश्च पृथित्यन्तमुद्रासितमहाजनः ॥९१॥
 आलिङ्गिता मनश्चोर्ध्वं नासोर्ध्वं लीलाविभूषणाः । पुनश्च कूटशाल्मल्यः तीक्ष्णकण्टकसङ्घटाः ॥९२॥
 किं न स्मृतं न किं दृष्टं किं प्राप्तं न किं श्रमम् । मुहुःस्वादितं किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९३॥
 न सा क्षितिर्न सतोष नासौ बहिर्न सोऽनिलः । देहतां यो न मे प्राप्नो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९४॥
 प्रेलोभ्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्नोः सहस्रशः । पितादितो मम स्थानं न तद्यत्रोपितोऽस्मि न ॥९५॥
 अभुव देहभोगादिशरणं नास्ति विघते । ससारोऽयं चतुःस्थानं एकोऽहं दुःखमुत्तिषु ॥९६॥

का मूल कारण तथा मुझे बन्धनमें डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोंमें जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहाँ गये ? यथार्थमें इस अनादि संसारमें सभी सम्बन्धी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेकों द्वार स्वर्गमें नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकान्तिके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यञ्च पर्यायमें मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं । इस प्रकार नाना योनियोंमें मैंने दुःख रूपी अनेक शल्य प्राप्त किये हैं ॥८६॥ मैंने बोंसुरी वीणा आदि भण्ड वजाओका अनुगमन करनेवाले सङ्गीतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदारण करनेवाले तीव्र रदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओंके सुन्दर स्तनोपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके दुकड़े-दुकड़े भी किये हैं ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित जहरसोसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमें राँगा सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोंको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीला रूपी आभूषणसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण फाँटोंसे व्याप्त सेमरके मायाभर्या वृद्धोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमें क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिर कालसे संसारमें भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तोनां लोकोंमें वह जीव नहीं है जो हजारों द्वार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं जुदा हूँ, इन्द्रियों कर्मोंके आनेका द्वार है,

अशुभे पापत्रास-योऽहं द्वारमधुनि कर्मणाम् । यवगं प्राण्य तेन विनश्यत्तावने वन ॥६॥
 लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभः बोधिरुत्तमः । स्वास्थानोऽयं निर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगमो मया ॥६॥
 ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिता । आनन्दध्यानमयी धीरं प्रमेयं निरन्तरम् ॥६॥
 येनूच्छ्रितमितरुद्रो वरुणमेवमाश्रितः । महाविषु परान्तये शत्रुनयन्तमुद्रितान् ॥७॥
 विपमानधिकुर्वान् परीपहगगान् शृणुम् । शान्तस्तेष्वेव दशैषु निर्मन्थो विचहार यः ॥७॥
 नाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे ॥ गतेऽद्भजे । परं मुनिप्रिया सत्रा शोकं भेदशराजिता ॥७॥
 ते दृष्ट्वा दुःखिते वादमन्त्रवायुनलंघने । भरताभा श्रियं मेने भरतो विपदागमम् ॥७॥
 अर्धेन दुःखमापन्ने भूरा ते वीर्यं कैरवः । पञ्चादुल्लसत्कण्ठयान् पुत्रमेवमभाषत ॥७॥
 पुत्रं शीघ्रं त्वया लब्धं प्रणतारिहर्तव्यम् । पञ्चलक्ष्मणनिर्मुक्तमलम्बनं शोभनं ॥७॥
 जिना ताभ्यां निर्मलतायां किं राज्यं का सुखासिका । का वा जनपदे शोभा तव का वा सुप्रसूता ॥७॥
 राजपुत्रा समं धर्मा कं तौ याता मुनैर्युतो । विमुक्तवादीनां मार्गे पाशागादिभिराकुले ॥७॥
 मातरौ दुःखिते एते तयोर्गुणसमुद्रयोः । विरहे मापताः शृणुमप्यपरिदेशे ॥७॥
 तस्मादागत्य तौ विप्रं समं ताभ्यां महामुखं । सुचिरं पालय चोगामेव सर्वं विराजत ॥७॥
 अत्र तावत्प्रमदं नृपं जातं हसन् । आश्रयाम्यहमप्येषां मुपुत्रानुपदं तव ॥७॥
 द्युतोः प्रतिमायां साधेवमिति सख्यं । सम्प्रान्तोऽध्वन्येव भरतस्तपधं श्रित ॥७॥

कर्मोको रोक देना मरर है, संस्पर्शे वाद कर्मोकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने थके कष्टसे पाया है ॥६॥ इस प्रकार मुनिवाके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानेसे धीरवीर दशरथ मुनिने व्रतसे पूर्वोक्त आर्तव्यानको नष्ट कर दिया ॥६॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमें महायुद्धोंसे धींच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंकी जीता था उन उन्ही देशोंमें वे अत्यन्त शांत निर्मन्थ मुनि होकर विषम परिपहोंकी सहते हुए निहार कर रहे थे ॥७॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके निर्देश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) मुनित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥७॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अधुं भरते रहते थे वेमो दोनों विमाताओंकी दुःखी देहकर भरत, भरत चन्द्रवर्तीकी लक्ष्मीसे समान पिताल राज्यालक्ष्मी की विपत्ति समान दारुण मानता था ॥७॥ अथानन्तर इस तरह उन्हें अत्यन्त दुःखी देह कैरवीके मनमें दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत हैं ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि यह राम और लक्ष्मणके जिना शोभा नहीं देता है ॥७॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके जिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मप्रता क्या है ? ॥७॥ सुख पूर्वक वृद्धिकी प्राप्त हुए दोनों बालक, जिना किसी बाहनेके पापाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥७॥ सुगणसे सागर स्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर तिलाप करती रहती हैं सो उनके निरहंम मृत्युको प्राप्त न हो जायें ॥७॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापिस ले आ । उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥७॥ हे सुपुत्र ! तू पैगशाही घोंडेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे हो आती हूँ ॥७॥

माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न हुआ यह 'साधु-साधु ठीक ठीक' इस

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्श्वान् प्रयागनाम्नरान् । पवनाश्वसमारुढ ॥ ययौ मृशमुसुक ॥११२॥
 प्रातश्च तामरण्यानीमनेकैकुलकुलाम् । नानावृक्षवृतादित्या गिरिगङ्गरभीषणाम् ॥११३॥
 बन्धयिवा महावृक्षैरुपाना^२ सुसहती^३ । तां धुनीमुत्ततारासौ चणेन सहवाहन ॥११४॥
 इतो दृष्टवितो दृष्टौ पुरयौ सह योषिता । इति पृच्छन्स शृण्वश्च जगामानन्यमानस ॥११५॥
 अथ तौ परमारण्ये विधान्तौ सरसस्ते^४ । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्श्वन्यस्तशरासनी ॥११६॥
 प्रभूतदिवसप्राप्त ताभ्या सीता यषेक्षया । पद्मभिदिनैस्तमुद्देश भरत प्रतिपद्यवान् ॥११७॥
 अवतीर्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गवा पद्म्या^५ समाश्लिष्य पादौ पद्मस्य मूर्ध्नि^६ ॥११८॥
 सता विरोधितस्तेन कृत्वा सम्भाषण क्रमान् । मूर्द्धा^७ त्रलिपंगादैव पद्म विनतविग्रह ॥११९॥
 विदग्धमिदं कस्मात्प्राथ मे भवता कृतम् । पर राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥
 आह्ना तावदिदं राज्यं जावितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥
 उत्तिष्ठ हवदुरी याम प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय मिश्रेण यच्छ मेऽतिसुखाप्तिकाम् ॥१२२॥
 भवामि द्युतगरस्ते शृङ्गधमराश्रित । लक्ष्मण परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥
 पश्चात्तापान्तेनाल सन्तप्ता जनना मम । तव लक्ष्मीचरत्वापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
 प्रवीयेवमसौ यावत्कैफ्या तावद्गता । वेगेन रथामारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोडोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोंकी आगेकर बड़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाभटायीमें जा पहुँचा जो हाथियोंके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्यंत और गर्तीसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लड्डोंसे नाओंके समूहको बाँधकर उनका पुल बना बाहनोंके साथ साथ क्षण भरमें पार कर गया ॥११४॥ यह मार्गमें मिलनेवाले लोगोंसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे हैं और उनके उत्तरको एकाम्र मनसे सुनता हुआ आगे उड़ता जाता था ॥११५॥

अधानन्तर जो सत्रन चनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रखे हुए थे वेसे सीता सहित रामलक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ रामलक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिस रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोंका आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रोभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विदग्धना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! ठठो, अपनी नगरीमें चलो, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका द्युत धारक होऊँगा, शत्रु चमर डोलेंगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे हा सन ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरूपी अग्निसे अत्यन्त सतप्त हो रही है तथा आपको और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही हैं ॥१२४॥ जब तक भरत इस प्रकार कह रहा था तब तक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करने-

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुपराध चेताश्रमिव नृदिता चिरम् ॥१२०॥
 ततोऽधमरितरद्वेदे विप्रलापेऽतिमिदिता । धमाम्ममापय कृत्वा केरुयुग्मभापन ॥१२१॥
 पुत्रोत्पिष्टं पुत्रीं यामः कुङ्कु राज्यं सहानुजः । ननु त्वया विहीनं मे मरुतं विविनापने ॥१२२॥
 भरतः शिष्यायोऽयं तवाप्यन्तमनोरिगः । खेगेन नष्टबुद्धेर्मे धमस्य दुरनुष्ठितम् ॥१२३॥
 ततः पयो जगादयं किं न वेत्ति रजमग्निहे । चरित्रा ननु कुर्वन्ति मरुत्कार्यमनन्पथा ॥१२४॥
 दण्डं तातेन वयस्यं तत्कर्तव्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कृतिर्माभूदस्य जगत्रये ॥१२५॥
 पुनश्चोवाच भरतं भ्रान्तमां गा विचिन्तनाम् । शङ्कये यथनाचाराधाय मनुमोदनाम् ॥१२६॥
 ह्युक्तवा पुनरप्यस्य पयो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रत्ये ममच सर्वमभूताम् ॥१२७॥
 प्रगम्य केकयीं तान्त्रं सम्मान्य च पुनः पुनः । भ्रातरं च परिचर्य प्रादिणोऽसौ निवृत्तः ॥१२८॥
 तौ विधाय वयायोयमुपचारं समीतयोः । रामलक्ष्मणवर्षाणी मातापुत्रीं यथागतम् ॥१२९॥
 परित्यक्तामिह द्वेपं सर्वप्रवृत्तिर्भीत्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः ॥१३०॥
 राज्ये तथाविधेष्वस्य चित्तिर्माभूदपि चणम् । दुस्मह दधमानस्य शोऽशस्यं मनश्चिनः ॥१३१॥
 त्रिकालमनाथस्य वन्दारभोगमन्दरीः । ययौ भोगं च मरुतं चैवममयेयौ चलिः ॥१३२॥

घाली केकयी वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२२॥ राम लक्ष्मणको देखकर उसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया । हा हा कार करती हुई वह दोनोंका आलिङ्गन कर चिर फाट सक लेती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त रिक्त हो गई थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदीकी धारा दृढनेपर क्रमसे धार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरीको चले, छोड़ भाइयोंके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य बनके समान जान पड़ता है ॥१२७-१२८॥ तुम अविश्वस्य बुद्धिमान हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् उसे शिक्षा देकर ठीक करो, आपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः मेरे इस दुःखको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत्य कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ पिताने जो सत्य वचन कहा था उसको पूर्ति मुझे तुम्हें तथा भरत-सभीको करनी चाहिये । 'पिताकी अपकीर्ति जगत्रयमें न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर इन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू येष्वित्य अर्थात् द्विविधाकी प्राप्त मत हो । यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुम्हें अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोहर वनमें सत्र राजाओंके समस्त भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणामकर सान्त्वना देते हुए बार-बार संभाषण कर और भाईका आलिङ्गन कर बड़े कष्टसे सबको वापिस बिदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित रामलक्ष्मणका यथा योग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अयानन्तर भरत, पितृके समान, प्रजापर राज्य करने लगा । उसका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाको सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यकी धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए संतोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरुणाय भगवान्की चन्दना करता था भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

तत्राचार्यो द्युतिर्नाम 'स्वपरागमपारग । महता साधुसधेन सतत कृतसेवन ॥१३६॥
 अग्रतोऽवग्रहे तस्य चकार भरत सुधा । पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१४०॥
 कृतावग्रहमेव तमुवाच भगवान् धृति । कुर्वन् मयूरचून्दाना नर्तन धीरया गिरा ॥१४१॥
 भव्य भो यावदायाति पद्म पञ्चनिराचण । तावद्गृहस्थधर्मेण ^३भवात्परिकर्मक ॥१४२॥
 अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थाना महा मनाम् । परिकर्म त्रिशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१४३॥
 उपरिष्टान् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृद्युमायाति नरोतिजडमानस ॥१४४॥
 अनर्घ्यरत्नसदृश तपो दिग्वाससामिति । ध्वमप्यक्षम वक्त्रु परस्तस्योपमा कुत ॥१४५॥
 कनायास्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽय गृहिणा जिनै । अप्रमादा भजेऽस्मिन्निरतो बोद्धव्यिनि ॥१४६॥
 यथा रत्नाकरद्वीप मानव कश्चिदागत । रत्न यत्किञ्चिदादत्ते वाग्यस्य तदनर्घताम् ॥१४७॥
 तथास्मिन्नियमद्वीपे शम्भवे धर्मचरिणाम् । य एव नियम कश्चिद् ग्रहीतो या यनर्घताम् ॥१४८॥
 अहिमार्जनमादाय विपुल यो जिनात्रिपम् । भव यार्चय यसौ 'नाके परमा वृद्धिमरुते ॥१४९॥
 मयप्रतपथ क्षमिभ्यः करोति जिनाचनम् । भव यादृशवाक्योऽसौ स'कोतिष्यात्तत्रिप ॥१५०॥
 अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णाना 'निधीना वा विभुर्नर ॥१५१॥
 यो रति परमाराधु न करोति जिनाश्रित । सोऽय गच्छति सौभाग्य सर्वनेत्रमलिम्बुच ॥१५२॥
 जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रह । ह्रमतेऽस्त्रावतिस्फातान् छाभान् लोकस्य पूजित ॥१५३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ रत्न और पर शास्त्राके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका सप जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३६॥ उनके आगे बुद्धिमान भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनित्रय धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भार वाणीसे मयूर समूहको वृत्त्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जडबुद्धि मनुष्य मृद्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थीरे धर्मको जिनेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिकी प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिये ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम बुद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाभा से भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सत्र ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त मसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामा होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियामें प्रेम नहीं करता है वह सत्रके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परिग्रहकी सीमा नियतकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५४॥
 अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासङ्कटयातोऽपि निरुपद्रवविग्रहः ॥१५५॥
 जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कर्णार्णवामृतं चामी गण्डूर्ध्वं कुरते नरः ॥१५६॥
 यः करोति विभावयामाहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि यात्यसी सुखदां गतिम् ॥१५७॥
 बन्दन यो जितेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
 सामोद्भूजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
 भावपुष्पजिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽयन्तसुन्दरः ॥१६०॥
 धूपं पञ्चमदनाशुभ्राणुर्वदिप्रमत्तं सुधीः । जिनानां हौक्यत्वेन जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥
 यो जितेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः । स्वयम्प्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसम्पन्नः ॥१६२॥
 छत्रचामरलम्बपताकादर्पणादिभिः । भूपयित्वा जिनस्थानं याति विष्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥
 समालम्ब्य जिनाम् गन्धैः सौरभमप्यासदिभुजैः । सुरभिः प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥
 अभिषेकं जितेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
 अभिषेकं जितेन्द्राणां विधाय चारधारया । विमाने चरित्यवले जायते परमद्युतिः ॥१६६॥
 दधिवृन्मैजितेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् । दध्याभजुष्टमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥
 सर्पिणां जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाग्नौ विमानेशः स जायते ॥१६८॥

जितेन्द्र भगवान्की अर्चा करता है वह अतिशय चित्तुस लाभोंको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५४॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सय प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं । यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और फलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सय प्रकारके आरम्भमें प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जितेन्द्रभगवान्की बन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सय पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जितेन्द्रभगवान्की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जितेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जितेन्द्रभगवान्के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नुस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जितेन्द्रभगवान्का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोंको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जितेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जितेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानमें उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशोंसे जितेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्सवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो घीसे जितेन्द्रका अभिषेक करता है वह कान्ति द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी

अभिपेक्षमभिवेग ध्रुयन्ते बहवो युथा । पुराणेऽनन्तवीर्याया 'द्युमूल'वामिपेचना ॥१६६॥
 भवया बह्विपुहार य कुहते चिनममनि । सम्प्राप्नाति परा भूतिमाराय स मुमानसः ॥१७०॥
 गाननर्तनवादिद्वयं करोति महोत्सवम् । चिनममन्यमौ स्वर्गं लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
 भवन यन्तु जेनेन्द्र निर्मापयति मानव । तस्य मागोमव शक्य केन वक्तु मुचेतसः ॥१७२॥
 प्रतिमा यो चिनेन्द्राग कारयत्यचिरादमौ । सुरामुरोत्तमसुख प्राप्य याति पर पदम् ॥१७३॥
 वनज्ञाननपादानैर्यानुगतानि दहिन । सर्वेऽस्त्रिष्वपि कालेषु पुष्पानि मुचनव्रये ॥१७४॥
 पृथग्मादपि जेनेन्द्रविवाद् भावेन कारितान् । यपुण्य जायते तस्य न सम्मान्ययतिमात्र ॥१७५॥
 फल यदेतदुद्दिष्ट स्वर्गं सम्प्राप्य जन्तव । चक्रवर्त्यादिता लब्ध्वा तन्मर्यादेपि मुचते ॥१७६॥
 धर्ममेव विधानेन य कश्चिप्राप्य मानव । ससारार्गवमुत्तार्य त्रिलोकाम्रेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
 फल एषानाश्नुनुर्धस्य वृष्टस्योद्यानमात्र ॥ अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
 द्वादशस्य तत्र किञ्चिन्मन्ये पञ्चापवाप्तम् । फल मासोपवासस्य लभते वैश्वदर्शनम् ॥१७९॥
 वैषाखस्य समाप्ताय याति पाग्यामिक पञ्चम् । फल वर्षोपवासस्य प्रबिरय द्वारमरुते ॥१८०॥
 फल प्रदक्षिणादृष्ट मुक्ते वर्षशतस्य तु । द्वा चिनास्थमाप्नोति फल वर्षसहस्रपञ्चम् ॥१८१॥
 अनन्तफलमाप्नानि स्तुति कुर्वन् स्वमावत । नहि भजेज्जिनेन्द्राग विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
 कर्म भक्त्या चिनेन्द्राग चय भवत गच्छति । कागकर्मा पद याति यस्मिन्ननुपम सुखम् ॥१८३॥

देव होता है ॥१६८॥ पुरागमे सुना जाता है कि अभिपेक्षके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिपेक्षको प्राप्त हुए हैं ॥१६६॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रत्नागलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम इन्द्रया घारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वाद्योंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर वनवाता है उस मुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा ननवाता है वह शीघ्र ही मुर तथा अमुरांके वनम सुख प्राप्तकर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें श्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म मचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके वनमानसे वपन्न हुए पुण्यको बगानरी नहीं कर सकते ॥१७४-१७५॥ इस वहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्तकर जो मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य हम त्रिपिसे धर्मका सेवन करता है वह ससार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य चिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तन करता है वह वेलाका, जो वद्यमश अभिलाषी होता है वह वेलाका, जो जानेरा आरम्भ करता है वह बीलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपगामका, जो कुछ दूर पहुँच जाग है वारह उपवासका, जो धीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपगामका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छहमासके उपगामका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके मुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपगामका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपगामके फलको प्राप्त करता है । यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८-१७९॥ आपार्य छति कहते हैं कि हे भवन ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म क्षयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षय हो जाते हैं वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता

दत्तुं केऽयन्तसद्भक्तिं प्रणम्य चरणीं गुरो । जगदा भरतो धर्मं सागारं सुविधानत ॥१८४॥
 बहुध्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीत श्रद्धयान्वित । विशेषतो दत्तं दानं स साधुषु यथोचितम् ॥१८५॥
 सम्यग्दर्शनरत्नं स हृदयेन सदा वहन् । चकार विपुलं राज्यं साधुवेष्टापरायण ॥१८६॥
 प्रतापश्चानुरागश्च समस्तः तस्य मेदिनाम् । वज्रमप्रतिघातेन रहितं गुणवारिधे ॥१८७॥
 अभ्यर्द्धं तस्य पत्नीनां शतं देवीसमविधाम् । न तत्रासक्तिमायाति शतपत्रं यथाभ्यसि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य निच मगधाधिपासात् कदा नु हृष्ये निरगारदांचाम् ।
 तप करिष्यामि कदा नु घोरं सगैविमुक्तो बिहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रधनुः

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्गान् परिबर्ज्य धीरा ।
 दग्धवाग्विल कर्म तपोयत्नेन प्राप्तः पदं निर्धुतिस्वीत्यसारम् ॥१९०॥

उपजाति

विष्टासि पापो भवदुःखमग्नं परयत्नपादं क्षणिकं समस्तम् ।
 पूर्वाह्नरहोऽत्र जनोऽपराहे न द्रवते कश्चिद्दहोऽस्मि मूढ ॥१९१॥

इन्द्रधनुः

व्यालान्जलाद् वा विपतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शस्त्राद् ।
 गूलाद् धराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति दीनानवयधुमप्ये ॥१९२॥

है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तिसे युक्त भरतने गुरुके चरणाको नमस्कार कर
 त्रिधिपूर्णक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥१८४॥ अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मके मर्मको जाननेवाला,
 विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत उन साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने
 लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके पालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको
 धारण करता हुआ विपुल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागररूप भरतका
 प्रताप और अनुराग दोनों ही विना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥
 हमने वेदियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें
 आमक्तिको प्राप्त नहीं होता था । जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता
 है वसी प्रकार यह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमरामजी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती
 थी कि मैं निर्ग्रन्थ दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता
 हुआ घोर तप कब करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीरवीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व
 परिग्रहका त्यागकर तथा तपोत्रलसे समस्त कर्मोंको भस्म कर सन्तोषरूपी सुखसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको
 प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को सज्जमद्वार देखता हुआ भी ससारके
 दुःखमें मग्न हूँ । इस ससारमें जो मनुष्य पूर्वाह्न कालमें देखा गया है वही अपराह्न कालमें नहीं
 दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ़ बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन सुखको धारण करनेवाले
 बन्धुजनाके धोचम बैठे हुए या यद्वा प्राणी सर्पसे, जलसे, विपसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके

उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणजैर्नोऽयं प्रत्यर्थते दुःखसहस्रभागी ।

‘क्षारणवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसृतोमिंजालैः ॥१३३॥

विधाय राज्यं घनपापदिग्धो हा क प्रपत्ये नरकं तु घोरम्^१ ।

शरासिचक्रागनगान्यकारं किं वा नु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥१३४॥

लब्ध्वापि जैन समयं यदेतन्मनो मदीयं^२ दुरितानुबद्धम् ।

करोति नो विस्पृहतामुपेयं विमुक्तिदत्तं निरगार्थमम् ॥१३५॥

एव च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।

पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रविं न चन्द्रम् ॥१३६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं
नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्व ॥३२॥

द्वारा छोड़े हुए शखसे, अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥१३३॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणोंसे हजारों प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठा है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोंके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥१३३॥ हाय हाय, मैं राज्य कर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, सङ्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शालमली आदि वृक्षां और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पहुँगा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यञ्च पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥१३४॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥१३५॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमें कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥१३६॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन, और भरतके राज्यसिंघेजना, वर्णन करनेवाला चत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥

ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परित्राप पद्मस्तापससध्रयान् ॥१॥
 तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्वादुफलसम्पूर्णां पादपा हव भूरय ॥२॥
 विशालपत्रसन्दृष्ट्वा मग्नाः सैवितहिकाः । पलाशोदुम्बरैधानां प्लिकाभिर्युता बन्विन् ॥३॥
 अकृष्णपद्मवाचनेन शुष्यता पूरिताङ्गणाः । वतंसद्रि सुविध्रग्धै रोमन्ध रातिता मृगै ॥४॥
 सप्तर्षिर्बहुभिर्मुक्ता स्यन्ति सतत पटुः । ललितोष्णपुष्पद्वयं तानकेन कृतान्वितः ॥५॥
 पटुद्विविशदं युक्ता शारिकाशुककौशिकैः । वारुधा सुप्तरम्याणां क्षायामु समवस्थितै ॥६॥
 कन्याभिर्घटकैः स्वादु वारिणा भ्रातृतेजितैः । पूर्णलयालकैर्वाल्मीकैर्हर्मिः कृतराजना ॥७॥
 फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वादुवारिभिः । सादरैः स्वागतस्वानैः सार्धदानैस्तभाशनैः ॥८॥
 सम्भाषणैः कुर्गदानैः शयनैर्दुपह्वयैः । तापमैरुपचारैस्ते पूजिता भ्रमहारिभिः ॥९॥
 "आतिथेया स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसा । रूपेष्वेव प्रकारेषु विशेषेण मुमुक्षय ॥१०॥
 उपिवा गच्छता तेया ययुर्मागेण तापसा । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवाकुर्वीत किमन्यकै ॥११॥
 शुष्कपत्राग्निस्तत्र तापसा वायुपाथिनः । सातारूपहस्तस्वान्तां धृतिं दूरेण तत्पटुः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्विध्याके सुन्दर आश्रममें पहुँचे । वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पद्म जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोंको धारण करनेवाले और रत्नादिष्ठ फलासे युक्त बहुतसे तापस रहते थे ॥१-७॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे । उनके आगे बैठनेके लिए चतूरे थे, जो एक और कहीं रखरी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड़ियोंसे सहित थे ॥१॥ निना जोते मोये अपने आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूज रहे थे तथा निम्निततासे रोमन्ध करते हुए हरिणासे वे सुरोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी वालकोंसे युक्त गायकों वध्वे अपनी सुन्दर पैंछ ऊपर उठाकर उन मठाके आँगनोंमें चीकड़ियों भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले सोता मीना तथा वल्क आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझ कर घडा द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियों भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मोठा जल, आदरसे भरे रत्नागतके शब्द, अर्घके साथ दिये गये भोजन, मधुर सम्भाषण, कुटोका दान और फोमल पत्ताकी शय्या आदि यथायथको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सम्मान किया ॥८-९॥ तापस संग स्वभापसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुराणोंके मिलनेपर ता उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ रामलक्ष्मण वहाँ वसकर जत्र आगे जाने लगे तत्र वे तापस उनसे मार्गमें आ गये सो ठीक हा है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंको तो बात ही क्या थी ? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पानकर जीवन निताते थे इसलिये सीताका रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धारजको

१. निवर्तितसहिता । २ अकृष्णपद्ममानेन म० । ३ शलस्तवभि म० । ४ कृतराजन म० ।

५ अतिथिपु साधन ।

तानुस्तापसा वृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठतं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१३॥
 सर्वातिथ्यसमेतास्त्वप्यष्टाषु विचक्षणौ । विश्रम्भ जानु मा गातां नारीष्विव नदीष्विव ॥१४॥
 तापसप्रमदा दृष्ट्वा पत्र पत्रनिर्वाचणम् । लक्ष्मण च जहुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥
 काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्माहादितलोचनाः । व्रजन्त्यन्यापदेणेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥
 मधुरं ध्रुवते काश्चिद्वन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो ययोचितम् ॥१७॥
 अतीत्य त्रीनितः कोशानरण्यानी जनोन्मिता । महानोकहसन्नुच्चा हरिशार्दूलसङ्कुला ॥१८॥
 समिक्कप्रसूनार्थं तापसा अपि तां भुवम् । न व्रजन्ति महाभोमां दर्भसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
 चित्रकूट, सुदुर्लभश्च, प्रविशालो महीधरः । भयङ्गिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गच्छतः ॥२०॥
 तापस्योऽवरयमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कथां चिरम् ॥२१॥
 ततस्ते भूमहीभ्रात्राववाप्तसुकर्कशम् । महातरुनमारुढवह्नीजालसमाकुलम् ॥२२॥
 क्षुद्रतिष्ठद्वारादूलनखविचलतपादपम् । सिंहाहतद्विपोद्गां परकर्मक्षिपुच्छुलम् ॥२३॥
 उन्मत्तवारणस्कन्धतटैरुन्मत्तमहातरुम् । विसरिष्वनिविग्रस्तसमुत्कीर्णकुङ्कुलम् ॥२४॥
 सुमाजगरनिश्वासवायुपूतगङ्गरम् । बराहयूयपोतप्रविपर्माकृतपत्तवलम् ॥२५॥
 महामहिषप्राप्रभग्नवल्गोकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहाभोगसञ्चरद्रोभिर्भाषणम् ॥२६॥

दूर छोड़ दिया ॥१२॥ वृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिये ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियाँ सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विरवास नहीं कीजिये । आप स्वयं बुद्धिमान् हैं ॥१४॥ तपस्वियोंको स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गई ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थी कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं ? हम आपका सब कार्य यथा योग्य रीतिसे कर देंगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाभटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा ढाँहकी सूचियोंसे व्याप्त है । ईंधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लभ, तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे हैं ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहने पर वे बड़ी कठिनाईसे लौटी और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रही ॥२१॥

अधानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अप्रभाग के चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त कुण्ठ हुए व्याघ्र नखांसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी फीच से युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्नत हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे । जहाँ सिंहोंकी गर्जनासे भयभीत हुए भृगु इधर-उधर दीड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुच्छाएँ भरी हुई थीं । तथा सूकर समूहके मुखके अप्रभागके आघात से छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अप्रभागसे जहाँ

तरधुत्तमारङ्गरिभ्रान्तमक्षिकम् । कण्टकापत्तपुच्छाग्रप्रतप्यधमरीगणम् ॥२०॥
 दप्यमगूरितधाविन्मुक्तमूचाविचित्रितम् । विपपुष्परजोघागनृगितानेकजन्तुम् ॥२१॥
 गन्धिल्लसमुत्तदतरकन्धर्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगणयमातमग्नपक्षवजाङ्गम् ॥२२॥
 नानावचिह्नकूलकूरजितप्रतिनादिनम् । शान्तामृगकुलान्तचलप्राग्भारपादपम् ॥२३॥
 तांशवेगगिरिश्रोत शतनिर्दारितक्षेमम् । वृक्षाग्रविस्फुरत्स्फोतदिवाकरकोष्करम् ॥२४॥
 नानापुष्पगलाक्रीणं विचित्रामोदवासितम् । विविधोपधिसम्पूर्णं वनमस्यसमाकुलम् ॥२५॥
 कचिन्नोऽथ कचिपीत कचिद्रक्त हरितवचिन् । पित्रारुद्रायमन्यत्र विविशुर्विपिन महन् ॥२६॥
 तत्र ते पित्रदृष्टस्य निर्मलैवतिचारुषु । क्रादन्तो दशयन्तरस्य सद्रस्नुनि परस्परम् ॥कुलक (द्रादशभि)
 फलानि स्वादुहारीणि स्वदमाना पदे पदे । गायन्तो मधुर हारि किन्नरीणा त्रपात्रम् ॥२७॥
 पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्भूषयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैर्गन्धिभिर्गन्धितस्तनरम्यम् ॥२८॥
 उद्यानमिव निदांसा विरक्तकान्तिलोचना । स्वच्छन्दकृतमस्कारा सखलीचनतस्करा ॥२९॥
 रत्नागृहेषु विभ्रान्ता मुहुर्बैषमहारिषु । कृतनानाकथापद्म किञ्चिन्नर्मविवापिन ॥३०॥
 म्रजन्तो लीलया सुक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वन चाद त्रिदशा इव मन्दनम् ॥३१॥
 पचोर्नै पञ्चभिर्नासितमुद्देशमतीत्य ते । जनै ममाकुल प्रादुर्देशमन्यन्तमुन्दरम् ॥३२॥

धामियोंके शिरसर खुद गये थे तथा जो वडे-उडे फण उँचे उठाकर चलनेवाले सोंपांसे भयङ्कर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मन्त्रियों भिन भिना रही थी और फटीली भाड़ियोंमें पूँड़के बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके फुण्ड बैचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहङ्कारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विपपुष्पोंकी परागके सँयनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गंगा हाथियोंके गण्ड-स्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी भर रहा था तथा इधर-उधर लौढ़ते हुए गणय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी कूँभ्रनि गूँज रही थी तथा बानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीन वेग से बहनेवाले सैरुङ्गों पहाड़ों भरनोंसे जहाँ पृथिवी विदोष हो गई थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धसे सुगन्धित था, नाना ओपधियोंसे परिपूर्ण था, और जहङ्गली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिङ्गल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महागुणभाव वहाँ चित्रदृष्टके सुन्दर निर्मलरूप मीठा करते, सुन्दर यस्तुणें परस्पर एक दूसरेकी दिखाते, स्पर्शित मनोहर फल खाते, पद पदपर किन्नरियोंकी लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरेकी भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगन्धित द्रवसे शरीरको छिन्न करते हुए इस प्रकार भ्रमणकर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों । उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इन्द्रानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रों का अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंकी हरण करनेवाले निजुञ्जोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावार्ता करते थे और तरह तरहकी जीवाणें करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थान को पारकर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे । वह देश गायाँकी गरवन्ती

गोघण्टारवसम्पूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तोविषय स्फीतं ग्रामपत्तनसङ्कुलम् ॥४१॥
 मार्गं तत्र कियन्त विदतिक्रम्य जनोज्झितम् । विषयैकान्तमापुस्ते पृथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥
 जायां न्यग्रोधजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्माद्यं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥
 सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽत्रातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्र्वेत्ये फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥
 पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना ग्रामास्तुङ्गावनिस्थिताः । सरांस्यच्छिन्नपद्मानि युक्तानि विविधैः खगैः ॥४५॥
 अन्धाय घटकैर्भर्तैः शकटैश्च विसङ्कटः । करण्डैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥
 विर्कीणांस्तण्डुला माषा मुद्गाः सूर्यादयस्तथा । वृद्धोच्चोयं मृतो जोगोष्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
 देशोऽयमतिविस्तारः शोभने न जनोज्झितः । अत्यन्तविषयासन्नो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥
 ततोऽयन्तमुदुस्पर्शं निषण्ण रत्नकम्बले । देशोद्भासकृतालाप राम पार्श्वस्थकामुकम् ॥४९॥
 पद्मगर्भदम्भायां पाणिभ्यां पूजितेहिता । द्वाग्विभ्रमयितुं सका सीता प्रेमाम्बुश्रीर्धिका ॥५०॥
 उत्सार्य 'बोहरप्र' तां सादरक्रमकोविदः । सबाहवितुमासक्तो लक्ष्मणो ज्यायसोदितः ॥५१॥
 निरूपय ह्यचित्तावद् ग्राम नगरमेव वा । घोष वा लक्ष्मण शिर्षं श्रान्तेय हि प्रजावती ॥५२॥
 ततोऽन्यस्यातिगुह्यस्य वृक्षस्योर्ध्वसमाश्रितः । दृश्यते किञ्चिदत्रेति पद्मेनोच्यत लक्ष्मणः ॥५३॥
 सोशोचदेव परयामि रूपपर्वतसन्निभान् । शारदाभ्रसमुत्प्लुङ्गः शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

मे वेंचे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यके सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोंसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनो, कितना ही मार्ग उल्लंघकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक वट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेको धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पौंडा और ईखोंके वागांसे युक्त है, जिनके कमलोंको किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घाँ, गाड़ियों, पिटारों, कुँडों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लयी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोंकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊँजड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथांसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पाद मर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जाँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गई है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोंकी बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चोँदीके पर्वतके समान हैं, शारद ऋतुके

प्राग्भारसिंहकणस्थजिनमिषोपलक्षितान् । प्रामादान् परमाद्यानान् प्रचलत्तुवलभजान् ॥५५॥
 प्रामांश्रावतवापीभिः सस्यैश्च कृतप्रेष्टान् । नगराणि च गन्धर्वपुरैर्विभ्रन्ति तुल्यनाम् ॥५६॥
 दृष्टिगोचरमात्रे तु सन्निवेशाः सुभूरयः । दृश्यन्ते न पुनः कश्चिद्कोऽप्यालोच्यते जनः ॥५७॥
 यमं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः । उपानांताः किमु म्लेच्छैर्द्रुतिद्वं क्रूरमभिः ॥५८॥
 एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः । स्थाणुर्न पुरुषो य तु ननु वैप चलाकृतिः ॥५९॥
 यायेप किमुतायाति पर्याम्यागच्छतीत्यवयम् । तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥
 अयं मृग इवोद्विग्नो द्रुतमायाति मानवः । रुषोर्द्धभूर्धजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
 पूर्वाच्छादितवचस्को वसानश्चरत्तण्डकम् । स्फुटिताग्निः स्रवत्प्रेदो दशयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
 धानयेममितः क्षिप्रमिति पद्मेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सत्रिमय इवाग्निकम् ॥६३॥
 दृष्ट्वा तं पुरुषो रुदरोमा विस्मयवृत्तितः । तिलग्नितगतिः किञ्चिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
 समाकम्पितदुष्टोऽयमवतीर्य समागतः । किमिच्छो वरुणो दैत्यः किं नरगः कित्तरो नरः ॥६५॥
 वैवस्वतः शशाङ्को नु वद्विब्रवण्यो नु किम् । भास्करो नु भुव प्रातः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥
 इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलोक्त्य लोचने । निश्चेष्टावयवो भूमौ पपाताम्यकचेतनः ॥६७॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं मा भैषीरिति भाषितः । प्रत्यागतशक्तिर्नति लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः^३ ॥६८॥

वाङ्मोके समान ऊँचे शिखरांसे सुराभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम धनीओंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरों को देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बी-चौड़ी घापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिताई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिगाँव दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आठमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गई है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चञ्चल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता । कुछ देर तक गौरसे बेचनेके भाव लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रुखे तथा पड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मँलसे दूषित है, लम्बी दाढ़ीसे इसका वक्षस्थल ढक रहा है, यह फटे चिथड़े पहिने है, इसके पैर फटे हुए हैं, पसीना भर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिता रहा है ॥६१-६२॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ । तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्रयके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमाञ्च उठ आये । वह आश्रयसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृद्धको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ डर मत । कुछ देर बाद जब चेतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

ततः सौम्याननं राममभिराम समन्ततः । दृष्ट्वा कान्तिसमुद्रस्थं चक्षुरस्तवन्निरिणम् ॥६६॥
 सीतया शोभित पार्श्ववर्तिन्यातिविनांतया । सुमोच पुरुषः सद्यः क्षुधादित्रपरिभ्रमम् ॥७०॥
 ननाम चाञ्जलिं कृत्वा शिरसा स्पृष्टभूतलः । द्वायायां भव विश्वस्त इति चोक्त उपाविशत् ॥७१॥
 अदृक्क्षत ततः पद्मः चरन्निव गिरामृतम् । आगतोऽसि कुतो भद्र को वा किंशङ्कोऽपि वा ७२॥
 सोऽवोचद् दूरतः स्थानाङ्गोरगुप्तिः^१ कुडुम्बिकः । देशोऽयं विजयः कस्मादिति वृष्टोऽददत् पुनः ॥७३॥
 सिंहोदर इति ख्यातो देवोऽस्युज्जयिनीपतिः । प्रतापप्रणतोदारसामन्तः सुरसन्निभः ॥७४॥
 दशाङ्गपुरनाथोऽस्य वज्रकर्णधुनिर्महान् । अत्यन्तदयितो भृत्यः कृतानेकाद्भुतक्रियः ॥७५॥
 सुवचा त्रिभुवनार्घाशं भगवन्त जिनाधिपम् । निर्ग्रन्थांश्च नमस्कारं न करोत्यपरस्य सः ॥७६॥
 साधुप्रसादस्तस्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । पृथिव्यां स्वातिमायातं देवेन किमु न श्रुतम् ॥७७॥
 प्रसादः साधुना तस्य कृतः कथमितोरतः । लक्ष्मीधरकुमारेण पद्माभिप्रायसूरिणा ॥७८॥
 उवाच पथिको देव समासात् कथयाम्यहम् । प्रसादः साधुना तस्य यथायमुपपादितः ॥७९॥
 अन्यदा वज्रकर्णोऽयं दशारण्यसमाश्रिताम् । प्राविशत् सत्त्वसम्पूर्णमटवीं शृगयोद्यतः ॥८०॥
 जन्मनः प्रभृति मृतः स्वयातोऽयं विष्टपेऽङ्गिले । हृषीकेशरगो मृतः सदाचारपराङ्मुखः ॥८१॥
 लोभसंज्ञासमासक्तः सूक्ष्मतत्त्वान्धचेतनः^२ । भोगोद्भवमहागर्वपिशाचप्रहृष्टपितः ॥८२॥
 तेन च भ्रमता तत्र कर्णिकरवनान्तरे । दृष्टः शिलातले साधुर्दधानः शममुत्तमम् ॥८३॥
 परित्यक्तादृतिर्ग्रन्थि समासनिग्रमस्थितिः । विद्वद्भूव विरशङ्कः केसरीव भवोऽङ्गिकतः ॥८४॥

तदनन्तर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकारसे सुन्दर थे, मानो कान्तिके समुद्रमें ही स्थित थे, नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले थे, और पासमें बैठी हुई अतिशय नम्र सीतासे सुशोभित थे ऐसे रामको देखकर उस पुरुषने क्षुधा आदिसे उत्पन्न हुए भ्रमको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६६-७०॥ उसने हाथ जोड़ भरतकुसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा 'द्वायामें विश्रामकर' इस प्रकार कहे जाने पर वह बैठ गया ॥७१॥ तदनन्तर रामने बाणीसे मानो अमृत भराते हुए उससे पूछा कि हे भद्र ! तू कहाँसे आ रहा है और तेरा क्या नाम है ? ॥७२॥ उसने कहा कि मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ और सोरगुप्ति मेरा नाम है । 'यह देश मनुष्योंसे रहित क्यों है ?' इस प्रकार रामके पूछनेपर वह पुनः कहने लगा ॥७३॥ कि जिसने अपने प्रतापसे षडे-चडे सामन्तोंको नग्रीभूत कर दिया है तथा जो देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नामसे प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीका राजा है ॥७४॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्रयजनक कार्य किये हैं इसका अत्यन्त प्रिय सेवक हूँ ॥७५॥ वह तीन लोकोंके अधिपति जितेन्द्रभगवान् और निर्ग्रन्थ मुनियोंकी छोड़कर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करता है ॥७६॥ 'साधुके प्रसादसे उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥७७॥ इसी बीचमें रामका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने उससे पूछा कि हे भाई ! साधुने इस पर किसी तरह प्रसाद किया है ? सो तो बता ॥७८॥ इसके उत्तरमें उस पथिकने कहा कि हे देव ! साधुने जिस तरह इसपर प्रसाद किया वह मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥७९॥

एक समय शिकार खेलनेके लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरके समीपमें स्थित जीवोंसे भरी अटवीमें प्रविष्ट हुआ ॥८०॥ यह वज्रकर्ण जन्मसे ही लेकर समस्त संसारमें अत्यन्त क्रूर प्रसिद्ध था, इन्द्रियोंका वशगामी था, मूर्ख था, सदाचारसे विमुख था, लोभ अर्थात् परिग्रह संज्ञामें आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्वके विचारसे शून्य था, और भोगोंसे उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच ग्रहसे दूषित था ॥८१-८२॥ उस अटवीमें घूमते हुए उसने कनेर वनके बीचमें शिलापर विद्यमान उत्तम शान्तिके धारक एक साधु देखे ॥८३॥ उन साधुके ऊपर कोई प्रकारका

स प्रावभिः करभानोरतितप्तः समन्ततः । अम्याख्यानशतैस्तौर्वैदुर्जनस्येव सञ्जनः ॥८५॥
 अथारूढः स त इष्टा कृतान्तममदर्शनं । रत्नप्रमङ्गयममरं परमार्थनिवेशनम् ॥८६॥
 पापघातकर सर्वभूतकारुण्यमद्गतम् । कुन्तपाणिस्वायेन भूषित भ्रमणभ्रिया ॥८७॥
 अत्र किं स्थिते साधो सोऽनोचद्वितमामनः । अनाचरितरूपं धम्मन्मान्तरयनेष्वपि ॥८८॥
 जगाद विहसन् भूभृदनुया खलवस्थया । न किञ्चिदपि ते सौख्यं कीदृशं हितमामनः ॥८९॥
 मुनलावण्यरूपस्य कामार्थरहितस्य च । अचेत्स्यासहाय्यम्य कीदृशं हितमामनः ॥९०॥
 स्नानालङ्काररहितैः परपिण्डोपजोविभिः । मवादयोर्नरे कीदृक् स्थिते हितमामनः ॥९१॥
 इष्टा तं कामभोगार्ते दयावान् संयतोऽयदत् । हितं पृच्छसि किं त्व मां क्षिप्राराधाराग्रजम् ॥९२॥
 इन्द्रियैर्विज्ञितान् पृच्छ हितोपायगहिष्कृतान् । मोहेनायन्तपृच्छेन आम्यन्ते ये भवानुधौ ॥९३॥
 हन्ता सखसहस्राणिमामानर्थपरायणः । यास्त्येव नरकं घोरमवश्यं नष्टचेतनः ॥९४॥
 नूनं त्वया न विज्ञाता घोरा नरकमूमयः । उल्पायोप्याय पापेषु यपरा कुरपे रतिम् ॥९५॥
 पृथिव्यः सति सस्यापो नरकाणां मुद्राकणाः । सुदुर्गन्धा सुदुष्पेक्षाः सुदुष्परा सुदुस्तरा ॥९६॥
 तीक्ष्णायस्कीलसङ्कीर्णां नानाघन्त्रसमाकुन्धाः । क्षुरगाराद्रिसयुक्तास्तस्रोदृष्टशोषिकाः ॥९७॥
 रौरवाद्यवदान्ता महाध्वान्ता महाभया । असिपत्रचक्रवृक्ष महावारमदीयुताः ॥९८॥

आवरण नहीं था, वे धाममें बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पक्षीके समान निःशब्द और सिंहके समान निर्भय थे ॥८५॥ जिस प्रकार दुर्जनके अत्यन्त तीक्ष्ण सैकड़ों कुचबन्तोंसे सज्जन सन्तप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरों और ऊपरसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा सख औरसे सन्तप्त हो रहे थे ॥८६॥ जो धमराजके समान दिखाई देता था ऐसे वस्त्रकर्णने घोड़ेपर चढ़े-चढ़े, समुद्रके समान गम्भीर, परमार्थके ज्ञाता, पापोंका विनाश करनेवाले, समस्त प्राणियों की दयासे युक्त एवं भ्रमण लक्ष्मीसे विभूषित साधुसे भाला हाथमें लेकर कहा ॥८६-८७॥ कि हे साधो ! यह क्या कर रहे हो ? साधुने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्माका हित करता हूँ ॥८८॥ राजा वस्त्रकर्णने हँसते हुए कहा कि इस अवस्थामें तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्माका हित कैसा ? ॥८९॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थसे रहित है, जिसके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥९०॥ स्नान तथा अलङ्कारसे रहित एवं परके द्वारा प्रदत्त भोजनपर निर्भर रहनेवाले आप जैसे लोगोंके द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥९१॥ कामभोगसे पीडित राजा वस्त्रकर्णको देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बन्धनकी तोड़नेवाले मुझसे हित क्या पूछ रहा है ? उनसे पूछ कि जो इन्द्रियोंके द्वारा ठगे गये हैं, हितके उपायोंसे दूर हैं और अत्यन्त बड़े हुए मोहसे जो संसार-सागरमें भ्रमण कर रहे हैं ॥९२-९३॥ यह जो तू हजारों प्राणियोंका घात करने वाले, आत्माके अनर्थ करनेमें तत्पर एवं सद्-असद्के विचारसे रहित है सो अवश्य ही भयङ्कर नरकमें पड़ेगा ॥९४॥ जो तू बठ-बठकर पापोंमें परम प्रीति कर रहा है सो जान पड़ता है कि तूने भयङ्कर नरककी पृथिवियोंको अब तक जाना नहीं है ॥९५॥ इस पृथिवीके नीचे नरकोकी सात पृथिवियों हैं जो अत्यन्त भयङ्कर हैं, अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त हैं, जिनका देखना अत्यन्त कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यन्त दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यन्त दुःखकारक है ॥९६॥ लोहेके तीक्ष्ण कौंटोंसे व्याप्त हैं, नाना प्रकारके यन्त्रोंसे युक्त हैं, क्षुराकी धाराके समान पीने पर्वतोंसे युक्त हैं, जिनका तल भाग तपे हुए लोहेसे भी अधिक दुःखदायी है ॥९७॥ जो रौरव आदि बिलोंसे युक्त हैं, महाअन्धकारसे भरी हैं, महा भय उत्पन्न करनेवाली हैं, असिपत्र-

पापकर्मपरिकृष्टैर्गैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषाधमैः ॥१६१॥
 भवन्तमेव पृच्छामि त्वादशैर्विषयाभिरुः । क्रियते पापसंसर्गः कादश हितमात्मनः ॥१००॥
 इन्द्रियप्रभवः सौत्यः किम्पाकसदृशः कथम् । अहन्यहन्पुपादाय मन्यते हितमात्मनः ॥१०१॥
 हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतावा यो दयापरः । दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥१०२॥
 कृत तैरामनः श्रेयो ये महाव्रततत्परः । अधवाणुव्रतैर्युक्ता शेषा दुःखस्य भाजनम् ॥१०३॥
 परलोकादिर्हितस्त्व कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽधुना पापं कृत्वा यास्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥
 अमा निरागतः क्षुद्रा वराहाः क्षितिशायिनः । अनथा लोलनयना निचोद्विग्ना वने मृगाः ॥१०५॥
 आरण्यवृण्णानां यकृतविग्रहधारिणः । अनेकदुःखसङ्घाता पूर्वदुष्कृतभोगिनः ॥१०६॥
 राजावपि न विद्वन्ति निद्रां चकितचेतसः । साध्वाचारैर्न युक्तं ते कुलजैरहितु नरैः ॥१०७॥
 अतो भवामि राजस्त्वा यदाच्छ्रस्यामनो हितम् । त्रिधा हिंसा परित्यज्य कुर्वहिंसा प्रयत्नतः ॥१०८॥
 उदैरियुपदेशोऽर्थैर्यदासीं प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायात फलैरिव महारहः ॥१०९॥
 उत्तमं प्रसूतं संक्षेपानुपादितभूतम् । प्रणनामोत्तमाग्नेन सुसाधु रक्षिताञ्जलिः ॥११०॥
 निराश्रयः सौम्यया हृत्वा तमेव चाभ्यनन्दयन् । रक्षाभ्योऽयं वाञ्छितः सिद्धो मुनिरस्यत्परप्रहः ॥१११॥
 शकुन्तयो मृगाश्चाभा धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिपण्ण ये पर्यन्ताम समाहितम् ॥११२॥
 अतिधन्याऽहमप्यहं भुक्त्वा पापेन कर्मणा । यदेतं त्रिजगद्भ्यः प्राप्तं साधुसमागमम् ॥११३॥

वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियासे युक्त हैं ॥१६८॥ जो पाप कार्योंसे सक्लेराफो प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियाके समान निरङ्कुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंमें हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥१६९॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोसे पीडित तथा पापीम लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजय सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमें तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतासे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र है ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमें पाप कर दुर्गतिको जायगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग जो अनाथ हैं, चञ्चल नेत्राके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जङ्गलके वृण और पाना से वने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवसे किये पापको भोग रहे हैं और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमें भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं, उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५-१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन वचन कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जब राजा सम्बोधित गया तब वह फलासे वृक्षके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़ शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रहहित प्रशसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमें निवास करने वाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य

वन्धुस्नेहमय चन्ध द्विचा ज्ञाननरैरयम् । केसराव विनिःक्रान्त प्रभु ससारपञ्जरात् ॥११३॥
 अनेन साधुना परम वशीकृतमनोरिपुम् । नाम्नापकारयोगेन शीलस्थान प्रपात्यने ॥११५॥
 अह पुनरत्साया तावदस्मिन् गृहाधमे । अणुवत्तविषां रम्ये करोमि परमा धृतिम् ॥११६॥
 इति सञ्चिन्त्य जग्राह तस्मात्साधुर्गृहरिपतिम् । चकारावग्रहं चैव भावप्लवितमानम् ॥११७॥
 देवदेव त्विन् मुञ्च्य परमा मानमच्युतम् । निर्मन्यारच महाभाग्यं वामाश्रयपरानिति ॥११८॥
 प्रातिवर्धनमज्ञस्य मुनेस्तस्य महादर । चकार महतीं पूजामुपवाम ममाहित ॥११९॥
 उपासानस्य चाट्यात् परम साधुना हितम् । धर्ममाराध्य मुच्यन्ते ससाराद् मन्यदेहित ॥१२०॥
 सागार निरगार च द्विधा चारित्र्यमुत्तमम् । सावलम्ब गृहस्थाना निरपेक्ष खत्राममाम् ॥१२१॥
 दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानममन्विता । प्रथमाद्यनुयोगारच प्रसिद्धा त्विनशासने ॥१२२॥
 सुदुष्कर विरोधाना चारित्र्यमवधार्य म । पुन पुनर्मति चक्रेऽणुव्रतेष्वेव पाथिव ॥१२३॥
 निधानमधनेनेव प्राष्ठ शिष्यदुत्तमम् । धर्म्यध्यानमसौ बुद्ध्या परमा एतिमागत ॥१२४॥
 निताम्बकर्मण्यमुपशान्तो महोपति । इति प्रमोदभावात् सयतोऽपि विरापत् ॥१२५॥
 गते साधौ तपोयोग्य स्थान सुहृत्समन्विता । विमृष्या परया युक् सुलभ सुखतपित ॥१२६॥
 विहितानिधिमन्मानोऽपरेषु कृतधारण । प्रणम्य चरणौ माधो स्वस्थानमविशन्पु ॥१२७॥

हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नपाके द्वारा जन्धुओंके स्नेहरूपी धन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजरेसे बाहर निकले हैं ॥११५॥ देवो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वशकर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी एम नहीं हुई है । अत मैं इस गृहस्थाश्रमसे रहकर रमणीय अणुव्रतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥

इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अङ्गीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणासे अच्युत परमात्मा जितेन्द्रिय और उदार अभिप्रायके धारक निर्मन्य मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७-११८॥ इस प्रकार उसने उडे आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और गिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वरुणको मुनिराजने उस परम दिनका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी ससारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनागार । इनमेंसे पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनमें सहित है तथा गृहस्थाने होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके सयागसे वर्शनर्म विशुद्धता उत्पन्न होता है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्मन्य मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुव्रत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम सन्तोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उच्छुष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किता निर्धनने उत्तम गजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त दूर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह नेत्र मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यन्त्रके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुप्तसे स्रुप्त था ॥१२६॥ दूसरे दिन अतिधिका

वहन् परमभावेन वज्रकर्णं सदा गुरुम् । धभूव वातसन्देहश्चिन्तामेवमुपागत ॥१२८॥
 भृत्यो भूवा विपुण्योऽहं सिहोदरमहामृत । अकृत्वा विनय भोगान् कथं सेवे नैकारिण ॥१२९॥
 इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्नोऽन्तरामना । विधिना प्रेर्यमाणस्य मतिरैव समुद्भूता ॥१३०॥
 कारवायूमिका स्वार्णौ सुवतस्वामिबिम्बिताम् । दधामि दक्षिणाहुटे तां नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥
 घटिता सा ततस्तेन पाणिभामुरपीठिका । पिन्ददा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥
 स्थि वा सिहोदरस्याग्रे कृत्वाद्भुष्ट पुरं कृती । प्रतिमां तां महाभागो नमस्यति स सन्ततम् ॥१३३॥
 रम्प्रविन्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽ यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोपं पापं सिहोदरोऽगमत् ॥१३४॥
 माययाह्वयच्चैनं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसम्पदा ॥१३५॥
 बृहद्गतिमृजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽश्वतेनास्य विनीतो गन्तुमर्हसि ॥१३६॥
 दण्डपाणिस्त्वाचैकं पावरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्यामकोद्भासां समागम्यैवमुत्तवान् ॥१३७॥
 यदि भोगशराराभ्यां सुनिर्विण्णोऽसि पाथिव । तत उज्जयिनीं गच्छ मोचेतो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
 क्रुद्धः सिहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । भनमस्कारदोषेण क्रुद्ध राज्ञस्तमाप्सितम् ॥१३९॥
 एव स गदिता दृष्यी केनायेप दुरामना । मांसपर्वहृत्चित्तेन भेदं कर्तुमर्भाप्सित ॥१४०॥
 तं विसर्पमदामादं किञ्चिन्लेदमुपागतम् । सोऽष्टवृक्षकोऽसि किनासां कुतो वासि समागत ॥१४१॥

सत्कार कर उसने पारणा का और फिर मुनिराजके चरणोंको प्रणाम कर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति भावसे गुरको सदा हृदयमें धारण करता था तथा जिसे किसा प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राणा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राणा सिहोदरका सेवक होकर यदि उसकी विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशामे भोगोंका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित गणा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवान्की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अगूठी बनवा कर दाहिने हाथके अगूठामें धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नातिनिपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमें सुशोभित थी ऐसी अगूठी बनवाई और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाका नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेपी वैरीने यह समाचार सिहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशांगपुरमें रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहद्रतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ धुसवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया । उसी समय जिसके हाथमें लाठा था, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरारसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन् ! तुम सिहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है । अब जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहने पर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् सुभमे और सिहोदरमें फूट डालनेका उद्योग किया है । इस प्रकार

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽत्यन्तदुर्गमः । एतद्गदं समाचक्ष्व ज्ञानुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
 सोऽवोचत् कुन्दनगरे वणिग्धनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य भामिना ॥१४३॥
 विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी ॥ माम् । बन्धुभिर्विद्युदङ्गास्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
 क्रमाद्य यौवनं रिभद्रवन्तानगरीमिमाम् । आगतोऽस्म्यर्थलाभाय युक्तो बाणिज्यविद्यया ॥१४५॥
 वेदया कामलता दृष्ट्वा कामवाणेन ताडितः । न राज्ञी न निदा यामि विवृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
 एका रात्रिं बसामाति तया कृतसमागमः । प्राच्या दृढतरं बद्धो यया वागुरया मृतः ॥१४७॥
 जननेन ममासत्यैयंदेवैरजितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण पद्मिर्ममैविनाशितम् ॥१४८॥
 पद्मे त्रिरक्षत् सप्त कामतद्गतमायसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योपिता कृते ॥१४९॥
 जन्मदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निधम् । धृता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥
 धन्या सा श्रीधरा देवा महात्मीमायभौषिणी । यस्यास्तद्वाज्रते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
 धिन्वितं च मया तत्चेदपहृयं सकुण्डलम् । आशा न पुरयाम्यस्यस्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
 ततो जिहीर्षया तस्य दयितं प्रोक्ष्य जीवितम् । गतोऽहं भवनं राज्ञो रजन्वा तमसारुतः ॥१५३॥
 पृच्छतीति श्रीधरा तस्य मया सिंहोदरं धृता । निद्रा न क्लम्ये कस्मान्नायोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥
 सोऽवोचदेवि निद्रा मे कुतो व्याकुलचेतसः । न भारितो रिपुर्वावत्तमस्कारवरात्सुखः ॥१५५॥

विचार कर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किञ्चित् ग्नेदको प्राप्त था ऐसे उस वृत्तसे पूछा कि तू कौन है ? कहाँसे आया है ? ॥१४०-१४१॥ और इस अत्यन्त दुर्गम मन्त्रका तुम्हें कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

यह बोला कि कुन्दनगरमें धनसञ्चय करनेमें तत्पर एक समुद्रसङ्गम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो निजलीकी ज्वालाओसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनाने मेरा विद्युदङ्ग नाम रक्खा ॥१४३-१४४॥ क्रमसे यौवनकी धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वैश्याकी देख कर कामनासे ताडित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रहूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मज्जृत बौध रक्खा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणकी बौध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन सञ्चित किया था मुझ सुपुत्र ने उसे कैवल्य छद्म माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वैश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियाँ लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४८॥ एक दिन मैंने सुना कि यह वैश्या सखोंके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? यह महा सौभाग्यना उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०-१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुरा कर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलकी अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्यकारसे आवृत्त होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराकी सिंहोदरसे यह पूछती हुई सुना कि हे माय ! आज नौदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्नसे क्यों मालूम होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जब तक मैं नमस्कारसे त्रिमुख रहनेवाले

अपमानेन दशस्य व्याकुलस्यार्णचिन्तया^१ । अजितप्रत्यनीकस्य विद्याक्रान्तावलस्य च ॥१५६॥
 मशहस्य दसिद्रस्य भीरोश्च^२ भवदुःखत । निद्रा कृपापरतिव सुदूरेण पलायते ॥१५७॥
 निहन्तास्मि न चेदेन नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं ततः किं मे जीवितेन हतोऽजसः ॥१५८॥
 ततोऽहं कुलिशेन हृदये कृतताडनं । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलोमुपां ॥१५९॥
 धर्मोद्यतमनस्कस्य सततं साधुमेविषः । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निर्वर्तनम् ॥१६०॥
 मार्गैरञ्जनशैलाभैः प्रचरद्गण्डभिन्तिभिः । ससिभिश्च महावेगैर्मण्डैश्च कवचावृतैः ॥१६१॥
 तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तैः परम क्रूरैर्भवन्तं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥
 प्रमादं कुरु गच्छाशु प्रतीप धर्मवत्सल । पताभि पादयोरेष तव मद्रुचनं कुरु ॥१६३॥
 अर्थं प्रयेयि नो राजन् ततः परयैतद्वागतम् । धूलीपटलसङ्ख्यं परचक महारवम् ॥१६४॥
 तावत्परागतं दृष्ट्वा साधनं कुलिशश्रद्धाः । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
 प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुगौरः प्रत्यवस्थितः । विधाय वञ्चिर्तारोधं मामन्ताश्चावतस्थिरे ॥१६६॥
 प्रविष्टं नगरं ध्रुवा वज्रकर्णं रुपा ज्वलन् । सिंहोदरः समायात सर्वसाधनसमुत्तः ॥१६७॥
 पुरस्यायतनदुर्गवात् साधनक्षयकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा नृपः ॥१६८॥
 समावाप्य समीपे च खरितं प्राहिणोन्नरम् । वज्रकर्णं स गवेति बभणायन्तनिष्ठुरम् ॥१६९॥

शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥१५६॥ जो अपमानसे जल रहा हो, जो ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी शत्री विटपुरुषके चक्केमें पड़ गई हो, जो शत्रुसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६-१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन सदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं । हे नाथ ! यह जान कर आप लौट जाइए उज्जैन मत जाइए ॥१५६-१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद फर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१-१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापिस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलीके समूहसे व्याप्त तथा महा कल-कल शब्द करता हुआ यह शत्रुका दल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्गके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापिस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गम नगरमें प्रवेश कर घोरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोक कर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था । इसलिए सेनाके क्षयसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी

निनशासनवर्गेण सदावष्टभमानस । ऐश्वर्यकण्ठस्य मे जात सदाववजित ॥१७०॥
 कुटुम्बभेदने दत्तै धर्मणैर्दुर्विचेष्टितै । प्रोसाहितो गतोऽप्येतामवस्था नयवर्जित ॥१७१॥
 भुक्षे देश मया दत्तमहन्त च नमस्यति । अहो ते परमा माया जतोय दुष्टचेतस ॥१७२॥
 आगच्छाशु ममाग्राश प्रणाम कुरु सन्मति । अन्यथा पर्ये यातोऽसि मृत्युना सह सन्नतम् ॥१७३॥
 ततस्तद्वचनाद्वा दूतोऽवददिद पुन । एव वज्रैर्भुतिर्नाय प्रवीति कृतनिश्चय ॥१७४॥
 नगर साधन सोय मृदाण विषय विनो । धर्मद्वार समार्यस्य वच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥
 कृता मया प्रतिज्ञेय मुञ्जाम्येव मृतोऽपि न । इविगस्य मगवान् स्वामा शरारस्य ॥ नो मम ॥१७६॥
 इत्युक्तोऽन्यपरिचलक्रोध सिंहोदर पुर । कृवा रोधमिम देशमुदवातयदुज्ज्वलम् ॥१७७॥
 इद ते कथित देव देशोद्भासनकारणम् । गच्छामि सांप्रत शून्यग्रामधानमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥
 तस्मिन् विमानतुल्येषु दृष्टमानेषु सप्रसु । मदाया दुष्कुण दुष्टा मृगकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
 तत्र गोपायित सूर्प घट पिडरमेव च । आनयामि कुगेहिण्या प्रेरित क्रूरवाक्यया ॥१८०॥
 गृहोपकरण भूरि शून्यग्रामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मा भाषते मुहु ॥१८१॥
 अथवाक्यस्तमेवेद तया मे जनिम हितम् । देव कोऽपि भवान् इष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
 इत्युक्ते करगच्छिष्ट पथिक वीक्ष्य दु स्मितम् । पञ्चोऽस्मै रत्नसयुगं वदी काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
 प्रसीत मणिपत्न्यासी तद्वाक्य त्वरान्वितम् । मतिघातो निज धाम बभूव च नृपोऽयम् ॥१८४॥

निष्ठुरतासे बोला ॥१६६॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहङ्कार पूर्ण रहता है तथा जो सभी चीज भागोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्ठक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बा के भेवन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनिमोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अग्रस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है । अहो, तुम दुष्ट हृदयकी यह बड़ी माया ॥१७२॥ तू सुखि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणामकर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागम की प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापिस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे माध ! निश्चय को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, राजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्माग्रभनार्थ शपथ नहीं इसलिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देश और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो मरते-भरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा । आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव । मैंने आपसे इस देशके ऊजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने बड़े गाँवको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गाँवमें विमानके तुल्य जो अच्छे अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ वृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी दूटी फटी कुटिया भी जल गई ॥१७९॥ उस कुटियामें एक जगह सूपा घट तथा भटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट रचन बोलनेवाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गाँवोंमें घर गृहस्थीके बहुतसे उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार यह बार-बार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको ॥ गी देख दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित रत्नसूत्र दे दिया ॥१८३॥ यह पथिक उसे लेकर तथा विश्वास पूर्वक

अथाद्योचततः पद्मो लक्ष्मणाय दिवाकरः । नैदायो यावद् यन्तं दुस्सहत्वं न गच्छति ॥१८५॥
 तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्थास्यान्तिष्ठ सुवम् । जानकीय तृपाश्रान्ता कुर्वारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
 एवमिदुदिते याता^१ दशाह्ननगरस्थ ते । समीपे चन्द्रभास्व^२ चैवाख्यमनुचमम् ॥१८७॥
 तस्मिन् सजानकं^३ रामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलम्भाय लक्ष्मणः सधनुर्गतः ॥१८८॥
 विशन् मिहोदरस्यासीं शिविर रश्मिमानवै^४ । निरुद्धः कृतनिस्वानैः समारण इवाद्रिभिः ॥१८९॥
 "इमं नैदुःकुलोत्पन्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सखिन्य यातोऽसौ नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥
 गोपुरं च समासीददनेकमदरक्षितम् । यम्योपरि स्थितः साक्षाद्भ्रूजकर्णं प्रयत्नवान् ॥१९१॥
 ऊचिरे तस्य भृत्यास्त कत्वमेतः इतोऽपि वा । किमर्थं वेति भोऽजोचक्षुरात्प्राप्तोन्नलिप्सया ॥१९२॥
 ततस्त थालक कान्तं दृष्ट्वा विस्मयसङ्गतः । आगच्छं प्रविश क्षिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
 ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ समीपं कुल्लिगध्रुतेः । विनीतवेपसम्पन्नो वोक्षित सादर नरैः ॥१९४॥
 जगाद् वज्ररणे^५ नरमात्मय द्रुतम् । अन्न प्रसाधितं मधं भोजयतां रश्मितादरः ॥१९५॥
 सोऽजोचक्ष्राय भुञ्जेद्भूमिति मे गुरन्तिरुके । तमादौ भोजयाम्यन्न नयायस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
 एवमस्तिवति सम्भाष्य भृषोऽन्नमतिपुष्कलम् । अर्धादपद् वरं तस्मै चालव्यजनपानम् ॥१९७॥
 लक्ष्माधरस्तदादाय गतो द्विगुणरहसा । शुक्र च तैः क्रमेणैतच्छ्रुतिं च परमां गताः ॥१९८॥

उन्हें प्रणामकर अपने घर वापिस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८५॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह भीष्मकालका सूर्य जयन्तक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तब-तक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चलें । यह जानकी प्याससे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५-१८६॥ इस प्रकार कहनेपर ये दोनों दशाह्ननगरके समीप चन्द्रभभ भगवानके उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्र-देवकी नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुप्तसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा मिहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्त पुरुषोंने जोरसे ललकार कर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत बायुकी रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा मुरझित उस गोंपुर द्वार पर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके भृत्याने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस थालरुकी सुन्दर देल आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेपमें वज्रकर्णके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥ वज्रकर्णने एक आन्न पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है वह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही मे मेरे गुरु अग्रज ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमन्तु-ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । सबने उसे यथा क्रमसे गाय और खाकर परम श्रुतिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोऽयं म० । २. जाना म० । ३. रक्षमाननै. म० । ४. निरुद्धरतिनिस्तानैः म० ।

५. इमरैः म० ।

ततस्तुष्टोऽद्भुतं पद्मं परमं लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् जिना ॥१६६॥
जामात्रेऽपि सुसम्पन्नमोदगन्धं न दीयते । पानकानामहो शौचं व्यञ्जनानां च मृगता ॥२००॥
अनेनामृतकल्पेन मुनेनान्नेन मार्गवत् । नैदाघोऽपहतं सद्यः ध्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
चन्द्रविग्रसिवाचूर्णं शालयोऽस्मा विनिमिता । धवलत्वेन विघ्नागां मार्दवं भिन्नसिक्चका ॥२०२॥
दुग्धेव दीधितिर्निन्दो कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छुतयुक्तं सोरभाकृष्टपदम् ॥२०३॥
पूतचरमिदं जातं कल्पयेनुस्तनादिव । रसनामीदृशा व्यक्तियन्त्रेण सुन्दरतरा ॥२०४॥
अणुवतपरं सापूर्वणितं पथिकेन स । अतिथीनां करोयन्त्य सविभागं क ईदृशम् ॥२०५॥
शुद्धात्मा भूयते सोऽयमनन्यप्रणति सुखी । भवातिमयनं मायं जिनेन्द्र यो नमस्यति ॥२०६॥
इदं कृशालगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । सिद्धचराणिनां रजस्ततो नो जीवितं बुधा ॥२०७॥
अपराधविमुक्तस्य साधुसेवापितामनः । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाजिरोपित ॥२०८॥
तोषमानमिमं नूनं सिंहोदरकुभूषता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नूतनेशतः ॥२०९॥
तस्मादन्यपरित्राणरहितस्यास्य सम्मते । क्षिप्रं कुर परित्राणं मन सिंहोदर वद ॥२१०॥
इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिष्यते भवान् । उत्पन्नं प्रज्जया साकं प्रभवेव महामणि ॥२११॥
गुणाचारणसमीहं कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसी युक्त्वा प्रणम्य प्रमदान्वित ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके जिना ही यह किया है ॥१६६॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यञ्जनोंकी मधुरता तो मर्त्या आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके पानसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण भेसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके निम्नको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चारल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त रज्ज्वतासे युक्त हैं तथा जो अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंकी आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमानी किरणोंको दुहकर ही उनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामपेयुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अथवा व्यञ्जनोपेत रसोंको ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि यह सत्यरूप अणुत्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो ससारकी पीडाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक मुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होने पर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रत्नोंसे रहित इस बुद्धिमान्की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रजाके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अयानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

विनीत धारयन् वेपमनुषादाय कामुकम् । प्रयातो रयसम्पन्नो लक्ष्मण कम्पितसिति ॥२१३॥
 इष्टा सरसश्चै पृष्ट क्तरस्य पुमान् भवान् । सोऽत्रोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
 प्रमेणातीरय शिविर भूरि प्राप्नो नृपात्पदम् । अविशद्वेदितो ह्यस्यै सद सिहोदरस्य स ॥२१५॥
 प्रस्पष्टमिति चोवाच मन्यमानस्तृण नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाह सिहोदर निबोध माम् ॥२१६॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सद्गुण । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
 तत सिहोदरोऽवादीन्मन बर्कशमुद्बहन् । दूत मृता विनीतेशमिति मद्बचनाद् भवान् ॥२१८॥
 यथा क्रियाविनीताना श्रुत्वाता विनयादृतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्न विरोध कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
 यत्नकर्णो दुरात्माय मानी नैकृतिर् पर । पिशुन क्रोधन क्षुद्र सुहृदिन्द्रापरायण ॥२२०॥
 आलस्योपहतो मूढो वायुमहद्वृद्धीतर्था । विनयाचारनिर्मुक्तो दुर्विदग्धो दुरीहित ॥२२१॥
 एन सुखम्बमो दोगा दमेन मरणेन वा । तमुपाय करोम्यस्य स्वैरमरास्थिता त्वया ॥२२२॥
 ततो लक्ष्मणोऽबोचत् किमत्र प्रत्युरोचरै । कुरुतेऽयं हित यस्मात् क्षम्यता सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
 इत्युक्त प्रहृष्टोऽ सन्धिदूरपराश्रुत । सिहोदरोऽवदत्तार वीर्य सामन्तसहितम् ॥२२४॥
 न वेदलमसो भानी हतात्मा यत्नकर्णक । सत्कार्यवान्क्षुद्रा प्राप्नो भवानपि तथाविध ॥२२५॥
 पापाणैर्नैव ते गात्रमिदं दूत विनिमित्तम् । न नाममापदप्येति दुष्टृत्य कोशलापते ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला । यह उस समय विनीत वेपको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२-२१३॥ रत्नक पुरुषाने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छावनीको उल्लंघन कर वह राजाके निवास स्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा रखर देकर राजा सिहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको तृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिहोदर ! तू मुझे वडे भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तमगुणाको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैसेसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर पठोर मनको धारण करनेवाला सिहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे दस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८-२१९॥ यह यत्नकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायानी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ़ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितमन्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है । ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे, इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिये ॥२२०-२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें उत्तर प्रत्युत्तरोंसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सत्र अपराध क्षमा कर दिया जाय ॥२२३॥ लक्ष्मणने इस प्रकार पहले ही जिसका मोक्ष त्यज पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुख था ऐसा सिहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देख गरजवर बोला कि न केवल यह दुष्ट यत्नकर्ण ही मानी है किन्तु उसके पार्ष्वी इन्द्रासे आया शृआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२४॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पापाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट भृत्य, रक्ष्य मात्र भी नम्रताओं

तत्र देशे नरा नून मर्त्य एव भवद्विधाः । स्थानांपुलाकाग्रेण परोक्ष ज्ञायते ननु ॥२२७॥
 इत्युक्ते कोपमायात. किञ्चित्क्षमाधरोऽवदत् । साम्यहेतोरहं प्राप्नो न ते कर्तुं नमस्तुतिम् ॥२२८॥
 बहुताय किमुक्तेन हरे सक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमुखैव मरण वा समाश्रय ॥२२९॥
 इत्युक्ते परिपुसर्वा परं क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वाक्या नानाचेष्टानिधायिनी ॥२३०॥
 आहूय तुरिकां केचिन्निखिलानपरे भद्राः । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकम्पितमूर्ख्यैः ॥२३१॥
 वेगनिमुक्तद्वाराः परस्परसमाकुलाः । ते त समन्ततो प्रमुर्मुरका इव पर्वतम् ॥२३२॥
 भद्रासानेव धीरोऽभी त्रियालाघवपण्डितः । चित्तेप चरणावातेर्दूर तान् विह्वलान् ममम् ॥२३३॥
 जघान जानुना कांश्चिर्कूपरेणावरान् धमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतराकर्णान् ॥२३४॥
 कक्षेषु कांश्चिदाकृष्य निपात्य धरणीतले । पाद्रेनावृण्वेयत् कांश्चिदंसवातेरपातयत् ॥२३५॥
 कांश्चिदभ्योन्मनातेन परिचूर्णितमस्तकात् । चकार जघया कांश्चिदरं प्रासविमूर्धनान् ॥२३६॥
 पूर्वमेकाकिना तेन परिपुसा तथाविधा । महाबलेन विष्वक् नाना भयसमाकुला ॥२३७॥
 पूर्वं विष्वक्स्यन् यावन्निःशान्तो भवनाग्निरम् । तावन्नोद्यमनैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥
 सामन्तैरथ सन्नद्धैर्वारणैः सतिमी रथैः । परस्परविमर्देन कबूवाकुलता परा ॥२३९॥
 नागाराक्षकैरेषु लक्ष्मणादिर्निवृत्तिप्रदः । चकार चेष्टित वीर. श्रमालेष्टिव बैसरी ॥२४०॥

प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने निलकुल भी नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सन लोग तेरे ही जैसे हैं जिम प्रकार घटलोईके दो चार सीध जाननेसे सब सीधोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा यहाँके सन लोगोंका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहने पर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुमके नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गई, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे कोंप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारें निकालकर उसका घथ करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणकी चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतकी घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमें नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे विह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे घूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोंको घुटनोंसे, कितने ही लोगोंको कोहनीसे, और कितने ही लोगोंकी मुष्टियोंके प्रहारसे शतरण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सी-सी टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोंके बाल खींचकर तथा धृथिथी पर पटक कर उन्हें पीरोसे चूर्ण कर ढाला और कितने ही लोगोंको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोंको परस्पर मिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर ढाले और कितने ही लोगोंको जहाने प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार समाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आग्नणमें निकला तब सेनका अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तो, हाथियों, घोड़ों और रथोंके द्वारा वपन्न परस्परकी घक्काधूसीसे बहुत भारी आउलता उत्पन्न हो गई ॥२३९॥ हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य प्रावृषेण्यधनाकृतम् । स्वयं सिंहोदरो रोदधु लक्ष्मीनिलयमुद्यत ॥२४१॥
 तस्मिन् रणशिरोषाते किञ्चिद्वैयमुपागता । दूरगा पुनराजम्भु सामन्ता लक्ष्मण प्रति ॥२४२॥
 धनानामिव सहास्ते यमुस्त शशिन यथा । वानूल इव तानेप तूलराशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
 उदारभङ्गकामिन्यो गण्डविन्यस्तपाणय । जगुराकुलताभाज प्रविलोलविलोचना ॥२४४॥
 परयतेन महाभीम सत्य पुरयमेककम् । वेष्टित बहुभि क्रूरैरसाम्प्रतमिदं परम् ॥२४५॥
 भन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि केनाय परिभूयते । परयतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृता ॥२४६॥
 आस्तृणानमधो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिमुख बलम् । विहस्य वारणस्तभ महान्तमुदमूलयम् ॥२४७॥
 तत सरभस्तत्र सान्द्रदुद्गारभाषण । जन्मभे लक्ष्मण कक्षे यथोच्चैराशुसुक्षणि ॥२४८॥
 विस्मितो गोपुराप्रस्थो दशाङ्गनगराधिप । पार्ष्ववर्तिभिरित्यूचे सामन्तैर्विकचेलणै ॥२४९॥
 कोऽप्येव पुरुषो माध परय संहोदर बलम् । भगध्वजयच्छत्र करोति परमद्यति ॥२५०॥
 एष पद्मधनुस्त्रायमभ्यवर्ती सुविह्वल । आवर्त इव निक्षिप्तो ब्राम्ह्यतीर्भाहितोदर ॥२५१॥
 हतश्वेतश्च विस्तारणमेतस्यैव पलायते । एतस्मात्त्रासमागम्य सिंहाङ्ग मृगकुल यथा ॥२५२॥
 वदन्य-योन्यमत्रैते सामन्ता दूरवतिन । अवतारय सन्नाह मण्डलाग्रे निमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोंके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमें आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारणकर फिरसे वापिस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके मुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीत्र वायु नईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालापर हाथ लगा रखे थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी स्त्रियों परस्परसे कह रही थी कि हे सखियों ! इस महा-भयङ्कर पुरुषको देखो ! इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रक्खा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४-२४५॥ उन्हींमें कुछ स्त्रियों इस प्रकार कह रहीं थी कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कीन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर बिह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अधानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बंधनेका एक बड़ा रणभा उल्लास ॥२४७॥ और जिस प्रकार धनमे जोरदार अग्नि बुद्धिद्धत होती है उसी प्रकार सधन हुकारोंसे भयङ्करताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे दूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्गपुरका राजा यक्षकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठा बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्षसे विस्मित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे माध ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है । हमने हमारा सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९-२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी दायारे बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त बिह्वल हो भँवरमें पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कर रहे हैं कि कवच उतार दो, तलवार छोड़

कामुरुं चिप मुत्तारन वारणादवतार्यताम् । गदा निरस्य गतांयां माकारावमुत्तमम् ॥२५७॥
 आलोच्य शस्त्रमहता ध्रुवा वा रभमानित । काप्येव पुनराश्माश्मागतेदृशिताम् ॥२५८॥
 'अपमर्षामुता देशादेहि मार्गमहो भू । वारण सारयैतस्माकिमत्र स्तभिताऽपि ते ॥२५९॥
 भय प्राप्तेऽप्यमायातो दु मून स्पन्दन स्पत्र । तुरङ्गाश्चादय चिप घातिता स्मो न मशयम् ॥२६०॥
 एवमादिकृतालापा वचिस्सङ्कमागता । परित्यज्य भंगरुद्रमेते पण्डितवन् स्थिता ॥२६१॥
 क्रिमैर रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशमम्भव । विद्या श्रो तु या यस्य कस्येय शक्तिरा हता ॥२६२॥
 कालो नाम यमो वायु कोऽपि लोने प्रकायते । मोऽय किमु भयेद्युद्धो विद्यादुग्धजलावत् ॥२६३॥
 हृतेर्दमीदृश सैन्य पुनरेव करिष्यति । क्रिमियेव मनोऽस्मान् नाय शङ्कामुनागतम् ॥२६४॥
 'निराचस्वैममुपरय सप्रामे रोमहर्षणे । सिहोदर समाट्ट्य विह्वल वराजालान् ॥२६५॥
 गले तद्गुनेनैव प्राध्वज्य सुविस्मित । एव चाति पुर ट्वा वलावर्द यथा वराम् ॥२६६॥
 पृथगुत्त स तैरुच्ये स्वस्था भवत मानया । देवा शान्ति करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६७॥
 स्थिता 'मूर्ध्वस्तु हस्याणा दशगहनगराजना । पर विस्तयमापन्ता चतुरेव परस्परम् ॥२६८॥
 सन्नि परयाव्य वारस्य चक्षित परमाद्भुतम् । येनैकेन वरेन्द्रोऽयमानाताऽगुरुकथनम् ॥२६९॥
 भद्रो हान्तिरमुप्येव सुतिश्चातिशयान्विता । भद्रो शक्तिरिय कोऽय मनेत् पुनरुत्तमम् ॥२७०॥
 भूतोऽय भवितः वापि पुण्यवस्था सुयोपित । पति कस्या मशस्ताया समस्तजगतावर ॥२७१॥
 सिहोदरमहिषोऽय धृष्ट्यालसमन्विता । रुद्रस्य पादयो वेतुर्धमनस्यातिविह्वला ॥२७२॥

दो, धनुष फेंक दो, घोडा छोड दो, हाथीमे नीचे उतर जाओ, गन्ना गड्डेम गिरा दो, ऊँचा शस्त्र मत करो, शस्त्रोका समूह देखकर यह अतिशय भयङ्कर पुरुष वेगसे वही हमारे ऊपर न आ पड़े, इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट । रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों गड़गा है ? अरे दुष्ट सारथि । देख, यह आया, यह आया, रथ छोड, घोडे जल्दी बना, मारे गये इतने मशय नहीं, इत्यादि बातोंलाप करते हुए, सरुद्धमे पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाभाषा बेप छोड कर नपुसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३-२५८॥ क्या युद्धमे यह कोई देव प्रीडा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति ससारमे प्रसिद्ध है सो क्या यह यही है ? यह अन्यन्त सीक्ण और रिजलीके समान चञ्चल है ॥२५९-२६०॥ सेनानो इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शङ्काको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमाञ्चकारी युद्धमे उद्वलकर भयभीत सिहोदरको हाथीसे सींचकर उसीके वस्त्रसे गलेमे बाँध लिया है और यह बैलकी तरह वराकर उसे आगे कर आश्रयसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२-२६३॥ इस प्रकार सामन्ताके कहनेपर वञ्चकर्णने कहा कि हे मानयो ! स्वस्थ होओ, वेव शान्ति करेंगे, इस निपयमे बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महर्षिके शिष्यों पर वैठी दशाङ्गनगरका स्त्रियों परम आश्रयको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रही थी ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो निसने अकेले हा इस रानाको वस्त्रसे बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रिका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामा है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोंसे सहित सिहोदरकी रानियों भयसे अत्यन्त विह्वल हो रीती

- १ मा पतदतिदारुण म० । २ अपसत्या म० । ३ योयवेपम् । ४ नपुसकवन् रियता । ५ भयेद्युद्धो (१) म० । ६ त्वयेद म० । ७ निरीक्षस्व + एनम् । ८ वद्वा । ९ पर कृता ज०, ख० । १० वञ्चर्ण । ११ हस्याणा प्रामादाना मूर्ध्व प्रप्रेषु ।

ऊनुश्च देव सुमैत्रे भर्तृमित्रा प्रयच्छ न । अद्य प्रभृतिभृत्योऽय तवाज्ञाकरणोद्यत ॥२७०॥
 सोऽवोचत् परयतोदार द्रुमखण्डमिमं पुर । अत्र बीत्वा दुराचारमेतमुल्लङ्घयाम्यहम् ॥२७१॥
 करणं यदु कुर्वन्त्य पुन साङ्गल्योऽनन्दम् । रुद्रोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
 प्रसादं वरु मा दु ख दशैव प्रियसम्भवम् । ननु बोधितु कारण्यं कुर्वन्ति पुरषोत्तमा ॥२७३॥
 पुरो मादयामि सेवक्यं स्वस्यतामियसी वदन् । ययौ चैत्याल्यं यत्र ससीतो राधव स्थित ॥२७४॥
 अवोचल्लक्ष्मण पद्म सोऽय चन्द्रशेखरि । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यन्मया ॥२७५॥
 तत सिंहोदरो मूर्ध्नां करकुड्मलयोगिना । पपात वेपमानाद् पद्मस्य क्रमपद्मयो ॥२७६॥
 जगाद् च न रेव स्वा गेभि कोऽसाति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महीध्रपतिसन्निभ ॥२७७॥
 मानवो भव देवो वा गार्भात्पुरुषोत्तम । अत्र किं बहुनि प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
 गृह्णातु रचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुति । अहं तु पादशुभ्रपा करोमि सतत तव ॥२७९॥
 ३ध्वमिहा प्रयच्छेति योषितोऽप्यस्य पादयो । रक्षत्यं प्रणिपत्योषु कुर्वन्त्यं करणं वदु ॥२८०॥
 देवि क्षीणारवमस्माकं कारण्यं कुरु शोभने । हस्तुदित्वा च सीताया पतितास्ता क्रमादजयो ॥२८१॥
 सत सिंहोदरं पद्मो जगाद् विनताननम् । कुर्वन् वापीषु हसन्ना मेघनादोद्भव भयम् ॥२८२॥
 शक्रायुधश्रुतिर्यते शर्वाति कुरु तत्सुधी । एव ते जायित मन्थे प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
 आहूतोऽयं हितै पुमिन् कृत्स्नव्यादिवर्धन । वज्रकर्णं परिवारसहितश्चैवसागमन् ॥२८४॥
 स त्रि प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपाणिजिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्राभं भक्तिदृष्टस्तनूरुह ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणामे आ पड़ी ॥२६६॥ वे बोलीं कि हे देव । इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिक्षा देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देवो यह सामने उँचा घृत्तपण्ड है यहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव । यदि रष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोंको पतिका दुःख न दिग्याओ उत्तम पुरुष रित्रियों पर दया करते ही हैं ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ । इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्ण शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ । अब हे देव । जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर कोप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ भस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव । आप कीन हैं ? यह मैं नहीं जानता । आप कान्तिमान् हैं वरुष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गर्भीर पुरुषोत्तम । आप मनुष्य रहो चाहे देव । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो यह वह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुभ्रपा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी रित्रियों भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुई, रामके चरणों में प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिक्षा दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि । तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने । हम पर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ी ॥२८१॥

तदनं तर वापिकाभामे स्थित हँसोको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुग्धरु घँटे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी । तुम्हें वज्रकर्ण जो कहे सो कर । इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिमकी भाग्य युधि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषाके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ जोड़ भक्तकमे लगा जिनालयकी तान प्रदक्षिणाएँ दीं

ततश्च प्रियया गन्वा स्तुत्वा तौ भ्रातरौ ब्रह्मान् । अष्टद्वन्द्वं वपुरारोग्यं मोक्षां च त्रिचक्रादिः ॥२८९॥
 भद्रं ते कुशलं नाथ कुशलं नः समन्ततः । इति नं राघवोऽवोचन्नितान्तं मधुरस्वनिः ॥२९०॥
 मद्भयेनं तपोपावद् वर्तते शुभलोत्पयोः । चारुवोऽथ सैन्येन त्रिचुदङ्गः समागतः ॥२९१॥
 स तपोः प्रगतिं कृत्वा स्तुत्वा च व्रजपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्य मन्त्रिबिष्टः प्रतापवान् ॥२९२॥
 विद्युदङ्गः सूर्या सोऽयं वज्रकर्णमुद्वहः । इति शब्दः मधुरस्वनी तदा मधुमि ब्राम्हणः ॥२९३॥
 पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितमिति मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरियं परा ॥२९४॥
 कुमन्तस्तव धीरेषा मनागपि न करिष्या । उन्मानवातमहातैः सैन्दरस्येव वृन्दिता ॥२९५॥
 समापि सहसा दृष्ट्वा न ते सूर्यायमानतः । अहो परमिदं चाङ्ग तव शान्तं विचेष्टितम् ॥२९६॥
 अथवा शुद्धतावस्य किमु पुनोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सग्व्यवहृद्विशेषतः ॥२९७॥
 प्रणम्य त्रिजगद्गन्धं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९८॥
 मकरन्दरसास्वादलक्ष्मणो मधुमतः^१ । राममस्य पदं पुरन्द्रे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ॥२९९॥
 बुद्धिमानसि धन्योऽसि दधास्यामन्नमन्वताम् । चन्द्रादपि मिना कानिन्त्यत्र भ्राम्यति त्रिष्टये ॥३००॥
 विद्युदङ्गोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । मन्योऽयमपि यः सेनां तव कर्तुं ममुपगतः ॥३०१॥
 सद्गतगुणमन्कीर्तय लज्जामुपागतः । किञ्चिज्जताननोऽवोचत्तुनासीरायुषध्रवाः ॥३०२॥
 अत्रावसीदतो देव प्राप्तस्य व्यसनं महत् । सञ्जानोऽसि महाभाग त्व मे^२ परमवाञ्छितः ॥३०३॥

फिर भक्तिसे रोमाञ्चित हो चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार किया ॥२८९॥ तत्पश्चात् विधि-
 विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंकी क्रमसे स्तुति की
 और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२९०॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें
 उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२९१॥ इस प्रकार
 शुभलोलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जब-तक यह वार्तालाप चलता है तब-तक सुन्दर
 बेपका धारक विद्युदङ्ग सेनाके साथ यहाँ आ पहुँचा ॥२९२॥ हमके जाननेमें पण्डित प्रतापी
 विद्युदङ्ग राम लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२९३॥ उसी समय समामें यह
 जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदङ्ग वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२९४॥

तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको घबल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह
 दृष्टि अत्यन्त ओष्ट है ॥२९५॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूड़िका, प्रलयकालकी वायुके आघातसे
 क्षणित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मियाँ सबोंसे रहस्यमय भी क्षणित नहीं हुई
 ॥२९६॥ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर
 तथा शान्त है ॥२९७॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषकी क्या कठिन है ? सासकर धर्मा-
 नुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्य की ॥२९८॥ जिस उन्नत शिरसे तीन छोरुके द्वारा चन्दनीय परम
 कल्याणस्वरूप जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंको कैसे
 प्रणाम किया जाय ? ॥२९९॥ मकरन्द रसके आस्वादनमें निपुण भौरा उन्मत्त होने पर भी क्या
 गवैके पूँछपर अपना स्थान जमाता है ? ॥३००॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भ्रम्यपना
 धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक घबल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रहा है
 ॥३०१॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युदङ्ग भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी भव्य है जो कि
 तुम्हारी सेवा करनेके लिये उद्यत रहता है ॥३०२॥

अयानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचेकी
 ओर मुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

नियमव्यवसादेन ममाय जावतोऽधुना । पालितो मम भाग्येन^१ त्वमानीतो नरोत्तम ॥३०१॥
 वदन्नेवममा ऊचै लक्ष्मणेन विचक्षण । वद^२भिरुचित यत्ते चित्र सम्पादयाम्यहम् ॥३०२॥
 साऽत्राचन् सुहृद् प्राप्य मवन्तमनिदुर्लभम् । न किञ्चिदस्ति लोकैऽस्मिन्निदं तु प्रवदाम्यहम् ॥३०३॥
 नृणम्यापि न बान्धवामि पाडा निनमताश्रित । अतो विमुच्यतामेव मम सिहोदरमसु ॥३०४॥
 इत्युक्ते लोकवश्रेभ्य सायुकार समुपयौ । प्राप्तद्वेषेऽपि पश्याय मर्ति घत्ते शुभमिति ॥३०५॥
 अपकारिणि कारण्य य करोति स सन्न । मध्यो कृतोपकारे वा प्रीति कस्य न जायते ॥३०६॥
 एवमस्त्विति भाषित्वा लक्ष्मणेन तयो कृता । हस्तग्रहणसम्पन्ना प्रीति समयपूर्विका ॥३०७॥
 उज्जयिन्या द्वादविधं वज्रकर्णाय शुद्धया । सिंहोदरो हन पूर्व विपयोद्वासने च यत् ॥३०८॥
 चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकाना धनस्य च । विभाग समभागेन निजह्याप्यरौदरीं ॥३०९॥
 बार्हद्गतप्रसादेन ता वेरया तच्च कुण्डलम् । लभे सेनाधिपय च विशुद्धं सुविभ्रुत^४ ॥३१०॥
 वज्रकर्णस्तत कृत्वा रामलक्ष्मणयो पराम् । पूजामानाययचित्रमष्टौ दृष्टितरो वरा ॥३११॥
 "सनाथा हरयते यथायानिति तास्तेन दंकिता । लक्ष्माधर कृतादारविभूषाविनयान्विता ॥३१२॥
 नृपा सिंहोदराद्याश्च ददु परमकन्यका । एव सन्निहित तस्य कुमाराना शतत्रयम् ॥३१३॥
 दंकि वा वज्रकर्णस्ता सम सिंहोदरादिभि । जगाद् लक्ष्मण देव तवैता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग । आप मेरे परम धान्धव हुए हैं ॥३०१॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुण्योत्तम यहाँ पधारे हैं ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस ससारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अत मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि वृणको भी पीडा हो । इसलिए यह मेरा श्यामा राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाय ॥३०३-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोंके मुखसे 'धन्य धन्य' शब्द निकल पडा । देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है । वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोंकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरङ्ग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विशुद्धज्ञने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपना आठ पुत्रियां बुलवाई ॥३११॥ चूँकि बड़े भाई राम कीसे सहित दियेगईं तब ये इसलिए उसने उत्तम आभूषणाको धारण करनेवाली तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियों लक्ष्मणको व्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाआने भी उत्तमात्तम कन्याएँ दीं । इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुई ॥३१३॥ उन सबकी गडा कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाआके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव । ये आपकी मित्रयों हैं ॥३१४॥

१. जीविताधुना क०, ख०, ज० । २. पात्रिता क० । ३. भागन म० । ४. शुचिभ्रुत म० ।

५. 'तत्र ग्यायान् व्यष्टा भ्राता राम सजाया सत्त्वभा दृश्यते अनन्तरमपि सजाया मय' इति निर्दिश्य तेन वा दुहितः लक्ष्मण प्रापिता इति भाव ।

एवमीपरस्ततोऽप्येवम् दारसर्गं करोम्यहम् । न तावच्च कृतं यावत् पदं मुञ्जत्प्राजितम् ॥३१५॥
 पश्यन्न तानुत्तमं नास्माकं वसतिः क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गगतलोपमे ॥३१६॥
 देशान् सर्वान् समुत्सृज्य कश्चिदप्यग्राह्यं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
 एकां वेलांमिह ततो जनन्यौ नेमुमुसुके । आगन्तव्यं मयावर्यं द्वागवोऽध्यामनेन वा ॥३१८॥
 काले तत्रैव नेत्यन्ते कन्यका अपि भो नृपाः । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसप्रदः ॥३१९॥
 एवमुक्ते कुमारीणां तद्वृन्दं शुश्रुमे न च । आकुलं पङ्कजवनं हिमवाताहतं यथा ॥३२०॥
 प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यज्यामो यदि तत्पुनः । अवाप्त्यार्मं कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
 प्राणांश्च धारयन्तीनां कैतव मन्थते जनः । दृष्ट्वा च समिद्धेन मनो विरहवद्विना ॥३२२॥
 सुमहान् शृगुरेकत्र स्याद्वोऽन्यत्रातिदारुणः । अहो कष्टं कमाधारं व्रजामोऽन्यन्तदुःखम् ॥३२३॥
 अथवा विरहव्याघ्रं सङ्गमशयविधया । संस्तन्य धारयिष्यामः शरीरमिति साम्प्रतम् ॥३२४॥
 पृथं त्रिचिन्तयन्तीभिः मार्थं ताभिर्महोन्मुतः । राता ययागतं कृत्वा रामादीनां यथोचितम् ॥३२५॥
 सन्वेष्टाः पश्यमानस्ताः पितृवर्गं कन्यकाः । नानाविनोदनामन्जास्तस्थुस्तत्रतमानता ॥३२६॥
 आनायितः पिता भूत्या सर्वपुद्गलमात्मनः । विष्टुद्गलेन चक्रे च परमः सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥
 परमेश्वरं निशीथे ते नत्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गम्य पादाभ्यां स्वेच्छया मुधियो ययुः ॥३२८॥
 चैत्यालयं प्रभाते तद्गुह्यं शून्यं जनोऽश्लिखः । रहितारोषकर्तव्यो वित्तानहृदयस्थितः ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें मैं लक्ष्मणने कहा कि मैं जब तक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तब तक कौी समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है। स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश हैं उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके आस-पास अपना घर बनायेंगे। वहाँ उत्कण्ठासे भरी अपनी माताओंको ले जानेके लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे। हे राजाओं! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले जायेंगे। तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा? ॥३१६-३१८॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओंका समूह तुषार घायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित नहीं हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देयेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कष्ट मानते हैं तथा देहाप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है। अतः अत्यन्त दुःखसे भरी हुई हम किस आधारकी प्राप्त हो? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विधासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आश्रित यथोचित सत्कार कर जेमे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगा कर रह गईं ॥३२६॥ तदनन्तर विष्टुद्गलेन भाई-बान्धवोंसे सहित पिताकी बड़े ठाट-बाटसे अपने देशमें घुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारो उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ धनघोर आघो रातके समय भगवानकी नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयमें शून्य देख सजलोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो

सम कुलशर्कणेन जाता प्रीतिरनुत्तरा । सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवधिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैर स्वैर जनकतनया तौ ॥ सञ्चारयन्तो स्थाय स्थाय विकटसरसा काननाना तलेषु ।

पाय पाय रसमभिमत स्वादुभाजा फलाना क्रीड क्रीड सुरसवचन चारुचेष्टासमेतम् ॥२३१॥

प्राप्नो नानारचनभवनोत्तुङ्गशृङ्गामिराम रम्योद्यानावततवसुध चैत्यसङ्घातपूतम् ।

नाकच्छाय सततजनितायुसवोदारपौर श्रीमत्स्वान रविसमरुचिर्यौतिमत्कूवराख्यम् ॥३३२॥

इत्यापे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यान नाम त्रयसिंशत्तम पर्व ॥३३॥

गये ॥३२६॥ सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम लङ्गमण सीताको धीरे धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्पादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीडा करते हुए कूबरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासियों लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट थे, श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य रचित पद्मचरितमें
वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तीसरी पर्व समाप्त हुआ ॥३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परमं सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जध्रमरमहाते मत्कोकिलनादिते ॥१॥
 कानने सीतया साकमग्रजैन्मा स्थित. सुगम् । अन्तिर्गं मल्लिार्पी ॥ लक्ष्मण सरसीं गत ॥२॥
 अग्रान्तरे सुरूपाश्चो नेत्रतस्करविभ्रम. । एकोऽपि सर्वलोवस्व हृदयेषु सम वसन् ॥३॥
 महाविनयमग्रज कान्तिनिर्गन्धर्वतः । वरवारणमारुद्धरचारपादात्तमध्यग ॥४॥
 तामेव सरसीं रम्यां कीदृनादितमानसः । प्राप्त कल्याणमालादयो जनस्तनगराधिप ॥५॥
 महत्. सरसस्तस्य दृष्ट्वा त तीरवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्याम लक्ष्मण चारुलक्ष्णम् ॥६॥
 तादितः कामराणेन स जनोऽयन्तमाकुल* । मनुष्यमनवीदेकमयमानोयतामिति ॥७॥
 गारवा कृवाञ्जलीर्दृष्ट्वा स तमेवमभापत । एष्टय राजपुत्रसे प्रसादात् सङ्गमिरुति ॥८॥
 को दोष इति सञ्चिन्त्य दधान कौतुक परम् । जगाम लीलाया चाम्यां समीप तस्य लक्ष्मण ॥९॥
 उत्तरीयं स जनो भागात् पद्मनुत्वेन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाभ्रमरम् ॥१०॥
 एकांसने च तेनातिप्रतीत सहितः । अपृच्छ च सखे कस्य कुनो वा समुपागत ॥११॥
 सोऽवोचद् विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दु खेन तिष्ठति । तावन्नयामि तस्याश्च कथयिष्यामि ते तत् ॥१२॥
 सतः शाख्योद्गम. सूप उपदर्शनं घृतम् । अप्पा धनवन्धानि व्यञ्जयानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गुँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमें राम वो सुगरसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमें गये ॥१-२॥ इसी अवसरमें जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमें एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था । कान्तिरूपी निर्मलरूपके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतराशिरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था । मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करनेमें लीन था । जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमें क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलोंके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्ष्मणसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामराणसे तादित होकर अत्यन्त आकुल हो गया । कलयरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइये, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तम्बूमें भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्वस्त हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुगरसे बैठा । कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आये हो ? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥

अथानन्तर शालिके चावलका भात, दाल, ताजा घृत, पुष्ट, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शक्कर और खोंडके लड्डू, भूँडियाँ, कचोड़ियाँ, साधारण पूँडियाँ,

पानकानि विचित्राणि शर्कराप्रण्टमोदकाः^१ । शङ्खुल्यो घृतपूर्णानि पूरिका सुदृग्णिकाः ॥१४॥
 वस्त्रालङ्कारमाह्वानि लेपनप्रभृतौनि च । अमत्राणि च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
 सर्वमेतत् समासैवपुरूपैः सुमहाजवै^२ । भाविनानायितं तेन जनेनान्तिस्मात्मानः ॥१६॥
 अन्तरङ्गं प्रतीहसो जनस्य वचनात् ततः । गन्वा सीतान्वितं पद्मं प्रणम्यैवमनापन ॥१७॥
 भुम्भिनं वल्लभमेव आना ते देव तिष्ठति । एतन्नगरनाथश्च विज्ञापयति सादरः ॥१८॥
 प्रसादं कुरु तच्छाया शीतलेय मनोहरा । तस्माद्विद्यन्तमध्वान स्वेच्छुया गन्तुमर्हथ ॥१९॥
 इत्युक्ते सीतया साधे ज्योत्स्नयेन निशाकरः । पद्मः समायया बिभ्रन् मत्तद्विरद्विभ्रमम् ॥२०॥
 दूरादेव समालोस्य लक्ष्मणेन सम ततः । अभ्युत्थान चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥
 सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽप्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मान प्राप्तश्च जनकक्षिपतम् ॥२२॥
 ततः कर्मणि निर्दूषे स्वैर स्नानाशनादिके । सम्युत्सार्थाखिलं लोकमात्मा नातस्तुरीयताम् ॥२३॥
 दूतः पितुः सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशनः^३ । प्रथमपरमं कर्त्तव्यं प्रविश्वानन्यगोचराम् ॥२४॥
 नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽत्र^४ मध्योऽसी ममेति कृतमापणः ॥२५॥
 सज्जावज्ञापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपत्यदसीं तेषां समञ्च कञ्चुकं जनः ॥२६॥
 स्वर्गादिषु ततोऽप्यसत् काऽप्यसौ वरकम्पका । उपयातेव पातालात् किञ्चिज्ज्ञानतानना ॥२७॥
 तत्काम्यां भवनं लिप्तं लग्नानिलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितानुभिः ॥२८॥

गुड़मिश्रित पूड़ियों, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदि की सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मंगवा ली ॥१३-१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरङ्ग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव ! उस तन्मूमे आपके भाई विराजमान हैं वहाँ इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तन्मूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिये ॥१८-१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चोड़नीके सहित चन्द्रमा ही हो ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ पड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सन्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमारने अन्य सब लोगोंको दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार वे ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रत्यन्तपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमे गया । वहाँ उसने नाना-प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध होगा ॥२४-२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्परचात आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है । अथवा पातालसे ही निकली है । उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ-कुछ नमीयूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म० । २. पानाणि । ३. समासपुरूपैः क०, ए० । ४. महाजवैः म० । ५. इत्यु-
 पदेशतः क०, ए०, प्रसन्नः परमो-म० । ६. मध्योऽसी समेति म०, ए० ।

सुकहयाश्चिरं प्रज्ञाश्चतुर्धा समवृत्तवन् । लक्ष्मणस्य म्रियतां मातुः श्रुतिवाग्मिनापठना ॥२१॥
 गृहं प्राप्तिनुमात्रं धामिव लावण्यवारिणी । उकार्णामिव रत्नानां रजसां काञ्चनस्य वा ॥२२॥
 कलोलो ह्येव निर्जम्बु स्तनाभ्यां कान्तिप्रारिण । तरङ्गा इव सञ्जाता मध्ये प्रिरन्तिरिजित ॥२३॥
 'चण्डातक' सगुह्यजघनस्य घनं मह । निर्गमाभापरं ह्यतः जाम्बूतं शशिनी यथा ॥२४॥
 सुखिणं प्रथितं लज्जं चञ्चलं चाद्यशोभनम् । गृहर्थाभूतवनिन्या निर्धनमिव त्रिभुता ॥२५॥
 अयन्तस्निग्धया तन्मया रामराज्या विरानिता । नितम्बाजानया ह्येमान् महानां विषया यथा ॥२६॥
 ततोऽर्मा सहसामुन्नररूपा मुलाचना । दंष्ट्रिता जानका तेन श्रुतिधरिव लक्ष्म्या ॥२७॥
 अन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिवर्त्तते मनामुवा । अवस्थां कामदि प्रावृत्तलम्भपरमेव च ॥२८॥
 तता विशुद्धया बुद्ध्या पद्मस्तामिषभापन । दधाना विविधं वेप का त्वं प्राद्वसि कन्यक ॥२९॥
 तताऽशुभेन सहाय गात्र प्रवरभाषिणा । जगाद् देव ! वृत्तान्तं शृणु सद्भाववेदिनम् ॥३०॥
 बालिपितृव इति दद्यात् पुरस्त्राभ्यं पनि सुधी । सदाचारपरो नियं मुनिप्रह्लादश्च मया ॥३१॥
 वृषिवाति प्रिया तस्य गर्भोऽयानमुपागता । स्नेहद्वारापिनिना चार्मा गृहीतं सद्युगे वृष ॥३२॥

कान्तिसे लिंग हुआ कपड़ेका तन्मू ऐसा दीपने लगा मानो उसमें आग ही लग गई हो तथा लज्जासे युक्त मन्द मुसमानकी किरणासे लिंग होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्म्या ही यहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह पर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमें उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्ना और स्पर्शकी परागसे माना आन्ध्रादित हो किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनासे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपा जलके कलोल ही निरुल रहे हो और त्रिलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरङ्ग ही उठ रही हो ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लोंघ कर चन्द्रमारा प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लक्ष्म्याको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सत्रन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह पर, एक मेघके समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या त्रिलोके समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोकमें चञ्चलताके कारण त्रिलोके परामें जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे निरुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्पर्शनिमित्त की तरह डँडीयमान नितम्बस्थलसे उत्पन्न महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित थी ॥३४॥

तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेप छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्घचनाय अत्रयाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चञ्चल नेत्र धीरे धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! त्रिषध वेपको धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह ब्रीडा करती है ? ॥३७॥ इसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँक कर कहा कि हे देव ! सद्भावकी सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥३८॥

इस नगरका राजा 'बालिसिलय' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करने वाला है ॥३९॥ उसकी

१ 'लहंगा' इति प्रसिद्ध स्त्रीवस्त्रम् । २. चञ्चलमयमामल (१) म० । ३. कन्या म० । ४. रति श्रीव म० ।

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहोभृता । पुत्ररचेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
 ततोऽहं पापिना जाता मन्त्रिणा वसुवुद्धिना^१ । सिंहोदराय पौत्सनेन कथिता राज्यकाक्षया ॥४२॥
 नीता कल्याणमालास्या जनन्या रहिताधिकार्य^२ । प्रायो^३ माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
 मन्त्रा माता च मे वेत्ति कन्येयमिति नापर । इत्यन्त कालमधुना भवन्त पुण्यवीक्षिता ॥४४॥
 दुःखं तिष्ठति मे तात प्राप्तश्चारकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सन्नस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
 यदत्र द्रविणं किञ्चिदेशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते दुर्गमायुगे ॥४६॥
 वियोगवद्विनायन्त तप्यमाना समाश्रिता । जाता कलाक्वशेषेव चन्द्रमूर्तिर्गतप्रभा ॥४७॥
 ह्युक्त्वा दुःखभारेण पाडिताशेषमात्रिका । सद्यो विच्छायाता प्राप्ता मुक्तकण्ठं रुद सा ॥४८॥
 अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः पद्मेनारवासिता तत । सातया च निपायाङ्गे कुर्वन्त्या सुखवाचनम् ॥४९॥
 सुमित्राधुना चोक्ता शुचि विस्मृतं सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेपेणोचितकारिणी ॥५०॥
 शुभे काश्चिप्रताहस्य दिवसान् धैर्यैः सङ्गताम् । म्लेच्छैर्नम्रहणं किं मे पितर परम मोचितम् ॥५१॥
 इत्युक्ते परम तोष ताते मुक्त इवागता । समुत्ससितसर्वाङ्गा कन्यका द्युतिपूरिता ॥५२॥
 तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रम । देवा इव सुखं तस्युः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
 ततः सुसज्जने काले रज्ज्या रामलक्ष्मणौ । सप्तातौ रन्ध्रमाश्रित्य निष्क्रान्तौ काननालयात् ॥५४॥

प्रियाका नाम पृथिवी है । जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमे म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमे पुत्र होगा तो वह राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुवुद्धि मन्त्रीने राज्यको आकाक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रक्खा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मङ्गलमय व्यवहारमे ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अब तक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं । आज पुण्योदयसे आप लोगाके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमें हैं । सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमें जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गई है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके सन्तान भारसे जिसका समस्त शरीर पाडित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गई तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमे उसे सान्त्वना दी, सीताने गोदमें बैठकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! शोक छोडो, इसी वेपसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे ! हे कल्याणरूपिणि ! धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसा बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिताकी छूटा देलोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो । उस कयाके समस्त अङ्ग हर्षसे उल्लासित हो उठे और वह कान्तिसे भर गई ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनमे नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवाके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ उत्पन्नात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१ सुवुद्धिना म० । च सुवुद्धिना क०, ख० । २ रहितार्थिक म० । ३ प्राप्ता म० । ४ प्रेष्यते म० ।
 ५ सुसज्जने म० ।

विबुद्धा तानपरयन्तो कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुत्तरा शोक परमं समुपागता ॥५५॥
 महापुरण्युक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया निवृणोति मनस्विनी ॥५६॥
 कृत्रुमियम्य शोकं च घरवारणप्रतिनी । प्रविश्य कूरं तस्थी पूर्ववदीनमानसा ॥५७॥
 ततः कन्याणमालाया रूपेण विनयेन च । हृतचिन्ताः क्रमेणैते प्रापुर्मङ्गलनिद्रागाम् ॥५८॥
 उत्तरीयं विहितक्रीडास्तौ सुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिगम्य प्राप्ता विन्ध्यमहाद्वीम् ॥५९॥
 स्कन्धावारमहामार्गपरिक्षुण्णेन^१ वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपि कीनाशैश्च निवारिताः ॥६०॥
 हचिसालादिमिष्टैर्लताव्यङ्गितमूर्तिभिः । तद्गुण शोभतेऽयन्तं स्वामोद नन्दन यमा ॥६१॥
 कचिद्वातेन^२ निर्दग्धप्रान्तस्थितमहोरुहम् । न शोभते यथा गोत्र दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
 अथावोचत् ततः सीता कर्णिकारवचनान्तरे । वामतोऽयं स्थितो ध्वाङ्घ्रो मूर्ध्नि^३ कण्टकिनस्तरोः ॥६३॥
^४बाणमगो मुहुः क्रूर कलह कषणवन्धम् । अश्वोऽपि क्षीरवृक्षस्थो जय शनति वायसः ॥६४॥
 तस्मात् तावत् प्रतोक्षेतां मुहुतं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभायतिमुन्मत्तः ॥६५॥
 ततः क्षणं विलम्बयैती प्रयाती पुनरुद्यती । तदेव च पुनर्जात निमित्त निवृत्तस्तरे ॥६६॥
 ब्रुवत्या अपि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्तौ गन्तुमग्रे च श्लेष्मणा सैन्यमुद्गतम् ॥६७॥
 तौ निरीक्ष्यैव निर्भीतावायान्तौ वरकामुकी । क्षणेनैवैव तत्सैन्यं काम्बिदृशकं पलायितम् ॥६८॥

राम, लक्ष्मण, छिद्र पाकर वनके उस तन्मयसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागने पर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ । वह हाहाकार करती हुई परम शोकको प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें वड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूबर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीडा करते हुए उस नदीको पारकर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलबाहकोने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं वो लताओंसे आन्ध्रित सागीन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें घाई और फटीले वृक्षकी चौटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आपलोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहान्तर जब प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जैचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी कि भी उसका कहा अनुसूना कर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें श्लेष्मणाकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो

१. निद्रा समेताया म० । २. नर्मदा । ३. परिक्षुण्णेन (!) म० । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्ध प्रान्त म० । ६. कण्टकिनस्तरी म० । ७. शब्द कुर्वन् । ८. परः म० ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सख्यहान्ये समानताः । प्राट्टमेधसमानेन तेऽपि हासेन निजिताः ॥६१॥
 ततस्तेऽप्यन्तविश्रुता म्लेच्छाः पतितकार्मुकाः । कुर्वन्तः परम राव गत्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥६०॥
 ततोऽसौ परम क्रोधं बह्वाय च दारुणम् । निजंगामं येहासैव्यः शखसन्तमसावृतः ॥६१॥
 काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वभासादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥६२॥
 तैरावृता दिशः प्रेष्य पुरो धनकुलासितैः । धनुरारोपयन् कोपं किञ्चिद्वृत्तमीधरो भजन् ॥६३॥
 तथा चास्फालित सर्ववन्नमाकम्पित यथा । उरश्च वनसत्त्वानां जज्ञे प्रकट्येपशुः ॥६४॥
 सन्धानं शरं धीर्यं लक्ष्मणं ग्रस्तचेतसः । धन्रमुश्रुत्वा प्राप्ता म्लेच्छा निश्चभ्रुवो यथा ॥६५॥
 ततः साध्वमसङ्गणो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्थं रयादेतौ धनम् रचिताञ्जलिः ॥६६॥
 भद्रवीदृशितं कौशाम्बी नगरीं प्रथितां प्रभुः । आदितानिर्दिष्टस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥६७॥
 प्रतिसंभ्येति तज्जाया जातोऽहं तनयस्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शखसूतकलान्वितः ॥६८॥
 बात्पाय प्रभृति दुष्कर्मनियानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्रौतं कदाचिच्च शूले भेलुमभोप्सितः ॥६९॥
 धनिनैकेन तत्राहं भ्रष्टानेन साधुना । मोचितो वेपमानाहः स्वख्यां देशमिहागतः ॥७०॥
 प्राप्तं वर्मानुभावेन काकोनदजनेशतमम् । अष्टस्तिष्ठामि सद्युत्पातं पशुभिः समतं गतः ॥७१॥
 ह्यन्तं पश्य मे कालं सैन्याब्जा अपि पार्थिवाः । चक्षुषी गोचरीभावमासन् शक्ता न सेवितुम् ॥७२॥
 सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विबल्वः । धन्योऽस्मि धांचिती येन भवन्तीं पुरुषोत्तमी ॥७३॥

ज्ञानभरमे भाग गई ॥६७-६८॥ तदनन्तर भागती सेभासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोंका स्वामी निकला । बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शखरूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खाने वाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन कोप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला उर उल्टन हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतर कर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है निरन्तर अग्निमें होम करने वाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है । विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसंध्या है । मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शख तथा जुएके फलाका पारगामी हूँ ॥७६-७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर स्रोटे कार्य करनेसे निपुण था । किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर कोप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया । तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताको प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचारसे भ्रष्ट हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया । मैं धन्य हूँ जिससे

शासन यच्छता नाथी किं करामि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा वहे पावनपण्डिते ॥८४॥
 विन्ध्योऽप्य निधिमि पूर्णो वरयोषिच्छतैस्तथा । भुविष्यमिच्छता देवी मामतो निमृत्त परम् ॥८५॥
 इयुक्त्वा प्रणति कुर्वन् पुनरति परा गत । पपात विह्वले भूमौ दिग्भ्रमूल्लसत्पदा ॥८६॥
 कष्टावस्था तत प्राप्त तमेव राघवोऽनन्द । कृपालनापरिष्वङ्गोरकल्पमहातरु ॥८७॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वालितिक्ष्व विवञ्जनम् । कृवाऽऽनय द्रुत प्राप्य सन्मान परम सुधी ॥८८॥
 तस्यैवाभिमत भूत्वा सचिव सञ्जनान्वित । विहाय सद्रति म्लेच्छैर्विषयस्य^१ हितोऽभवत् ॥८९॥
 एतत् चेद् कुरपे सर्वमन्यथा च निवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरसौ न त्रिगणैः स्यया ॥९०॥
 एव प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादत्त । महारथमुत्त गत्वा मुगोच विनयान्वित ॥९१॥
 अभ्यङ्गोद्ग^२ सुस्नात भोजयिष्या स्वल्कृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमादेशे त तद्वृत्तिकम् ॥९२॥
 स द्रुपौ नीपमान सन् विस्मय परम गत । इतोऽपि गहनावस्था प्रायो मेऽष्ट भविष्यति ॥९३॥
 काय म्लेच्छो महाशत्रु कुर्मोऽयन्तनिर्दय । ऋचायमनिसम्मानो न मयेऽष्टानुधारणम् ॥९४॥
 इति दानमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणी । दृष्ट्वा परा एति प्राप्ताऽवतार्य सनमस्तृप्ति ॥९५॥
 अत्रवीत् ती युवा नाथावागतावतिसुन्दरी । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
 गच्छ चित्र निन धाम लभस्वामीष्टसङ्गमम् । तत्र नौ ज्ञास्वसीयुक्ते वालितिक्ष्व सुधीर्गत ॥९७॥

पुरुषोत्तम उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८७-८३॥ हे नाथ । आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेमें निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियाँ तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों रिशियोंसे परिपूर्ण हैं इसलिए हे देव । मुझसे किसी अच्छे भारी राजरथका इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इनका कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीडाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे धृक्के समान भूमि पर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलङ्घित कल्पवृक्षके समान थे ऐसे राम वृत्तमय अन्स्थाको प्राप्त हुए म्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुनुदि । उठ-उठ, डर मत, वालितिक्ष्वको बन्धन रहित कर तथा उत्तम सम्मानको प्राप्त करा कर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री ही सज्जनोंकी सगति कर और म्लेच्छाकी सगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सन काम ठीक ठीक करता है तो उससे तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायगा ॥९०॥ 'हे प्रभो । ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने वडे आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुनः बालितिक्ष्वको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल उगटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलङ्कृत किया गया था । ऐसे बालितिक्ष्वको रथपर बैठाकर वह रामने पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालितिक्ष्व परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ वहाँ तो यह कुर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावीरो म्लेच्छ ? और वहाँ यह मारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेगा ॥९४॥ इस प्रकार बालितिक्ष्व दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ । उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ । मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारें हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ९५-९६॥ राम लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

कृत्वा सुनिभृत भृत्य तस्य विश्वानलद्वाजम् । यातौ साताम्वितौ स्वेष्ट कृतिनौ रामलक्ष्मणौ ॥१८॥
 बालिखिल्यस्तु सम्प्राप्त सम रोद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिका चोणी स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥१९॥
 प्रत्यासन्न तत कृत्वा विभूया पर्यान्वितम् । पितर निरगाक्षुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥२०॥
 प्रतीता सनमस्कारा तां समाधाय मस्तके । निजयाने पुन कृत्वा प्रविष्ट कूबर नृप ॥२१॥
 पृथिवी महिषी तोपसञ्जातपुल्का क्षणात् । पुरातनी तनु भेजे कान्तिसागरवतिनीम् ॥२२॥
 सिहोद्वरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिला । गुणै कल्याणमालाया परम विस्मय गता ॥२३॥

उपजातिवृत्तम्

यद्रीद्रभूति सुचिर विषित्र समाजैवद्यौपरामण स्वम् ।
 भनेकदेशप्रभव विशाल तद्बालिखिल्यस्य गृह विवेश ॥२४॥
 जातेऽस्य बाग्यतिनि रौद्रभूती वशीकृत म्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
 सिंहोद्वरोऽपि प्रतिपन्नराड स्नेह सत्सम्मानमलक्षकार ॥२५॥
 सोऽय समासाद्य परा विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
 महारथी प्राणसमासमेतो रविवर्धैव शरद्वा रराज ॥२६॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाख्यान नाम चतुर्विंशत्तम पर्व ॥३४॥

समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुँचने पर तुम हम लोगोको जान सकोगे' । इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमान् बालिखिल्य अपने घर चला गया ॥२४॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालिखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥२५॥ बान्धवजनोकी चेष्टाका स्मरण करता हुआ बालिखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा तब निरुद्धवर्ती पिताकी परम विभूतिसे शुक्लकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥२६-१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहिचान कर राजा बालिखिल्यने उसका मस्तक सूँचा फिर अपने रथपर बैठकर कूबर नगरमें प्रवेश किया ॥२०१॥ बालिखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये और वह कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण भरमें पुन प्राप्त हो गई ॥२०२॥ सिंहोद्वर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणोंसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२०३॥ रौद्रभूतिने चिरकाल तक चोरीमें सत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन इकट्ठा किया था वह सब बालिखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥२०४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम भूमिकी वश करनेवाला रौद्रभूति बालिखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शाङ्काकी प्राप्त हुआ सिंहोद्वर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥२०५॥ इस प्रकार महारथी बालिखिल्य राम लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राण प्रियासे इस तरह सुशोभित होने लगा जिस तरह कि शरद्वस्तुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥२०६॥

इस प्रकार आप्रै नामसे प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्य विरचित पद्मचरितम बालिखिल्यका वर्णन करनेवाला चौतीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशभिष्टयाः काननं नन्दनोपमम् । विहरन्त्याः सुखं प्राप्ता देशमप्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
 मध्ये यस्य नदी भाति प्रसिद्धजलप्रादिनी । तार्पाति विधुता नानापक्षिरागानुनादिता ॥२॥
 भरण्ये सद्य निस्तोये मिताप्यन्तध्रमान्विता । जगाद् राघव नाथ कण्टरोपो ममोत्तमः ॥३॥
 यथा भवशतैः विभ्रो भण्यो दर्शनमहन्तः । बान्धुयेवमह तीव्रगुणयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
 'इत्युक्त्वा वार्यमाणापि विपणा मुत्तरोरघः । रामेण जगद् देवि विगादं मागमः शुभे ॥५॥
 आसन्नोऽय महाप्राप्तो द्रव्यते विरटालयः । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽय शिशिरं वारि पाश्यति ॥६॥
 पृथमुक्ते तथा ह्यैरं रैरं प्रस्थितया समम् । प्राप्ती तारलणप्राप्तं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
 आदितामिद्विजस्तत्र कपिलो नाम विध्रुतः । गौर्दे तस्यावतीर्गौ ती यथाक्रममुपागते ॥८॥
 अत्रातिहोत्रशालापामपनीध धमं चणम् । तद्ब्राह्मणा जलं दत्त पर्या सीता सुरीतलम् ॥९॥
 यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्नाचद्वरपतः । विद्याधायकलशौयोभारवाही समागतः ॥१०॥
 दावानलसमं यस्य मानसं निलयोविनः । कालकूटविष वात्यमुत्क्रमशरां सुगम् ॥११॥
 कमण्डलुशिखाम्बुवालसूत्रादिभिः परम् । त्रिप्राणः कुटिल वेपमुन्मृत्तुति भगन् किल ॥१२॥
 १३॥ तान् कुपितोऽप्यन्तध्रुकुटिलाननः । उवाच ब्राह्मणी बाधा तच्छ्रित सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देशोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनों, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्ज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पत्नी समूहसे शब्दावमान चापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुरोमित है ॥१-७॥ वहाँके निर्जल वनमें जब सीता अत्यन्त थक गई तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ थिलकुल सूख गया है ॥८॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे रेतको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्‌के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र विपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥९॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गई । रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विपादको प्राप्त मत होओ ॥१०॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोंसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलो, वही शीतल पानी पीना ॥११॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहने थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥१२॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उतरे ॥१३॥ यहाँ यह-शालामें जग भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥१४॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बेल, पोपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जङ्गलसे वापिस आ पहुँचा ॥१५॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥१६॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिर पर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, गुण पर लम्बी चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्येपर यतोपजीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेपको धारण कर रहा था तथा उल्लू घृत्तिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१७॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहासे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो दीर्घ वचनोंसे

अयि पापे किमित्येषामिह दत्त प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यस्य ते दुष्टे बन्ध गोरपि दुस्तहम् ॥१५॥
 परयेमे निरजपा घृष्टा केऽपि पाशुलपाण्डुका । अग्निहोत्रकुटी पापा कुर्वन्त्युपहृता मम ॥१५॥
 तत साताऽऽवर्तन् पद्ममयैषुत्र हुकर्मण । अस्येदमास्पद दग्ध परमाक्रोशकारिण ॥१६॥
 वर पुष्पफलच्छन्नैः पादपैरुपशामिते । सरोमिश्रातिविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
 सारङ्गैरुपित सार्धं श्रीऽङ्घ्रिनिजयेच्छ्रया । श्रूयते नेरश तत्र निवान्त परुष वच ॥१८॥
 अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्ज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषत ॥१९॥
 विप्रस्य रूचया वाचा क्षोभितोऽसी ततोऽखिल । ग्राम समागतो दृष्ट्वा तेषा रूप सुरोपमम् ॥२०॥
 भगवद् ब्राह्मणैकान्तैः पथिक्का क्षणमेककम् । विष्टुन् किमिमे दोष कुर्वन्ति विनयान्विता ॥२१॥
 ततो निर्भय सखल ॥ लोक कोपलोहित ॥ बभाषे तौ द्विज प्राप सारमेयो गज्राविव ॥२२॥
 निष्क्रामत पर गेहाम्भदोयादपवित्रको । पूर्वमादिवचोवातेल्लक्ष्मामान् कुपितस्तत ॥२३॥
 ऊर्ध्वपादमधोम्रीव कृचा त ब्राह्मणधमम् । अदह्यथ प्रवृजन्त शोणितारणलोचनम् ॥२४॥
 भ्रमयिचा क्षितौ पाददास्फालयितुमुद्यत । रामेण वारितस्तावदिति कादम्बधारिणा ॥२५॥
 सौमित्रे किमिदं ह्याभे प्रारब्ध भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवत्येतेन ते मनु ॥२६॥
 मुञ्चैन त्वरित क्षुद्र यावाप्राणैर्न मुच्यते । अवश परमेतस्मिन्मृष्यते केवल मृते ॥२७॥
 श्रमणा ब्राह्मणा गाव पशुल्लावालवृद्धका । सदोषा अपि शूराणा नैते बध्ना किलोदिता ॥२८॥

उसे छोड़ ही रहा हो ॥१३॥ उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हे यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ?
 अरी दुष्टे ! मैं आज तुम्हें पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका
 शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, दीठ व्यक्ति मेरी यज्ञ शालाको दूषित कर
 रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपराध
 कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों
 तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोंसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा
 करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई
 नहीं पड़ते ॥१७-१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त
 लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके लक्ष वचनोंसे
 क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर बहों आ गया ॥२०॥ गाँवके
 लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकानमें एक ओर क्षण भरके लिए ठहर जाते
 हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल
 होकर सब लोगोंको झोंटते हुए, राम लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे
 निकलो । ब्राह्मणका राम लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो
 हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हे देखकर भौंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन
 सम्वन्धी आघातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया, वे रुधिरके समान लाल लाल नेत्रोंके धारक तथा
 अमाङ्गलिक अपशब्द बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोम्रीव कर घुमाकर
 ज्यों ही पृथिवी पर पड़ावनेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणाके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए
 रोका ॥२२-२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वेचारे दीन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो ?
 यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान है, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जब तक
 यह निष्पाण नहीं होता है तब तक इस क्षुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरने पर केवल
 अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर

इत्युक्त्वा मोक्षविद्या तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । मीनयाऽनुगतो राम कुर्वीत प्रसंगात्ततः ॥२६॥
 शिम् शिम् नाथममामह दुर्बल धृतिहारिणम् । मनोविकारहरण महापुरुषव्रजितम् ॥२७॥
 वर तदन्ते शीते दुर्गमे विजिते स्थितम् । परित्यज्यानिष्ठ प्रार्थ विद्वन् सुखे वरम् ॥२८॥
 वरमाहारमुद्यम्य मरण सेविषु सुखम् । अन्त्यानेन नाभ्यस्य गृहे सुगमि स्थितम् ॥२९॥
 कृतेषु सतितामत्रे कुचिन्त्यस्तहारिषु । स्वाभ्यामो न पुनर्भूय प्रवेक्ष्यामः मन्त्रायम् ॥३०॥
 निन्द्येत न्यासतममभिमान पर वहन् । निर्गन्ध आमत पद्मो वनरश्च पदवीं श्रितः ॥३१॥
 घनकान्तत प्राप्ते नीलवक्त्रविल नमः । पद्मगन्धिन्यन्तान्प्रतिनादिवगदह ॥३२॥
 ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । मरात्रियुद्धोत्त जहात्येव नभःपुङ्गवम् ॥३३॥
 प्रोष्मदास्तरक धोर समुच्चर्य पापावन । जगत्त्रिचिद्विद्वत्पुत्रा मोषितानि तत्रापन् ॥३४॥
 नमोऽन्यकारित कुर्वन् धारामिनीन्तोषद् । अभियेक्षु समारंभे माता गत्र इव भियम् ॥३५॥
 तिर्यगन्तमे ततोऽन्यथं द्रुपुष्वप्रापपादपम् । उपसत्य पुरो मेहन्मनाऽरुन्धमुज्ज्वलम् ॥३६॥
 'इमकर्णो गगन्तेषामभिभूताभ्य' तोषत्वा । गन्ध द्यामिनिपूवे न्यासिन्त्यवनाभिगम् ॥३७॥
 आगत्य भाक्त वेदेषु मन्त्राये नाथ ममनि । स्थिता वैष्णवेनैवाह तन्मानुद्वाहिना दुतम् ॥३८॥
 श्रुत्वा तद्वचन स्मिन्वा विनायकवति वनम् । वधूनि प्रस्थितो गन्तु न्वप्राप्य वरनाम्वा ॥३९॥

भी शूर वीरोंके द्वारा बन्ध नहीं है, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे छुड़ाया और लक्ष्मणको आगेकर बैसीता सहित उस प्राङ्गणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२९॥ 'जो दुर्बल धृतिहारिण कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष विमल दूरमें ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतियों धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें युद्धने नीचे बैठ रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर ससारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुप्त पूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दमरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियाके तटों और परतोंका अतिशय मनोहर गुफाओंमें रहेंगे परन्तु अत्र फिर दुर्जनोके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन ससर्गका निन्दा करते तथा परम अभिमानका धारण करते हुए रामने गर्वसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीन गर्वनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय मह और नन्तोंके पटलनों सत्र ओरसे छिपाकर कड़कती हुई विजलीके प्रकाशके वहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ प्रोष्म कालके भयकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और विजली रूपी अगुलोंके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंको डौट ही दिया रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिषेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भीगते हुए एक निरुत्पत्ती ऐसे विशाल वटवृक्षने नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इमर्ष नामका यक्ष, निन्द्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर वया नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ 'स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इमर्षने वचन सुनकर मन्दहास्य करता हुआ

१. सीते म०, २०। २. मावे च, विहरामित्यर्थ। ३. मेजने म०। ४. निन्द्येव म०। ५. प्रेदिना मिर म०। ६. इमर्षनामपेक्षो यक्ष। ७. भूतोऽपि व०, म०। ८. निन्द्यनुगन्धितम्।

अयोधर स यक्षाणां महाविभवसङ्गतः । रम्यकाननससक्तः क्रीडन्पूतनसङ्गतः ॥४३॥
 दुरादेव च तौ दृष्ट्वा महारुगौ गगाधिपः । प्रयुज्यावविमज्जासीद् वलनारायणाविति ॥४४॥
 ततस्तद्भुभावेन वात्सल्येन च भूयसा । हृत्वेन नगरीं तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
 ततस्ते सुप्रसम्पन्न सुसा- किल सुचारुणा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोध समुपागताः ॥४६॥
 तत्प्रेतस्थितमानमानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासाद च महारम्य बहुभूमिवसुञ्जलम् ॥४७॥
 देशोपकारणव्यग्र परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥
 तेषां महानुभावाणां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्धि शुद्धविचेष्टितम् ॥४९॥
 अशेषवस्तुसम्पत्तास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥
 यथाधिपेन रामस्य पुरीं यस्मात् प्रकल्पिता । सतो महीतले स्थापिता गता रामपुरीति सा ॥५१॥
 प्रतीहारा भटाः शूरा अमायाः ससयो गज्याः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवाभवन् ॥५२॥
 कुशाग्रनगरीशोऽयं गणितं पृष्टवानिति । तयोर्माथं तयामृतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
 उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातस्त्रयाय द्वात्रहस्तौ वनस्थलीम् ॥५४॥
 भ्रमश्च समिदाद्यर्थमकस्मादूर्ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरीं पृथ्वीमपश्यद् विस्मितामनः ॥५५॥
 असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिभासुरैः ॥५६॥

यक्षराज, अपनी स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यक्षोका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य बनोंमें क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधि ज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक ढण्डका अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको देखने पर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार लुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनाई थी इसलिए महीतल पर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरी, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गीतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम लक्ष्मणके साथ उस प्रकारका व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिये ॥५३॥ तब गीतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर ठठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका सुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रङ्गोंकी अनेक पताकाओं और शरद् व्यतुके मेघोंके समान अतिशय दीनोप्यमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफेद कमल रूपी लुद्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका वचा ही हो ॥५७॥ यह सब देख,

पुण्डरीकाक्षपद्मेण शब्दे समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च वैलासस्येव शाश्वतम् ॥५७॥
 अचिन्तयद्यद्योरेण अट्यामीन्याश्रिता । यस्यां समित्तुलाघर्षं दुग्धं पर्यटिष्यं सदा ॥५८॥
 भस्ममात्रं सेवयुक्तं गृहमालोपगोमितैः । रत्नपर्वतसंकाशैर्विराजति पुरी गृहीः ॥५९॥
 सरांस्यमूनि रम्याणि पद्मादिपहितानि च । हरयन्ते यानि चो पूर्वं मया दृष्टानि जानुचिरं ॥६०॥
 उद्यानानि सुरम्याणि मेवितानि जनैर्गृह्यम् । हरयन्ते देवयामानि लङ्घितानि महापथैः ॥६१॥
 धारणैः सतिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्गटा । अस्थोपकण्ठचरणा घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥
 किमेवा नगरी नाकाद्वतोर्णा भवेद्दिह । पातालादुन्नताहोभिश्च कस्यापि शुभकर्मणः ॥६३॥
 स्वप्नमेवं तु परयामि मायेयं वत कस्यचिन् । किमु गन्धर्वनगरं पितृव्याहृत्सितोऽस्मि किम् ॥६४॥
 'उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेणान्ति कस्य मे । इति सज्जितयन् प्राप्तो विवादं परमं द्विजः ॥६५॥
 दृष्ट्वा च प्रसदमेकां नानालङ्कारधारिणीम् । अष्टद्वयपञ्चमेयं भद्रे कस्य पुरीष्यमी ॥६६॥
 सा जगौ जातु पद्मस्य पुरीषं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीचरो भ्राता सीता च प्राणवल्गुभा ॥६७॥
 पतत् परयसि यद् विप्रं पुण्यां मये महागृहम् । शरद्भ्रमसमञ्जसमन्त्रासी पुरणोत्तमः ॥६८॥
 श्लोको दुर्लभदर्शने सर्वमेनातिदुर्बिधः । यच्छ्रुता वाञ्छितं द्रव्यं जनितः पार्थिवोपमः ॥६९॥
 विप्रोऽबोधदुपायेन केन परयामि सुन्दरि । पद्म सज्जावतः दृष्टा निवेद्यितुमर्हसि ॥७०॥
 ह्यपुरावा समिथामारं निपिष्य भुवि साञ्जलिः । पपात पादपोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

यह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा सुगोंसे सेवित यही अटयी है ? जिसमें मैं इन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुग्ध पूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोंके समान दीरघनेवाले भवनोसे अकस्मात् ही सुरोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियों, घोड़ों, गायों और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥ क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्माके प्रभावसे पातालसे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसीकी माया है ? या गन्धर्वका नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमें मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विषादको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं ? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! नगरीके बीचमें जो यह शरद् ऋतुके मेघके समान कान्तिवाला वड़ा भवन देखा रहे हो इसीमें वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन वाञ्छित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः बतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने इन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमें गिर पड़ा, मो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी ? ॥७१॥

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यच्चिगो । जगद विप्रं परम स्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
 अस्याः पुरः समावृत्तां कथं त्वं भुवमागतः । आच्छकैरलं चोरैर्नूनं नश्यति चोक्षितः ॥७३॥
 अस्या द्वारत्रयं पुण्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अद्भुतं सर्वदा चोरैः रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
 सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोज्ज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्युं मानुषा धान्यसंशयम् ॥७५॥
 पूर्वद्वारमदो यत् तस्य पश्यामि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकाच्छादयच्छरीन् ॥७६॥
 मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्द्यानाममीषु प्रतिपातनाः ॥७७॥
 सामायिकं पुरस्कृत्य तासां यस्तवन नरः । नमोऽर्हसिद्धिनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
 गुरूपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशर्वाङ्मदकुब्जद्वारं हृष्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । त रामः परया प्रायया चाङ्गिसेन समर्चति ॥८०॥
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावभृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्ध्वापय धनगमे ॥८१॥
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाचित्सर्वाङ्गः परमाद्भुतभाविनः ॥८२॥
 मुनेश्चारित्रशूरस्य गत्वासन्न कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥
 ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सन्ननिवासिनाम् । स जगद्गानुबोधांश्च शुभ्राश्च चतुरः सुवीः ॥८४॥
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुश्रूयतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽबोचत् सुमानसः । नाथ तेऽद्योपदेशेन चक्षुःस्मीलित मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुम्हें देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंकी भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं। इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पङ्क्तके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भयन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं। उनमें इन्द्रोंके द्वारा बन्धनीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका तवत्त पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गृहका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंकी नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७८॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया। वह उस स्त्रीकी नमस्कार कर तथा वाग-वार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बोंध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगीका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिमूढ होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

तृपार्त्तेनैव सत्तोयं ह्यायेवाश्रयकाचिना । शुचार्त्तेनैव मिष्टाह्न रोगिणेशु सुभोजनम् ॥८७॥
 दुष्पथप्रतिपन्नैव यर्भैरेप्सितदेशगम् । यानपात्रमिराम्मोषीं स्वाकुलेन निमज्जताम् ॥८८॥
 मयेदं शासनं जैन सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं भग्नप्रसादेन दुर्लभं पुण्यधर्मम् ॥८९॥
 प्रैलोचयेऽपि न मे करिष्यन्नरता रिपते सभ । येनायमादरो मार्गो नोपितो जिनदेवान् ॥९०॥
 इत्युक्त्वा शिरसा पादौ चन्दित्वाऽऽल्लिखितान् । शुभं प्रदक्षिणीं हृत् द्विजः स्व मन्त्रन गतः ॥९१॥
 जगाद् वाऽतिदृष्टस्तौ प्रमथविकचेष्टनः । द्रियते परमाश्चर्यं गुरोरेव मया श्रुतम् ॥९२॥
 श्रुतं तव न तपित्वा जनकेनाय वा पितुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न मे श्रुतम् ॥९३॥
 दृष्टं ब्राह्मणि यातेन यद्वरणं मयाश्रुतम् । तद्गुरोरेवदेशेन नेदानीं निरमयाव मे ॥९४॥
 किं किं मो ब्राह्मण यदि दृष्टं किंवा रमया श्रुतम् । उक्तोऽगोत्रज शरणोमि हर्षकथयितुं प्रिये ॥९५॥
 आदरेणानुपुन्यं कौतुकिन्या पुनः पुनः । त्रिमोऽप्योचत शृण्वार्यं यन्मया श्रुतमश्रुतम् ॥९६॥
 समिद्धं प्रयत्नेन वन तस्य समोपत । दृष्टा पुरीं मया रमया यत्रार्थाद् गहनं वनम् ॥९७॥
 तदाज्ञाने मया रैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता क्वापि मनोहरणभाषिता ॥९८॥
 पृष्टा च सा मयाएवात तया रामपुरीति च । ददाति आश्चर्यमोऽत्र किं रामो महद्वनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीडित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषों काया मिल जाय, भूखसे पीडित मनुष्यको मिष्ठान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटकें हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और यहाँ व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, वसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८८॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन-प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥८९॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९०॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुप्तसे परम आश्चर्य सुना है ॥९१॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत पहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९२॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुप्तके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९३॥ ब्राह्मणोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणोंके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥९४॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जय आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह त्रिष बोला कि हे आर्य ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९५॥

मैं लकड़ियों लानेके लिए जङ्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सत्रन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९६॥ मैंने उस नगरीके पास एक आम्रपत्रोसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९७॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावणके लिए बहुत भारी

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यच्चिगी । जगद् विप्र परम त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
 अस्याः पुरः समासज्ञा कथं त्वं भुवमागत । आरषकैरलं घोरैर्नृणं नरयति बोधितः ॥७३॥
 अस्या द्वारत्रयं पुर्यां दुष्पथेना सुरैरपि । अद्यन्य सर्वदा वारैः रचकैः सुनियामकैः ॥७४॥
 सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोऽज्वलैः । पृथिवीभीषिता मृत्यु मानुषा यान्त्यसंश्रयम् ॥७५॥
 पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य परयसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकाश्चादनष्ट्युग्रीन् ॥७६॥
 मणितोरणरग्रेषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रबन्धानामपीषु प्रथितायनाः ॥७७॥
 सामायिक पुरस्कृत्य तामां यस्तवन नरः । नमोऽहंस्मिन्निस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
 गुरुपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरचितः । विशतीन्द्रककुब्दर हन्यते स्वममस्कृतिः ॥७९॥
 अणुव्रतधरो यो न गृणशीलविमूषितः । तं शमः परया प्रीत्या बाह्नुतेन समर्चति ॥८०॥
 ततस्तस्या वधः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परम हर्षं लब्धोपाय धनागमे ॥८१॥
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाञ्चितसर्वाङ्गः परमाङ्गनमावितः ॥८२॥
 सुनेश्वरिणश्चरस्य गत्वाऽसौ कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽष्टदण्डदण्डतथरक्रियाम् ॥८३॥
 ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सप्रतिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगाञ्च शुभ्राव चतुरः सुवीः ॥८४॥
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुब्रूयतोऽस्य त । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽबोचत् सुमानसः । गाय तेषोपदेशेन चक्षुस्स्माकित मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंकी भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, धीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं । इन रक्षकोंके द्वारा उरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाले पक्षके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भयन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं । उनमें इन्द्रोंके द्वारा बन्दीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७८॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर गोमाञ्छासे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया । वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा बार-बार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पाठन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बोध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म अवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

गृधानेन ससोऽयं द्वायेवाश्रयकोटिगा । क्षुधानेनैव मिष्टान्न रोगिणेन मुनेरत्रम् ॥८७॥
 दुष्पथप्रतिपन्नेन वसन्तेऽप्यनदेशगम् । यानपात्रमिराम्मोर्षा ध्यातृत्वेन निमज्जनाम् ॥८८॥
 मयेयं शासनं जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं भवप्रयादेन दुर्लभं पुण्यधामैः ॥८९॥
 प्रैलोक्येऽपि न मे करिष्यन्नृणां विघ्ने समः । येनायमीदृशो मार्गो नापिनो जिनदेशनः ॥९०॥
 इत्युवाच शिरसा पादौ बन्धित्वाऽत्रलियोगिना । गुह्यं प्रदक्षिणीकृत्य द्वित्रः स भवनं गतः ॥९१॥
 जगाद् वाऽतिद्वष्टरानां प्रसन्नविक्रमेण च । दक्षिते परमात्रयं गुरोरष्ट मया धृतम् ॥९२॥
 धृतं तत्र न तत्पित्रा जनकेनाप्य वा पित्रुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रिणापि न मे धृतम् ॥९३॥
 दष्ट ब्राह्मणि यानेन यदरण्य मयाकृतम् । तद्गुरोःश्रवदेशेन नेदानीं विस्मयाय मे ॥९४॥
 किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दष्ट किं वा रत्नवा धृतम् । उक्तोऽप्येवञ्च शरणांभि हर्षाऽरुणयितुं प्रिये ॥९५॥
 आदरेणानुपुनश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विमोऽप्योपत शृण्वार्थं यन्मया धृतमकृतम् ॥९६॥
 समिद्धं प्रयानेन धनं तस्य समोपतः । दष्टा पुरीं मया रत्नवा यत्रासीद् गहनं धनम् ॥९७॥
 तदात्तने मया कैका दष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता कापि मनोहरमभाविता ॥९८॥
 दष्टा च सा मयाप्यात तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेऽप्योऽत्र किञ्च रामो महद्भनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार व्याससे पीडित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुण्यको छाया मिल जाय, भूयसे पीडित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और पड़ी व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, वसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको भट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८८॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन-प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥८९॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९०॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९१॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कइनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९२॥ हे ब्राह्मणि ! यन्मैं जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९३॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सी कहो । ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षने कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥९४॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्य ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९५॥

मैं लङ्घियों लानेके लिए उद्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सचन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर आपण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यक्षिणी । जगाद् विप्रं परम त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
 अस्यां पुरः समासन्नां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरलं धौरैर्नूनं नश्यति धोक्षितः ॥७३॥
 अस्यां द्वारत्रयं पुण्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अद्युन्य सर्वदा वारैः रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
 सिंहनाशनशार्ङ्गानुस्यववत्रैर्महोऽज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृगु मालुपा यान्त्यसशयम् ॥७५॥
 पूर्वद्वारमदो यस्तु तस्य पश्यसि यान् यहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् वलाकाद्यादनच्छरीन् ॥७६॥
 मणितोरणम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्धानामपीषु प्रतिपातनाः ॥७७॥
 सामायिकं पुरस्कृत्य तामा यस्तवन नरः । नमोऽर्हसिद्वन्द्वनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥
 गुरूपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्जद्वारं हन्यते स्वनमस्कृतिः ॥७९॥
 अगुप्तमथरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । अगाम परम हर्षं रक्षत्रोपाय धनागमे ॥८१॥
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाक्षितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभाविताः ॥८२॥
 मुनेश्चारिष्यद्रस्य गन्वासक्तं कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छद्गुप्ततथारक्षियाम् ॥८३॥
 ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सप्रजिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगार्थं शुभावा वतुरः सुधीः ॥८४॥
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुभूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽशोचत् सुमादसः । नाथ तेऽशोचयेत्येन चक्षुरन्मीलित मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षिणी ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पक्ष तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंके प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्ङ्गलके समान गुप्तघाले तेजस्वी, तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशुन्य रहते हैं । इन रक्षकोंके द्वारा डरवारे मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार उसके बाहर समीप ही घने हुए बगलके पक्षके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन त रहता है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-म है । उनमें इन्द्रोंके द्वारा बन्दीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्मल्य-गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन करता है वह उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नम नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७८॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शैर् अलंकृत होता है, राम उसे बढ़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा हृदय अत्यन्त अद्भुत मायोसे युक्त हो गया । यह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा वाग-वार-स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें गृह-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बौध शिरसे कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे

स्वसारीरेऽपि निरमगा ये लुप्यन्ति न जानुविन् । ते निरप्रतिष्ठा जेया मुनिरुज्जगत्प्रिया ॥११५॥
 एतमुद्गतमद्रष्टि कुट्टिमलपतिना । सुरभीं शुशुभे पथी भरणाव शुभे परम् ॥११६॥
 पादमुले ततो नीय्या गुरोस्तस्यैव म्वादम् । अणुजतानि यामोदा बाह्यानी तेन लभ्यन्ता ॥११७॥
 विज्ञाय कपिल रक्ष परम जिनशामने । कुलान्याशाविषोप्राणि विप्राणा भेजिरे गमम् ॥११८॥
 मुनिमुपतनायस्य सप्रप्य सुदृढ मतम् । बभूवु धावकाम्ताया ऊनुरैव सुनुदय ॥११९॥
 कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तका । स्तोत्रेन नरक घोरे न याता स्म प्रमादिन ॥१२०॥
 अज्ञातमिदमयास जन्मान्तरशतेष्वपि । निनेद्गन्धामन मल्ल हृद्यम् प्राप्त मुनिर्मन्त्रम् ॥१२१॥
 ध्यानागुशुचिनाविदे मनकविद्वन्महाहिता । स्वकर्ममयिषो भावययिषा त्रुहमोऽनुना ॥१२२॥
 इति केचिन् समाधाय मन भवेगनिर्भरा । विरक्ता सर्वयोग्यो बभूवु धर्मगोचरमा ॥१२३॥
 मागारधर्मरक्तसु कविल परमप्रिय । कदाचिद् ब्राह्मणामूचे मदभिप्रायवर्तिनाम् ॥१२४॥
 कान्ते रामपुरी किं नो ज्ञानमोऽथ तत्पूजितम् । विशुद्धचेष्टिन् द्रष्टु राम शत्रावलोचनम् ॥१२५॥
 आशापराधण निष्पुषपायगतमानसम् । दारिद्र्यवचारीयं सगमापन्नं कुचिद्वृत्ते ॥१२६॥
 जनमुच्चारयत्येव किल भगवानुक्त्वपि । इति कर्त्तिर्भ्रमन्त्यस्य निर्मलहाहादकारिणी ॥१२७॥
 उक्तिरैव गृह्यागैव प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारनिम शिशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्मन्त्र साधु ही ससार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निरग्रह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिग्गजर मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्मन्त्र जानना चाहिये ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उपन्न हुआ था तथा जो मर्यादा दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुरभी नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ युध प्रह्लके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुरोभिषित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणोंको उन्हीं गुणके पादमूलमें ले जाकर तथा आश्रय सहित नमस्कार कर अणुजत ग्रहण करायें ॥११७॥ जो पहले आशीर्विष सौंपने समान अन्यन्त रूप थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलनी जिनशासनमें अनुरक्त जान कर शान्तिमानको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुमुद्रि थे वे मुनिमुन्यत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर आनन्द हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मल्लक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जायेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ा जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म धडे कट्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपा होवाके साथ मिलकर भाग्य रूपी धोके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी दीदीप्यमान अग्निमें होममेंगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर सर्वगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल आनन्दधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें वस्तर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रवारूपी समुद्रमें मग्न है, और पैद भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी नेत्रोंकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! ठीक, यह फूलोंका पिटारा तुम ले

ततो गत्वा मया साधोजिनेन्द्रवचने श्रुतम् । आम्ना मे तर्पितस्तेन कुट्टिपरितापितः ॥१००॥
 मुनयो यं समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । लुप्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
 सोऽर्हदमो मया लब्धल्लोकेत्यैकमहानिधिः । अमो यतो बहिर्भूताः विभ्रयन्ते त्वन्यवादिनः ॥१०२॥
 यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवज्जितचेतसा ॥१०३॥
 ब्राह्मणो विनिश्चयैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वय्यसादेन लब्धो धर्मो जिनेन्द्रितः ॥१०४॥
 विधेः परम मया योग मोहाद् विपफलार्थिना । वीक्ष्येनापि त्वया लब्धमर्हन्नामरसायनम् ॥१०५॥
 मयासीन्मन्दर्पाभाजा मणिर्हस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥
 उपवासपरिश्रान्तध्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्याल्लवेलायां मार्गोऽन्यस्त्वैव वीक्षितः ॥१०७॥
 अर्हन्तं समतिक्रम्य पाकशासनवन्दितम् । उमोतिष्कन्वन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
 अहिसानिर्मल सारमर्हदभरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भवितं विषम् ॥१०९॥
 मानुषद्वीपमासाद्य त्वय्यत्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्न कृतः कष्टं विभोतकपरिग्रहः ॥११०॥
 सर्वमक्षप्रवर्षेषु दिवाराशौ च भोजिषु । अमृतेषु विशीलेषु दत्त फलविवर्जितम् ॥१११॥
 यः किलातिथिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
 परित्यक्तोऽसत्रतिथिः सर्वैश्वर्यान्तनिःस्पृहः । निकेतरहितः सोऽन्यनतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥
 येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तत्प्रयन्ति निर्ग्रन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

धन देते हैं ॥६६॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अर्हन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया । वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणोंके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ भैया यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोह बरा विपफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रज्ज्वामात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अर्हन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहाङ्गणमें साधु आये और मैंने उनका अपमान कर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे विभ्र विगन्धर मुनि घर आये सो उन्हें हटा कर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हन्तको छोड़कर मैंने ज्योतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंको शिर भुक्का-मुक्काकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अर्हन्त भगवान्का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अङ्गीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त है, रात दिन इच्छा-नुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे त्रिलुल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके हाथमें न

स्वशरीरेऽपि निम्नगा ये लुम्पन्नि न जानुन्ति । ते निपदिग्रहा जेषा मुनिश्चन्द्रमूर्तिः ॥११५॥

परमुद्गतसदृष्टिः कुर्याद्विजिता । सुगमां शुभमे पार्था भरणीं बुधे परम् ॥११६॥

पादमूले ततो नीत्वा गुरुनखैश्च सादरम् । अशुभतानि मामोदा ब्राह्मणी तेन लम्बिता ॥११७॥

विज्ञाय कपिल रक्त परम जिनशायने । जुगम्पाशोऽत्रोप्राणि विनागा भेजिरे गमम् ॥११८॥

मुनिमुत्तनायस्य मध्याप्य मुरदं मतम् । यथुक्तुः श्रावकमर्गमा ऊचुर्यैव मुमुक्षुः ॥११९॥

कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तका । स्तोत्रेन भरु घोरं न याना रमः प्रमादितः ॥१२०॥

भजालमिदमप्राप्त जन्मान्तरशतेऽपि । निनेन्द्रशायनं ब्रह्म कृष्णं प्राप्त मुनिर्मन्त्रम् ॥१२१॥

ध्यानशुशुबिगादिदे मनश्चापि कम्पमाहिता । स्वकर्ममभिधो भाववर्तिता जुहुमोऽनुता ॥१२२॥

इति केचिन् समाधाय मनः सवेगनिर्भरा । विरक्ता सर्वयोग्यो यन्बुध श्रमगोचरा ॥१२३॥

सागारधर्मरत्नमु कपिलः परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणोमूचं सद्भिप्रायवर्तिनाम् ॥१२४॥

कान्ते रामपुरीं किं नो ब्राम्होऽथ समन्तितम् । विशुद्धचेष्टितं द्रष्टुं रामं शक्नोवन्मोचनम् ॥१२५॥

आशापरायणं नियमुपायगतमानसम् । दारिद्र्यवशार्थिं मनमाद्यन् कुपितुर्ये ॥१२६॥

जनमुत्तारयत्येव किञ्च भव्यानुकम्पकः । इति कीर्तिभ्रममप्य निर्मलत्वाद्दकारिणी ॥१२७॥

लक्षितैव गृहागैर्न मिथे पुण्यकारणकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे मुकुमारमिमं शिशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्मन्त्र साधु ही संसार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निश्चुह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप विगम्यर मुद्रामें विभूषित रहते हैं उन्हें निर्मन्त्र जानना चाहिये ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उपन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित था ऐसीं सुरार्मा नामकी ब्राह्मणी पतिने साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणीको उन्ही गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अशुभत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीर्विष सौंपके समान अत्यन्त दम थे ऐसे ब्राह्मणोंके डुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जान कर शान्तिभायनों प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुमुदि थे वे मुनिसुत भगवान्का अत्यन्त सुहृद् मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रमादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जायेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने संकटों जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भाव रूपी धीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी दीर्घायमान अग्निमें होमने ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगमें मरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चले ? ॥१२५॥ वे भव्य जीर्वापर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तपसर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रत्वारूपी मनुद्रमे मग्न है, और पेट भरता भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! ठीक, यह फूलाका पिटारा तुम ले

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती सम्पदान्विता । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेषविभूषिता ॥१२६॥
 व्रजतोश्च तयोरुग्रा तत्तस्थुः पद्मगां पथि । दद्यात्करालवक्त्राश्च वेतालास्तारहासिनः ॥१२७॥
 एवमादांनि वस्त्रानि भीषणान्यवलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागता ॥१२८॥
 नमस्त्रिलोकवधेभ्यो जितेभ्यः सतत त्रिधा । उत्तर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१२९॥
 एतयोः स्तुवतोरेवं विदित्वा जिनभक्तिताम् । मेजिरे प्रशमं यथास्ती च प्राप्ती जिनालयम् ॥१३०॥
 ततो नमो निषद्याथा इत्युक्त्वा रचिताञ्जली । कृत्वा प्रदक्षिण स्तोत्रमुदचीचरतमिदम् ॥१३१॥
 विहाय लौकिक मार्गं महादुर्गतितुल्यदम् । भवन्तं शरणं नाथ चिरेण समुपागतः ॥१३२॥
 चतुर्भिर्विंशति युक्तमश्वरणां महात्मनाम् । उत्सर्पिष्ववसर्पिष्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३३॥
 पद्मस्रैरावतालयेषु भरतास्येषु पद्मसु । जिनाश्रमामि वास्येषु तान्त्रमामि जिनां स्त्रिधा ॥१३४॥
 यैः संसारममुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकाल सर्ववास्थेषु तान्त्रमामि जिनां स्त्रिधा ॥१३५॥
 मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं वसव सुविशुद्ध प्रकाशते ॥१३६॥
 इति कृत्वा स्तुतिं जानुमस्तकस्पृष्टभूतलैः । नेमनुस्तौ जिमं भक्त्या परिहृष्टतनूहौ ॥१३७॥
 ततोऽसीं कृतकतन्त्रेण रचैः सौम्यैः प्रियंवदे । अनुज्ञातः सम पत्न्या द्रष्टुं हलिनैमुद्ययौ ॥१३८॥
 राजमार्गोऽद्विसकाशान् प्रासादान् विमलस्वित्प । द्राक्ष्यन् दर्शयन् याति दिव्यनारासमानुलान् ॥१३९॥

लो और मैं इस सुकुमार वक्त्रको कन्धे पर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कह कर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनों दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए । अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२६॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प विभूषित थे ॥१२६॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर खाड़े हो गये तथा जिनके मुख डाँटोंसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयङ्कर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय है, जो भयङ्कर संसाररूपी कर्मसे पार हो चुके हैं तथा जो उत्कृष्ट मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जितेन्द्र भगवान्को मन, बचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोंकी जिन-भक्तिको जान कर यत्न शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्की वसतिके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोंने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनों ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपको शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थङ्करोंकी चौथासीको हम नमस्कार करने हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थङ्कर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, बचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६-१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोंको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थङ्करोंको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुव्रत भगवान्को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुति कर घुटनों और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जितेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया । उस समय भक्तिके कारण उन दोनोंके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रत्नकोंने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल द्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य त्रिविधसे भरे जो

ऊचे च कुन्दसकरो सर्वकामगुणान्विते । राजते मवनैर्यस्य पुरीर्य स्वर्गमन्त्रिभा ॥१४३॥
 तस्यैतद्भवन भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्या मध्ये विराजते ॥१४४॥
 प्रवर्तित महाहृष्ट स विवेश च तदगृहम् । इष्टा च लक्ष्मण दूराद्भृशमाकुलता गत ॥१४५॥
 वृष्यौ सञ्जातकम्परच सोऽयमिन्द्रिवरभ्रम । व्यथितो दुविदग्धोऽह चित्रैर्वैन तदावधै ॥१४६॥
 कर्णधोरतितु लानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे निह्ने निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥
 किं करोमि क्व गच्छामि विवर प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहानस्य भवेच्छरणमथ क ॥१४८॥
 अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेन् । समुल्लघ्योचरामाश्रय देशत्याग कृता भवेत् ॥१४९॥
 पृथग्मुद्गेगमापन्नो विहाय ब्राह्मणो द्विज । प्रपलायितुमुत्तुकी लक्ष्मणेन विरोक्षित ॥१५०॥
 स्मिन्वा च स जगादाय कुतो विप्र समागत । वनसर्वाधितामेव किमप्याबुलतामित ॥१५१॥
 समाश्वासमिम तात्वा द्रुतमानय त द्विजम् । परयामस्तावदेतस्य चरित किमथ वदेत् ॥१५२॥
 न भेत्य न भेत्य निवर्तस्वेति चोदित । अधिगम्य समाश्रयस निवृत्त स्खलितक्रम ॥१५३॥
 उपत्यय भय स्वयत्वा प्रवृत्तो धवलान्वर । पुण्याञ्जलिस्तपोरग्रे स्थित्य स्वस्तायशब्दयन् ॥१५४॥
 ततो लब्धासनासनो निक्कन्थाङ्गनो द्विज । ऋग्भि स्तवनद्वधाभरस्तोपात् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥
 तत पद्मो जगादैव ता न कृत्वा विमानताम् । यद् साम्प्रतमागत्य कस्मात् पृजयसि द्विज ॥१५६॥
 साऽप्रवीक्ष मया ज्ञात त्व प्रच्छन्नमहेरवर । मोहाद्विमानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिल ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिरगाता जावा था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणासे सहित, भयनासे जिनकी यह रंगरंग तुल्य नगरी मुशोभित हो रहा है उन मनोहर रामका यह भवन समापवर्ती अन्य महलासे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भजनमें प्रवेश किया । यहाँ यह दूर से ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कंपकंपी छूटने लगी । वह विचार करने लगा कि नील कमलके समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस उसय मुक्त मूर्खको नाना प्रकार के बधसे दुःखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गई । वह मन ही मन अपनी निहासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तुने कानाके लिए अत्यन्त हृदयायी वचन कहे अन चुप क्यों है ? याहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस निलमें घुस जाऊँ ? आन मुक्त शरणहानका यहो कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यन्नि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लोपकर देशत्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्देगकी प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणोंको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिये, नहीं डरना चाहिये, लौटो', इस प्रकार कहने पर वह सान्त्वनाका प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरा वापिस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अञ्जलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही निसकी स्त्री बैठी थी ऐसा यह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ श्रद्धावाके द्वारा रामलक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्या कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा हे देव !

द्विचिरेया जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्य यथादित्यो हिमरामे ॥१५८॥
 अतुना त्व मया ज्ञात सोऽसि नान्य कदाचन । द्रविणानाह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥
 नि यमर्थयुत देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्त्यर्थपरित्यक्त निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
 यदयार्थास्तस्य मिश्रणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा । यस्यार्था स पुमाल्लोके यस्यार्था स च पण्डित ॥१६१॥
 अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्र न सहोदर । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
 मार्थी धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वित । सा दया निर्मला ज्ञेया मास यस्या न भुज्यते ॥१६३॥
 मासाशनाश्रितृत्ताना सर्वेषा प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन सम्पन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तय ॥१६४॥
 राजन् विचित्ररूपोऽय लोको मानुषलक्षित । मादृशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽय यो जन ॥१६५॥
 आस्ता सावज्ञवानप्र यन्त्यते ये भवद्विधे । पराभव विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधव ॥१६६॥
 पूर्वं सन कुमारस्य किं ते ज्ञातो न चक्रमृत् । महर्द्धय सुरा यस्य रूप द्रष्टुमिहागत ॥१६७॥
 सोऽपि शामण्यमासाद्य सम्प्राप्त परिभूतताम् । पर्यटनं क्वचिद्धमे भिक्षामाचारलोचिद ॥१६८॥
 यनस्पयुपजीविन्या तपित सोऽयदा मुनि । पञ्चाश्रयगुणैश्वर्यमाददे विजये पुरे ॥१६९॥
 सुभूमश्चामृद भू वा कर कृत्वाभारम् । केयूरभूषितभुजो वदराधर्ममदीकयत् ॥१७०॥
 वदर नैकमन्यस्मै नि स्वोऽसावददात्त । अनभिज्ञो विशेषस्य विशेष कमवासवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्नि के समान मोहवश मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्य के समान धनवान् की ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथाधर्म धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सम्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसने पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके पान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जन मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई ! पर वही मनुष्य जन धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आसीन बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मास नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मास भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियों के अर्थ त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपका यात जाने दीजिये आप जैसे लोग जिनकी बन्धना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रमृती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी बड़ी श्रद्धियाको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए । आचार शास्त्र के जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें वही भिक्षा नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें धनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पञ्चाश्रयरूपी गुणोंका श्रेष्ठ प्राप्त किया ॥१६९॥ निनरी भुजा वाजूनन्दसे निभूषित थी ऐसे सुभूमने चक्रमृती होकर अपना यल्यविभूषित हाथ बेरके लिए बड़ाया परन्तु यह दरिद्र है यह ममस्तर उनके लिए किसीने एक बेर भी नहीं दिया सो ठाक हो है क्याकि विगेपको नहीं

अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते यत्र न ह्यत्र जनोऽव्ययते ॥१७२॥
 न कृता मन्दभागेन कस्मादभ्यागतक्रिया । तदा मयेति मेऽद्यापि तप्यते मानसं मृगम् ॥१७३॥
 रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । मृगं कुद्वोऽपि को नाम न यथावतिविस्मयम् ॥१७४॥
 एवमुक्त्वा युष्माकं प्रस्तनं रुदन्तं कपिलं गिरा । शुभयासान्वयद् रामं सुशर्माणं च जानका ॥१७५॥
 ततो ह्यमघगम्योभिः किङ्करी राघवाग्रया । कपिलं प्रावृत्तं श्रीया स्नापितं सह भार्यया ॥१७६॥
 परमं भान्तित्राणं वक्ष्ये तत्त्वैश्च भूषितं । सुभूरिधनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
 जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं वक्ष्यति यातोऽयं तथापि भुविचक्षण ॥१७८॥
 सन्मानविशिष्टैर्विद्धो वष्टो गुणमहोरगैः । उपचारहतामासीदृति न ह भते द्विज ॥१७९॥
 वक्ष्यामि चाहं पुरा यत्र स्कन्धगम्यस्तैन्धमारकः । यथा शोपितदेहं स मृपितोऽयन्तदुर्विधं ॥१८०॥
 प्रामे तत्रैव जातोऽस्मि परयं यद्याधिपोषमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविचलितं ॥१८१॥
 आर्त्तान्ते शार्ङ्गपतितमनेकचिद्वृज्जनैरम् । काकाद्यशुचिसल्लिप्तं गृहं गोमयवर्णितम् ॥१८२॥
 अश्रुता धेतुभिर्न्यासं बहुप्रासादसङ्कुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥
 हा मया पुण्डरीकाक्षी भ्रातरौ गृहभागती । निर्मलितौ विना दोषं तौ मृगाङ्गनिभानौ ॥१८४॥

जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको फल प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई-समी लोग, रक्कत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे निवश हैं । जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७०॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य क्रिया क्या नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिशय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त प्रेम्ण प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकान्तर हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री मुरारिकाको समझाया ॥१७५॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे किकराने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोमें रखते हुए जलसे श्रुतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलङ्कृत किया । तदनन्तर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापिस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान् ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगोपभोगि पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी वाणीसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पसे उसा गया था और सेवा शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोष को प्राप्त नहीं होता था । भाग्यार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, धान आदि सेवा शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहीं तौ मैं दुष्ट कि जिसने इन्हे एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहीं ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गौवमे इतना अधिक दरिद्र था कि चन्वेपर लकड़ियोंका गद्दा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गौव मे मैं रामके प्रसादसे यत्तराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण शोर्ण होकर गिर गया था, अनेक द्विजोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्री रामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलासे सर्वाङ्ग तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, वड़े खेदकी बात है कि मैंने

यद्ग्रीष्मातपतस्त्राणी सम देव्या विनिर्गता । तन्मे प्रतिष्ठित शरथ हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥
 तावन्मे नास्ति दुःखस्य वैदो यावदिदं गृहम् । परित्यज्य निराश्रमं प्रयजिष्याम्यसशयम् ॥१८६॥
 उपलभ्यास्य वैराग्यं बन्धुवैराग्यं ससम्पन्नम् । धाराभिरसस्रज्जातं दीनं साकं सुरार्चनाम् ॥१८७॥
 निरीष्य स्वजनं विप्रो निर्ममं शोभमागरे । अपेक्षापेठया बुद्ध्या निर्जगाद शिवोऽमुक ॥१८८॥
 विचित्ररजनरत्नेर्हरयुक्तुहमनोरथैः । भूदोऽयं दहते लोहं किं न जौनीयं भो जना ॥१८९॥
 इति सवेगमापन्नं प्रिया दुःखेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविक्लवकारिणम् ॥१९०॥
 भटादश सहस्राणि धेनूनां सितवेगसाधु । रत्नपूर्णं च भवनं दत्त्वा योषित्समाकुलम् ॥१९१॥
 सुरार्मायां समारोप्य तनयं हविषं सया । यत्पूज्य कपिलं साधुर्निराश्रमो निराश्रयः ॥१९२॥
 मद्भानन्दमते शिष्यं सुप्रतीतस्तपोजन । चकार गुरता तस्य गुणशैलमहार्णवं ॥१९३॥

धियोगिनोवृत्तम्

विज्रहार् महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीर्य १ ।

परमार्थनिविष्टमानसं धमनप्रापरिवीतविग्रह ॥१९४॥

य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रहृष्टमिति श्रूणोति वा ।

उपवाससहस्रसम्पन्नं लभतेऽस्मी रविमानुर' कलम् ॥१९५॥

इत्यार्षे रत्निपेक्षाचार्यश्लोके पद्मचरिते कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चविंशत्तमं पत्रं ॥३५॥

कमलके समान नेत्रोके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुरोभिव, घर आये हुए उन दोनों भाइयों का अपराधके बिना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ ग्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सतत हो रहे थे वेसे दोनों भाई देवी अर्थात् सांताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमे सदा शल्यकी तरह गाड़ा हुआ चञ्चल हो उठता है ॥१८५॥ निःसन्देह मेरे दुःखका अन्त तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निराश्रम हो दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥

तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके घरवाये हुए तीन तीन भाई बन्धु, सुरार्मा प्राद्वणीके साथ अश्रुधारा वहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनकी शीशरूपी सागरमे निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे भानजो ! यद्ये यद्ये मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जन्तोंके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८-१८९॥ इस प्रकार सवेगको प्राप्त हुआ कपिल प्राणय दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुव दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोको छोड़कर, अठारह हजार सन्तद गाय, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुरार्मा प्राद्वणीके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०-१९१॥ सहानन्द मतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु, हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९२॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी कर्मावरण धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमे लग्न रहता था, और जिनका शरीर निर्मम प्रत रूपी लक्ष्मसे आलङ्कित था वेसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान दीर्घायमान होता हुआ एक हजार वर्षवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्य नामक प्रसिद्ध रत्निपेक्षाचार्य कथित पद्मचरितमे कपिलका वर्णन करनेवाला पत्रार्थ पत्रं समाप्त हुआ ॥३५॥

पटत्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुमत् 'काले विकालप्रतिमे गते । घोरान्धकारसङ्घे नियुच्यन्तिभीषणे ॥१॥
जाताया सुप्रसन्नाया शरदि प्रातिनिर्मे । ऊचे यक्षाधिप पद्म प्रस्थानु कृतमानसम् ॥२॥
चन्तव्य देव यत्किञ्चिदस्माकमिति दुष्कृतम् । विधातु शक्यते केन योग्य सर्व भवादृशम् ॥३॥
इयुक्ते रामदेवोऽपि तमूचे मुखकाधिपम् । स्वयापि निखिला स्वस्य चन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
मुतरा तेन वाक्येन जात सत्तमभावन । यक्षाणामधिपो नत्वा सम्भाय विपुलश्रियम् ॥५॥
हार स्वयम्भवाभिष्टव्य ददौ पद्माय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे 'हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याण सोतायै बिलसप्रभम् । महाविनोददत्ता च धौणार्माप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यचराज पुरीकृतम् । माया समहरकिञ्चिद्वान शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्णव्यकरणाच्च ससम्पद । अमन्यत परित्रासमुदार शिवमारमन ॥९॥
पर्यटन्तो महीं स्वैर नानारसफलाशिन । विचित्रसङ्ख्यामन्ता रममाण। सुरा इव ॥१०॥
वह्महृष्य सुमहारण्य द्विपसिद्धसमाकुलम् । अनोपभुक्तमुद्देश वैजयन्तपुर गता ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिवचके तमसाहृते । नक्षत्रमण्डलाकारेण सञ्जाते गगनाग्रणे ॥१२॥
अपरोक्षदिग्भाते क्षुद्रलोकाभवावहे । यथाभिरुचिते देहे ते पुरो निषटे स्थिता ॥१३॥
अथान् नगरे राजा प्रसिद्ध पृथिवीधर । इन्द्राणी मद्दिपो तस्य योषिद्विगुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त और निजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जन क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गई तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उसी समय यक्षाका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव । हमारी जो कुछ नुति रह गई हो वह क्षमा कीजिये क्योंकि आप जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहने पर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिये अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिये ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयम्भ नामका अद्भुत हार दिया । लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देवाप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामाङ्गलिक देदीप्यमान चूडामणि तथा महारिनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जन वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यचराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥

अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके रसादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवाके समान रमण करते हुए वे सीता, हाथी और सिंहासे व्याप्त महावनको पारकर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी आँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे लुद्र मनुष्याको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस

तनया वनमायेति तयोरत्यन्तसुदूरी । बाल्यात् प्रभृति सा रक्षा लक्ष्मणस्य गुणश्रुतेः ॥१५॥
 श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रव्रज्यासमये वचः । 'रक्षितुं क्वापि' निर्वातं राम लक्ष्मणसयुतम् ॥१६॥
 ध्यावेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायातिथोग्वाथ पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥
 तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥
 अंशुकेन वरं कण्ठं विवेष्टासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
 विधिच्छलेन केनापि गत्वारण्यं दिनचये । ध्रुवमद्यैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
 प्रयाहि भगवन् भानो संप्रेषय निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं दीना पादयोः प्रपतामि ते ॥२१॥
 शर्वरी भण्यतां यात्वा काञ्चन्तां दुःखभागिनी । संवत्सरसम वेचि दिनं द्वागम्यतामिति ॥२२॥
 इति सञ्चित्य सा बाला गतेऽस्तं तिष्ठतेजसि । सोपवासा समासाद्य पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥
 प्रवर रथनारय सखीजनसमायुता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवीं किलावृत्तम् ॥२४॥
 यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगतः ॥२५॥
 अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुप्तश्च सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥
 'निराशङ्कपदनिक्षेपात्तितो वनमृगोव सा । निष्क्रम्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे भयवर्जिता ॥२७॥
 ततस्तस्याः समाग्राय गन्ध परमसौरभम् । एवं सूनुः सुमित्राया दध्नी सम्मदमुद्बहन् ॥२८॥
 ज्योतीरैलेव काप्येषा मूर्तिरश्रोपलक्ष्यते । कुमार्यां श्रेष्ठया भाग्यमनया कुलजातया ॥२९॥

नगरका राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि खियाँके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी । वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनसे अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके दीक्षा लेनेके समय कथित वचनोंका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वल्लसे कण्ठ छपेट वृक्षपर लटक कर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके बहाने सायंकालके समय वनमें जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् तूर्य ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंमें पड़ती हूँ । जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनो दिनको वर्षके समान समझती हूँ इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता पिताकी आज्ञा प्राप्तकर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोके साथ वैभव पूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गई ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमें तथा वनके जिस प्रदेशमें राम सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमें उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन देवताकी पूजा की । तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशङ्क हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नाई उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिषी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्तां परं तु खवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥
 अजातचिन्तितः नूनमेवात्मानं जिघांसति । परयामि तावदेतस्याश्चेष्टामन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
 इति सखित्वं निश्चिन्तो गृह्णा वदतरोरधः । तस्यै कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
 तमेव पादपं साविं प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवन्ना तनूदरी ॥३३॥
 लक्ष्मणस्तौ तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुन्मिभिः । वेत्ति तावदिमां सम्यक् कुतः कथं भविष्यति ॥३४॥
 अशुक्रेनाशुवर्णेन कृत्वा पातं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
 एतत्तद्विवासान्वयः शृणुवाहो सुदेवताः । भवतीत्यो नमाम्येषां प्रसादः न्यिता मयि ॥३६॥
 वाच्यो मङ्गलनादेव भवन्तीभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् ध्रुवम् ॥३७॥
 यथा खद्विरे बाला वनमाला मुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागतः ॥३८॥
 अशुक्रेन समालम्ब्य स्व सा न्यग्रोधपादपे । त्वत्तिमिच्छामसूनुं तन्वां त्यजन्त्यस्माभिरोचिता ॥३९॥
 एवमुक्त्वा यथा नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमं हृत्तोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
 एवं निगद्य शास्त्रायां समर्पयति पाराकम् । सम्भ्रान्ताश्च समालिङ्ग्य सोमितिदिदमवधीत् ॥४१॥
 अयि मुग्धे मुरुण्डेऽस्मिन् मनुजालिङ्गनोचिते । कस्माद्गुरुपाशोऽन्यं स्वयां मुमुक्षि सज्जयते ॥४२॥
 अहं स लक्ष्मणो ब्रूय पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येपि बालिके ॥४३॥
 इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सामन्वनकोविदः । अहार लक्ष्मण, केन पुञ्जं तामरमादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥३६॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ' ॥३१॥ इस प्रकार विचार कर कौतुक भरे लक्ष्मण चुपचाप बटवृत्तके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्प वृत्तके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसीके समान थी, जो स्तनोके भारसे मुकी हुई सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृत्तके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देष्ट लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शरीरसे ठीक ठीक मालूम हो फल कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान खच्छ वर्णवाले वस्त्रसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोंका भी मन हरण करनेमें समर्थ बाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो इस वृत्तके निवासी देवताओ ! सुनिये, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्न पूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुःखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्यु लोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ बटवृत्तपर कपड़ेसे अपने आपकी टोंगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशाङ्गीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गई है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कह कर वह ज्यों ही शाखा पर फाँसी बाँधती है त्योंही घनड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिङ्गन कर यह कहा कि हे मूर्ख ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिङ्गन के योग्य है, हे मुमुक्षि ! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुम्हें विश्वास न हो तो जैसा मुन खरजा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कह कर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

ततोऽसी प्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मण नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
 पर विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपगता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसङ्गमजन्मना ॥४६॥
 किमय वनदेवीमि प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयातामि सन्देशवचनं परम् ॥४७॥
 सोऽय यथाश्रुतो नाथ सप्रसादो दैवयोगत । भवेद्येन मम प्राणा प्रयान्तो विनिवारिता ॥४८॥
 इति सन्निवृत्त्यन्ती सा किञ्चि प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषे लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
 ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥
 अपरयश्च समुन्माय पप्रच्छ जनकामजगाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुत ॥५१॥
 प्रदोषे सस्तर कृत्वा सोऽस्माक पुष्पपङ्क्तवै । आसीदनतितूरस्थ कुमारो ह्ययं नेदयते ॥५२॥
 नाथ बाह्वायता तावदिति तस्या कृतध्वनौ । क्रमाद्व्युचया वाचा वचो ब्याहृतवामिति ॥५३॥
 पृष्ट्वागच्छ क्व यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं तात चरित बालकानुज ॥५४॥
 अयमायामि देवेति द्वास्मै सभ्रमौ वच । वनमालासमेतोऽसी ज्येष्ठस्यान्तिकमागत ॥५५॥
 अर्परात्रे तदा स्पष्टे निशानाथ समुद्ययौ । ववौ कुमुदगर्भासेर्वायु सामोदशतल ॥५६॥
 ततः पञ्चकान्ताभ्या हस्ताभ्या रचिताञ्जलि । अशुकावृतसर्वाङ्गा त्रयाविनमितानना ॥५७॥
 ज्ञातनिरशेषकर्तव्या विभ्राणा विनय परम् । बालानन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
 सद्द्वितीयं ततो दृष्ट्वा साता लक्ष्मणममवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कृत ॥५९॥
 कथं जानासि देवीति पद्मेनोक्ता जगाद सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुरपप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फौसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देख कर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गई ॥४५॥ नयसमागमके कारण कुछ-कुछ कौपत्ती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि कथा मेरे सन्देश वचनोसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिङ्गन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंकी उत्कृष्ट शय्या पर पड़े रामकी जब निद्रा हटो तो उन्हाने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्या नहीं दिखाई देता ? ॥५०-५१॥ सायकालके समय तो यह पूल तथा पत्तासे हमारी शय्याकर यहीं पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए । तब रामने यथाक्रमसे उच्च वाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहाँ चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहाँ हो, आवाज देओ ॥५३-५४॥ रामका आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ा कर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अग्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट हो आषा रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और शुभ्रांशु गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु बह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अञ्जलि बौध रखी थी, वस्त्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७-५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको रत्नी सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ?

उयोऽनया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागतः । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालपाणया ॥६१॥
 यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति ध्रुवम् । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्यौ द्विया किञ्चिन्नतानन ॥६२॥
 उकुलनेत्रराजाया प्रमोदापितचेतसः । प्रसन्नवस्त्रतारेशा सुशाला विस्मयान्विता ॥६३॥
 कथाभिः स्मितयुक्तानि याताभिः स्थानयुक्तताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया नष्टनिद्रा मुग्ध स्थिता ॥६४॥
 सरयोऽत्र वनमालाया समये बाधमागता । शयनीयं तथा ह्यन्य ददृशुस्तस्मानसा ॥६५॥
 ततोऽध्रुपूर्णनेत्राणां गवेपन्याकुलमनाम् । तासां हाकारशब्देन प्रबोधं भोजिरे भग्न ॥६६॥
 उपलब्धं च घृष्टान्तं सन्नहारुदसंभयः । शूरा पद्मातवश्चान्ये कुन्तकामुकपाणय ॥६७॥
 दिशः सर्वा समास्तीर्य दधाबुद्धान्तस्मानसा । भीतिभीतिसमायुक्ता समारस्येय शत्रुका ॥६८॥
 ततः कैरपि ते दृष्टा समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जघवाहने ॥६९॥
 ज्ञातनिश्चयोपशान्तैस्त्वैरलः सम्मदाऽन्वितैः । पृथिवीधरराजस्य कृतद्विष्टाभिर्वर्धनम् ॥७०॥
 उपायारम्भमुक्तस्य तत्राद्यं नगरे प्रभो । जगाम प्रक्रीमाव महारत्ननिवि स्वयम् ॥७१॥
 पपात नभसो घृष्टिभिर्ना मेघसमुद्भवात् । परिकर्मविनिर्मुक्तस्य क्षेत्रात् समुदगतम् ॥७२॥
 जामाता लक्ष्मणोऽयं ते वर्तते निकटे पुरः । जावितः ह्यनुमिच्छन्त्या सन्नतो वनमालया ॥७३॥
 पद्मश्च सीतया साकं परमो भवतः प्रियः । शय्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विराजते ॥७४॥
 वदतामिति श्रुत्यानां वचनैः प्रियशसिभिः । सुखनिर्भरचेतस्को मुमुर्षुर्नृपतिः वनम् ॥७५॥

इसके उत्तरमें सीताने कहा कि हे देव ! मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिये ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चोड़नीये साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रहा हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नवानन हो पास ही में बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुख रूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गई थी ऐसे वे सत्र, स्थानकी अनुदूलताकी प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुप्तसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सलियाँ जागीं तो शय्याकी सूनी देख भयभीत हो गई ॥६५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रही थी ऐसी उन सलियाँकी हाहाकारसे बोझा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ दूरी छोड़ापर आरुढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमें ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमें धायुके दबोंके समान जान पड़ते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंकी आच्छादित कर दीडे ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाआने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सत्रकी देखा और देख कर शीघ्रगामी बाहनोंसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाआने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्य घृष्टिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वयं ही महारत्नाका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जीतना बखेरना आदि क्रियाआँके बिना ही रेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरने निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्दुके समान यही सुखोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले श्रुतोंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुखका

तत प्रमुदचित्तेन पर प्रमदमोयुषा । दत्त बहुवन तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७६॥
 अचिन्तयच्च ही सद्यः सञ्जात दुहितुर्मम । अनिश्चितगतिः प्राप्तो यदयं सुमनोरथः ॥७७॥
 सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चामसुखकारणम् ॥७८॥
 योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिनि ॥७९॥
 ये पुण्येन विनिर्मुक्तः प्राणिनो दुःखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥
 अरण्यानां गिरेर्मूढिन विषमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥८१॥
 हृति सन्नित्यं जायार्यै न वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथय गोपादचरैः कुच्छनिर्गतैः ॥८२॥
 पुनः पुनरुच्छ्रितं सां मुमुक्षां स्वप्नशङ्कया । सञ्जातनिश्चयादाय स्वसवेयां सुखासिकाम् ॥८३॥
 ततो रामाथरक्षायै समुपति दिवाकरे । प्रेमसम्पूरितो राजा सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८४॥
 वरवारणमारुह्य द्युत्या परमया युतः । प्रतस्थे परमं द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसङ्गमम् ॥८५॥
 माता च वनमालायां पुत्रैरष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिबिकां रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
 अनन्तरं नृपादेशान् कश्चिपुः प्रचुरं हितम् । गन्धमालयां दिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥
 ततो दूरात् समालोक्य सकुल्लेषणपङ्कजम् । अवतीर्थं गजाद् राज्ञां बुढोके राममादरी ॥८८॥
 परिष्वस्य महाप्रीत्या सहितं लक्ष्मणेन तम् । अपृच्छत् कुशलं कृष्टिर्जानकीं च सुमानसः ॥८९॥

भरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षातिरेकसे क्षण भरके लिए मूर्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुख रूपी चन्द्रमा मन्द मुस-
 कानसे घायल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह
 विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रिका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनो-
 रथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्म-
 सुप्तका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमे सौ योजनका भी
 अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमे प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके
 विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुरी रहते हैं तथा उनके हाथमे आई हुई भी
 इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंमें बीचमे, पहाड़की चोटीपर विषम मार्ग तथा समुद्र
 के मध्यमे भी पुण्यशाली मनुष्योंकी इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर
 उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा
 सन समाचार कहा ॥८२॥ उस मुमुक्षीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशङ्कासे धार-
 धार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसवेय मुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित
 हो रहा था । तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनानसे सहित, परम कान्तिकसे युक्त और परम प्रिय
 समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥
 आठों पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली
 ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध
 माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथी
 से उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ उत्पन्न विधि विधानके वेत्ता तथा शोभा
 दृश्यके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम लक्ष्मणका आलिङ्गनकर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

तदेव्यपि तयो पृष्ट्वा क्षेम सुस्निग्धलीचना । निखिलाचारनिष्णाता जानकी परिपक्वने ॥६०॥
 टपचारो यथायोग्य तयोस्तैरपि निमित्त । आचार्यक हिते^१ याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥६१॥
 वीणानेष्टुमृदङ्गादिसहितो गायति स्वन । क्षुब्धार्जवसमो जने वन्दिनृदानुनादित ॥६२॥
 उत्तम ॥ महाभात पूजिताखिलमङ्गत । नृत्यलोकमन्वासादतिकम्पितभूतल ॥६३॥
 दिशस्तूर्यनिनादेन प्रतिशब्दसमन्वित । चन्द्र परस्परालापमित्र सम्मन्निर्भरा^२ ॥६४॥
 शनैः प्रसन्नता याते तस्मिन्नथ महोत्सवे । शरीरकर्म ते सर्वं कृत्वा स्नानाशनादिकम् ॥६५॥
 ततः ससिद्धिपारुष्ट्यमन्तशतवेष्टिनी । सारङ्गोपमपादातमहाचन्द्रपरिचुदी ॥६६॥
 पुर मृत्तलोत्साहरापत्यपृथिवीधरी । विदग्धसूतलोकन कृतमङ्गलनिस्वनी ॥६७॥
 हारानितबक्तावनवांशुकधारिणी । हरिचन्दनदिग्धाद्वाक्पादौ रथमुत्तमम् ॥६८॥
 नानारत्नाशुभम्पर्कसमुद्भूतेन्द्रकासुंरी । शराङ्गभास्कराकाराचक्षुषगुणवर्णनी ॥६९॥
 सौधर्मशान्देवार्मा जानकासहिता पुरम् । कुर्वणी बिस्मय मुन्न प्रविष्टी रामचन्दनौ ॥७०॥
 वरमालाधरी गन्धद्वयपद्मण्डली । सम्पूर्णचन्द्रवर्मा विनाताकारधारिणी ॥७१॥
 यत्नेनैव कृते तस्मिन्ललामे पुनर्भेदने । देवाते परम भोग भुञ्जामी निजयेच्छया ॥७२॥

चार पूछा ॥८६॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सादाका आलिङ्गन किया ॥६०॥ उन सजने भा राजा रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अति शय निपुणताको प्राप्त थे ॥६१॥ तदनन्तर जो वीणा बँसुरी मृदङ्ग आदिके शब्दसे सहित था, जो लोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें वन्दीजनाके द्वारा उद्यारित त्रिदाधलीका नाद गूँज रहा था ऐसा सङ्गीतका शब्द होने लगा ॥६२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे चिसम भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥६३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रहा थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत प्रीत हो मानो परस्पर बातलाप ही कर रही थी ॥६४॥ अथानन्तर धीरे धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उद्धाने स्नान भाजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥६५॥

तदनन्तर जो हाथी घोड़ा पर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैरों सिपाहियोंका वक्ता दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चले रहा था, चतुर घन्टीवन जिनके आगे मङ्गल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्ता स्थल द्वारासे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नाना रत्नाकी किरणाके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान चिनके आकार थे, जिनके गुणाका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा पेशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पहनी थीं, मुगन्धिसे कारण जिनके आस पास भ्रमराने मण्डल बाँध रक्ते थे, जिनके मुख चन्द्रमाने समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥६६-७०॥ जिस प्रकार पहले, यक्षों द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भा वे इच्छानुसार उत्कृष्ट

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति वनगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।

अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थलाभान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यगोक्ते पद्म पुराणे पद्मायने वनमालामिधानं नाम

षट्त्रिंशत्तमं पर्व ॥२६॥



भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत है तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक है ऐसे मनुष्य सघन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

अन्यथा मुन्यासीन समुदीरितकथम् । राघवाल्ङ्कृतास्थान राजान पृथिवीधरम् ॥१॥
 दूराप्यपरिग्रहाद्गो लेखवाह समावयो । प्रणम्य च समासानो दृत लेख समर्पयत् ॥२॥
 गृहावाप्तो ततो राजा वासनामकलञ्चित । लेखकायापित सातुं सन्धिविप्रद्वेदिने ॥३॥
 स विमुच्यानुवाच्यैन वायितो राजचक्षुषा । लिपिबुद्धविधौ चारुिरयवाचयदुद्यगा ॥४॥
 स्वस्तित्वस्तिलकोदारप्रभावमतिकर्मणे । भ्रामते नृतराजानामतिवाचाय शर्मणे ॥५॥
 श्रीन चावर्तनगराक्षराज ईषोयित । एषात पञ्चमहाराष्ट्र राज्ञराज्ञविशारद ॥६॥
 राजाधिराजतास्त्रिष्ट प्रतापवशिताहित । अनुरजितसर्वत्र समुद्यद्वाङ्मरुद्युति ॥७॥
 अतिवीर्य समस्तेषु कर्तव्येषु महानय । राजमानगुण भ्रामानतिवार्थ चित्ताश्वर ॥८॥
 आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अक्षरैल्लेखसक्रान्ते कुशलप्रश्नपूर्वकम् ॥९॥
 यथा मे केचिद्वैतस्मिन् सामन्ता धरणातले । सकोपवाहनास्ते मे वर्तन्ते पार्ययतिन ॥१०॥
 आवाप्तुहुविधा स्लेच्छाश्चतुरङ्गसमन्विता । नानाराज्ञकरा वाक्यमर्चन्ति समभूतय ॥११॥
 वराञ्जननगाभाना करिणामष्टभि शतै । समारशावनुद्ययाना सहस्रैर्वापिना त्रिभि ॥१२॥
 महाभोगो महातेजा मदगुणाकृष्टमानस । राजा विजयशार्दूल सोऽथ प्राहो ममातिरुम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें सुखसे बिराजमान थे, पास ही म राम भी सभाको अलङ्कृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमें दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर थिर हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-३॥ वह पत्र जिसे दिया जाता था उसके नामसे अङ्कित था । राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्धिविप्रहको अकट्टी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सत्र लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सन्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला । एक बार शय बाँचा और फिर जब रत्नरसे इस प्रकार बाँच कर सुनाया ॥४॥ उसमें लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान है लक्ष्मीमान है, तथा नम्राभूत राजाआके लिए सुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वरूप है मङ्गलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, प्रसिद्ध है, महायशका धारी है, शत्रुमें निपुण है, राजाधिराजपनासे आलङ्कित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुआको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुसूचित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्यमें महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्द्यावर्तपुरसे विजयनगरमें वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरासे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी तल पर मेरे जो सामन्त हैं वे राजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देदीप्यमान हैं तथा जो एक सन्श विमूक्तिके धारक हैं ऐसे स्लेच्छ राजा अपना अपना चतुरङ्ग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी है तथा जिसका मन हमारे गुणासे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अजनगिरिके समान आभावाले आठ

१ समर्पयत् म० । २. वासनामाकलञ्चित म० । ३ साधु सन्धि म० । ४ वायिता म०, ख० ।

५ इव स्थित ए० ।

मृगध्वजो रणोर्मिश्र कलभ केसरी तथा । अङ्गा महीभृत पद्मिरमा करदिना शतै ॥१४॥
 प्रत्येक पद्मभि सप्तिसहस्रैश्च समावृता । प्राप्ता कृतमहो साङ्गा नयपण्डितबुद्धय ॥१५॥
 उत्साहयन् ध्रुलोद्भूत नयसास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमात्मार्यकारिण ज्ञातकारणम् ॥१६॥
 द्विरदाना सहस्रेण तैर्यथैना च सप्तभि । पौण्ड्रप्रापतिरालीन प्रताप परम बहन् ॥१७॥
 साधनेन तदग्रेण सम्प्राप्तो भगवाधिप । पूर्वमाणो नृपैर्वाहो रवौ नदशतैरिव ॥१८॥
 सहस्रैरागतोऽग्निभिर्दन्तिना जलदधिपाम् । अवायेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधक् ॥१९॥
 सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च नन्दन । तुल्या वज्ररस्यैते सम्प्राप्ता यवनाधिपा ॥२०॥
 अवायेनार्यसप्राप्त सिंहवीर्यो महीपति । बाह्व सिंहरथश्चैतौ मानुली वल्लभालिनी ॥२१॥
 पद्मातिभा रथैर्नागे स्फुरीप्रष्टे प्रतिष्ठितै । वत्सस्वामी समायातो मारिदत्तोतिभूरिभि ॥२२॥
 भावद् भोटिणे राजा सौवरो धारमन्दिर । प्राप्नो दुर्वदसख्येन साधनेनान्विताविमी ॥२३॥
 एतेऽग्रे च महासत्त्वा राजान भुतशासना । अघोहिणाभिरायाता दशभिस्त्रिदशोपमा ॥२४॥
 अमाभिरनुयातोऽह प्रस्थितो भरत प्रति । त्वामुद्दोक्षे यतो लेखदर्शनानन्तर तत ॥२५॥
 आगन्तव्य वया प्री या कार्यामिस्तिता तथा । परयामोऽन्यादरेण त्वा यथा कर्ष कृपावला ॥२६॥
 एव च वाचिते लेखे न यागपृथिवीधर । किञ्चिदूचे सुमित्राया सूनुस्तावदभापत ॥२७॥

सौ हाथियों और पायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥२२-२३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ, और केसरी नामके अङ्ग देशके राजा हैं वे भी प्रत्येक ब्रह्म सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोड़ासे समावृत हो आ पहुँचे हैं ॥२४-२५॥ जो बलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीति शास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सत्र गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पञ्चाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथिया और सात हजार घोड़ोंके साथ आ गया है ॥२६-२७॥ जिस प्रकार देवा नदीके प्रवाह में सैकड़ नवियों आकर मिलती है इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥२८॥ पयको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथिया और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोड़ाकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥२९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भयनाके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वज्र देशका राजा सिंहस्थ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पद्माति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ोंके साथ आया है ॥२२॥ अमर्य देश का राजा प्रोष्ठिल और सुपीर देशका स्वामी धारमन्दिर ये दोनों असरयात सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एव देवाका उपमा धारण करने वाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवणकर सेनाआये साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सत्र राजाओं के साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रताप्ता कर रहा है, अतः तुम्हें पर देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिये। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र

अतिवीर्यं तथाबुद्धौ भरतस्य विचेष्टितम् । तत्र कीदृगिति ज्ञातुं भद्रस्य दूतस्य ते ॥२८॥
 एवं वायुगतिः पृथो जगाद् निखिल मम । निदिन राजचरितमन्तरङ्गो ज्ञेयं परः ॥२९॥
 इन्द्रामि विशद भोमुमियुक्ते पुनरग्रवात् । शृणु चित्त समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
 श्रुतबुद्धिरिति स्यात्तो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वामिनास्माकं यथा भरतमग्रवात् ॥३१॥
 दूतोऽग्निं राजनुत्स्यस्य प्रणतास्तिलमूभृतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यान्ममनीयिणः ॥३२॥
 सम्प्राप्य साध्वसं यस्माच्चरकेसरिणः परम् । भजन्ते रिपुमारुह्य न निद्रां वमतिष्वपि ॥३३॥
 विनीता पृथिवी यस्य चतुरग्रोधिमेरला । आज्ञा पाणिगृहातेव कुर्ये परिपालिता ॥३४॥
 आज्ञापययमी देवो भवन्तमिति सन्निधयः । वर्णमर्दास्वविन्यस्तेरुज्जितामा समन्ततः ॥३५॥
 यथा भज समागम्य श्रुत्यतां भरत हुतम् । अयोध्यां वा परिगम्य भज पारमुदन्वतः ॥३६॥
 ततः क्रौं उपरोत्ताः शत्रुघ्नश्चन्द्रया गिरा । जगाद् निष्प्रतीकारो दाशानल इन्द्रस्थितः ॥३७॥
 भजयेव तथा देवो भरतस्तस्य श्रुयताम् । यथा सज्जायते युगं मित्रं तावज्जमापितम् ॥३८॥
 विनीतां च परिगम्य सचिवेषु प्रभुर्भुवम् । यायेवोर्दन्वत पार वर्णावर्चं कुमानवान् ॥३९॥
 वचस्त्रां ज्ञापयामीति नितरां तस्य भोषितम् । रासमस्य यथा मत्तवारणधिपगर्जितम् ॥४०॥
 सूचययथवा तस्य सृष्टुमेतद्वचः स्फुटम् । उरपातभूतमेतो वा स नूनं वायुवरयताम् ॥४१॥

यौंचे जानेपर राजा पृथिवीधर जब तक कुछ नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुम्हें मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह शत्रु होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होने का क्या कारण है ? ॥२७-२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरङ्ग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सी उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१-३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रु रूप मृग अपनी वसतिकाओंमें निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेरला है, ऐसी समस्त पृथिवी की नमन बड़ी धिनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सन ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीधर मेरे मुरासे स्थापित किये हुए, अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४-३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर मोक्षसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी श्रुत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयकी धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याके मन्त्रियों पर छोड़ कुछ मनुष्योंको बरा करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७-३८॥ परन्तु मैं तुमसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मद्गोमत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना त्रिलकुल ही उचित नहीं है ॥३९॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्येन समो भ्राता व्येष्टोऽभावपमानितः ॥५६॥
 आगच्छाम्यहमिन्पुत्रत्वा रेखवाहं महीधरः । प्रतिद्रेष्याकरोम्यंशं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥
 अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छद्मनः तं व्रजाम्यहम् । एवं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्वब्धमग्रवीत् ॥५८॥
 अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य संरभेण तु पाथिव ॥५९॥
 सिद्ध स्वमिह कुर्वाणः सुमयुक्तमह तव । पुत्रजामातृभिः सार्धमन्तं तस्य व्रजाम्यरे ॥६०॥
 इन्दुम्या रथमारुह्य परं सारथ्यलान्वितैः । महीधरसुतैः साकं समीक्षो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥
 नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रववृते जवी । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटतरे ॥६२॥
 तनुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयैः सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥
 जराद् जानकी नाथ भवतः सखिबी मम । वक्षु नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भास्वरे ॥६४॥
 तथापि देव भापेऽहं प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वशलतातोऽपि मणिः संगृह्यते ननु ॥६५॥
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महासाधनसगतः । मूर्खमां कथं शक्यो जेतु भरतभूभृता ॥६६॥
 अतस्तन्निर्जये तावदुपायाश्चित्यतां द्रुतम् । सहस्रारम्यमाण हि कार्यं व्रजति सशयम् ॥६७॥
 त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्य अत्यतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमवस्थया समारण्य प्रशस्यते ॥६८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवोचस्मिन्मैवं देवि आपसे । परस्य रवो निहित पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
 रामपादरज पूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थानु क्षुद्रवीर्ये तु का कथा ॥७०॥

घाले रामने धनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर खेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो बिदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! यह आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५८॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जेवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा बेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ गान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी छतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो प्राप्ति होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी मारी सेनासे सहित तथा क्रूरता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमें पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरणभूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

वैराग्यादयथा ततो तपोवनमुपागते । नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
 यद्यधुपशम यातस्ताताग्निमुक्तिकाम्यया । तथापि निर्गतस्तस्मात्कुलिङ्गस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥
 सिंहे कान्द्रकोटालपङ्कलोहितनेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ॥४४॥
 इयुक्त्वा दहामानोऽस्वेणुकान्तरमीषणम् । जहास तेजसास्थानं प्रसमानः इवाखिलम् ॥४५॥
 जगाद् च कुदूतस्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽल्पबीर्यस्य सत्यङ्गार इव दूतम् ॥४६॥
 इयुने पादयोर्दूतो गृह्णन्वा कुपितैर्मतैः । सारमेय इवागस्वी^३ हन्यमानः कृतध्वनिः ॥४७॥
 आकृष्टो नगरोन्मथ यावन्मुक्तश्च दुग्धितः । दूधो दुर्वचनैर्धूलाधूसरो निरगाततः ॥४८॥
 ततः सागरगर्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्व दुर्वचः श्रुत्वा किञ्चित्कोपमुपागतः ॥४९॥
 केरुपावन्दन, भीमान्मुप्रभावन्दनान्वितः । विनिनीपुररिं पुर्यां निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥
 ध्रुत्वा त मिथिलाधीश कनकः पुरुसाधनः । प्राप सिंहोदरापाश राजानो भक्तितत्पराः ॥५१॥
 चक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्यावर्तं प्रज्ञा रचन् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥
 अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारमदर्शितः । परम शोषमानीतः क्षुब्धोऽदृष्टारमीषणः ॥५३॥
 भरतायागिरोऽविष्णुर्गन्तुं संविद्ये मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः कृतानेकमहामृतैः ॥५४॥
 ततो ललाटभागेन युवचन्द्राकृतिः श्रितः । वनमालापितुः सज्जां कृत्वा स्वैरं बलोऽवदत् ॥५५॥

कि यह उत्पातरूपी भूतसे प्रसूत है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जाने पर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पट्टसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जाने पर भी उसका बधा हाथियोंका विघात करता हो है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए वीरोंके बड़े वनके समान भयङ्कर वचन कह कर तेजसे समस्त सभाको प्रसूता हुआ शत्रुघ्न जोरसे हँसा ॥४५॥ और घोला कि क्यानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाय ॥४६॥ शत्रुघ्नके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे योद्धाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़ कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान काँप-काँप करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्यतक घसीट कर उसे छोड़ दिया । तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोसे जला और धूलसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर बुद्ध क्रोधकी प्राप्ति हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मन्त्रियोंकी साथ ले, शत्रुघ्न प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ वह सुमकर मिथिलाका राजा कनक यड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिंहेन्द्र आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत वड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उपर अपने अपमानको दूरानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्य पूर्ण कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसा राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

युक्तमेवातिवीर्यस्य भारते कर्तुमीदृशम् । पितृयेन समो भ्राता ज्येष्ठोऽप्यात्रपमानित ॥५६॥
 आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा ऐश्वराह महाधर । प्रतिप्रेष्यामिहोन्मत्त रामेण पृथिवधर ॥५७॥
 अतिवीर्योऽतिदुर्बलरक्षणा ॥ व्रजाम्यहम् । एव महाधरेणोक्ते पद्मो विप्रश्चन्द्रप्रवीण ॥५८॥
 अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य सरभेण तु पार्थिव ॥५९॥
 तिष्ठ त्वमिह कुबर्ण सुप्रयुक्तमह तव । पुत्रजामातृभिः सार्धमन्त तस्य व्रजामपरे ॥६०॥
 श्रुत्वा रथमारुह्य पर सारबलाश्रितैः । महाधरमुतैः साकं ससीतो लक्ष्मणाश्रित ॥६१॥
 नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रवृत्ते जर्वा । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटतरे ॥६२॥
 तनुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयै सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्र सातायाश्चेत्यतस्त ॥६३॥
 जगद् जामकी माय भवतः सखिधौ मम । वस्तु नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति मास्वरे ॥६४॥
 तथापि देव भापेऽहं प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वशलतातोऽपि मणिः सगृह्यते मनु ॥६५॥
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महामाघनसगतः । मूर्कमो कथं शक्यो जेतुं भरतमभूता ॥६६॥
 'अतस्तस्मिन्ने तान्द्रुपायाश्चिन्त्यतां द्रुतम् । सहस्रारम्भमाणं हि कार्यं मज्जति सद्यम् ॥६७॥
 त्रिलोकेऽप्यस्ति नाताप्य भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमप्यत्र समारम्भ्य प्रारभ्यते ॥६८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽबोधस्तिमेव देवि भापसे । परय रवौ निहित पापमणुर्वीर्यं मया रणे ॥६९॥
 रामपादरजं पूनशिरसो मे मुरैरपि । न शक्यते पुरं स्वामु क्षुद्रवार्ये तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको सकेत कर म्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी जाता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो बिदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विरचासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे छुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५८॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जैवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा बेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ब्राह्म होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त चलवान, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा व्रता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य सशयमे पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो तुम फल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरणधूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

न यावद्धया याति मानुरस्त कुतहली । वाचयता तावद्वयैव क्षुद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
 युवगर्भमाध्माता सन्धितनया अपि । एतद्वचोऽमुञ्च प्रतिशब्दमिवोद्धतम् ॥७२॥
 ततः पद्मो निवार्यता भ्रूमङ्गेन महामना । अग्रवीह्वलमण धैर्याद्विधौ गणहृषयस्त्रिव ॥७३॥
 युनमुक्तमल तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटाकृत ॥ नात्यन्तमत्यासादनभीतया ॥७४॥
 अस्या शृणु यदावृत्तमार्तिवीर्यो वलोद्धत । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तु रणाजिरे ॥७५॥
 भागो न भरतस्तस्य दशभ्योऽपि भवत्यत । तस्य दावानलस्याय किं करोति महागज ॥७६॥
 दन्तिभिरच समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमै । भरतो नैव शक्नोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
 भरतस्य नये नात्र सशयोऽपि समीक्ष्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥
 कष्टमेकक्रोधांते विरोधे कारण विना । पञ्चद्वय मनुष्याणां जायते विवशस्यम् ॥७९॥
 दुरात्मनातिवार्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुपात्रस्य कलङ्क परय कोदरा ॥८०॥
 नेक्ष्यते सन्धिरन्ध्रश्च शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृत दोष शत्राव्युद्धते शृणु ॥८१॥
 विभावर्षा तमिस्राया किलावरन्मुदायिना । रोद्धभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥
 निद्रावशाकृतान् वीरान् बहून् दृष्ट्वा मृतञ्चतान् । इस्तिनरच दुरारोक्षान् प्रगल्हावनिर्भरान् ॥८३॥
 चतु पट्टिसहस्राणि धाजिना वातरहसाम् । शतानि सप्त चेभामामज्जनाद्रिसप्तमस्त्रियाम् ॥८४॥
 बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभि । भरतस्यान्तिक किं ते न श्रुतानि जनैर्यत ॥८५॥

सामने देव भी रडे होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्यकी तो बात ही क्या है ? ? ॥७८॥
 अधया कुतहलसे भरा सूर्य जन तक अन्त नहीं होता है तब तक आज ही अणुवीर्यकी मृत्यु देख लेना ॥७९॥ तरुण लक्ष्मणके गर्भसे फूले राजा प्रथिवीधरके पुत्रोंने भी प्रतिध्वनिके समान यहा जोरदार शब्द कहे ॥८०॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रजुट्टिके भगसे पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाय इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥८३-८४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूंकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अतः भरतके द्वारा रणाङ्गणमें घरा करनेके योग्य नहीं है ॥८५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥८६॥ यद्यपि भरत घोड़ोंसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोंसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नहीं कर सकता ॥८७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें कुछ भी शक्य नहीं है अधवा दो में से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोंका विनाश तो होगा ही ॥८८॥ जन विना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्षके मनुष्योंका विवश होकर क्षय होता ही है ॥८९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको परा कर लिया तो फिर क्यों रघुपति का कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥९०॥ इस विषयमें मन्थि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानी शत्रुघ्ने लङ्कवनके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोष—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्ने अन्धेरी रातमें छापा मार मार कर उसके बहुतसे निद्रानिमग्न वीरोंको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और जिनसे मन्थे निर्भर भर रहे थे ऐसे बहुतसे हाथियोंको मारा । पवनने समान वेगशाली चर्मिष्ठ हजार घोड़े और अज्जनिगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे तीन दिन तक घुमकर भरतके पास ले गया मो क्या लोगाके मुँहसे तुमने सुना नहीं

दृष्ट्वा कलिद्वाराजस्तान् गादशल्यान् बहुनृपान् । जवेन च विनिर्मुक्तान् हत श्लाघा च माधनम् ॥८६॥
 सप्रसाद परम क्रोधमप्रमत्त समन्तत । वैरिनिर्यातन कृत्वा बुद्धी रणमुदीक्ष्यते ॥८७॥
 दण्डोपाय परित्यज्य भरतो मानिना वर । हेतु तन्निर्जये नान्य प्रयुक्ते बुद्धिमानपि ॥८८॥
 अथ त्व साधयस्येय वनैतन्न प्रतायते । शक्तिस्ते प्रभवेतात् तीव्राशोरपि यातने ॥८९॥
 किन्त्वय वसन्तेऽग्रेव प्रदेशे भरतोऽयुना । निर्गत्य च तथायुक्त प्रकटाकरण ननु ॥९०॥
 भ्रष्टाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषादमुत्तम । तेऽतिश्लाघ्या यथायन्त निवृत्त्य जलदा गता ॥९१॥
 इति मन्त्रयमागस्य रामस्य मतिरुद्भूता । अतिचार्यप्रहोपाये ततो मन्त्र समाहित ॥९२॥
 प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसङ्घ । सुखेन शर्वरीं नीत्वा राम स्वजनसङ्गत ॥९३॥
 भावामाश्रितोऽपश्यदार्थिकाजनलङ्घितम् । जिनेन्द्रमवन भगव्या प्रविशेय च साक्षरि ॥९४॥
 नमस्कार जिनेन्द्राणा विप्रायार्थजनस्य च । सकाशे वरधर्माया गणपात्या मशक्षिकाम् ॥९५॥
 स्थापयित्रा कृता साता कृत्वा मान च वर्णिनाम् । स्त्रायेवधारिभि सार्थं सुकूपैलक्ष्मणादिभि ॥९६॥
 कृत्वा पूजा जिनेन्द्राणा बहुमङ्गलभूषिताम् । मरेन्द्रमवनद्वार प्रतरो लालवान्वित ॥९७॥
 सुरेन्द्रगणिकातुल्य वाद्यैः स वर्णिना जनम् । सर्वं पीरजनी लज्ज पश्चाद्गन्तु सविस्मय ॥९८॥
 सर्वलोकस्य नेत्राणि मनासि च सुचेष्टिता । हरन्त्यस्तान् नृपागार प्राप्ता द्वारि सुमण्डना ॥९९॥

हे ? ॥८१-८५॥ कलिह्लाधिपति अतिचार्यने जय देता कि बहुतसे राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्पाण हो गये हैं और साथ ही बहुत सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ । अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिम वैरीसे बदला लेनेका निचार कर रणकी प्रतात्ता कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीति नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुम्हें वो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकल कर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंकी आश्चर्यम डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरस कर गये हुए रात्रिके मेघाके समान अत्यन्त प्रशस्तनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते करते रामकी, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बात सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनाके साथ मिले हुए रामने, प्रमाद रहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुनसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्यिकाओसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर यड़ी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेशकर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्यिकाओंको नमस्कार किया । वहाँ आर्यिकाआकी जो वरधर्मा नामकी रागिनी थी उसके पास सीताकी रक्ता तथा सीताके पास ही अपने मय शस्त्र छोड़े । तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी कियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्की मङ्गलमयी पूजाकर सबलोगोंके साथ रामने लालापूर्वक राममहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकी की तुलना करनेवाला उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाआ और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणीं सब लोगके नेत्र और मनको हरती हुई राजमहलके द्वारपर पहुँची ॥९९॥

ने चतुर्विंशतिर्भक्त्या जिनेन्द्रा भक्तितपरैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेवातेवा ध्वनि पुरः ॥१००॥
 कृत्वा पुराणवन्नि गानुमुकुतलोचनाः । भग्भीरभारतीतानासक्ताश्चारणयोपितः ॥१०१॥
 पानिमधुतपूर्वं ॥ श्रुत्वा तासा नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार ह्र्वोदके ॥१०२॥
 ततो रेचक्यादाय ललितान्नविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभाव जगाम वरवर्त्तनी ॥१०३॥
 मरिमतालोक्रितैस्तस्या त्रिगलहूषमुद्गमैः । गमकानुगतैः कर्मस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥
 मय्यरेश्चान्मन्त्रारिर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलगाहारैः सुलीलकरपक्षवैः ॥१०५॥
 पादग्यामैर्लघुरष्टैर्विभुक्त परिणोत्तलैः । आशु सम्पादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः ॥१०६॥
 त्रिकस्य यत्नैर्भोगाग्रमन्दक्षितात्मभिः । कामवाणैरिमैर्लोकैः सकलः समताद्वयत ॥१०७॥
 मूर्च्छनाभिः स्वरैर्मर्मैर्ध्यास्थान निवोजितैः । नर्तकी सा जगो वरगु परिखीनसखास्वरम् ॥१०८॥
 यत्र यत्र समुद्देशे नर्तको कुर्वते स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वा नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥
 तस्या रूपेण चक्षुषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनसि तद्बुद्धयेनापि बद्धानि सङ्गतो हृदम् ॥११०॥
 उक्लृप्तमुपराजीग सामन्ता दानतत्परा । बभूवुर्निरलङ्कारा संन्यानाम्बरधारिणः ॥१११॥
 भातीद्यानुगत नृत्यं तत्तस्यास्त्रिदशानपि । वशीकुर्वीत कैवास्था सुहरेष्वन्यजन्तुषु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान स्वीचनेमें आनन्द थी ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमें तत्पर रहनेवाली हम सध चौबीस तीर्थ-करोंकोभक्ति पूर्वक नमस्कार करवाँ हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेजा-लेया' यह अत्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोंमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियों की अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे प्रिया राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रसीसे खिंचा काष्ठका भार स्वीचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अङ्गोंको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सम्मुख गई ॥१०३॥ यहाँ उसका मन्द-मन्द मुसकानके साथ देरना, भौंहोंका चलाना, विक्ष मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, धीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मट-काना, भुजा रूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्त रूपी पल्लवोंका किराना, जिनमें शीघ्रतामें स्पर्शकर पृथिवीतल छोड़ दिया जाना था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीर के अवयवोंका टिपलाना आदि कामके वाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़े गये थे ॥१०४-१०७॥ यह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरों तथा प्रामों—स्वरोंके समूहमें मणियोंके स्वरोंके अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥ यह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें टहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ मारी मभाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन-रूप तथा स्वर दोनों से मलयुत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियों की पुष्पकार देने-दत्ते अलङ्कारग्रहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पद्मिनीके वस्त्र ही धाँकी रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन वादनसे सहित उस नृत्य-कारिणीका यह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सल घात थी

१. नेत नेत इत्यनुपगच्छन्तम् । २. नानावस्त्राभ्याम् म० । ३. रश्मि म० । ४. विरतने म० । ५. इमेः इति इत्यन्ति म० गः । ६. च मर्दये म० । ७. सम्पन्नो यत्पारिणी म० । ८. अताप्यानुगत (१) म० । ९. मनोरेपन्ना म० ।

विधाय शृणुमादीनां चरितस्य प्रकीर्तनम् । मंथेपेयं वशीकृत्य ममिति^१ मन्त्रां भुङ्गम् ॥११३॥
 रंगोत्तेन समुद्यता राजानमिति नर्तकी । दधाना परमां दीप्तिमुवाच^२ सुदामहम् ॥११४॥
 अतिवीर्यं किमेतत्ते दुष्टं व्यग्रमितं महत् । नयहीनमिदं वस्तु तेनैव नृप निषोजितः ॥११५॥
 किमिति स्वपिनाशाय केकयानन्दनस्त्वया । शान्तचेताः शृणान्ते कम्पराय प्रकीर्तितः ॥११६॥
 एवं गतेऽपि विभ्राणः परमं त्रिनयं द्रुतम् । मन्त्रमादध तं गतां यदि ते जीवितं प्रियम् ॥११७॥
 जाता विशुद्धवंशेषु वरहीदनभूमयः । माभूवन् विरागा मद्र तरेता वरयोपितः ॥११८॥
 दृताम्बवा परिपक्वा विमुक्तान्तेभ्यः परम् । ध्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमया यथा ॥११९॥
 निवर्तय द्रुतं चित्तमशुभम्बान्तपरम् । उच्छिष्टं वज्र निर्माणो^३ नमस्य भरतं सुधीः ॥१२०॥
 एवं पुन न चेदेव कुरुने पुरुषायम् । ततोऽप्येव निमग्नोऽपि सगयोऽत्र न निघने ॥१२१॥
 जीवयेन्नानरण्यस्य पीत्रे राघवं समोदसे । चकामति रवीं पापलक्ष्मीर्दांशकारस्य का ॥१२२॥
 पतितस्त्वाद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलभस्यैव मूढस्य दुष्टरक्षस्य प्रियघृते, ॥१२३॥
 देवेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । अलमादीं^४मो भूवा प्रनिस्पर्धनमिच्छति ॥१२४॥
 ततो निर्भर्त्सनं स्वस्य भरतस्य च शमनम् । निशम्य संसदा साङ्गमभूनात्रेवगो नृपः ॥१२५॥
 विरक्ता च सभा^५यन्तपरं रूषितमानसां । सुपुर्णगर्ववेलेन भूतरङ्गमजाहुः ॥१२६॥

ऐसे अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११३॥ इस तरह मंथेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरों के चरित्रका कीर्तन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह सङ्गीतसे परम दीप्तिकी धारण करती हुई राजाकी इस प्रकारका असह्य उल्लाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिमें रहित है, किसने तुम्हें इस कार्यमें लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह गृहजाल सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नारा करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम त्रिनयकी धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे मद्र ! विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमि स्वरूप तेरी ये स्त्रियों विधवा न हों ॥११८॥ तुम्हें रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम स्त्रियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभित नहीं होगी ॥११९॥ इसलिए अगुम ध्यानमें जाने वाले अपने चित्तको शीघ्र ही लीटा, ठठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पीता भरतके जीवित रहते ही तू राग्य चाहता है सो सूर्यके देदीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्ति के लोभी तथा कमजोर पट्टावाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हमलोंगोंके रूपपर आसक्त तथा छोटे सहायकोंसे युक्ततुल्य मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके साँपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत हैं उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणोंके मुरसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अति-वीर्य सभाकेसाथ लाललाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रुत हो गया था जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रष्टदृष्टी तरङ्गोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभासमुद्रकी वेलाके समान चोभकीप्राप्त हुई ॥१२६॥

१. सम्मति म० । २. सुपलभं म० । ३. मान-रहितः । ४. अलमादीं बडनाम् । ५. परवर्त्तमानसा म० ।

अतिवीर्यो रण कपो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पय नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
 मण्डलाग्र ममाक्षिप्य वीचमाणेषु राजसु । जीवग्राह विपण्णामा वेगेषु जगृहे दृढम् ॥१२८॥
 उद्यम्य नर्तका रत्न पश्यन्तो नृपसहस्रितम् । जगादाविनया योऽत्र स मे वध्यो विमशयम् ॥१२९॥
 परित्यज्यातिवीर्यस्य पक्ष विनयमण्डना । भरतस्य द्रुत पादौ नमत प्रियजीवित ॥१३०॥
 भरतो जयति श्रीमान् गुणस्कोताशुमण्डल । दशस्यन्दनवरोन्दुर्लोकानन्दकर पर ॥१३१॥
 लक्ष्मीकुमुदता यस्य विक्रम भजते तराम् । द्विपत्तपननिर्मुक्ता कुर्वत परमाद्भुतम् ॥१३२॥
 उज्जयाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वर । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपम महत् ॥१३३॥
 पश्य चारणकन्यानामिदमीदृग्विचेष्टितम् । भरतस्य स्वय तस्य शक्ति शक्त जयेदपि ॥१३४॥
 न विप्र स किमस्माकं क्षुब्धो नाथ करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यमि मार्दवम् ॥१३५॥
 तत करिणमारुह्य राघव सातिवीर्यक । सहित परिवर्गेण यया जिनवरालयम् ॥१३६॥
 अवतार्य गजाक्षत्र प्रविश्य प्रमदान्वित । चक्रे मुमहसी पूजा कृतमङ्गलनिस्वन ॥१३७॥
 वरधर्मापि सर्वेण सन्नेन सहितोपरम् । राघवेण ससीतेन गोता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
 अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाय समर्पित । तस्यामौ वधमुद्युक्त कर्तुर्माष्यत^२ सीतया ॥१३९॥
 मार्वाषयोऽस्य लक्ष्मीमन् वन्धरा निन्दुराशय । वेशेषु मागृहाणां कुमार भज सौम्यताम् ॥१४०॥
 को दोष कर्मसामर्प्यापदायान्वापद नरा । रक्षया एव तथाच्येते दधतामतिसाधुताम्^३ ॥१४१॥

प्रोधसे कौपते हुए अतिवीर्यने ज्याही तलवार उठाई त्याही नर्तकीने विलासपूर्णक विभ्रम दिखाते हुए उड़ल कर तलवार छीन ली और सत्र राजाओंके देसते-वेसते अतिवीर्यको जीवित पकड़ कर मज्जूतीसे उसके केश धौंध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठा कर राजाओंकी ओर वेसते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह नि सन्नेह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी वितृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंकी परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह उड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंको यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रकी भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालों पर वह अथर्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथी पर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतर कर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मङ्गलमय शब्दोंका उच्चारण कर वही भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वमण्ये साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी उद्दरी हुई थी रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उगत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निन्दुर अभिप्रायके धारी हो इसकी प्रीति मत छोड़ो और न जोगसे इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस वैचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिकी प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

इतरोऽपि स्वत्राकनुं माधूना नाजितो जन । किमुताथ नरेणाना सहस्राणा प्रपूजित ॥१४२॥
 कुर्वेन मुनरु भद्र भवताय पर्याकृत । जानान स्वस्य सामर्थ्यं कानुगच्छति साम्प्रतम् ॥१४३॥
 गृहाचा समयेनास्य सन्मानमुपलम्बिता । विमुच्यन्ते पुनर्मूर्धो मर्यादय चिरन्तना ॥१४४॥
 द्युक्तो मस्तके कृत्वा करराजावकटमलम् । जगाद रचम्णो द्वि यद्व्यवीचि तथैव तत् ॥१४५॥
 आस्ता स्वामिनि ते वास्यातावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यमु पूज्य कुर्वीचि त्व प्रसादत ॥१४६॥
 एव प्रशान्तसरम्भे सखो लक्ष्मणाधरे स्थिते । अतिवीर्या विबुद्धात्मा स्तुत्वा पद्मभाषत ॥१४७॥
 साधु साधु त्वया चित्र कृतमादग्विचेष्टितम् । कदाचिदप्यनुपपन्ना ममाद्य मतिरुद्गता ॥१४८॥
 विमुनहारमुकट दृष्ट्वा त करणान्वित । विप्रपथ राघवोऽञ्चोत् सौम्याकारपरिग्रह ॥१४९॥
 मा प्रपारद्ग दैन्यं च धन्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विता ॥१५०॥
 न चात्र काचिदापत्ते नद्यावत्तं भ्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुरु राज्य यथेप्सितम् ॥१५१॥
 अतिवीर्यस्ततोऽञ्चोत्त मे राज्येऽधुना स्पृहा । राज्येन मे कुरु दत्तमधुनान्वय सज्जयते ॥१५२॥
 आसाम्भया कृता वाङ्मा हिमव सागरावधि । नेतु वमुन्धरा येन विप्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥
 सोऽह स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविषजित । कुर्या प्रणतिमन्यस्य कथ पुरपता दधत् ॥१५४॥
 पत्न्यङ्गा यैरपि क्षोणा पालितेय महानरै । न नृप्रास्तेऽप्यह प्राप्तं पद्मभिरनु किमेतकै ॥१५५॥
 जन्मान्तरकृतस्यास्य बलिता पश्य कर्मण । क्षायाहानिमह येन राज्ञेन्दुरित्वाङ्गन ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने राश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायगा ? ॥१४३॥ प्रनल शत्रुओंको पकड़ कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सन्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हस्तरुमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह नैजताआका भा पूज्य हो जाय ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होने पर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिनार्य रामकी स्तुतिकर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सी वद्वा भला किया । मेरी जो बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आन उत्पन्न हो गई ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विस्मयसे त्रिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दानताको प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियाँसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोंको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है । इस भ्रमागत नन्द्यावर्तनगरम भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामें लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उलूक मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तटकी सारी प्रथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उलाड़कर नि सार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अथको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस ब्रह्मखण्डकी पृथिवीकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गोंवासे कैसे सतृप्त हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मा तरंग किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता तो देखो कि किस प्रकार गहु चन्द्रमाको काति

मानुष्यश्चिद जात आत्मन् मयाधुना । सुराणामपि वर्तया किमन्यत्राभिर्धायताम् ॥१५७॥
 सोऽहं पुनर्भवाद्भारव्या सम्प्रतिशोधित । तथाविधा मने चेष्टा यया मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
 द्युवाचा क्षमयिष्यामि तं परिवर्णममन्वितम् । गन्धा केसरविहङ्गान्तो मुनि श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५९॥
 करान्जकुडमलङ्घने विजय शिरसा नतिम् । जगदा नाथ वाञ्छामि दीक्षा देगम्भराति ॥१६०॥
 आचार्येणैवमियुक्ते परित्यज्याशुकादिक्म् । केशलुब्ध विधायासा महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
 आभार्धनिरनस्यत्तरागद्वेषपरिग्रह । विजहार चिति धीरो यत्रास्तमितवायसो ॥१६२॥
 प्ररथापदयुक्तेषु गदनेषु वनेषु म । चकार वसति निर्भीर्गह्वरेषु च भूभुताम् ॥१६३॥

उपजाति

विमर्शनिश्चयेपरिग्रहाय गृहीतचारित्र्यभर सुराणाम् ।
 नानातप शोषितदेहमुद्ध महामुनिं त नमतातिर्वीर्यम् ॥१६४॥
 रत्नत्रयापादितचारभूष दिगम्बर माधुगुणावतसम् ।
 सम्प्रस्थित योग्यवर विमुक्तेर्महामुनि ॥ नमतातिर्वीर्यम् ॥१६५॥
 इह पर चेष्टितातिर्वीर्यं शृणोति यो यत्र सुधीरधीते ।
 प्राप्नोति वृद्धि सद्भोऽपि मध्ये रत्निप्रभाऽस्मा व्यसन्न न लोक ॥१६६॥

इत्यार्षे रविपण्डितार्यप्रोक्ते पद्मचरितेऽतिनीर्यनिष्कमणामिधान नाम सप्तत्रिंशत्तमं परं ॥३७॥

रहित कर देता है उसा प्रकार इसने मुझे कान्तिरहित—निस्तेज कर दिया ॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरोंकी तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मने भय तक नि मार रोया ॥१५७॥ अत्र मे दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका है इसलिए आपसे प्रतिजोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर तथा परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूर धीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजने पास गया और अञ्जलि युक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मैं देगम्भरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यने कहते ही वह वस्त्रादिका त्यागकर तथा केश लोचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्मार्थे अर्धमे तत्पर, तथा राग द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह धीर-वीर प्रविर्धमे विहार करने लगा । विहार करते करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोसे युक्त सघन वनो तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्यरूपी मनोहर आभूषणसे जो सहित थे, दिशार्ण ही जिनके अग्र—वन्ध थे, मुनियोंके अट्टाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह मर्माके बीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा मूर्खके समान प्रभावों घाण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इन प्रकार आर्ष नामने प्रसिद्ध, रविपण्डितार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिनीर्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाता मतीमरा परं समाप्त हुआ ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनय नयकोविद् । विजयस्यन्दनाभिः सस्यपिङ्गपितुः पत्ने ॥१॥
 दर्शितागेपविन्दोऽमावरविन्दानुभुवम् । स्वसार रतिमालारथा लक्ष्मणाव्यवेद्यत् ॥२॥
 एवमस्त्रियभाष्टायां तस्या पद्मेन लक्ष्मण । लक्ष्मामिवाङ्गमायाया ज्ञात्रा सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
 तत कृत्वा चिनेन्द्राणां पूजा विस्मयदायिनाम् । इयाव विन्यस्यान लक्ष्मणाद्यन्वितो बलै ॥४॥
 द्वांश्च नृवातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुनाम् । शत्रुष्व हास्यसञ्चान निगिष्य भरतोऽवदत् ॥५॥
 अतिवीर्यो महाउन्मत्तस्य वि भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कणार्क परा शान्तिमुपाश्रित ॥६॥
 प्रभात्र तपस परय त्रिदशेषपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीत् स च प्रसादाऽर्थां प्रणम्यताम् ॥७॥
 श्लाघामियतिवार्यस्य यावत्तुर्गम् स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्ताव प्राप्त तामन्तमप्यग ॥८॥
 प्रणम्य भरतायासी स्थित सङ्कथया चमम् । ज्यायसी रतिमालाया नान्ना विजयसुन्दराम् ॥९॥
 उपनिन्ये शुभा कन्या नानाएङ्कारधारिणाम् । कोश च विपुल सार साधन च प्रसन्नज ॥१०॥
 कन्यामेकामुपादाय ऐक्यान्न्दनस्तत । तस्यैवानुमन सञ्च स्थितिरेषा महामनाम् ॥११॥
 कौतुको कलिकार्कीर्णमानसोऽथ महाजवै । नञ् प्रवृत्ते ऋष्टुमतिवीर्यदिगम्बरम् ॥१२॥
 धर्मा महामुनि सासात्रिति पृच्छन्नुभावन । पृषोऽयमित्यमु श्रुत्वा कथ्यमानमियाय स ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके बैरा श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पत्र पर अभिप्रेर किया ॥१॥ उमने अपना सत्र धन दियेया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्न माला नामक बहिन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोष्ठमे आई है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे महित राम, जिनेन्द्र भगवान्को आश्चर्यदायिना पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापिस आये ॥४॥ नर्तकाके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने वीक्षा धागण की है यह सुनकर शत्रुन हास्य करने लगा सो भरतने सनाकर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयोको छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है उसकी तू क्या हँसो करता है ? ॥६॥ जो देवाके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख । जो हमारा शत्रु था अब मुनि होने पर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जब तक बैठा था तब तक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ चढ़ो आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतकी प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ स्रगभर बैठा । तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी बहिन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलङ्काराको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की । साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी राजना और उत्तम सेना भी प्रदान का ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पा कर भरत बहुत प्रसन्न हुआ उमने विजयरथकी इन्द्रानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्याकि महापुरुषाकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे न्याय था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ोंसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि ये महामुनि कौन हैं ? और येयक कहते

ततो विपमपापाणनिवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमार्काणं कुसुमामोदवासितम् ॥१४॥
 तज्जेन कथितं रम्यं पर्वतं श्रपदाकुलम् । आरुरोहावर्तायांश्चाद्विनीताकारमण्डितः ॥१५॥
 रोपतोषविनिर्मुक्तं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिपण्णं तमेकस्मिद्विवाभयम् ॥१६॥
 अतिवीर्यमुनिं दृष्ट्वा सुघोरातपसि स्थितम् । शुभध्यानगतप्रानमं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
 उत्फुल्लनयनो लोकं सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मयं परमं प्राप्नो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
 कृचास्य महती पूजा भरतं श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरुचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
 नाथ शूरस्त्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा घृता जिनवरोदिता ॥२०॥
 विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणां महात्मनाम् । ज्ञातसंसारसाराणामीदमेव विचेष्टितम् ॥२१॥
 मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदभिवान्नुव्यते । तदुपात्तं स्वयां साधो वयमव्यतदुःखिनः ॥२२॥
 श्रान्तस्य दुरितं किञ्चिदस्माभिरुत्स्वधीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्यं प्राप्तायातिप्रतीक्ष्यताम् ॥२३॥
 ह्यपुत्रत्वा साञ्जलिं हृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतानं कथा मौनो कुर्वानो धरणीधरात् ॥२४॥
 स्थूरीवृष्टं समाहूय पूर्वमाणः सहजशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवाम्भोधिमध्यगः ॥२५॥
 महासाधनसामन्तमण्डलस्यान्तरे स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
 कं गतास्तां नु नतं वयः कृतलोकानुरञ्जनाः । स्वजीविनेऽपि निर्लोभा विद्वधुर्वा मयि प्रियम् ॥२७॥

जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥१३॥ तदनन्तर जो ऊँचे नीचे पापाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षांसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुधासित था, और जङ्गली जानघरांसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा यथाये हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेमे उतरकर विनीत वेपसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला । ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विपादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोके धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिहके समान निर्भय थे, घोर तपसे स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शनकर सबलोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमे हर्षसे रोमाञ्च निकल आये । सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अञ्जलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमे प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमे उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो ! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी हैं ॥२२॥ हे नाथ ! हमलोगोंसे आपके विषयमे जो कुछ अनिष्ट-पाप रूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए । आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अञ्जलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिम्मे साथ थे तथा जो विभव रूपी समुद्रके बीचमे गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनाके वृष्ट पर सवार हो अयोध्याके लिए वापिस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमे स्थित भरत ऐसा सुरोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमे स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रमत्त चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भाँ लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुरञ्जित करने-

पुर कृत्वातिवीर्यस्य महोया परमा स्तुतिम् । नर्तकीभिः कृतं कर्म चित्रमेतद्दहो परम् ॥२८॥
 छांणा कुतोऽयं वा शक्तिरौदर्यं विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीमिर्नृपमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
 चिन्तयन्नयमिन्यादि सुप्रसन्नेन चेतसा । जगाम धरणीं पर्यन्तानासत्यसमाकुलम् ॥३०॥
 व्यासारां पजगत्काति प्रभाध परम दधत् । सशुद्धो विवेशासी विनीत^१ परमोदय ॥३१॥
 साक विजयसुन्दर्यां तस्थी तत्र रति भजन् । सुलोचनापिण्डको यथा जलदन्तिस्वन^२ ॥३२॥
 आनन्द सर्वलोकस्य कुर्वाणो रामलक्ष्मणौ । कञ्चिकाल पुरे स्थि वा पृथिवीपरभूत ॥३३॥
 जानक्या सह सन्मग्न्य कर्तव्याहितमानसौ । भूय प्रत्यागुमुद्युची समुदेरामभास्वितम् ॥३४॥
 वनमाला ततोऽबोचल्लक्ष्मण चारुलक्षणा । सवाप्ये विभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥
 अवश्य यदि भोक्तव्या मन्दभाग्याहक त्वया । पुरैव रचिता कस्मान्मुमूर्षन्ती वद प्रिय ॥३६॥
 सौमित्रिरगद् भद्रे विपाद मा गम प्रिये । अयत्नेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
 मग्न्यदर्शनहाना या गतिं यान्ति सुविभ्रमे । वनेय ता पुन विम भ चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥
 वराणा मानदग्धाना साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽह यदि मायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥
 रक्षितव्य पितृवैश्यमस्माभिः प्राणवत्तमे । दक्षिणोदम्बत कूल गन्तव्य निविचारणम् ॥४०॥
 मलयोपरयका^३ प्राप्य कृत्वा परममालयम् । नेत्यामि भवतीमेव वरौ धृतिमाग्न^४ ॥४१॥
 समयै^५ सात्ववित्पेति वनमाला सुभाषिते । भजे कालिलि पार्व सुमित्राकुचितसम्भय ॥४२॥

वाली वे नर्तकियों कहा गई होगी ? ॥२७॥ राजा अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोने जो काम किया । अहो ! वह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२८॥ अथवा समस्त ससारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है ।^१ तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देर रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त ससारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभाजको धारण कर रहा था और जो वत्सुष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुत्रके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण भरता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघवर (जयकुमार) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सन लोगोंको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इन्द्रित ध्यान पर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्ष्णोसे युक्त थी और औमुआसे भीने चञ्चल कनीनिकाओंवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय ! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरनेसे क्या बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने ! निपादको प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोको धारण करनेवाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र हो तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये ! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे ! हम पिताके वचनकी रक्षा करनी है और बिना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुन्दर जौनवाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोंसे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्तकर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमार , मेघवर इति तत्प्रेषापर नाम । ३. मग्न्यापत्यकां म० । ४. मात्रत म० । ५. शपथे । समयै म० ।

तत सुसजने काले विदितौ तौ न केनचित् । निर्गम्य नगराद्गन्तु प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
 प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं पुर दृष्ट्वाखिलो जनः । परम शोकमापन्नं कृच्छ्रेणाधारयन्नुप ॥४४॥
 वनमालां गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिना स्थिता ॥४५॥
 विहरन्ती ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणी । सुसुदाते महासत्त्वौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
 युवयुग्मवत्पद्मार्ज्जुना मनोनयनपल्लवान् । तावन्ननुपारेण दह-तावान्तु शनैः ॥४७॥
 कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलकृतम् । सुजाता जनना सैवा लोके यैतावज्जाजनन् ॥४८॥
 धन्येयं वनितैस्ताभ्यां समं या चरति चित्तम् । ईदृशं यदि देवानां रूपं देवास्ततः स्फुग्म् ॥४९॥
 कुत समागतावेतौ व्रजतो वा कः सुन्दरौ । बाष्कृतं किमिमो कर्तुं स्पृष्टिरादृगियं कथम् ॥५०॥
 सरपोऽनेन पथः दृष्टौ पुण्डराकनिरीक्षणो । व्रजन्ती सहितौ नार्यां कचिच्चन्द्रनिमाननौ ॥५१॥
 यद्मिमो शोभिनीं मुग्धे मनुष्यावथवा सुरो । तन्किमयं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
 भयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विभो । लम्बते सुचिरं द्रष्टुमेवविधनराकृतं ॥५३॥
 निवर्तस्व भज स्वास्थ्यं त्वस्तं वसनसुन्दर । मा नैषीर्लोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
 नेत्रमानसचोरभ्यां दृष्टान्यामपि वाञ्छिके । निष्ठुराभ्यां विमेषाभ्यां वाभ्यामपि श्रुतिं भज ॥५५॥
 हृत्पाद्यालापसप्तकं कुवाणावबलाजनम् । देमाते शुद्धचित्तौ तौ स्वेच्छाविहितकारिणौ ॥५६॥
 नानाजनपदाकीर्णौ पर्यट्य धरिणोमिनौ । क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं सम्प्राप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥
 उद्याने निकटे तस्य जलदोकरसन्निभे । अवस्थितां मुखैर्नैते यथा सीमनसे सुरा ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकल कर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके ॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए । उन्हें देख लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्रीरूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुपारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ हे सरित् ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका बुल अलङ्कृत किया है ? वह कौन सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है । यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनकी यह ऐसी रचना कैसे हो गई ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य है ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो है सचिये ! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अविशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य ही अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्ख ! ऐसे मनुष्याका रूप बहुत भारी पुण्यके जिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिए लोट जा, स्वस्थ हो, नीचे रिसके हुए वस्त्रोंको सँभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको रोद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी वाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंकी वार्त्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्ध चित्तके धारक ये दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि

असं वरगुण भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीक सीतया सार्धमसेवत हृत्पुत्र ॥५६॥
 'प्रासादगिरिमालाभिस्ततो हतनिरीक्षण । लक्ष्मण पद्मतोऽनुत्था प्राप्य प्रथमयाचिताम् ॥६०॥
 दद्यान प्रवर माय पाताम्बरधर शुभ । स्वर क्षेमान्वलि द्रष्टु प्रतस्थे चारुविभ्रम ॥६१॥
 नानालतोपगृहानि काननानि वराण्यसौ । सरित स्वच्छतायाश्च शुभ्राभ्रसमसैकता ॥६२॥
 विचित्रातुरङ्गाश्च परिच्छादनपर्वताम् । देवधामानि तुङ्गानि कूपान् नापी सभा प्रपा ॥६३॥
 लोकं च विविध पर्यन् इत्यमान सविस्मयम् । विवेश नगर धीरो नानाव्यापारसङ्कुलम् ॥६४॥
 शृणु शृण्विति तत्राय प्रधानविशिखागतम् । अशृणोऽपौरत शब्दमिति विश्रब्धभाषितम् ॥६५॥
 पुरय कोऽन्यसो लोके यो मुक्ता राजपाणिना । शक्ति प्रसन्न शूरेन्द्रो जितपद्मा^२ गृहीप्यति ॥६६॥
 स्वर्गे राज्य ददामासि राजा च प्रतिपद्यते । तथापि मानया कृत्य कथया शक्तियातया ॥६७॥
 जातश्चाभिमुख शक्ते प्राणैश्च परिवर्जित । किं करिष्यति कन्यास्य राज्य वा त्रिदशालये ॥६८॥
 समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्य प्रिय जगति जावितम् । तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
 ध्रुवं च कौतुका कञ्चिदथ पमच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेय पदं भाषते जन ॥७०॥
 सोऽद्योऽन्यमुक्तकन्यासत्तिपण्डितमानिना । किं न ते विदिता सर्वलोकविस्वातकीर्तिका ॥७१॥
 पतञ्जरायस्य राज्ञ शत्रुदमश्रुते । कनकाभासमुपपन्ना दुहितुः गुणशालिना ॥७२॥
 यतोऽनया जित पद्म कान्या वदन्जातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोद्दिता सत ॥७३॥

सीमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥५८॥ यहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दासाका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर बड़े बड़े महल रूपी पर्वतोंकी पक्षियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण चित्तपूर्वक रामसे आह्ला प्राप्तकर इच्छानुसार क्षेमाञ्जलि नगर देवनेके लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतल धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०-६१॥ नाना लताओंसे आलङ्कित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरी तथा शुभ्रमेघोंके समान उज्जरल तटोंसे शोभित नदिया, नाना प्रकारकी धातुओंसे रङ्ग-विरङ्गे क्रीडा-पर्वतों, ऊँचे ऊँचे जिन-मन्दिर, कुओं, चापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देवते हुए उद्धाने नाना प्रकारके व्यापार कार्योंसे युक्त नगरोंमें बड़ी धीरतासे प्रवेश किया । लोग उन्हें बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२-६४॥ जन ये नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ यह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, ससारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति मेलनेके लिए सन्मुख हुआ और प्राणासे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य नसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ 'ससारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अथ सन प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अनानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुक वरा किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ? जिसके लिए लोग इस प्रकार चर्चा कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसका कर्ति समस्त ससारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याकी क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुदमनजी वनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुरखी कान्तिसे

नवयौवनसम्पन्ना कलालङ्कारधारिणा । पुंसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
 उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवनिनम् । व्यवहार समस्तोऽस्याः पुरपार्थविवर्जित ॥७५॥
 अद् परयसि कैलाससदृश भवन धरम् । अत्र तिष्ठयसो कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
 शक्ति य पाणिना मुक्तो पित्रास्या सहते नर । वृणुते तमिव दग्ध समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७७॥
 लक्ष्मीपर समाकर्ण्य सकोपममयविस्मय । दृष्ट्वा सा कीदृशो नाम कन्या यैव समीहते ॥७८॥
 दुष्टचेष्टामिमा तावकन्या पर्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्राय प्रौढोऽयमनया कृत ॥७९॥
 ध्यायन्निति महोचेत्ते राजमार्गेण चारणा । विमानामान् महाशब्दान् प्रासादाविधुषाण्डुरान् ॥८०॥
 दन्तिनो जलदाकारास्तुरङ्गाश्चलचामरान् । धलभीनृत्यशालाश्च परयन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
 नानानिर्व्यूहसम्पन्न विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभराजिसङ्काश प्राप शत्रुन्दमालयम् ॥८२॥
 भास्वदक्षिशतकार्णं गुह्यप्राकारयोजितम् । द्वार तस्य दुर्द्वीकेऽसी शकचापाभूतोरणम् ॥८३॥
 शस्त्रिन्दुदावृते तस्मिन्नानोपायनसङ्कुले । निर्यच्छुद्धिविशिष्टश्च सामन्तैरसिङ्घैः ॥८४॥
 द्वा स्थेन प्रविशन्नेप यभापे सौम्यया निरा । कस्तुबमञ्जुपितो भद्र विशसि क्षितिपालयम् ॥८५॥
 सोऽबोचद्रुष्टुमिच्छामि राजान गच्छ वेदय । स्वपदेऽयमसी कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
 दिग्भुक्त्वा महाराज पुमान्निन्दीवरप्रभ । राज्ञोऽवलोचन धीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

फमलको अधवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥
 नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोंको धारण करनेवाली यह कन्या पुवेदधारी देवासे
 भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे
 पुल्लिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सध
 पुरुषोंके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो केलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो
 उसीमे यह सेकड़ों प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके
 पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह बरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले
 रक्ती है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण षोडश, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या
 कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस
 कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रक्खा है ॥७९॥ इस प्रकार
 विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाई सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमे आगे
 गये । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भग्ना,
 मेघोंके समान हाथियों, चञ्चल चमरोंसे सुशोभित घोडों, छपरियों और नृत्यशालाओंकी
 घौमी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०-८१॥ तदनन्तर जो नाना प्राकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रत्न
 विरङ्गी ध्वजाओंसे सुशोभित था, तथा जो सफेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुदमके
 महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सेकड़ों देदीप्यमान बेलगुटोंसे सहित था, ऊँचे प्रकारसे
 युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रत्न विरङ्गे तोरणोंसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो
 शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर
 निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड लग रही थी ऐसे द्वारमे लक्ष्मण
 प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही
 राजमहलमे प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता
 हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरेको नियुक्तकर द्वारपालने भीतर
 जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

भमायवदनं वीक्ष्य राजावोचद्विशत्त्रिति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशन् ॥८८॥
 त द्यूः सुन्दराकारं सुगममोरपि सा समा । समुद्रमूर्तिव सोम गता शीतानुदशने ॥८९॥
 प्रणामरहितं द्यूः विकटोऽसु सुभासुरम् । किञ्चिद्विद्वृतचेतस्त्वस्तमपृच्छद्विरिन्दम् ॥९०॥
 कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं च कृतध्रमः । ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् प्रातृपेण्यघनध्वनिः ॥९१॥
 बाहोह भरतस्यापि महोहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सत्रं भेदवत्तु दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
 नभसमानशब्देयं दुष्टकन्यागर्वा त्वया । पोषिता सर्वलोकरस्य वर्तते दुःस्वदायिनी ॥९३॥
 सोऽवोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीक्षितुम् । कोऽपी नु जितपद्माया मानस्य एतस्यो भवेत् ॥९४॥
 उवाच लक्ष्मणः शक्त्या ग्रहण मे किमेकया । शक्तोऽप्यत्र विमुञ्च मयि शक्या समस्तया ॥९५॥
 त्रिधादो गविगोरेषं प्रयुक्तो पावदेतयोः । गवाचा निविडास्तावत्पिहितः वनितानयैः ॥९६॥
 परित्यक्तनरहेया द्यूः लक्ष्मणपुत्रवत् । निर्यूढस्या जिताम्भोजा सज्जाङ्गनाद्वारयन् ॥९७॥
 दक्षवदाञ्जलि भीरं सीमित्रिरिति संज्ञया । चकार जातयोरं तां मा मेगोरिति सम्मदी ॥९८॥
 जगाद च किमद्यापि कातर एव प्रतीक्षसे । विमुञ्चारिन्दुमामित्य शक्तिं शक्तिं निवेदय ॥९९॥
 ह्युपुनः कुपितो राजा वदध्या परिकर ददम् । अवलपावक्रमकाशा शक्तिमेकामुपाददौ ॥१००॥
 प्रतीक्षेच्छसि मनु चेदियुक्त्वा मृकुटीं दधत् । वैराग्य स्यान्तक कृत्वा तां मुमोष विधानविन् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुरोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८८॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे' । तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८९॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र लोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर लोभको प्राप्त हो गई ॥९०॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोंके धारक तथा अतिशय देवीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुंद्मने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिकी धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मानरूपी सींग अभय हैं ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकती गाय तुमने पाल रखी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुंद्मने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिकी सहाय करनेमें समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान रण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिकी क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तियाँ छोड़ ॥९५॥ यहाँ जब तक दोनों अहंकारियोंके बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन करोटे म्त्रियोंके मुँहोंसे आन्ध्रादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गई और पुरुषोंके साथ द्वेषमें छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़ कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुंद्म नाम रखे फिरता है । शक्ति छोड़ और पराजय दिया ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसा और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठाई ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले खेल' यह कहकर भौंहको धारण करनेवाले विधि-विधानके

‘अयग्नेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वलिकाग्रहणे को वा बहुमानो गररमतः ॥१०२॥
 द्वितीयैतदहस्तेन कृष्णाम्नां द्वे सुविभ्रमः । शुशुभे सुभृशं तामिरचतुर्वन्त इव द्विषः ॥१०३॥
 संक्रुद्धभोगिभोगीभां सम्प्राप्तमपि पद्ममाम् । दन्ताग्राम्यां दधौ शक्तिं पेशामित्र मृगाधिपः ॥१०४॥
 ततो देवगगाः स्वस्था वटपुः पुष्पसहस्रिभू । ननृत्स्ताडयोरचक्रुर्दुन्दुभीश्च कृतस्वनाः ॥१०५॥
 प्रतीच्छातिरन्ध्रमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥
 तमक्षततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मणनिलयवचसम् । विस्मितोऽस्मिन्दमो जातस्त्रपात्वनमिताननः ॥१०७॥
 जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायायानतानना । लक्ष्मीधर समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
 धृतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वी शुशुभेत्तराम् । कुलिशायुधपार्श्वस्था शर्चावै विनतानना ॥१०९॥
 नवेन सगमेनास्या हृदय तस्य कपितम् । यन्नासीत् कपित जातु संग्रामेषु महत्त्वपि ॥११०॥
 पुरस्तात्तनेरशानी वन्दय। लक्ष्मणा वृनः । विभिधापद्मपापालीं तद्भरन्व्यस्तनेग्रया ॥१११॥
 मद्यो विनयनग्रागो राजान लक्ष्मणोऽप्यवत् । मामकार्हमि मे क्षतं शैशवाद्भुविचेष्टितम् ॥११२॥
 बालानीं प्रतिक्षलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगभीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
 ततः शत्रुदमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तब्धैरमरराभाभ्यां कराभ्यां परिपपञ्जं ॥११४॥
 उवाच च परहितगण्डोष्ण्डान् गजान् वृणात् । योज्यैर भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

ज्ञाता राजाने आलीढ आसनसे खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी॥१०१॥ लक्ष्मणने बिना किसी यन्त्रके ही दाहिने हाथसे यह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि घटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलोंमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दोंतोंको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित सौंपकी कणकी नाई जो पाँचवीं शक्ति आई उसे लक्ष्मणने दोंतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी टलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुण्य परसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करत हुए दुन्दुभि याजे बजाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर ‘शत्रुदम’ अथ तू मेरी शक्ति फेल’ इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सत्रलोग अत्यन्त भयकी प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुन्दम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुग्ध नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर ही रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे लिखकर लक्ष्मण के पास आई ॥१०८॥ शक्तियोंकी धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास यह कृशार्द्धी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि यज्ञके धारक इन्द्रके पास गङ्गी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी क्षिप्त नहीं हुआ था यह जितपद्माके नूतन समागमसे क्षिप्त हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे वे भी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रोभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो गौटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंमें आप जैसे महागम्भीर पुरुष विचार भावकी प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रममें सहित राजा शत्रुदमने भी हाथीकी सूँढके समान लज्जा तथा मुगुष्ट भुजाओंमें लक्ष्मणका आलिङ्गन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

वन्द्यापि महानागान् गङ्गजैलसमविषः । विमर्दाकृतजानस्मि मोक्षयमन्य द्वाभयम् ॥११६॥
 अहो वीर्यमहो रूपं महरा. शुभ ते गुणाः । अहोनुद्धततायन्तं प्रथयथ तवाद्भुतः ॥११७॥
 भाषमाणे गुणानेवं राज्ञि समववस्थिते । लब्धोपरस्त्रयानोभूत् क्वापि यान द्वयं पुणम् ॥११८॥
 अथ लब्धवानुद्धतयोपभेयः समाहृताः । राजादेशान् समाध्याता. अथा. 'मशिनवारणा. ॥११९॥
 यथेष्टं दीयमानेषु धनेषु परमन्ततः । आनन्दोऽवतताग्रेष्वनगरेषामदक्षिणः ॥१२०॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवाच राजा पुरुषपुङ्गव । त्वया दुहिनुत्तिष्ठामि पाणिग्रहणमर्चितुम् ॥१२१॥
 सोऽवोचन्नगरस्यास्य प्रदेशे निष्ठे मम । ज्येष्ठतिष्ठस्मि तं पृच्छ स जानानि यथोचितम् ॥१२२॥
 ततः स्वयन्दममारोप्य जितपथां सल्लसगाम् । सदाहरन्धुरम्बाश प्रतस्थे तस्य सादरः ॥१२३॥
 ततः क्षुन्धापगानापनिर्योपप्रतिमन्त्रनिम् । अत्रा वीर्यं विना च धूर्त्तपटलमुद्गतम् ॥१२४॥
 जानुन्यस्तमुद्गु चरत्करा कृच्छांमसुस्थिता । सीता जगद् सम्प्राप्ता गिरा प्रस्वल्प्ता मुहुः ॥१२५॥
 कृन् सीमित्रिणा नून रावबोद्धतचेष्टितम् । आलोयमाकुलान्यन्त दर्यते कृपमाश्रय ॥१२६॥
 आदिलय जानकीं देहि मा भैरविति शन्दयन् । उच्छस्यी राघवः क्षिप्रं दृष्टिं धनुषि पानयन् ॥१२७॥
 तावच्च नरबुद्धस्य महनः स्थितमप्रतः । मुनारगीतनिस्वानमीषाढकैऽननाजनम् ॥१२८॥
 क्रमेण गरुडनद्यास्य प्रयासात्त मनोहराः । विभ्रमाः समररयन्त सुदारात्रयबोधिता ॥१२९॥
 नृपन्तं च समालीक्ष्य तारनूपुरशिञ्जितम् । विभ्रम्यः सावया साईं पद्म पुनरपाविशन् ॥१३०॥

भयङ्कर युद्धोर्मि मद्मन्त्राधी कृषित हाथियोंको क्षणभरमें जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११५॥ जिसने गोल काली चट्टानोंवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जङ्गलों हाथियोंको मररहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय । अहो शोभनीक ! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार सभामें बैठे राजा शत्रुंजय लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हों ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आज्ञासे मेघसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियों 'यजाई' गईं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शहू फूँके गये ॥११९॥ इन्द्रानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेमें समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निरुद्धवर्ती प्रदेशमें मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपथाकी रथ पर बैठकर खिया तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुंजय बड़े आश्रमके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटलको देखकर घुड़नों पर बार-बार हाथ ररती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और घबड़ाकर म्पलित वागीमें रामसे बोली कि हे राघव ! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है । यह दिशा अत्यन्त आकुल दिग्गई देवी है इसलिए सावधान होओ और जो बुद्ध करना हो सो करो ॥१२४-१२६॥ तब सीताका आलिङ्गन कर 'हे देवि ! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा शीघ्र ही धनुष पर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे उच्चस्वरसे मङ्गल गीत गानेवाली स्त्रियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह स्त्रियोंका समूह अर क्रम क्रमसे पाम आया तब सुन्दर स्त्रियोंके शरीरमें उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी

स्त्रियो मद्गल्हस्तास्त सर्वालङ्कारभूषिता । इडांस्त्रिऽतिहारिण्य समदस्फीतलोचना ॥१३१॥
 रथादुत्तार्य पद्मास्य सहितो जितपद्मया । पति पपात् पद्माया पद्मस्य चरणो द्रुतम् ॥१३२॥
 पद्मस्य प्रणति कृत्वा साताया अपि सत्रप । निविश्य नातिनिकटे पद्मस्य त्रिनयी स्थितः ॥१३३॥
 नृपा शत्रुन्दमावाध ममाकृत्वा नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहसीतलस्य यथास्थानमवस्थिता ॥१३४॥
 तत्र सङ्गमया स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वया । कृते च पुनरानन्दनर्तने पाथिवैरपि ॥१३५॥
 ऋद्ध्या परमया युक्त ससीतो लक्ष्मणो बल । प्रविष्ट स्वन्दनारुढो नगर प्रमदान्वित ॥१३६॥
 तत्र लावण्यकिञ्चकयोपि कुवन्त्याकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपङ्क्तिणि ॥१३७॥
 नरेभरलभा मयप्रतसिद्धधनेरलम् । प्रासात् सङ्कुचितस्वान्तो कुमारश्रासमन्वितो ॥१३८॥
 शत्रुन्दमङ्गलच्छन्दः । त्रिखिन्नाल महासुखी । उपितो सर्वलोकस्य चित्ताङ्गानन्दनायिकी ॥१३९॥
 जितपद्मा ततो भीता विरहादतिदुःखिताम् । परिसान्ध्य प्रियैर्वाङ्मयैर्नमस्कारमिवाद्रात् ॥१४०॥
 पद्म सीतानुगो भूवा निशोथे स्वैरनिर्गत । यातो लक्ष्मीधरो दम्बा पौराणामष्टति पराम् ॥१४१॥

शार्दूलचित्रीडितम्

ये जन्मान्तरसञ्चितातिमुक्ता सर्वाधुमाजा प्रिया ।

य य देशमुपवज्जति विविध कृष्य भजन्त परम् ॥

तस्मिन्मर्षदणारुमीरुयचनुरस्तेषा विना चिन्तया ।

मृष्टाङ्गादिविधिर्भव यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभ ॥१४२॥

जोरदार मनकार फैल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताने साथ पुन बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मङ्गल द्रव्य थे, जो सत्र प्रकारके अलङ्कारोंसे अलङ्कृत थी अतिशय मनोहर थी और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियों रामके पास आई ॥१३१॥ कमलके समान मुखकी धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामने चरणामें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणामकर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम क्रमसे राम तथा सीताकी नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सत्र वार्ता लाप करते हुए मुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदा ने युक्त तत्त्व देखसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ यहाँ राजमहलमें पहुँचे सो वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि सौन्दर्य रूपी वेशरसे युक्त स्त्रियों रूपी नौल कमलासे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियोंसे युक्त था ॥१३७॥ मत्स्यव्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त सङ्कुचित रहने थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार मन सेया करता था, जो महा मुग्धसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक मुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी पनमालाके समान विरहमें मयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माकी प्रिय घपनों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले । इन सबके जानेसे नगरवासियोंका धर्म जाना रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेष्ठिक ! निन्दोने जन्मान्तरमें यहूत

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाश खला
इत्येषा यदि सर्वदापि कुरते निन्दामल द्वेषक ।
एते सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्वातोऽपि शृङ्ग गिरे
नित्यं १ याति तथापि निजितरविर्दीप्यता जन सद्गमम् ॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यान नामाष्टमिंशत्तम पर्व ॥३८॥



भारी पुण्यका सञ्चय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाना प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस जिस देशमें जाते हैं उसी उसी देशमें उन्हें बिना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४०॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है । ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वथा इन भोगोंका निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्यंतके शिखरपर भी चला जाता है वो भी अपनी कान्तिसे सर्वको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समागमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारका सुख-सामग्रा सर्वत्र मिलती है ॥१४१॥

इस प्रकार आर्षनामने प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितम् जितपद्माका वर्णन करनेवाला अष्टमिंशत्तम पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥



एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नातादुर्मन्त्रामु बहुपुण्यसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तामु सेवितामु सुखं मृगे ॥१॥
 देवायनामनिरुपसारास्थितिं साधनी । आयाता रममाणौ तो ससीती रामलक्ष्मणौ ॥२॥
 क्वचिद्दिगुमसङ्गा राम स्मिलय लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णे ज्ञानक्या साध्विति ब्रुवन् ॥३॥
 सुतारौ मन्त्रता वल्ली क्वचिदाशेष्य ज्ञानकाम् । स्वैर दोलयत पारववतिनी रामलक्ष्मणौ ॥४॥
 हुमलखण्डे क्वचिद् स्थिता नितान्तघनपरलये । क्याभि सुविदग्ध्याभि कुरतस्तद्विनोदनम् ॥५॥
 इयमेतदथ वल्गा पलाश तर्राश्यताम् । हारिणी हारि हाराति सतोचे राघव क्वचिन् ॥६॥
 क्वचिद् भ्रमरसहातैर्मुखसौरभलेखुषे । कृच्छादरक्षतामेतौ रात्रपुत्री क्वर्धिताम् ॥७॥
 शनैर्विहरमाणो सौ मसतां शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु स्वरगणेषु सुराश्रित ॥८॥
 नानाप्रानोपभोगेषु देशेषु निहितेक्षणौ । धीरौ क्रमेण सम्प्राप्तो पुर वशस्थलद्युतिम् ॥९॥
 सुदीर्घोऽपि तयो कालो गच्छतो सहस्रीतयो । पुण्यानुगतयोर्नासादपि दु खल्वप्रद ॥१०॥
 अपरयता च तस्याते वशजालातिसङ्क्रम् । नग वशधराभिरय भिवेव भुवमुदगतम् ॥११॥
 ध्यायया सुदृग्दृष्टाया य सन्ध्यामिव सन्ततम् । दधाति निर्मरणां च हस्ततः च शीकरै ॥१२॥
 निर्गच्छन्ती प्रजा दृष्टा पुरादथ स एककाम् । राम पश्यन् भो वस्मात् जामोऽय सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण रमण करते हुए घनकी उन भूमियोंमें आये जो नाना प्रकारके वृक्षांसे सहित थीं, जिनमें नाना फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डपोंसे सहित थीं तथा मृगगण जिनमें मुखसे निवास करते थे ॥१-२॥ कहीं राम, मृगके समान कान्तिवाले पल्लवकी तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण उतारकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताकी बैठकर थगलमें दोनों ओर रखे हो राम लक्ष्मण उसे मूला मुलाते थे ॥३-४॥ कहीं सपन पत्तोंवाले हुम-लखण्डमें बैठकर मनोहर मनोहर क्याभोंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताकी पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी फट्टिआईसे उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वरगके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाआने धायक दोनों भाई साताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमें घोंरे घोंरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्यासे उपभोग्य देशोंमें नष्टि टालते हुए वे धीरे-धीरे क्रमसे वशस्थलति नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगाभी महा पुरपाकी यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी कतना बड़ा काल उन्हें अशामान भी दुरा देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वशधरा नामका पर्वत देखा जो चामाके समूहमें अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवियोंका भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानों सग मन्त्र्याकी धारण कर रहा था और निर्मरनाके छींटोंमें ऐसा ज्ञान पड़ता था मानो हम ही रहा हो ॥११-१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल निकल कर वही

१ मन्त्रुताम् व० । २. इय हाणिना वला, एतत् हारि पलाश, अथ हारि तम् । ३ स्वरगेषु म० ।

४ धारी म० ।

सोऽथोचदद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते वरः । नक्षमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्मगे नादस्य^१ मस्तके ॥१४॥
 ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽय प्रतिनादी भयाग्रहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
 संक्षुभ्यतां भूः सर्वा नन्दतां व दिशो दश । सरांसि सञ्जरन्तीव निर्मूल्यन्त इमाग्रिणा^२ ॥१६॥
 रीरवारावर्त्तद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । ध्वनौ सर्वलोचस्य ताड्येतेऽयोधनैरिव ॥१७॥
 निशातमे किमस्माक वषाधर्ममयमुद्यत । वरोति प्रोडनं तावत् कोऽपि निष्पकण्टक^३ ॥१८॥
 भयेन स्वतन्त्रस्मादयं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
 माप्र योजनमेतस्मादतास्यान्योन्यभाषितम्^४ । शृणोत्यय जनः किञ्चित् प्राप्नोति च सुग्रासिकाम् ॥२०॥
 निशम्योक्तमिदं सीता वभाषे शमलधमणो । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
 काल देशे च विशाध मीतिशास्त्रनिशारदैः । नियते पीडय तेन न जानु त्रिपदाप्यते ॥२२॥
 ग्रहस्याथोचतामेतामुद्दिग्नां जनकाम्यजाम् । गच्छुं त्व यत्र लोकोऽय धजत्यलंभुसाध्वसे ॥२३॥
 जन्मिष्यन्ती प्रभाते गौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डरीलान्ते गतमौरागमिष्यति ॥२४॥
 अस्मिन् महाधरे स्म्ये ध्वनिरत्यन्तभाषण^५ । कस्यापिमिति पर्यायो वयमचेति निश्चय^६ ॥२५॥
 प्रभाप्यते वराकोऽय लोकः शिशुसमाकुल । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
 वदेही^७ सञ्जरेवोचे सतत भवतोरिमम् । हस्तमेक ग्रह शकः कः कुलीरग्रहोपमम् ॥२७॥

अन्यत्र जा रहे हैं । तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसको प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयङ्कर है । किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविधानी वृद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, वशां दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो धधर-धधर फिरने लगते हैं और वृक्ष मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रीत्रतामे नरकके शब्दकी तुलना करनेनाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहेके घनासे ही ताडित होते हों ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका धार्वालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चले ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने पचड़ाई हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुम्हें बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तु भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको रोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मगोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयङ्कर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये तीन लोग घाल-वर्षासे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे ज्वर चढ़ रहा हो ऐसी कर्पती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगों की हठ कंकड़की पकड़के समान बिलक्षण ही है उसे

वदन्ती पुनरेव सा पद्मनाभस्य पृष्ठतः । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुरः ॥२८॥
 आरोहन्ती गिरिं देवी प्रविशन्नमपङ्कजा । रराज शृङ्गमन्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
 चन्द्रकान्ते द्रुनोलान्त स्थिता पुष्पमणेरसो । शलाकेवाभ्रवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
 भृगुपातपरिस्ताः ऋचिदुश्चिप्य तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विश्रब्धहस्तालम्बनकोविदी ॥३१॥
 विषमप्रावसद्वात निस्तीर्य त्रासवजितौ । विस्तीर्णनगमूर्धन ससीतौ तावपापतु ॥३२॥
 भय सदधानमारुढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्या प्रतिमा चतुराननाम् ॥३३॥
 परेण तेजसा युक्तावधिधारी नगस्थिरी । शरारचेतनान्यत्ववेदिनी मोहवजितौ ॥३४॥
 जातरूपधरो कान्तिसागरी नवयौवनी । सयतो प्रवराकारी ददृशुस्ते ययोदितौ ॥३५॥
 दधुश्च विस्मय प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभाज्जनम् । निस्सारमोहित सर्व ससारे दुःखकारणम् ॥३६॥
 मिश्राणि द्विविण दारा पुत्रा सर्वे च बान्धवा । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एक सुबावह ॥३७॥
 ह्रुदोकिरे च भस्त्राण्य मूर्ध्वविन्ध्यस्तपाण्य । दधाना परम तोष विनयान्तविग्रहा ॥३८॥
 यावद्ददृशुर्युगैर्विस्फुरन्मिहारावने । भिन्नाङ्गनसमध्वपैश्चलजिह्वैः शृङ्गाकुम्भि ॥३९॥
 समुद्यतालकैर्मैश्वर्यलङ्घितनिश घनैः । घानावर्णैरतिस्थूलैर्बैष्टितौ वृश्चिकैश्च सा ॥४०॥

दूर करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल छेदप्रसन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुरोभित हो रही थी मानो मेयके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमें स्थित पद्मरागमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोंसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठा कर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोंका समूह पारकर भयसे रहित राम लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमें आरुढ़ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्भुजा प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माको भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिग्गम्भिर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे नूतन तारण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयदा परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि ससारमें प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, घन, स्त्री, पुत्र, और भाई-जन्य आदि सभी सुखदुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तिसे युक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्खे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रोभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अञ्जनके समान कान्तिवाले थे, तथा तिनकी जीभें लपलपा रही थीं ऐसे माँपासे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्खी थी, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, रात दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रङ्गके थे, एक बहुत मोटे थे, ऐसे विच्छुआंसे उन दोनों मुनियोंको

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायाती भजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
 वैदेही भयसम्पन्ना भर्तारं परिपस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे भय त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥
 उपसृत्य ततः स्वैरं तावयां पञ्चगृथिकाः । अत्यस्ता कार्मुकाग्रेण मुहुः कृतविवर्तनाः ॥४३॥
 अयोद्धार्यं चिर पादौ तयोर्निर्मलवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तां चारुणा पुरभावया ॥४४॥
 आसन्नानां च वल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरार्पितैः शुक्लैः पूरितान्तरमन्त्रितौ ॥४५॥
 ततस्ते करयुग्मान्जमुकुलभ्रोजितालिकाः । चतुर्योगीश्वरी भक्त्या वन्दनां विधिकोविदाः ॥४६॥
 शोभां च सन्निधायाङ्गे वधूमिव मनोहराम् । पद्मोद्भाद्यद्वयुद्ध गायन् सुमधुरावरम् ॥४७॥
 भक्त्याद्यदिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः । बाकोकिलरवः पुत्रः कैक्यास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
 महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । वन्द्यास्ते साधवो नित्य सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥
 उपमानविनिर्मुक्तं चैरव्याहृतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिभुवनव्याप्तं सुभाषणैर्हृदयम् ॥५०॥
 भिन्न यैर्ध्यानदण्डेन मद्दामोदशिलातलम् । दीनं विदन्ति ये विरवं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
 भाषतोत्तराण्येवं तयोर्गानविधिज्ञयोः । तिरश्चामपि चेतांसि परिप्राप्तानि माद्वयम् ॥५२॥
 ततो विदितनिरसोपशान्तनलक्षणः । मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमालयादिभूषिता ॥५३॥
 लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम् । चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा ॥५४॥

धिरा देखा ॥३६-४०॥ उक्त प्रकार के मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गई, तब रामने क्षण एकमं भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वहीं लौट कर आते थे ऐसे सौंप, दिच्छुओंको घनुपके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिमे भरी सीताने निर्मलके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिपि किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओंके फूलोंसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अञ्जलिरूपी कमलकी बोझियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि विधानके जाननेमें निपुण थे ऐसे उन सभने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोंमें गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान धीणाको गोदमें रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी वड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया । उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृत्तके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी सींठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अपण्डित, तथा तीन लोकमें प्रसिद्ध 'अर्हन्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है । जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरणसे रहित विरवको दीन समझते हैं हमें साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे वन्दनीय हैं ॥४९-५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यञ्चोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थी, मनोहर वेषभूषासे युक्त थी, हार माला आदिसे अलङ्कृत थी, परम लीलासे सहित थी, स्पष्टरूपसे अभिनय दिगमला रही थी, जिसकी बाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिगल्लानेमें निपुण

लयान्तरवशोरुपिमनोज्ञस्तनमण्डल । निरशब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितीरुका ॥५५॥
 गीतानुगममप्यज्ञसमस्ताद्विचेष्टिता । भन्दरे धारिवानृत्यज्जानरी भक्तिचोदिता ॥५६॥
 उपसर्गादिरुस्ते यातेऽस्त भारुरे तत । सन्ध्याया चानुमार्गेण याताया चलतेजसि ॥५७॥
 नक्षत्रमण्डलालोकं निर्धनं नीलाग्रसन्निभम् । व्याप्नुवान दिश सर्वा गहन ध्वान्तमुद्रतम् ॥५८॥
 जनस्याध्रावि वर्यापि दिक्षु सञ्चोभन परम् । साराविण तथा चित्र भिन्दानमिव पुष्करम् ॥५९॥
 विद्यज्जालामुर्गैर्लभैरमुर्द्व्याप्तमम्बरम् । क्वापि यात इवभोषो लोकछाससमाकुलः ॥६०॥
 भलप्रतिभयाकारा दृष्टालोकुटिलनन । अट्टहासान् महारौद्रान् भूताना सस्रजुर्गणा ॥६१॥
 मध्यादा रिम रेसु सानल चाशिवा शिवा । सस्वसुनंनृतुर्भीम क्लेवरशतानि च ॥६२॥
 मृधोरभुजजङ्घादीन्मृद्वानि वट्टपुर्वना । दुर्गन्धिभि समेतानि स्थूलशोणितविन्दुभि ॥६३॥
 परबालाकरा क्रूरविग्रहा द्रोलितस्तनी । लम्बोष्ठा डाकिनी नग्ना इत्यमानास्थिसञ्चया ॥६४॥
 मासपण्डाभमनारा शिरोधत्तितोषरा । एहाग्रसरोजिह्वा पेशाशोणितवर्णिनी ॥६५॥
 सिंहपद्मामुत्प्रेतसलहचाराभलोचन । शूलहस्तैर्विदष्टोर्दृष्टुदोडुटिलालिकै ॥६६॥
 राक्षसै परपारावैर्गुह्यद्विरतिसङ्कुलम् । कम्पिताद्रिशिलाजाल जुञ्चोम यमुधातलम् ॥६७॥

थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण कमलोंका विन्यास शब्द रहित था, जिसकी एक जोड़ी चल रही थी । जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जितेन्द्रके जन्माभिवेकके समय सुमेरु पर श्री देवीने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे प्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चरुचल तेजकी धारण करनेवाली सध्या भी जन चली गई तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभाजाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम शोभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशकी भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अभभागमें त्रिजलारूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घनघटासे आनाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाढ़ीकी पंक्ति से कुटिल थे, ऐसे भूतोंने मुण्ड महा भयङ्कर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमङ्गल रूप शृगालियों अग्नि डगलती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों क्लेवर भयङ्कर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ा माटी घुँगेसे सहित मस्तक बड़ा स्थूल, भुजा तथा जङ्घा आदि अययोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके गतन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियोंका समूह प्रत्यक्ष दिग्याई दे रहा था, जिसकी फूटी आँखें मासपण्डके समान थीं, जिसने नगमुण्डना मेहरा पहिन रक्ता था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रंधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी टाकिनी दिग्याई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शङ्ख विद्यमान थे, जो आठको टरा रहे थे, जिनके ललाट भीहंसके कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ यहाँका भूतल

१. मुद्राङ्कः, मन्त्र ग०, ३०, म० । २. निम्नरागध्वनय, म० । ३. भिन्तमिव म० । ४. आवाश । ५. इयमेव आत्मा ताममावृत्त म० । ६. अमङ्गलम् । ७. शृगाव ।

विचष्टितमिदं स्थं नानासिद्धा महामुना । तयोहि ज्ञानरूपान्तशुद्धध्यानमय नदा ॥६८॥
 तयाविध तमालोक्त्य वृत्ता-त वरभोतिदम् । सद्यः जानका नृपमारिलप्य-कृपिमा पतिम् ॥६९॥
 पयो जगाद ता देवि मा मेयी शुभमानसम् । उपगुह्य मुने पादौ तिष्ठ रारंभयन्निदुर् ॥७०॥
 'इत्युक्त्वा पादयो कान्ता मुनेरासाव लाज्जय । लक्ष्मीधरकुमारेण साक सद्भाहमाश्रित ॥७१॥
 मञ्जलाविव जामूर्तौ गणितौ तौ महाप्रभौ । निर्घातमिव मुदन्तौ समास्फालयता धनु ॥७२॥
 ततस्तौ सम्भ्रमी जहावा रामनारायणाविनि । सुरो वह्निप्रभाभिरयस्तिरोधानमुपेयित्वा ॥७३॥
 ज्योतिर्वरे गते तस्मिन् समस्त तद्दिचेष्टितम् । सपदि प्रलय जात जात च विमल नभ ॥७४॥
 प्रातिहार्ये कृते तन्म्यामिच्छद्गम्या परम हितम् । उत्पन्न केवलज्ञान मुनिपुद्गवयो जगान् ॥७५॥
 चतुर्विधास्ततो देवा नानाथानममाश्रिता । समाज्जम्बु प्रशस्तन्ता मुदितास्तपस फलम् ॥७६॥
 प्रणम्य विधिता सत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिता-बल्यो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
 केवलज्ञानसंगृह्यतिसमाहृतसुरागमात् । राधादिना मकौ कालावभूत भेदवन्तौ ॥७८॥
 भूमिमोचरिणो मर्यादतया विद्यामहाबला । उपविष्टा यथायोग्य कृत्वा केवलिनो महम् ॥७९॥
 प्रसन्नमानसी सद्य कृत्वा केवलपूजनम् । प्रणम्य सातया म्याक निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥
 अथ तच्छणसम्भूतपरमाहमिनस्थितौ । प्रणम्य साञ्जलि पद्म पप्रक्ष्वैव महामुना ॥८१॥

ज्ञोभको प्राप्त हो गया और परंतकी चट्टाने हिल उठी ॥६६-६७॥ यह सन हो रहा था परन्तु उन महागुनियोको इस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उनका ज्ञानोत्पादक प्रयत्न उस समय अन्तरङ्गमे युक्त ध्यानमग्न था ॥६८॥ अच्छे अच्छे पुरुषोंकी भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ कौपती हुई पतिसे लिपट गई ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभ्रात मत हो । सन प्रकारकी भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणाका आश्रय बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामन साताकी मुनिराजके चरणोंके समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजने वाले मन् महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने अपने धनुष टङ्कैरे सां देसा जान पडा मानो बस ही छोड़ रहे हों ॥७२॥ तदनन्तर ध्ये बलभद्र और नारायण हैं ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घण्टाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी मन्की मन चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गई और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम लक्ष्मणने द्वारा प्रतिहारीका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंकी चणभरमे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनापर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारी निजामके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वहाँ त्रिधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सन देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे गिन्ने हुए देवाका समागम होनेसे रात दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिमोचरी मनुष्य तथा त्रिधाहारी महाबलकी धारण करनेवाले त्रिधाधर-सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य ध्यानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चिन्तने धारक राम लक्ष्मण भी सीताने साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनों पर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१ ज्ञानरूपं = इयदीत्यादिका त्रिया, अन्त आग्यन्तरे इति त्रिषणी पुस्तके । २ इत्युक्त्वा म० ।

१ वज्रपू । ३. ज्योतिरासम् म० । ४ जात म०, क० । ५ रात्रिपुष्पम् । ६. पूजाम् ।

भगवन्तां कृतो जन्तु केनाय वामुपद्रव । अथवा स्वस्थ युवयोरिदं जातं हितं परम् ॥८२॥
 त्रिकालगात्र विश्वं विदन्तापि तौ समम् । गिरं यामूचतु (गिरायामूचतु) साम्यपरिणाममिती क्रमान्
 नगर्यां पद्मिना नामिन् राजा विजयपर्वत । गुणसस्योत्तमक्षेत्रं मामिनी यस्य धारिणी ॥८३॥
 अमृतस्वरसशाश्वत् दूतं शास्त्रविशारदं । राजकर्तव्यकुशलं लोकविद् गुणवत् सल ॥८४॥
 उपयोगेति भाषास्य द्वौ तस्यां कुक्षिमम्भवा । उदितो मुदितारण्यश्च व्यवहारविशारदो ॥८५॥
 असीं दूतोऽन्यदा राजा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवासं सेवितुं सक्तं स्वामिरक्तमतिभृशम् ॥८६॥
 वसुभूतिं समं तेन सखा तद्वत्तज्जावित । निर्गतस्तत्रिषासक्विन्निष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८७॥
 सुप्तं तममिना^१ हत्वा निवृत्ता नगरा^२ पुनः । जनायावेदयत्तेन किलाहं विनिवर्तितं ॥८८॥
 उपयागा जगादैश्च जहि मे तनयावपि । विश्रब्धं यत्नं तिष्ठामि इति शब्धं निवेदितम् ॥८९॥
 स्वरितं चोदितयासीं वृत्तान्तो विनिवेदितः । सा हि तेन समं स्वकथ्या^३ सङ्गं ज्ञातवता पुरा ॥९०॥
 प्राक्षणाया वसुभूतेश्च रतिकार्यसमाप्यया । कथितं तत्तथाभूत् परमाकुलचित्तया ॥९१॥
 वभूव चोदितस्यापि सन्निग्धं विदितं पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनान् स्फुण्डता गतम् ॥९२॥
 ततो रोषपरातेन हतं सन्नुदितेन स । कुण्डिजो म्लेच्छतां प्राप कूरकर्मपरायण ॥९३॥

मुनियोंको नमस्कार कर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ किं हे भगवन् । राज्ञिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि विन्य धर्मिने क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होंने कहा कि—

पद्मिनी नामा नगरीमे राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमे निपुण था, राजकर्तव्यमे कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणामे स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे । ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमे अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो रानीके कार्यमे अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया । वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्त था तथा अमृतस्वर की स्त्रीमे आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरकी तलवारसे मारकर नगरीमे वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे । सासका यह कहना उसकी गहने जान लिया इसलिये उसने यह मन्त्र समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बताया दिया, यथार्थमे वह यह 'सामका वसुभूतिके साथ सगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०-९१॥ वसुभूतिकी रानी रानी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिये उसने यह समाचार उदित की स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ मन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था कि वसुभूतिके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गई ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे मूर्धममे तत्पर रहनेवाला वह कुनाल्लग म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

१ पुरा ३०, ४० । २ गिरया । ३ उतिमुदितनामयेयी । ४ हुरिक्या । ५ निवृत्तिनगरी म० ।

६ २३भया म० । ७ मृत्यु च म० ।

अन्यदा प्रथितं क्षोण्या गणेशो मतिवर्धनः । विहरन् पद्मिनीं प्राप ध्रमण सुमहातपा ॥६५॥
 अनुद्धरेति विरपाता धर्मध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदायिका गणपालिना ॥६६॥
 वसन्ततिलकभिर्ये तजोधाने सुसुन्दरे । सङ्गेन सहितस्तस्यो चतुर्भेदेन सद्गुवि ॥६७॥
 अयोधानस्य सम्भ्रान्ताः पालकाः किङ्करा मृगम् । नृप व्यत्यापयन्नेव भूमिर्न्यस्तपणाय ॥६८॥
 अग्रतो न्युत्तरयुग्न शार्दूलं दृष्टतो नृपः । नदं क शरणं यामो नाथो न सर्वथोदित ॥६९॥
 भट्टा किं किमिति 'मूधे'त्युक्ता नृपतिनागदन् । नाथोद्यानभुव प्राप्य ध्रमणानां गण स्थित ॥७०॥
 यद्येन वारयामोऽस्त शाय भुवमवाप्नुमः । न चेत्ते जायते कोप इति न सङ्को महान् ॥७१॥
 कल्पोद्यानसमरुद्धायमुद्यान ते प्रसादतः । नरेन्द्रकृतमस्मान्निर्गवेर्य वृष्यजनैः ॥७२॥
 नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोतिदुर्गमा । त्रिदशैरपि दिग्बद्धा किमुतास्मादशौर्जनैः ॥७३॥
 मा भैष्ट ततो राजा हृत्वा किङ्करसान्बनम् । उद्यान प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥७४॥
 क्रद्धया च परया युक्तो बन्दिमि हृतनिस्वनः । उद्यानभुवमाम्नादन् प्रतापप्रकटं चिताट् ॥७५॥
 दूदरां च महामागान् वनरेणुममुचितान् । मुक्तियोगवज्रियायुक्तान् प्रशान्तदुदवान् मुनान् ॥७६॥
 प्रतिमावस्थितान् काश्चिन् प्रलम्बितभुगद्वान् । पट्टाष्टमादिभिस्ताम्रैरपवासीर्विरोपितान् ॥७७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसपके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥६५॥ उसी समय धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाली, अति शय श्रेष्ठ और आर्यिकाओंके सघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥६६॥ चतुर्विध सपसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उसी भूमिसे युक्त वसन्त-तिलक नामक उद्यानमें ठहर गये ॥६७॥ तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! हमारा तो सन प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥६८-६९॥ 'भले आदमियों ! क्या ? क्या ??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहने पर किङ्करोंने कहा कि हे नाथ ! मुनियोंका एक सघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥७०॥ यदि इस सघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगो पर नष्टा सफट आ पडा है ॥७१॥ हे राजन् ! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्प कृत उद्यानके समान बना रखा है, उसमें साधारण-पत्तार फलवृक्ष पत्तार नहीं कर सके ॥७२॥ जो सपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥७३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करोंको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यमें युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥७४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, वन्दोजन निसङ्गी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥७५॥ वहाँ जाकर उमने महाभाष्यवान् मुनियोंके दर्शन किये । वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिने योग्य त्रियाओम तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥७६॥ उनमेंसे कितने ही मुनि दोनों भूजाआकोनीचे की ओर लटका कर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा पेला-तेला आदि पठिन उपवासोंसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥७७॥ कितने ही स्वाध्यायमें तत्पर हो ध्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमें

स्वाध्यायनिरानन्द्यान्^१ षडङ्गिमधुरध्वनीन् । तन्निवेशितचेतस्कान् पाणिपादसमाहितान् ॥१०८॥
 अवलोक्य मुनीन्तिथ भग्नगर्वाद्गुरोऽपमवन् । अवतीर्य गङ्गाद् भावी ननाम जयपर्यन्तं ॥१०९॥
 ब्रमेण प्रणमन् साधुनाचार्यं समुपगतं । प्रणम्य पादयोरुच्ये भोगे सद्बुद्धिमुद्वहन् ॥११०॥
 नरप्रधानदांसिस्ते पश्येय शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगास्ताः पादतलस्थिताः ॥१११॥
 जगाद् मुनिमुच्यन्ते का ते मतिरिय तवौ । स्यात्सुतासङ्गतार्त्ता सप्तापरिवर्तिनी ॥११२॥
 करिवालङ्कणान्तचपल ननु जांचितम् । मानुष्यकं च कर्तुंमारसाम्यं विभर्ष्यदः ॥११३॥
 स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह चान्धवै । इति ज्ञात्वा रतिः कार्प्यं चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
 नरप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसङ्कुले । रक्तस्लेष्मादिसरमि प्रभूताशुचिकर्तमे ॥११५॥
 उचितोऽनेकशो जीवो गर्भवासोऽतिसङ्घटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
 त्रिगम्यन्ताशुचि देहं सर्वां शुभनि यानकम् । क्षणधरमत्राण कृत्यन् मोहपूरितम् ॥११७॥
 स्तनसज्जालकमश्लिष्टमतिष्णान्तवमावृतम् । अनेकरोगविहृतं जरानमनुगुप्सितम् ॥११८॥
 पृथ्वीमणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना एतिसम् । तेऽप्यत्रैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति सज्जायते कथम् ॥११९॥
 शराशिमार्थं पृथक्स्मिन् परलोकनवासिनि । 'मुग्ध' प्रशम लोके तिष्ठन्तान्द्रियदस्वयः ॥१२०॥
 रमते जीवमुपतिः क्षुमतिप्रमदावृतः । 'अवस्कन्देन मृत्युस्तु कदर्ययितुमिच्छति ॥१२१॥

चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देख कर राजाका गर्वरूपी अङ्कुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतर कर मुनियोंको नमस्कार किया । राजाका नाम विजयपर्यन्त था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा प्रथम क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं है ? ॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी यह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो मूर्खी है और संसारको घटानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोंके समान चञ्चल है तथा मनुष्यका यह जीतव्य केलेके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और वन्धुजनोंका ममागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इनमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका व्याख्या विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरफके समान है, अत्यन्त भयद्वर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ासे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों धार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसमें कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नमोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे विरा है, अनेक रोगोंसे राखित है, और युद्धपाके आगमनसे निम्नित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचाराविचारकी शक्तिसे रहित उन मनुष्योंका पन्थाण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी वनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जरूरदस्ता लट्टनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोक कर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुतुब्धि रूपी स्त्रीसे घिरकर क्रीड़ा कर रहा है और मृत्यु उसे अचानक ही

१. भ्रमरमनुष्यर्नन् । रत्नान् १०, म० । २. दम् म० । ३. मनुष्याणां म० । ४. ऐश्वर्यं म० । ५. रत्नान् म० । ६. मत्ता शुभ म० । ७. निहित म०, ग० । ८. मुग्धः म०, ज० । ९. अवस्कन्देन म० ।

मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरद्विभ्रमम् । वैराग्यवर्तिना राज्य रोद्धुं जानाद्बुधधित्वा ॥१२२॥
 परस्वारूपसंस्थेषु मिश्राणां लोभमुत्तमम् । अमा इर्ष्याकनुरगा एतमोदमदानवा ॥१२३॥
 शरीररथमुत्तमम् । पातयन्ति कुवर्मसु । चित्तप्रग्रहमयन्त योष्यं कुरत तद्ददम् ॥१२४॥
 नमस्यत जिन भक्त्या स्मरतानारत तथा । मसारम्भागर येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥
 मोहारिण्युक्तं हि वा तप मयमहेतिभिः । लोकाग्रनगर प्राप्य राज्यं कुरुत निर्भया ॥१२६॥
 जैन व्याकरणं धृत्वा सुधाविनयपर्वत । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं यमूत मुनिपुङ्गव ॥१२७॥
 तावपि धातरो तस्मिन् धृत्वा भक्त्या जिनधुतिम् । प्रव्रज्य सुनपोभारां सङ्गतावाप्तुर्महाम् ॥१२८॥
 ३ सम्मदं च प्रव्रजन्तौ ताविष्टनिर्वाणवन्दनौ । कथञ्चिन्मार्गतो अष्टावरण्यानी समाश्रितौ ॥१२९॥
 वसुभूतिचरेण्यपि रौद्रश्लेष्णेन वीक्षितौ । नतिशुद्धेन चाहूतौ गिरानोद्युक्तोरथा ॥१३०॥
 त्रिषासन्त तमालोक्य उवाचानुदितमन्त्रोन् । मा भैषीर्धातवश्च त्वं समाधानं समाश्रय ॥१३१॥
 श्लेष्णेऽप्य हन्तुमुद्युक्तो हरयते नौ दुराकृति । विराभ्यासममृदाया चान्तेरथ विनिश्चय ॥१३२॥
 प्रयुयाच स तं भाति का नौ जिनवचस्ययो । नूनं मूढतयास्माभिरप्ययं प्रापितो वयम् ॥१३३॥
 पुनर्तौ विदितालापां सविचारं समाश्रितौ । प्रत्यान्यान् शरारादं प्रतिमार्योगमायती ॥१३४॥
 समीपता च सन्नासौ श्लेष्णे हन्तुं समुद्यत । आलोक्य देवयोगेन सैन्येन निवारित ॥१३५॥
 राम वप्रवृद्धं तैर्नैनी व्यापादयितुमोत्सितौ । सेनाधिपेन निर्मुक्तां रक्षितौ वन हेतुना ॥१३६॥

हुं यो करना चाहती है ॥१२१॥ विषयोके मार्गमें मद्गोमत्त हाथीके समान दीङ्गता हुआ यह मन हानरूपी अङ्गुराको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुष्पके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महा मोहरूपी वेग को धारणकर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमें गिरा देते हैं, हमलिए मन रूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो ॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जितेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चय पूर्वक संसार सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहरात्रुर्ग्रीवको नष्टकर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो ॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिसे धारण करनेवाला राजा निजवपर्वत निशाळ वैभनका परित्याग कर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥

दूतने पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनराणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्माण क्षेत्रकी वन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअदानीमें जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मारकर उसी अदधीमें पुष्टश्लेष्ण हुआ था, सो उसने देगते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उसका बेटा बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई ! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ हुष्ट आहूतिको धारण करनेवाला यह श्लेष्ण हम दोनोंको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालने अभ्याससे जिस क्षमासे ममद्व बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जितेन्द्र भगवान्के वचनोंमें स्थिर रहनेवाले हम लोगोंको भय किस बातका है ? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार पूर्वक रखे हो गये और शरीर आन्त्रिसे ममता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भोल उनके पास आया परन्तु देवयोगसे भालाके सेनापतिने उसे दैव लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने बैचलोसे पूछा

१. हेतुमि म० । २. व्याख्यान । ३. सम्पाद य० । ४. शीशुपुत्रारथ म० ।

केवस्थास्यान् समुद्भूता भारताति भवान्तरे । सुरप कर्पकुरवास्ता यक्षस्थाने सहादरो ॥१३०॥
 लुब्धकेनाहतो जाव शकुन्तिग्राममन्यदा । ताम्या कार्ण्ययुक्ताभ्या दत्वा मूल्य विमोचित ॥१३१॥
 ततोऽसौ शकुनो मृदा बभूव स्लेच्छभूपति । सुरप कर्पकश्चैतदुदितो मुदितस्तथा ॥१३२॥
 पद्माभवत्तौ यस्मादेवाभ्या रचित पुरा । तस्मात् सेनापतिभूयो ररचास्ताविमौ मुना ॥१३३॥
 लुब्धको जावमोक्षेण वसुभूतिद्विजात्तम । सजातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१३४॥
 यद्यथा निमित्त पूर्वं तद्योग्य जायतेऽधुना । ससारवाससक्ताना जीवाना वतिरीदृशा ॥१३५॥
 किमथातैरिहानर्थाग्र्यैरौशनसादिभि । एकमेव हि कर्तव्य सुकृत सुखकारणम् ॥१३६॥
 नि सृतावुपसर्गात्तौ मुना कर्मानुभावात् । निर्वाणसदन प्राप्तावकाष्टां निनवन्दनाम् ॥१३७॥
 एव सौ चारुधामानि पर्यव्य समय चिरम् । रत्नत्रय समाराज्य मृदा स्वर्गमुपागतौ ॥१३८॥
 निन्द्ययोनिषु पर्यव्य वसुभूति सुकृष्णत । मनुष्यव समासाद्य तापसत्रतमाश्रित ॥१३९॥
 कृत्वा बालतप कष्ट कालधर्मेण सन्नत । अग्निकेतुरिति ख्यात क्रूरो ज्योति सुरोऽभवत् ॥१४०॥
 तथारिभ भरतक्षेत्रे नाम्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यात पुरुभोगोऽत्र पाथिब ॥१४१॥
 महादेव्याबुधे तस्य योषिद्विगुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावयपरोदिता ॥१४२॥
 प्युती तौ सुन्दरी नाकाज्जाती पद्मावतासुती । नाम्ना रत्नरथोऽचरच विचित्ररथसन्नक ॥१४३॥
 उपश कनकाभाया ज्योतिर्देवं परिप्युत । अनुम्बर इति ख्याति गुणैस्ते चावनिं गता ॥१४४॥
 राज्य पुत्रेषु निचिप्य पद्विदमानि जिनालये । कृतसलेखन सम्पक् स्वर्गं वात प्रियव्रत ॥१४५॥

कि भील इन्हें क्या मारना चाहता था और सेनापतिने किस कारणसे छुड़ा कर इनका रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान् के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरमें यह स्थान नामक नगरमें सुरप और कर्पक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसान पक्षीको पकड़ कर उस गाँवमें ले आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्पकने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मर कर स्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्पक मर कर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामें इन दोनोंने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनों मुनियोंकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मर कर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्व भवमें जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । ससारी प्राणियोंकी ऐसी ही वशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्राके पढ़नेसे क्या होता है ? सुप्तके कारणभूत एक पुण्यका ही सचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनों मुनियोंने निर्वाण क्षेत्र—सम्मैदाचल पहुँच कर जिन बन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मर कर दोनों मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक छोटी योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभय को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके त्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तप कर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्योतिर्षा देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राना राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियों थी एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर राना पद्मावतीने रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत रानाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुम्बर नामका पुत्र हुआ । पृथिवी पर आये हुए ताना पुत्र अपने गुणासे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्राके ऊपर राज्य

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्ध्वा रत्नरथेनेष्टा कमलाभाङ्गजेन च ॥१५३॥
 लब्ध्वा रत्नरथेनैषा ततो द्वेपमुपागतः । अनुन्धरो महो तस्य विनाशयितुमुद्यतः ॥१५४॥
 ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्थन्दनेन च । निर्विष्य समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराहृतः ॥१५५॥
 खलीकारास्ततः पूर्वजन्मवैराज्य कोपत । जटावल्लभारो म तापसोऽभूद् विराट्प्रियव्र ॥१५६॥
 मुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरो न प्रबोधिनी । प्रपन्न्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
 तौ महावेजसौ तत्र सुखं प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमद्वरमहोभूतः ॥१५८॥
 उत्पन्नौ विमलाख्यायां महादेव्यां सुसुन्दरी । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीयः कुलभूषण ॥१५९॥
 विद्यार्जनोचितौ तौ च श्रीदन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरद्योपञ्च विद्वान् भ्रातृव्यमुपागतः ॥१६०॥
 राज्ञा च समुद्घातस्य तस्य पार्श्वेऽजिलाः कलाः । शिचिती ताबुदारेण विनयेन समन्विता ॥१६१॥
 स्वजनं नैव तौ कञ्चिज्जाज्ञातस्तद्गतात्मकौ । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं विद्याशालागतं तदा ॥१६२॥
 उपाध्यायेन चानीतौ सुचिरान् पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यी नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥
 आचयोः किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यकाः । आनायिता इति श्रोत्रपथं वार्तां तयोर्गता ॥१६४॥
 ततस्ती वरया सुख्या बाह्यालीं गन्तुमुद्यतौ । चाताप्यनस्थितां कन्यां पुरशोभाभपदयताम् ॥१६५॥
 तत्सङ्गमायमन्योम्य मानसेऽकुरुता वधम् । ततश्च चन्दिनो वज्रादिति शब्दः समुत्थितः ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमें छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमें श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे व्याह कर लिया। इसी पुत्रोको काञ्चनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था। यह द्वेप रत्नरथ उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमें जीत कर तथा पाँच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमान से तथा पूर्वभय सम्बन्धी वैरसे क्रुपित होकर जटा और वल्लकको धारण करनेवाला विपट्टकके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए। सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोंके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँमें च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमद्वरकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए। प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घर पर क्रीडा करते रहते थे। एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रत लिया। उक्तपुत्र विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखीं ॥१६०-१६१॥ दोनों पुत्रोंका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोंको भी नहीं जानते थे। यथार्थमें उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमें ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिर कालके बाद पुत्रोंको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोंको योग्य देस उपाध्यायका यथायोग्य सम्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राजा कन्याएँ बुलवाई हैं यह समाचार उनके कर्ममार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने भरीसेमें बैठौ नगरकी शोभा स्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमें परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया। तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह

साक विमलया दन्वा श्रामान् चैमङ्करो नृप । चिर जयति यस्यैता तनयां त्रिदशोपमां ॥१६७॥
 वातायनस्थितैपाणि कन्यका कमलासवा । जयति आतराजतां यस्याश्चारुणोक्तम् ॥१६८॥
 ततस्तौ तद्गो ज्ञावा सोदर्शपावधारित । वीराम्य परम प्राप्ताविति चिन्तामुपागत ॥१६९॥
 धिगधिगधिगिदम् यन्त पापमस्माभिराहितम् । अहो मादस्य दारुण्य मोदरा येन काशिता ॥१७०॥
 चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्मात्समादृश्यम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेपा त्वयन्तसाहसम् ॥१७१॥
 अमारोऽयमहोऽयन्त ससारो दुःखयूरित । तत्र नामेदशा भावा जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
 कुतोऽयमुपपत्त त्विष चेतनो नरक जनेत् । सन्नाप्य बोधमस्माभि सद्गुरुत्तश्चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥
 इति सञ्चित्य सन्त्यय मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षा देव्यासर्सा श्रितां ॥१७४॥
 नभाविवहृणो लब्धि प्राप्य तौ मुक्तपोषणां । आहिताता जगन्नानानिन्तापार्थिभिर्युजितम् ॥१७५॥
 क्षेमङ्करनरेरास्तु तत्त्वोक्तानलदीपित । युगपत्सकलं त्वयं वाङ्महार् पञ्चममागत ॥१७६॥
 भवादारुण्यं पूर्वोक्तान् स एव हि पितावयो । तेन नौ प्रति वामस्य तस्य नियममुत्तमम् ॥१७७॥
 गरुडाधिपतिधामा जज्ञे रथातो मरुवत् । मुन्दरोद्भुतविस्मिता महालोचनमक्षर ॥१७८॥
 क्षुब्ध स्वासनकम्पेन प्रयुग्वावयिमुचित । आगतोऽयं स्थितो भाति व्यन्तरामरससदि ॥१७९॥
 अनुन्धरस्तु विहरस्तापसाचारतपर । कौमुद्यानगरीं यात शिष्यसङ्घेन वरित ॥१८०॥
 नरेश मुमुक्षुस्तत्र रतवपस्य अभिना । कान्ता शतप्रधानं च प्राप्ता परममुन्दरा ॥१८१॥

राजा क्षेमङ्कर सदा जयन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र हैं ॥१६७॥ तथा भूगोलेमें बैठे यह कमलोल्लसरा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि मुन्दर गुणासे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दाके कहनेसे 'यह हमारी वहिन है' ऐसा जानकर परम वीराम्यको प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो 'हम लोगके द्वारा इच्छित इस भारा पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो 'मोहकी दारुणता देवों कि जिससे हमने वहिन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-भूझकर मदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भार साहस हा कहना चाहिये ॥१७१॥ अहो 'दुःखसे भरा यह ससार मिलकुल ही असार है जिसमें पापा मनुष्योंके ऐसे विचार उपजते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सन्त्ययान और सन्त्यक् चारित्रिको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह उदा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दुःखसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोंने वैगम्यरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपस्वी धनको धारण करनेवाले दोना मुनियाने आकाशगामिनी श्रद्धि प्राप्त कर अगतके नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमङ्कर उस शोकाग्निसे दग्ध हो कर एक साथ समस्त जाहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमङ्कर पहले कहे हुए भयसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिए हम दोनोंने प्रति उसका निरन्तर भारो स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह मरकर भयनरासी देवामें सुपर्ण कुमार जातिके देवोंका अधिपति, प्रसिद्ध, मुन्दर अद्भुत पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनके कम्पित होनेसे क्षुब्धित हो अरधि ज्ञानने द्वारा सत्र जान कर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोंकी सभामें बैठा है ॥१७९॥

उपर तपस्वियोंकी आचार पालन करनेमें तत्पर अनुन्धर, शिष्य समूहने साथ निहाय करता हुआ कौमुदी नगरामें आया ॥१८०॥ यहाँका राजा मुमुक्षु था और रतवती उसकी स्त्री थी

१ भि सद्गुरुत्तश्चित्रमुत्तमम् ० । २ वैगम्यरीम् । ३ जग मान्याजिननाथाभिपूजिताम् ० । ४. दारे म० । ५. मृपुम् । ६ सर्पगारम्भ म० ।

अवन्दा च सचेष्टा मदनेति विलामिनो । पताका मदनेनेव जि वा लोकमुपानिता ॥१८०॥
 मातुदत्तमुने पारये मन्मददर्शनमैन्दवी । तत्राप्येतरतीर्थाणि नृणानुग्रह्यमन्यत ॥१८१॥
 तस्या पुण्ड्र्य रहसि कदाचिद्वदन्पुत्र । अहाऽयौ तापस स्थान महता तपसामिति ॥१८२॥
 ततो मदनयाऽवापि कीदृश्यायेष्टा तप । मित्यादृशामविज्ञानलोकेदम्भनकारिणाम् ॥१८३॥
 तत्रैव भूपतिरतये क्रुद्ध सा चागच्छ पुन । मा न्य परयनायेम मेऽचिरापादप्रतिनम् ॥१८४॥
 इत्युक्त्वा स्तम्भ गवा शिञ्जयिवा मनोहरम् । आमवा नागदत्ताया प्रैषयत्तापसाधमम् ॥१८५॥
 तस्मै सैकान्तयाताय योगम्याय मुविभ्रमा । आन्यितामरकन्धेय परमाकङ्क्षयारिणा ॥१८६॥
 चातेहितामरस्याजात्स्वकाण्डमदर्शयत् । मारस्यात् पुरस्थान लाङ्ग्यरसनिर्भरम् ॥१८७॥
 समाधानोपदेशेन क्रुद्धमद्वेषिभरम् । मारवारणमुम्भाभ तथा वक्षमिज्जद्वयम् ॥१८८॥
 कुसुमग्रहणयाजात् स्वप्ननोविस्तेर्गुदम् । नाभिमण्डलमुत्तेज कचादेश च सुन्दरा ॥१८९॥
 अज्ञानयोगमेतस्य भिवा लोचनमानये । अपतता प्रवर्गेषु तेषु तस्या सुगन्धने ॥१९०॥
 ताडित स्मरवाणैश्च समुथाय समाकुल । गवा शनैरष्टदृष्टा ख वाले कात्र वर्तमे ॥१९१॥
 मन्थाकान्तेऽत्र ये वक्षिन् प्राणिन क्षुद्रका अपि । आल्य न्व निषेवन्ते ननु च मुकुमारिका ॥१९२॥
 नाशोचन्मधुरैर्गैर्भिन्दन्ती हृदयम्यलाम् । लाल्या बाहुल्यकामुद्रयन्ती सुग प्रति ॥१९३॥
 बलहीलेष्टलक्ष्म्याये धारयन्ता विनोषणे । किञ्चिदैन्यमिव प्रासा नुबिस्फुरिताररा ॥१९४॥

जो सैन्डो स्त्रियोंमें प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८०॥ उसी राजाके उत्तम चैष्टाको धारण करने वाली एक मदन नामकी विलामिनी (वेश्या) छाँधी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो ससार की जीत कर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पतङ्का ही हो ॥१८१॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास मन्मददर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्यधर्मोंको ठूँके समान पुण्ड्र मानती थी ॥१८२॥ अधानन्तर किसी दिन राजाने मदनाने सामने कहा कि अहो ! यह तापस महातपोका स्थान है ॥१८३॥ वह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ ! इन मिथ्यामूर्ति, अज्ञानों तथा लोगोंकी टागने वाले लोगोंका तप कैसा ? ॥१८४॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ ! मोक्ष मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोंमें वर्तमान देखिए ॥१८५॥ यह कह कर तथा घर जाकर उमने अपनी नागदत्ता नामका सुन्दरी पुत्रीको सिखा कर उम तापसके आश्रमम भेजा ॥१८६॥ सुन्दर हावभाज और उत्तम वेषभूषाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवक्याने समान जान पड़ती थी । वह पण्डितमें योग लेकर बैठे हुए उम तापसके पास जाकर खड़ी हो गई ॥१८७॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके वहाने उसने कामदेवके अन्त पुरके समान, सी व्यर्थ रससे भरे अपने ऊरु दिखाये ॥१८८॥ समाधानने वहाने केशरके व्रसे पीले तथा कामदेवके गण्डमथलही तुलना धारण करनेवाले क्षोता रत्न प्रकट किये ॥१८९॥ पुण्य ग्रहणने वहाने नीली टीलीपर जघन स्थान दिखाया, देवीप्यमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगले भी दिखालाई ॥१९०॥ उस तापसने नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदन कर उम नागदत्ताके उन-उन प्रदेशों पर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९१॥ तदनन्तर कामने जाणासे ताडित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरेसे उससे पूछने लगा कि हे वाले ! तू कौन है ? और यहाँ कहाँ आई है ? ॥१९२॥ इस मन्थाके समय छाटे मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त मुकुमार है ॥१९३॥ नागदत्ता मधुरगर्भासे उसका हृदयमथल भेदती, लीलापूर्वक मुजलताको सुगन्धी और उपर उठाती, चञ्चल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुल-कुल

शृणु नाथ ! दयाधार ! शरणागतवत्सल ! ! अम्बयाऽहं विना शेषादपि निर्वासिता गृहान् ॥१६७॥
 कायायमावृता चाहं भवदीयामिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नाथानुमोदनात् ॥१६८॥
 शुभ्रपा भवतः कृपा दिवा नक्तं च सत्तया । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च जायते ॥१६९॥
 किं तदभ्यर्थकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्यानां मया पुण्येन वीक्षितं ॥२००॥
 इति सम्भाषिते तस्याः विज्ञाय प्रशुणं मनः । स्मरेण दह्यमानोऽसावब्रवीदिति विचलव ॥२०१॥
 भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसादं त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीव करोमि ते ॥२०२॥
 द्रुपुस्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति सादरा ॥२०३॥
 न चतन्ते इह कर्तुं कन्याहं विधिवर्जिता । पृच्छ मे मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्यतोरणे ॥२०४॥
 परा कारुण्ययुक्तेयं भवतः शमुपां यथा । एतां प्रसादयावश्यं तुभ्यमेपां ददाति माम् ॥२०५॥
 पञ्चमुक्तस्तथा साकं त्वरया व्याकुलकम् । वेरमाविशद्विलासिन्या सवितर्पस्तमागते ॥२०६॥
 'मन्मथाकृष्टनि शेषद्वर्पाकविषयो ह्यसौ । किञ्चिद्देति स्म नोपायं विशन्वारीमिव द्विपः ॥२०७॥
 न शृणोति स्मरप्रस्तोत्रं न जिघ्रति न परयति । न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥२०८॥
 आश्चर्यं मोहय कष्टमनुतापं प्रपद्यते । अन्यो निपतितः कृपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
 वेरयाचरणयोश्चासीत् कृन्वा विलुठितः शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसंज्ञितश्चाविशन्नूपः ॥२१०॥

दीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको चार चार हिलाती हुई बोली ॥१६५-१६६॥ कि हे नाथ !
 हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिधे, आज मेरी माता ने मुझे अपराध के बिना ही
 घर से निकाल दिया है ॥१६७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारण कर आपकी इस वृत्तिका
 आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझ पर प्रसाद कीजिये ॥१६८॥ रात दिन आपकी सेवा
 करने से मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१६९॥ धर्म अर्थ और काम में ऐसा
 कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथों के भाण्डार हैं ।
 पुण्य से ही आपके दर्शन हुए हैं ॥२००॥ इस प्रकार कहने पर उसका मन बशीभूत
 जान काम से जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥
 कि हे भद्रे ! प्रसाद करने के लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तमे ! तुम्हीं मुझ पर
 प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥
 ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करने के लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तर आदर के साथ उसे
 हाथ से रोकती हुई कन्या ने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ
 जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घर में जाकर मेरी माता से पूछो ॥२०४॥ आपकी
 बुद्धि के समान वह परम दया से युक्त है, उसे प्रसन्न करो वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे
 देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ता के कहने पर वह सूर्यास्त के अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ
 उसके साथ वेरया के घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियों के रिपय काम से आकृष्ट हो चुके
 थे, ऐसा वह तापस वारी (वन्धन) में प्रवेश करनेवाले द्वारों के समान बुद्ध भी उपाय नहीं
 जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि काम से प्रसन्न मनुष्य न सुनता है, न सूचता है, न
 देखता है, न दूसरे का स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित हा होता है ॥२०८॥ जिस
 प्रकार अन्ध मनुष्य सौपासे भरे हुए गिरकर पड़ और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार
 यह कामी मनुष्य मोहवश पड़ और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्य की बात है ॥२०९॥
 तदनन्तर वह तापस वेरया के चरणों में शिर मुकावर कन्या की याचना करता है और उसी समय

स्थापितो वन्द्यस्त्विवाङ्मी राज्ञा नरकं समोषितः । खलीकारं प्रभाते च प्रवृत्तं प्रापितः परम् ॥२११॥
 ततोऽपमाननिर्दग्धः परं दुःखं समुद्बहन् । आत्मन् महीं मृनः क्लेशयोनिषु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
 ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्भ्रमं जनादरविवर्जितम् ॥२१३॥
 गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेशं जनको गतः । उद्वेजितः कुटुम्बिन्या कलहकृत्वात्पया ॥२१४॥
 तुमारे च हता माता म्लेच्छेन विप्याहता । दुःखं च परमं प्राप्तः सर्वबन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
 ततस्तापसतां प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारह्य नाम्ना वह्निप्रभोऽभवत् ॥२१६॥
 अनन्तवीर्यनामाथ केवली सेवितः सुरैः । हृत्यन्तेवासिना पृष्टे धर्मचिन्तागतस्मना ॥२१७॥
 मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्योऽनुभविता मन्थो लोकस्थोत्तरकारणम् ॥२१८॥
 सोऽन्योऽप्यसि निर्वीर्य गतेऽत्र भ्रमणचित्तो । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
 भवितारी जगत्सारी केवलज्ञानदर्शितो । यौ समाधाय लोकोऽयं तस्मिन् स्थित भवार्णवम् ॥२२०॥
 सोऽपि बह्निप्रभस्तस्मात्कृत्वा केवलिनो मुपान् । अवस्थानं निजं यातो दृष्ट्वा केवलिनापितम् ॥२२१॥
 भवन्दावधिना ज्ञात्वा योगिनाबहू नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिष्यत्वात्पयं करोम्यहम् ॥२२२॥
 एवमुक्तवाभिमानेन परमेष्ठिनिमोहितः । आगतः पूर्ववरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
 चरमाह्वयं दृष्ट्वा स भवन्तमतिद्रुतम् । सुरेन्द्रकोपभीत्या च तिरोधानमुपागतः ॥२२४॥
 वारायणसमेतेन प्रातिहार्यं त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं घातिपरिचये ॥२२५॥

पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥ राजाने उसे बँधवा कर रात्रिभर रक्षता और सवेरे छान-धीन कर संधेके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्मोंके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दुरिद्रत्वारूपी कौचङ्गमें निमग्न तथा लोगोंके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहनेवाली स्त्रीसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देश पर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गई । इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतपकर ज्योतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्म की चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाभ ! मुनिसुव्रत भगवान्के इस वीर्यमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७-२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे भ्रातृ चलेजानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत्के सारभूत तथा केवल-ज्ञान और दर्शनके धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे २१९-२२०॥ यह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हींके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्यसर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२-२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलमद्र हों और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्मोंका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

इति ग यागतीः ध्रुत्वा प्राणिना वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२२६॥
 महादत्तमिति श्रुत्वा वचन केवलीरितम् । मुहुः सुरामुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२२७॥
 तावच्च गरडापीशः परम सम्पद ध्रितः । नत्वा केवलिनः पादौ शयकजापितालिकः ॥२२८॥
 ऊचे रघुकुलोद्योत विलसन्मणिकुण्डलम् । स्निग्धां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतर्पितमानसः ॥२२९॥
 प्रातिहार्यं कृत येन त्वया मसुतयोः परम् । ततस्तुष्टोऽस्मि यावत्स्व वस्तु यत्तेऽभिरोचते ॥२३०॥
 एण चिन्तागतः स्थित्वा जगाद् रघुनन्दनः । त्वयामुरप्रसन्नेन स्मृतं व्या वयमापदि ॥२३१॥
 साधुसेवाप्रसादेन परमेतदुपागतम् । अर्द्धाकर्तव्यमस्माभिर्मवद्वारविनिर्गतम् ॥२३२॥
 पृथमस्मिन्ति तेनोक्ते दध्नुः शङ्खान् दिवीकसः । भैरवं च भेषधनिन्दाः स्यानुवाचाः समाहताः ॥२३३॥
 माधुपूर्वभर ध्रुत्वा सवेग परम धिताः । प्राक्मज्जुर्जनाः केचिद्वन्द्वेऽणुयतमाधिताः ॥२३४॥

इन्दुचन्दनाचूत्तम्

देशकुलभूषणमुनी नु जगदर्था सर्वभयदुःखमलसङ्गमविमुक्ताः ।
 ग्रामपुरपर्वतमटम्परिगम्यान् यत्रमनुवृत्तमगुणैरपचिन्तितान् ॥२३५॥
 देशकुलभूषणमहामुनिभवे ये वृत्तमतिपूज्यमिदमुत्कटसुभाषाः ।
 श्रोत्रचसो विपयतामुपनयन्ते ते रविनिन्ना दुरितमाशु विष्जन्ति ॥२३६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते देशकुलभूषणोपाख्यानं नामैकोनचत्वारिंशत्तमं परं ॥२३६॥

है ॥२३५॥ इस प्रकार घैर करनेवाले प्राणियोंकी गति आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका घैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२३६॥ इस प्रकार केवली भगवान्के द्वारा उचरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें धार-धार नमस्कार किया ॥२३७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोंके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा । उस समय यह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२३८-२३९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३९॥ राम जगभर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो आपत्तिके समय हम लोगोंका स्मरण करना ॥२४०॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२४१॥ 'येमा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहने पर देवोंने शङ्ख फूँके तथा अनेक प्रकारके वादियोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाई ॥२४२॥ मुनियोंके पूर्वभय सुन कर परम संवेगको प्राप्त हुए कितने ही लोगोंने टीका धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतोंके धारी हुए ॥२४३॥ जगत्के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपों मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्रामपुर पर्वत तथा मटम्पर आदि रमणीय स्थानोंमें विहारकर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२४४॥ गीतम ग्यामों कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अनिगय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे मूर्खके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२४५॥

इम प्रकार आर्यनामने प्रतिद, रविपेणाचार्य स्थित पद्मचरितमें देशभूषण कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालीसवाँ परं गमाप्त हुआ ॥२४५॥

चत्वारिंशत्तमं पर्व

भुजा केवलिन पद्ममयैविग्रहधारिणम् । स्तुवा सज्जनितस्वान प्रणेषु सर्वपाथिवा ॥१॥

वशास्थलपुरशश महाचित्त सुरप्रभ । सलक्ष्मण सपत्न्या पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥

प्रासादशिपरच्छायाधवलकृतपुष्करम् । नाटुणोन्नैगर गन्तु रामो राज्ञापि याचित ॥३॥

वशाद्रिशिखरे रत्ने हिमवत्पुस्तरोपमे । समवेस्तार्णसद्गर्भरमणायशिलातले ॥४॥

नानावृक्षलताकारे नानाशतुजिनादिते । सुगन्धानिलसम्पूर्णं नानापुष्पफलाकुले ॥५॥

पद्मोपलवनाद्याभिर्वापाभिरतिशोभिते । सर्वतुल्यद्वितापुष्पवसतकृतसवन ॥६॥

सज्जिता परमा भूमि शुद्धादर्शतलोपमा । दशार्धवर्णरत्ना कश्चित्तानैकभक्तिका ॥७॥

स्तुतिमुत्कृष्टता वज्रल । कमलानि च । पृथिका मल्लिका नाना अशक्राश्चरपत्न्या ॥८॥

एत चाग्रे च भूयासश्चारमास सुगन्धय । भाकारम्यविलासाभि प्रमदाभि प्रकविता ॥९॥

यद्वा परिकर पुष्पि सुविदग्धै सुसम्भ्रमै । मङ्गलालापसम्प्लै स्वामिभक्तिपरापणै ॥१०॥

मेघकाण्डानि वज्राणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रत्नानि वैषयताशतानि च ॥११॥

त्रिङ्गिणाचालयुक्तानि मुक्तादामशतानि च । चामराणि विचित्राणि लम्पूपमणिपट्टिका ॥१२॥

दर्पणा मुद्गुद्रावल्या विस्तुरङ्गास्कराशय । न्यस्तायेतानि मुद्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥

भवनी पूर्णकलशा स्थापिता विधिसमुता । हस्ता इव निविष्टास्ते विरेकुर्नलिनावन ॥१४॥

अधानन्तर केरली भगवान्के सुरसे रामको चरमशरीर जानकर समस्त राजाआने जयज्यति के साथ स्तुति कर उहे नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वशास्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी की भक्ति की ॥२॥ जो महलाके शिखराका कान्तिसे आकाशकी घबल कर रहा था ऐसे नगरम चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उहाने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणाय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे चीडे अच्छे रङ्गने मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षा और लताआसे व्याप्त था, नाना पत्ता जहाँ शाद कर रहें थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पा और फलोंसे युक्त था, कमल और लपलके वनासे युक्त वापिकाआसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सप्त शतुआये साथ आकर बसन्त शतु निसका सेवा कर रही था, ऐसे वशाधर पर्वतके शिखर पर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार का गई । उस भूमि पर पाँच वर्णकी धूलि से अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावासे रमणाय चैष्टाआका धारण करनेवाला रित्रयाने वहाँ उसी पद्मवर्णका परागसे कुन्द, अतिमुत्कृष्टता, मीलश्री, कमल, जुहा, मालती, नागफेरार और सुन्दर पल्लवासे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुतसे अन्य वृक्ष बनाये ॥८-११॥ चतुर, उत्तम चैष्टाओंके धारक, मङ्गलमय चार्तालापम तत्पर और स्वामि भक्तिम निपुण मनुष्याने वडा तैयारीके साथ नाना चित्राको धारण करनेवाले वादला रङ्गके वस्त्र फैलाये, सैकडा सचन पताकाँ पहनाई ॥१०-११॥ छोटी-छोटी पण्डियासे युक्त सैकडा मोतियोंकी मालाएँ, चित्र विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रहा थीं ऐसे अनेक छाटे-छोटे गोले थे सप्त ऊँचे ऊँचे तोरणा तथा ध्वजाआम लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवी पर

१. चरमशरीरिणम् । २. गगनम् । ३. आवृणात्तर ख० । ४. हिमवत्पुस्तरोपम म० । ५. शृणु म० । ६. सज्जिता म० । ७. सवनानि न्द्राणि म० ।

यत्र यत्र पदभ्यास करोति रघुनन्दन । तत्र तत्रोरुपद्मानि स्थापितानि महीतले ॥१५॥
 शयनान्यासनै साकं रचितानि यतस्तत । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शधराण्यलम् ॥१६॥
 सलघ्नद्विदिताम्बूल प्रवराण्यशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्याभरणानि च ॥१७॥
 सूदगेहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुमेदान्नपूर्णानि कृतयवानि सर्वत ॥१८॥
 गुडेन सपिपा दध्ना भू कचिद् भाति पङ्क्तिः । इति कर्तव्यताभाजा जनेनादुरिणान्विता ॥१९॥
 स्वाहारेण वचिच्छा पथितः स्वेच्छया स्थिता । प्रसादयन्ति विश्रब्धा सङ्घावदगुलमका ॥२०॥
 कचिन्ना शेखरी भाति मदिरामचलोच्चन । कचिन् सीमन्तिनी भक्ता वकुलामोदवाहिनी ॥२१॥
 कचिन्नाड्य कचिद् वात कचिसुकृतसङ्घा । कचिन् कान्ते सम नायौ रमन्ते पारुषिभ्रमा ॥२२॥
 दत्तप्रेङ्गा कचिन् रमेरै सलालैर्विशुण्वै । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वाणगगिरोपमा ॥२३॥
 रामलक्ष्मणयोर्धानि रचितानि ससौतयो । प्राङ्माधामानि कस्तानि नरो वर्णयितु क्षम ॥२४॥
 नानाभूषणयुक्ताहो सुमाह्वयाम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥
 साता चाविलस्यसीमाभ्या दुरितासङ्घवर्जिता । रमन्ते तत्र चेष्टाभिः शास्त्रदृष्टाभिरुज्ज्वलम् ॥२६॥
 तत्र वशगिरी राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चेत्यानि जिनेशाना सहस्रश ॥२७॥
 महावटम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गता । गणाहर्ष्यवलभाप्रभृ याकारशोभिता ॥२८॥
 सतीरगमहाद्वारा सशाला परिखान्विता । सितचारुपताकाभ्या बृहद्वटारवाचिता ॥२९॥

जहाँ तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखते गये थे जो कमलिनीके वनमें बैठे हुए हसंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१५॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ वहाँ पृथिवी तल पर घड़े उड़े कमल रख दिये गये थे ॥१६॥ जहाँ तहाँ मणियों और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुन्दर दायक स्पर्शकी धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१७॥ लग्न आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देवीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ तहाँ रखे गये थे ॥१८॥ जो सत्र ओरसे नाना प्रकारकी भोजन सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गई थीं ॥१९॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड, घी और दहीसे पकिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रहा थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥२०॥ कहीं मधुर आहारसे लृप्त हुए अधिक अपनी इच्छासे घंटे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२१॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामें मूढते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मीलश्रीकी सुगन्धको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२२॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर प्रिलासोंसे सहित स्त्रियों पतियोंके साथ झीड़ा कर रही थीं ॥२३॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान चेर्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२४॥ इस प्रकार सीता सहित रामलक्ष्मणके जो झीडास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२५॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार झीड़ा करते थे ॥२६॥ और अत्यन्त सीमाभ्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओंसे उज्ज्वल झीड़ा करती थी ॥२७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राघव ! उस वंशगिरि पर जगत्से चन्द्र स्वरूप रामने जिनेंद्र भगवान्की हजारों प्रतिमाएँ बनाई थीं ॥२८॥ तथा जिनमें महामज्जत सम्भे लगनाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो भरोसे, महलों तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनमें घड़े-घड़े द्वार तोरणोंमें युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिणामसे सहित थे, सफेद और

भृङ्गवशमुरजमहातोत्तमनिस्त्रना । मर्मरैरानकै शङ्खभेरीभिश्च महारवा ॥३०॥
 सततारव्यधि शेषरम्यवस्तुमहोत्सवा । विरेजुस्तत्र रामाया जिनप्रासादपट्टकतय ॥३१॥
 रेतिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोचनमस्कृता । पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणा सचलचणभूषिता ॥३२॥
 अन्यदाथ महोपालरामो राजाबलोचन । लब्ध्वा रसुवाचेन न्रियते किमत परम् ॥३३॥
 इह मरेरित काल सुखेन परमे गिरी । जिनचैयममुद्याना स्थापिता कातिरुज्ज्वला ॥३४॥
 अनेन भूयता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हता । अत्रैव यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥
 इह तावदल भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न मुञ्चति चणमपि प्रवेशा भोगसन्तति ॥३६॥
 इह यत् न्रियते कर्म तपरत्रोपभुज्यते । पुराकृताना पुण्याना इह सम्पद्यते फलम् ॥३७॥
 अस्माकमत्र वसता रिध्रता सुखसम्पदम् । अमा ये दिवसा यान्ति न तेषा पुनरागम ॥३८॥
 नदीना चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सीमित्रे यद्गत गनमेव तत् ॥३९॥
 नृणा कर्णवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । भूयते दण्डकारण्य दुर्गम तिमिचारिभि ॥४०॥
 भारता न विशयाणा स्रिगम् ननपशोन्मिन । तत्रार्णवतट भिन्ना बिदुष्म क्वचिदात्ययम् ॥४१॥
 यदाज्ञापयसायुक्ते कुमारेण ससम्भ्रमम् । सुरेन्द्रसदृश भोग मुक्त्वा ते निर्गतास्त्रय ॥४२॥
 अनुगत्य सुदूर तां बलोपेत सुरप्रम । वृष्णात्रिवनितस्ताम्या शोभा पुरमुवागत ॥४३॥

सुन्दर पताकाओंसे युक्त थे, बड़े बड़े घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बोंसुरी और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो मोंमा, नगाडो, शङ्खा और भेरियाके शब्दसे अत्यन्त आदायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके वनत्राये जिनमन्दिरोंकी पक्कियाँ उस पर्वत पर जहाँ तहाँ सुशोभित हो रहा थीं ॥३८-३९॥ उन मन्दिरांमें सत्र लोगोंके द्वारा नमस्कृत तथा सत्र प्रकारके लक्षणांसे युक्त पञ्चवर्णनी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३९॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३९॥ इस उत्तम पर्वत पर समयसुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिराके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३९॥ इस राजाकी सैकड़ा प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके घशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो सकलपत कार्य नष्ट होता है ॥४०॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगांसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगाकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३९॥ जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥४०॥ यहाँ रहते तथा सुख सम्पदाकी धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥४०॥ हे लक्ष्मण ! तब वेगसे बहनेवाली नदियाँ, आयुके दिन और यौवनका जो अश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥४०॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशांसे रहित उस वनमें भरतका आज्ञाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर वनावेगे ॥४१॥ 'जो आता हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४१॥ वशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हे पहुँचानेके लिए गया । राम लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे लौटा सके । तदनन्तर शोककी धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापिस आया ॥४२॥

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्ग परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो बहुधानुसानुः ।
 विलम्पतीभिः ककुभा समूह भासार्चकाञ्जैनगृहाचरौभिः ॥४३॥
 रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेरमानि विधापितानि ।
 निर्नष्टवशाद्विचित्रा म तस्माद्विप्रभो रामगिरि प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यान नाम चत्वारिंशत्तम पर्व ॥४०॥

इधर जिसकी मेरलाले शोभासे सम्पन्न थी, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिप्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी एकिके अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला यह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनसारीं श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदक्षु दक्षिणाम्बोधिमायाता 'सुखभागिनौ' ॥१॥
 पुरग्रामसमाक्रोशानतीत्य विषयान् वहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्यं नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
 यस्मिन्न विद्यते पन्थाः स्थानं नार्येनिपेक्षितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चर यधगाकुलम् ॥३॥
 नानावृक्षलताशीर्षं महाविषमगङ्गायम् । गुहाग्वकारगम्भीरं बहुस्फिर्नर्मनम् ॥४॥
 नौश क्रोश शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकावशात् । निर्मयीं ब्राडनोषुको प्राप्ती कर्णरवा नदीम् ॥५॥
 यस्यास्तटानि रम्याणि गृण्युर्गुणानि भूरिभिः 'समाध्यावतदेशानि स्पर्शं विभ्रति सौख्यदम्' ॥६॥
 अनत्युच्चैर्गगनध्वारैः फल्गुपुष्पविभूषितैः । रेजुस्तन्तुमैस्तस्याः समापधरणाधराः ॥७॥
 वनमेतदलं चारुं नदी चेति निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरङ्गायेऽवस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
 क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकनान्यवगाह्य च । जलावगाहनं वक्षुस्ते रम्यजालयोचितम् ॥९॥
 ततो मृष्टानि पत्रवानि फलानि कुसुमानि च । यथेष्टमुपभुङ्क्षुर्वा तैः सुखं कृतसङ्कथं ॥१०॥
 तत्र भाण्डोपकरणं सकलं वेकयोसुत । मृदावशैः पलाशैश्च विविधैरायुः निर्ममे ॥११॥
 अमीषु स्वाद्वारुणि फलानि सुरमानि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्रौ समस्करोन् ॥१२॥
 अन्यदातिथिवेलायां गगनाद्गणवारिणो । प्रभापटलसंवातविप्रहो चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र तटपरनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पारकर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सपन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चढना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विषम गतं थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गंभीर जान पड़ता था, और जहाँ भरने तथा अनेक नदियों वह रही थी ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकोंके कारण धीरे धीरे एक कोरा ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रोडा करनेमें व्ययत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीमें पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी मृगोंसे व्याप्त, समान, लम्बे चीड़े और सुपकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षांसे सुशोभित थे जो व्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचार कर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीडाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीडा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुपकारी कथा करते हुए उन सजने वनमें पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारका मिट्टी, बाँस तथा पत्तोंसे सत्र प्रकारके वर्तन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सत्र वर्तनोंमें राजपुत्रों सीताने रत्नादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानने भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आवे हुए सुगुप्ति और गुप्ति

ज्ञानप्रितयसम्पत्ता महाव्रतपरिग्रही । परेण तपसा युक्ती दुष्टदुहामुक्तमानसौ ॥१३॥
 मासोपवासिनो धारो गुण्यो शुभसमाहितो । यच्छ्रुत्वा नयनानन्दं बुधचन्द्रमसाविव ॥१४॥
 मुना सुगुप्तिसुसारथावाधान्तौ सम्मुख भुव^२ । यथोक्ताचारसम्पत्तौ सहसा मोतयेचितो ॥१५॥
 तत प्रमदसम्भारविकसन्नेव^३ शोभया । दयिताय तया उपातमिति रोमाञ्जिताङ्गया ॥१६॥
 पश्य पश्य नरश्रेष्ठ । तपसा कृशविग्रहम् । दैगम्पर परिध्रान्त भद्रन्तयुगल शुभम् ॥१७॥
 क तत् ष त्ति प्रिये साध्वि पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगल दृष्ट भवत्वा गुणमण्डने ॥१८॥
 यज्ञिरीष्य वरारोहे सुचिर पापमजितम् । ज्ञानात् प्रणाशमायाति जनाना भक्तचेतसाम् ॥२०॥
 इ पुके रघुचन्द्रेण मातोवाच भयमग्रमा । इमात्रिमाविति प्रीत्या ॥ तदाम्भून् समाकुल ॥२१॥
 ततो युगमितशोणोदेशविन्यस्तलोचनौ । मुना प्रशान्तगमनी सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
 अभ्युत्थानाभियानाभिसुष्टं प्रणमनादिभि । दम्पताभ्या कृतावेत्ती पुण्यनिर्भरपर्वती ॥२३॥
 शुभपद्मया च वेदेष्टा महाश्रद्धापरातया । परिविष्ट तयो श्राद्ध रमणेन समेतया ॥२४॥
 गवामरथयज्ञाताना महिषाणा च चारगा । ह्येवज्ञवीनमिश्रेण पयसा त समुद्भूते ॥२५॥
 खर्जूरैरिन्द्राग्रैर्नालिकेरै रसान्वितै । बदराग्लताकाष्ठैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितै ॥२६॥
 आहार्यैर्विविधै शालादृष्टिशुद्धिसमन्वितै । पात्राणा चक्रनुगुह्यासम्बन्धोक्तिस्तचेतसो ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशाङ्गणमें विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति श्रुत अग्रधि इन तीन ज्ञानोसे सहित थे, महाश्रुताके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाआसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर धीर थे, गुणासे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रभाके समान नेत्राको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ । देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो ॥१७-१८॥ रामने सभ्रममें पड़ कर कहा कि हे प्रिये । हे साध्वि । हे पण्डिते । हे सुन्दरदर्शने । हे गुणमण्डने । तुमने निर्ग्रन्थमुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दरि । भक्त मनुष्योंका चिरसञ्चित पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहने पर सीताने सभ्रम पूर्वक कहा कि ये हैं, ये हैं^१ । उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी नृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्ति पूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर सड़े होना, समुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपा निर्भरके मरानेके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनसे उत्पन्न हुई गायों और भैंसोंके ताजे और मनोहर दूध, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इन्द्र, आम, नारियल, रसदार बेर तथा मिलाया आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शालोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा

१ नग म० । २ युवा म०, स्त्र० । ३ विकशत्रेण म० । ४ यानाभिलुप्त प्रणयनादिभि म०, यानाभिलुप्ति प्रणयनादिभि २० । ५ भाजन । ६ दृष्टिवाटिता म० ।

एव च पयुपास्येती मुनी राम प्रियान्वित । समस्तभावसम्भारकृतनिग्रन्थमानन ॥२८॥
 तावद्दुन्दुभयो नेदुर्गगनेऽष्टताडिता । ववी समीरण स्वेर प्राणरञ्जनकारणम् ॥२९॥
 साधु साध्वित देवाना मयुरो निस्त्रनोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णानि कुसुमानि नभस्तलम् ॥३०॥
 पात्रदानानुभावेन दिव्य सङ्कलणिका । पूर्यन्ता नभोऽपसद्मुखा महाधृति ॥३१॥
 अथात्रै वनादेशे गहनस्य महातरो । निपण्णाऽग्रे महागृध्र स्वेच्छयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
 त एषातिशयोपेतो मुनी कर्मानुभावेन । बहुना ममवान् स्मृत्वा तत्तद्वैमचितयत् ॥३३॥
 मनुष्यभावमुक्तर प्रसत्तेन मया पुरा । विवेकितापि न हृत तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥
 भाव प्रसत्पत्ने किं स्वमधुना पुपचेष्टित । कमुपाय करोम्येता कुत्सिता योनिमागत ॥३५॥
 अनुकूलारिभि पार्ष्णिमित्रशर्द्धनधारिभि । प्रेरितेन सता त्यक्त धर्मेण सदा मया ॥३६॥
 सुभूरिचरित पापमपकर्ष्य गुरुद्वितम् । मोहध्वान्तपरातेन द्रष्टे यदधुना स्मरन् ॥३७॥
 न किञ्चिद् बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे होके विद्यते नु त्वमह्ये ॥३८॥
 पूर्वी प्रयासि शरण साधू सर्वमुत्तावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्ति सङ्गाते ध्रुवम् ॥३९॥
 इति पूर्वैर्भवेष्यामान् परम शोकमागत । दर्शनाय महासाधो प्रमोद स्वरयान्वित ॥४०॥
 विधूय पद्मयुगलमधुसङ्गुणलाभन । पदात शाखिनो मूर्ध्नं प्रध्यायान्वितविभ्रम ॥४१॥
 नागा सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महत्तमुना । विदुर्नुरय दुष्ट कथं नु न रराधम ॥४२॥

की । उन मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२८॥ इस प्रकार समस्त भानोसे मुनियोंका सम्मान करनेवाले राम इन दाना मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उता समय आनाशने अष्टजनोसे ताडित दुन्दुभि बाजे बजने लगे, प्राण इन्द्रियकी प्रसन्न करनेवाली बाधु धीरे धीरे बहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पोंच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशकी व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रङ्गोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर उनके इसी स्थानमें सघन महागृध्रके अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा था ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोना मुनिराजोको देखकर कर्मादयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भय स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्ण पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भयमें करने योग्य उपश्रवण नहीं किया अत मुम अविवेकीका धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अब क्यों सताप कर रहा है ? इस समय तो इस हुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंमें निमग्न हूँ अत क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र सहाकों चारण करनेवाले तथा अनुद्वलता दिखानेवाले पापी धैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अ-धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि तु लोगोंका चय करनेके लिए लोभमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंका सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभयका स्मरण होनेसे जो परम शोककी प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शाप्रतासे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, पत्र रिजयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पक्ष पङ्कडारक प्रसन्न शिगरसे नीचे आया ॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक

हा मात पश्यतामुष्य धाम्ब्यं गृध्रस्य पापिन चिन्तयिष्येति वैदेह्या कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
 वार्यमाणोऽपि यनेन कृतनिष्ठुरश दया । मुनिपादोदक पत्रा सोत्साह पातुमुद्यत ॥४४॥
 पादादृक्प्रभाशेन शरार तस्य त चणम् । र नराशिसम जात परात चित्रतेजसा ॥४५॥
 जार्ता हेमप्रभौ पक्षौ पादौ वैदूर्यसन्निभौ । नानार नक्षत्रविदेहश्चन्द्रविद्रुमविभ्रमा ॥४६॥
 तत स्वमन्यथाभूतमवलोक्य सुमम्भद । विमुञ्च-मधुर नाद नतितु स समुद्यत ॥४७॥
 देवदुन्दुभिनादाऽप्यावेव तस्यातिदुन्दुरम् । आतोद्यत्य परिप्राप्त स्वां च वाणीं सुतेजस ॥४८॥
 मुञ्चन्नानन्दनयामभ्रकाटस्य गुरुद्वयम् । शुशुभे कृतवृत्तोऽप्यो शिखा मेवागमे यथा ॥४९॥
 विधिना पारणा कृत्वा मुना कृतयथोचितौ । वैदूर्यसदृशे राजन्तुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥
 पद्मरागाभनेयश्च पक्षा सङ्कुचितच्छदः । प्रणम्य पादयो साधो सुख तस्थौ कृताञ्जलि ॥५१॥
 क्षणादग्निमिशालोक्ष्य ज्वलन्त तेजसा खगम् । पक्षो विकचपद्माक्ष्य विस्मय परम गत ॥५२॥
 प्रणम्य पादयो साधु गुणशालविभूषणम् । अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
 भगवन्मयमत्यन्त विरूपावयव पुरा । कथ क्षणेन सज्जातो हेमर नचयच्छब्द ॥५४॥
 अशुचि सर्वमासाशो गृध्राऽय दुष्टमानस । निषद्य पादयो शान्तस्तव कल्पादवस्थित ॥५५॥
 सुगुप्तिमणोऽवोचद् राजन् पूर्वमिहाभवन् । देशो जनपदाकार्णौ त्रिषय सुन्दरो महान् ॥५६॥

बड़े बड़े जन्तु तो भाग गये पर यह ठुप्र नीच पक्षी क्या नहीं भागा । हा मात । इस पापी गृध्रका धृष्टता तो देखो, इस प्रकार निचार कर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा चित्तने फटोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी साताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह बड़े उत्साहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४३-४३॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४४॥ उसके दोनों पहलू सुवर्णके समान हो गये, पैर नाल मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नाकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच मूंगाके समान दिखने लगी ॥४५॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥ उस समय जो वेष दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४७-४८॥ दोनों मुनियोंको प्रदक्षिणा देकर हर्षाशुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गीतम स्नामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणकर वैदूर्यमणिके समान जो शिलातल था उस पर धिराज मान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भा अपने पक्ष सङ्कुचित कर तथा मुनिराजके चरणोम प्रणाम कर अञ्जली बोंध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम, क्षण भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार बार नेत्र डालकर तथा गुग्गु और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोम नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण भरमें सुवर्ण तथा रत्न राशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया ? ॥५३-५४॥ महा अपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है ? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन् ! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

पत्तनग्रामसंवाहमदम्बपुटभेदनैः । घोऽद्रोणमुखाद्यैश्च सन्निवेशैर्विराजितः ॥५७॥
 कर्णकुण्डलनामात्र पुरमाभीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयममूढाजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥
 चण्डविक्कमसम्पन्नो भग्नशाश्वकण्टकः । दण्डो मानमयः रथासो दण्डसो नाम साधनी ॥५९॥
 धृतायिना जल तेन गथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन घृतः पापागमो धिया ॥६०॥
 देवी मस्करिणा तस्य वैरिवस्था परामवत् । तेषामसावर्थाद्येन सम्मोग समुपागतः ॥६१॥
 सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशामाश्रयत् । खांचित्तहरणोद्युक्तः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥
 निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरोक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानमरुद्भमानसः ॥६३॥
 कृष्णमर्षो मृतस्तस्य अग्निधातो विपलाहवा । कण्ठे निधापितस्तेन प्रावदार्णवेतसा ॥६४॥
 यावद्देवोऽप्यनातो न प्रदानुर्मम केनचित् । तावच्च सहरेद्योगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥
 अर्ताते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्मना । निष्क्रामन् पार्थिवोऽपश्यत्तद्वक्ष्य महासुनिम् ॥६६॥
 मनुजैव च रूपेण रावा निकटतां भृशम् । अग्रज्जदपनेतार किमेतदिति सोऽब्रह्मन् ॥६७॥
 नरेन्द्र परम केनापि नरकावासमागिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥
 यस्य सर्पस्य सम्पर्काद् विग्रहस्य समुद्गातम् । प्रतिबिम्बं शितिक्षिप्तं दुर्दर्शमतिभीषणम् ॥६९॥
 मुनि नि प्रतिकर्माणं द्रष्टुं शक्तः तथोविधम् । प्रणम्याश्चमयच्छातास्ते च स्थान यथोचितम् ॥७०॥
 ततः प्रवृत्तिं सज्जोऽर्सा कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरन्तरमुक्ताङ्गाणां वारिवोपद्रवक्षि ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मदम्ब, पुटभेदन, घोप और द्रोण मुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था । यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कंटकांको भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन ! धर्मको श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपीपक शस्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परित्राजकी थी बड़ी गक्त थी क्योंकि परित्राजकांके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके यशोभूत था इसलिये यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं ? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला यहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रूका हुआ था ॥६३॥ पापागके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विषमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला सोंप डलवा दिया ॥६४॥ 'जब तक इस सोंपको कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योगकी संतुष्टि नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थान पर पड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियों व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महा-मुनिकी उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे सोंप अलग कर रहा था । राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और सोंप निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है ?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन् ! देखो, नरककी रोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ मुनिराजके गलेमें सोंप डाल रक्खा है ॥६७-६८॥ जिस सोंपके संपर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, रोदरिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयङ्कर हो गई है ॥६९॥ बुद्ध भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा राजाने प्रणाम कर उनमें क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समय से राजा दिगम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव-

देवाविष्टपरित्राज्ञा^१ ज्ञात्वान्यविषय नृपम् । इदं क्रोधपरितेन विधातुमभिवाञ्छितम् ॥७२॥
जीवितस्नेहमृत्युञ्जय परदुःखाहितमव । निर्मन्थरूपमृद्देव्याः सम्पर्कममजत् पुन ॥७३॥
ज्ञात्वा तद्दीदृश कर्म राज्ञानिक्रोधमीयुषा । अमा-न्याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्मन्थनिन्दनम् ॥७४॥
क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरित भ्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिर्णीदने भरान् ॥७५॥
गणाविषममेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम् । यन्त्रनिर्णीदनेर्नैतः पञ्चतां पापकर्मणाम् ॥७६॥
बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरेकः समाव्रजन् । इत्यवार्थं लोकेन केनचित् कण्णावता ॥७७॥
भो भो निर्मन्थ मागास्त्व पृथेनैर्ग्रन्थमाश्रयन् । यन्त्रेणापीठ्यसे तत्र द्रुत कुरु पलायनम् ॥७८॥
यन्त्रेण भ्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पोडिताः । मागास्त्वमप्यवस्था तां रक्ष धर्माश्रय वपु ॥७९॥
ततः क्षणमसौ सहसृत्युदुःखेन शल्यितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तस्यावस्थितचेतनः ॥८०॥
अधास्य शतदुःखेन प्रेरित क्षमगह्वरात् । निरम्बरमहीध्रस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥
रक्षाशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ॥८२॥
कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदयिन्द्वो जाताः प्रतिबिम्बितविष्टपाः ॥८३॥
ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिल पृथुः । हाकारेण मुखात्तस्य निरगात् पावकध्वजः^३ ॥८४॥
अनुलग्नश्च तस्याग्निरुज्जगाम निरन्तरम् । कृत नभस्तल येन निर्गन्धनिर्वीर्यपितम् ॥८५॥

कष्ट दूर कर दिये ॥७१॥ रानोके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीधनका स्नेह छोड़ निर्मन्थ मुनिका रूप धर रानोके साथ संपर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ । मन्त्रों आदि अपने उपदेशमें निर्मन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें भूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानोमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानोमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लीटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे । उन्हें किसी वयालु मनुष्यने यह कह कर रोका कि हे निर्मन्थ ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी ! तुम अपने पहलेका निर्मन्थवेप धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानोमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७-७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्मन्थ मुनियोंको घानोमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त सघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षणभरके लिए व्रजके स्तम्भकी नोंई अकम्प—निश्चल हो गये । उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गई थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत ? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्मन्थ मुनि रूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानी उसमें संध्या ही व्याप्त हो गई हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आईं और उनमें लोकरा प्रतिबिम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्द का उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्नि के समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईन्धनके बिना

उत्क्राभितुं जगद्भ्यास्त ज्योतिर्देवा पतन्ति तु । महाप्रलयकाले तु बद्धिदेवा तु रागिनि ॥८६॥
 हा हा मात क्रियेतन्नु तपोऽयमतिदुस्मह । चधुरग्राह्यते दीर्घमदशैरिव वेगिभि ॥८७॥
 मूर्तिनिर्मुक्तमेतन्नद्वयं कुस्ते ध्वनिम् । वशारण्यमिषोदास जाविताकर्षणोचितम् ॥८८॥
 यादृक् ध्वनिर्लोकं वनेतं स्यन्तमाकुल । बद्धिस्तत्तद्वद्वयं देशमनयद् अश्मरोपताम् ॥८९॥
 मान्तं पुर न देशो न पुराणि न च पर्वता । न नद्यो नाप्यस्थानि तदा न प्रागधारिण ॥९०॥
 महामपेगयुक्तेन मुनिना चिरमर्जितम् । क्रोधाग्निनाग्निर दग्ध तपोऽन्यत् त्रिभु शिष्यताम् ॥९१॥
 यतोऽथ दण्डको देश आसीद्दण्डपाणित्र । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डक वरिकीर्णते ॥९२॥
 काले महत्पतिप्रान्ते प्राप्ताया चारुता सुवि । पुनेऽत्र पादपा जाता परंताश्च सनिग्मगा ॥९३॥
 मुनेस्तस्य प्रभाज्येन सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतद्भूत् कैव वार्ता त्रिधाबलाभिताम् ॥९४॥
 पश्चाद्विज्ञ समाकर्णं सिन्धेव गरभाद्रिभि । नानाशकुनिवृन्दैश्च सख्यभेदैश्च भूरिभि ॥९५॥
 अद्याप्यस्योद्दृष्टस्य ध्रुवा शब्द पर भयम् । वज्रन्ति मानवा कथं वृत्तान्ते तु निक्षीपिन ॥९६॥
 ससारोऽतिविर भ्रान्त्वा दण्डको दुःखरितः । भयं गृध्रवमायातो वनेऽत्र रतिमागत ॥९७॥
 दृष्ट्वा सातिशयाज्येन नै वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्वा प्राप्त पूर्वैः ससृजितम् ॥९८॥
 योऽसी परमया शक्त्या युक्तोऽभूदण्डको नृप । सोऽथ परवत सज्जान कंदाश पापकर्मभि ॥९९॥
 इति विज्ञाप विरस फल कटुककर्मण । कथं न सज्यते धर्मे दुरिताश्च विरज्यते ॥१००॥

ही समस्त आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८६॥ क्या यह लोक वल्काओंसे व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त है, ऐसा लगता है जैसे घेगशाली बड़ी-बड़ी सड़ाशियोंसे नेत्र उग्राये जा रहे हो, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोंके स्वीचनेमें उद्यत बोंसोरा वन ही जल रहा है' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जन तक लोकमें गूँजता है तब तक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६-८८॥ उस समय न अन्त पुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियाँ, न जङ्गल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥८९॥ महान् सवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप सञ्चित कर रखा था यह सनका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी पत्थरों तो बचती ही कैसे ? ॥९०॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९१॥ बहुत समय के बाद वनेके वानरों को भी कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियाँ दिखाई देने लगी हैं ॥९२॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरीकी तो बात ही क्या है ? ॥९३॥ आगे चल कर यह वन सिंह अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जङ्गली धान्योंसे युक्त हो गया ॥९४॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दाजानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९५॥ राजा दण्डक बहुत समय तक ससारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रपर्यायको प्राण हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९६॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभयके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९७॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है ? ॥९८॥ इस प्रकार पाप कर्मका नीरस फल जान कर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाय और पापसे क्यों नहीं

दृष्टान्त परकायोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्माय किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
 पक्षिणः सयतोऽग्रादीन्मा भैरारधुना द्विज । मा रोदार्थं यथा भाव्य क करोति तदन्यथा ॥१०२॥
 आश्वास गच्छ विश्रन्ध कम्प मुञ्च सुखा भव । परम धेयमरण्यानी क राम सीतयान्वित ॥१०३॥
 अवग्रहोऽस्मदीय क क त्वमामार्थसङ्गत । प्रबुद्धा दुःखसम्बोध कर्मणाभिदर्माहितम् ॥१०४॥
 इदं कर्म विचित्रवाद् विचित्र परम जगत् । अनुभूतं श्रुतं दृष्टं यथेव प्रब्रह्मयहम् ॥१०५॥
 पक्षिणः प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाभूतं च सारिणः । सुगुहिरवदत् स्वस्य सुगुप्ते शमकारणम् ॥१०६॥
 अचलो नाम विख्यातो वाराणस्या महापति । गिरिदेवीति ज्ञायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
 त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनाम्नान्यदा मुनि । पारणार्थं गृहं तस्या प्रविष्टं शुद्धचेष्टित ॥१०८॥
 स तया परमा श्रद्धा दत्त्वा विजिपूषिकाम् । उषित परमाश्वेन स्वयं व्यापारमुत्तमा ॥१०९॥
 समाप्ताशनकृत् यच्च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
 नाथ सातिशयाऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं प्रियता निश्चयापणम् ॥१११॥
 बधोगुप्तिं ततो भित्वा राज्ञीभवचनुरोधत । तस्याश्चारसमादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
 त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य समादेशोऽनयत् सुता । जाता सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्यां तौ तत् कृतौ ॥११३॥
 तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारशायमन्विता । तिष्ठन्ता विविधैर्भावे रममाणौ जनप्रियो ॥११४॥
 वृत्तान्तोऽयं च सञ्जातो गन्धर्वतया महापते । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

निरक्त हुआ जाय ? ॥१००॥ दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥

रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कीन कर सकता है ? ॥१००॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कपकपी छोड़ो, सुग्री होओ, देखो यह महा अटवी कहीं ? और सीता सहित राम कहीं ? ॥१०३॥ हमारा पड़गाहन कहीं ? और आत्म कल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहीं ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह ससार अत्यन्त विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी एक दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधि पूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरि देवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हे सतुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक मुकाकर किसी दूसरेके बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिये ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तिकी तोडकर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भागोंसे रमण करते तथा लोगोंकी अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामका

सुरेन्द्रनिनेनुग्रह तथो^१ प्रीतिरनुत्तमा । सुरेन्द्रन्यदा चानूय हृत्पदापरिपद ॥११९॥
 भाग्योत्पन्ना भ्रात्रो वृथक् शयनमेतथा । त्रियो जाययात्रयमिति दुःखमुत्पन्न ॥१२०॥
 सुरेनु प्रतिपुत्र^२ मन् शुभकर्मोन्मुभाजन । अनन्तर्योपवादान्ते भ्रमगण समधिग^३ ॥१२१॥
 भक्तिरनुत्तियोगेन भ्रातृगण्यस्तदु गित । वारागत्यामभूदुष्प्रनारयो धर्मविनया ॥१२२॥
 भुत्वा चैवविध त च भ्रातर स्नेहयन्धन । प्रतिघोरयितु वाच्यन् सुरेनुगन्तुमुपन ॥१२३॥
 न मजन् गुदगावावि सुरेनो कथयिष्यति । कृत्वात्त मोदरायेम येनामातृपगमयति ॥१२४॥
 कोऽर्मा नाथेति तेनोने गुरवेवमुदाहरत् । करिष्यति तया माच न तर्प^४ दुष्माजन ॥१२५॥
 युवयो. कुर्यतोर्जवर जाह्नवीमागमिष्यति । चादकन्या सम आभिन्तगृभिगीरविपदा ॥१२६॥
 द्वित्रमस्य गते यामे विविप्रोशुकधारिणो । एभिभिद्वैविदिवा ता भागिन्यमिद तया ॥१२७॥
 दृष्टा ता वक्ष्यमांश्च स्व ज्ञान चेद्विनि ते मने । यद्विद्या^५ तुमायां किं भविनेति शुभागुपमम् ॥१२८॥
 भजानोऽर्मा विष्णु मस्तापसम्या भविष्यति । भजान् जानातिनि त्व चक्षयस्येव मुनिभित ॥१२९॥
 अरुपत्र प्रवरो नाम^६ वणिज सम्पदान्वित । तस्येव दुहिता भाग्या रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१३०॥
 मृतायेऽर्हान पश्यन् वराकीय प्रपश्यने । सतोऽज्ञा कम्बरप्राप्ते विष्णामस्य भविष्यति ॥१३१॥
 धृक्केन मारिता मेरी अहिनी च तत पितु । मानुष्य विष्णामस्य भविष्यति शरारता ॥१३२॥
 एवमस्तिरति सगन्ध प्रणय प्रसशी गुरुम् । सुरेनु अमल प्राप्त्यनापमानो निदेनरम् ॥१३३॥

पुरोहित था वसती श्रीके सुरेनु और अग्निरेनु नामरे दो पुत्र थे । उन दोनों ही पुरोहिते अन्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होने पर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे । समय पाकर सुरेनुका विवाह हो गया । जन स्त्री घर आई तब सुरेनु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस छोटे द्वारा अब हम दोनों भाइयोंकी शय्या जुड़ी-जुड़ी की जा रही है ॥११५-११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभाजसे प्रतिनोधको प्राप्त हो सुरेनु अनन्तर्योप मुनिके पास स्त्रीव्रत हो गया ॥११८॥ भाईके जियोगसे अग्निरेनु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेको भाजनामे वाराणसीमे उम तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमे बंधे सुरेनुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरने उससे कहा कि हे सुरेनु ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे यह शीघ्र ही उपशान्त हो जायगा ॥१२१॥ 'हे माथ ! यह कीन सा वृत्तान्त है' ? इस प्रकार सुरेनुके कहने पर गुरने कहा कि दुष्ट भायनाको धारणा करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारणा करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोंके साथ गङ्गा आवेगी । वह दिनके पिछले प्रहरमे आवेगी तथा विभिन्न वस्त्रको धारण कर रही होगी । इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममे कुछ ज्ञान है तो यतामो इस कन्याका क्या शुभ अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३-१२५॥ तब वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चयसे सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगरमे एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६-१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायगी और कम्बर नामक ग्राममे तिलास नामक वैश्यके यहाँ उकरी होगी । भेरिया उस बकरीसे मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसाके घर भैम होगी और उसके बाद उसी बिलासके पुत्री होगी । वह तिलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८-१२९॥ 'पैसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरको प्रणामकर हर्षसे भग सुरेनु कम-

गुरणा च यथादिष्टं तौ दृष्ट्वा तमुदाहरत् । तथा वृत्तं च तत्सर्वं यातमग्नेः समक्षताम् ॥१३१॥
 ततोऽग्नौ विधुरा नाम्ना विलासस्य शरीरजा । याचिता श्रेष्ठिना लब्ध्वा प्रवरेण मनोहरा ॥१३२॥
 विवाहसमये प्राप्ते प्रवराय न्यवेदयत् । अग्निक्तेतुर्बधेयं तं दुहितासीद् भवान्तरे ॥१३३॥
 विलासायापि ते सर्वे भवास्तेन निवेदिताः । धृत्वा तत्कन्यका जाता जातिस्मरणमोदिता ॥१३४॥
 ततः प्रमजितुं वाञ्छा सा सवेगपराकरोत् । प्रवरश्च विलासेन व्यवहारं दुराशयः ॥१३५॥
 सभायां पितुरस्माकं प्रवरे भद्रतां गते । आर्यिकात्वमिता कन्या धमण्यं च तापसः ॥१३६॥
 वृत्तान्तमोदश धृत्वा वयं वैराग्यपूरिताः । सकाशेऽनन्तवीर्यस्य जैनेन्द्रव्रतमाश्रिताः ॥१३७॥
 एवं मोहपरोतानां प्राणिनामतिभूरिशः । जायन्ते कुलित्वाचारा भवसन्ततिदायिनः ॥१३८॥
 मातापितृसुहृन्मित्रभार्यापत्यादिकं जनं । सुखदुःखादिकं चायं विवर्तं लभते भवं ॥१३९॥
 तच्छृत्वा सुतरां पक्षां भीतोऽभूद् भवदुःखतः । चकार च मुहुःशब्दं धर्मप्रदणवाञ्छया ॥१४०॥
 उक्तं च गुरुणा भद्रं मा भैर्योधुना मतम् । गृहाण येन नो भूयः प्राप्यते दुःखसन्ततिः ॥१४१॥
 प्रशान्तो भव मा पांशुः कार्षीः सर्वानुशरिणाम् । अनृतं स्तेयतां भार्यां परकीयां विवर्जये ॥१४२॥
 एकान्तब्रह्मचर्यं वा गृहीं वा सत्त्वमग्नितः । रात्रिभुक्तिं परित्यज्य भव शोभनचेष्टितः ॥१४३॥
 'प्रयतोऽहं ज्ञेयया च जनेन्द्रान् बहू चेतसा' । उपवासादिकं शक्त्या सुधार्मिकममाचर ॥१४४॥

क्रमसे तापसोंके आश्रममें पहुँचा ॥१३०॥ गुरुने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुकेतुने अपने भाई अग्निक्तेतुसे कहा और यह सबका सब वृत्तान्त उसी प्रकार अग्निक्तेतुके सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥१३१॥

तदनन्तर वह कन्या जब मरकर चौधे भवमें विलासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीकी याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गई ॥१३२॥ जब विवाहका समय आया तब अग्निक्तेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरमें तुम्हारी पुत्री थी ॥१३३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विलासके लिए भी उसके वे सब भय कह सुनाये । उन भयोंको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३४॥ जिससे संसारसे भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करनेका विचार कर लिया । इधर प्रवरने समझा कि विलास किसी छलके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूषित अभिप्रायको धारण करनेवाले प्रवरने हमारे पिताकी सभामें विलासके विरुद्ध अभियोग चलाया परन्तु अन्तमें प्रवरकी हार हुई, कन्या आर्यिका पदको प्राप्त हुई और अग्निक्तेतु तापस दिगम्बरमुनि बन गया ॥१३५-१३६॥ वृत्तान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अनन्तवीर्य नामक मुनिराजके समीप जनेन्द्र दीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ इस प्रकार मोही जीवासे संसारकी सन्ततिकी बढ़ानेवाले अंक खोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥१३८॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख दुःखादिकको भव-भवमें प्राप्त होता है ॥१३९॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे बार-बार शब्द करने लगा ॥१४०॥ तब मुनिराजने कहा कि हे भद्र ! भय मत करो । इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राप्त न हो ॥१४१॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी प्राणीको पीड़ा मत पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परतूनीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चैष्टाओंसे युक्त होओ, बड़े प्रयत्नसे रात-दिन जनेन्द्र भगवान्को हृदयमें धारण करो, शक्त्यनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमोंका आचरण करो, प्रमाद रहित होकर

इन्द्रियाण्यप्रमत्तं सन्तु सुकान्धारमगोचरे । कुटुम्बक्युत्थानि साधूना भक्तिपर ॥१४५॥
 इत्युक्तं 'साञ्जलि पक्षा गिरौ विनमयन्मुहुः । कुत्राणो मधुर शब्दः अप्राह मुनिभाषितम् ॥१४६॥
 श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् । इत्युक्त्वा सस्मिता माता तं काम्या समप्युवाच ॥१४७॥
 साधुभ्यामुन्नमिष्येत रचितं वोऽनुनोचितम् ३ । तपस्वा शान्तचित्तोऽयं व वा गच्छतु पञ्चभृत् ॥१४८॥
 अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये कूरप्राणिनिषेविते । सम्पद्यते स्वगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
 सतो गुणैश्च प्राप्य सुनरां स्नेहपूर्णया । रीतयानुगृहातोऽमी परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
 पञ्चवस्पर्शहस्ताभ्यां ॥ परामृशतीं सती । जनकस्याद्रजा रेने विनीता गदह वधा ॥१५१॥
 निर्ग्रन्थपुङ्गवाभेति स्तुतिपूर्वं नमस्कृती । बहुपकारिसञ्चारी पातालाग्नौचितं वदम् ॥१५२॥
 नमः समुत्पतन्तीं तीं शुश्रूषते महामुना । दानधर्मसमुद्रस्य कङ्गोलाविव पुष्कली ॥१५३॥
 प्रभिन्नधारण तावद् वशाकृत्प वनोऽयितम् । आरुह्य लक्ष्मण ध्रुवा ध्यनिमाताम् समानुल ॥१५४॥
 रत्नकाञ्चनराशिं च दृष्ट्वा पर्वतसन्निधिम । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरावुधम् ॥१५५॥
 विक्कमन्नयनाम्भोजमहावीजुकूरित । कृतो विदिततृत्तान्तं पद्मेन मुद्रितामना ॥१५६॥
 प्राप्तो विरहीरसी पक्षी नायासीत्तौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानस ॥१५७॥
 रमयमाणोपदेशोऽस्ती सातथागुणनाश्रमे । पञ्चलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽग्रमन्महाम् ॥१५८॥

इन्द्रियोंको व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४७-१४८॥ मुनिराजके इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षीने अञ्जलि बॉध बार-बार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४९॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोंका विनोद करनेवाला हो गया' यह कह कर मन्त्रहास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१५०॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोंको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तकी धारण करनेवाला यह वैचारा पक्षी कहीं जायगा ? ॥१५१॥ कूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सघन वनमें तुम्हें इस सम्पद्यष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिये ॥१५२॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर आतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५३॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथसे उसका स्पर्श करती हुई विनयवती सीता ऐसी सुरोभित हो रही थी माना गरुडका ही स्पर्श कर रही हो ॥१५४॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थान पर चले गये ॥१५५॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुरोभित हो रहे थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५६॥ उसी समय एक मन्दोन्मत्त हाथीको वशकर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५७॥ नाना वर्णकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुरणकी राशि देव कर जिनके नेत्ररमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सन समाचार विदित कराया ॥१५८-१५९॥ जिसे रत्नत्रयका प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोंका बड़ी तत्परतासे पालन कर रहा था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके जिना कहीं नहीं जाता था ॥१६०॥ अणुत्रताभ्रममें स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियाके उपदेशका स्मरण कराता रहती थी ऐसा वह पक्षी राम लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वी

धर्मस्य परयतोदायं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपयोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५६॥
 पुरा योऽनेकमासादो दुर्गन्धोऽभूजुगुप्सितः । सोऽथ काञ्चनकुम्भाम् सुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१५७॥
 वचिद् वह्निशिवाकारः वचिद् वैदूर्यसन्निभः । वचिच्चार्याकरच्छायो हरिर्मणिश्चिः वचिन् ॥१५८॥
 रामलक्ष्मणयोरग्रे स्थितोऽसी बहुचातुकः । बुभुजे साधु सम्पद्यमक्ष सीतोपसाधितम् ॥१५९॥
 चन्दनेन स दिग्धाहो हेमकिङ्किण्यलङ्कृतः । बिभ्राणः शकुनी रेजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६०॥
 यस्मादुज्जटास्तस्य विरेज् रत्नहेमजा । जटायुरिति तेनासावाहृतस्तैरतिप्रियः ॥१६१॥
 जितहसमति कान्त चारुविभ्रमभूपितम् । तमन्यपचिणो हृष्टा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६२॥
 त्रिसन्ध्य सीतया साक यन्द्नामकरोदसी । भक्तिग्रहो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६३॥
 तत्र प्रीति महाप्राप्ता जानकी करगपरा । अप्रमत्ता सदा रक्षां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६४॥

उपजार्तवृत्तम्

भास्वादमानो निजयेष्वासाँ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
 जल प्रशस्तं च पियस्वरण्ये बभूव नित्य सुविधिः पतत्रौ ॥१६५॥
 सतालशब्द जनकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।
 कृतानुगाँव्या पतिदेवरम्यां नवतं हृष्टो रविरज्जटायुः ॥१६६॥

इत्यार्ये रविपेणाचार्यश्रोत्रे पद्मचरिते जटायुपात्यानं नामेकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

पर भ्रमण करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्र के समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५६॥ पहले जो अनेक प्रकारके मांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम लक्ष्मणके आगे बैठता तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियोंसे अलङ्कृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे । वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसको चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिके नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त सिद्ध तथा निर्मल साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जङ्गलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोंका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरमें स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥

द्वित्रवारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतो रामलक्ष्मणौ । इहैव रत्नहेमादि सम्पत्तौ यभूवतु ॥१॥
 ततश्चामीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसद्वतमुद्यतम् ॥२॥
 स्थूलमुक्ताफलसमिविराजत्पवनायनम् । सुदुन्दुदादृशं लम्बपल्लवचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥
 शयनासनवादित्रवस्त्रगन्धादिपूरितम् । चतुर्भिर्वारणैर्बुक्त विमानप्रतिमं रथम् ॥४॥
 आरूढा विचरन्त्येते प्रतिघातविशजिता । जटायुमहिता रम्ये वने सख्यवतां नृणाम् ॥५॥
 क्षत्रिहिन कश्चिन् पक्ष कचिन्मास मनोहरैः । यथेप्सितकृतक्रीडा प्रदेशे तेऽव्रतस्थिरैः ॥६॥
 निवासमत्र कुर्मोऽत्र कुर्मं ह्यभिलाषिण । महोत्सवशरणेष्वेवा विचरेहस्ते वन सुग्रम् ॥७॥
 महानिर्मलगम्भीरान् काञ्चिदुद्यावचान् बहून् । उतुङ्गपादपान् देशान् जम्बूरसङ्घं ये शनैः ॥८॥
 स्वेच्छया पर्यगन्तस्ते सिद्धा इव भयोन्मिता । मध्य दण्डककचस्य प्रविष्टा भारदुल्लङ्घ ॥९॥
 विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिमिरसिभिः । रम्या निर्मलनद्यश्च सुप्ताहारोपमा स्थिता ॥१०॥
 अम्बरैस्तिन्तिटाकाभिर्बद्रीभिर्विभीतकैः । शिरापैः कदलेलैर्छरचोटैः सरलैर्धवैः ॥११॥
 कदम्बैस्तिलत्रैर्लोध्रशोकेर्नीललोहितैः । जम्बूभिः पाण्डाभिश्च चूतैराम्रातकैः शुभैः ॥१२॥
 चम्पकैः कर्णिकारैश्च सालैस्तालैः प्रियङ्गुभिः । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्निन्दिरजुनैः ॥१३॥
 केसरैश्चन्दनैर्नीपभूर्जैर्हि गुल्मैर्वैटैः । सितासितैरगुरुभिः कुन्दैश्चाम्बुभिर्बहुधैः ॥१४॥
 पद्मैर्मुचिलिन्दैश्च कुण्डलैः पारिजातकैः । यन्त्रकैः केतकामिश्र मधुकैः खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्र दानके प्रभावसे सीता सहित राम लक्ष्मण इसी पर्यायमे रत्न तथा सुवर्णादि सपत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो इर्यमयी अनेक बेल-यूटोके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम सम्भो वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके भरोसे बड़े बड़े मोतियोंकी मालासे सुरोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, वर्ण, फन्स, तथा खण्ड चन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, चरत्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो निमानके समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सत्र दिना, किरा, मध्याह्ने, चटपटु पक्षोंके साथ साथ धैर्यसाली, अनुगोत्रे, यन्त्रके, दण्ड, कर्णिकार, यन्त्रके, विचरण करते थे ॥२-४॥ वे उस मनोहर वनमें इच्छानुसार क्रीडा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निरास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बेलकी नई पास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुप्त पूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो बड़े बड़े निर्मलोसे गम्भीर थे तथा जिनमें ऊँचे ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे नीचे प्रदेशोंको पार कर वे धीरे धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिद्धाके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोंके हारके समान सुन्दर निर्मल और नदियों स्थित थीं ॥९-१०॥ जहाँका वन, पीपल, इमली, वैरी, बहेडे, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदार, धी, कदम्ब, तिलक, लोभ, अशोक, नील और लाल रङ्गको धारण करनेवाले जामुन, गुलान, आम, अवाठा, चम्पा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियङ्गु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, बीहा, बकली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिगुलक, बरगद, सफेद तथा काला अगुर, कुन्द,

मदनैर्लदिरैर्निभै स्वजूरैरुत्तकैस्तथा । नारिङ्गैर्मातुलिर्भाभिर्द्रोडिर्माभिस्तथासनै ॥१६॥
 नालिकरै कपिरैश्च रसैरामलकैश्चैव । शर्माहरीतकामिश्च कोविदारैरगस्तिभि ॥१७॥
 करञ्जुटफालीयैरकचैरचमोदकै । कट्टोल्बलवर्द्धभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥
 चविमर्धातकीभिश्च कुपैर्नैतिमुत्तकै । पुण्डस्ताम्बूलवल्होमिरेलामो रक्तचन्दनै ॥१९॥
 वेतै श्यामलताभिश्च मेघपट्टैर्हरिद्रुभि । पलाशै स्पन्दनैविल्वैश्चिरगिह्वै समेथिकै ॥२०॥
 चन्दनैरङ्गकैश्च शालमलाबाजैस्तथा । पुमिरन्यैश्च भूहृदिस्तद्वर्ण्य विराजितम् ॥२१॥
 सस्यैर्बहुप्रकारैश्च स्वयम्भूतै रसोत्तमै । पुण्ड्रेषुभिश्च विस्तोर्णा प्रदेशास्तस्य सङ्कुला ॥२२॥
 शिप्रपादपसद्भावैर्नानावहरीसमाकुलै । अशोभस वन वाढ द्वितीयमिव मन्दनम् ॥२३॥
 मन्दमारतनिचित्तै पद्मचैरतिकोमलै । ननर्तवाटयो तोषात् पद्माद्यागमजन्मनः ॥२४॥
 वायुतो ह्रियमाणेन रजसाप्युत्थितेव च । आलिलिङ्गे च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
 अगाधदिव भृङ्गाणा ऋङ्गणेन मनोहरम् । जहासेव भित्त रम्य शैलनिर्भरशीकरै ॥२६॥
 जावजीवरुमेरुपद्महससारसकोकिला । मयूरयेनकुरा शुक्रक्रीशिकसारिका ॥२७॥
 कपोतभृङ्गरानश्च भारद्वाजाद्यस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्वना ॥२८॥
 कोलाहलेन रम्येण तद्गन्ध तेष सभ्रमि । जगाद् स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदक्षिणम् ॥२९॥
 कुत किं राजपुत्रिणि कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इति कोमलभास्या सञ्जवपुर्विव द्विजा ॥३०॥
 सितासिताहणाभोजसन्धैरतिनिर्मलै । सरोभिर्वीकितुमिष प्रवृत्त सुकुनूहलात् ॥३१॥
 फलभारनतैरमैर्नानामेव महादरम् । सुमोचानन्दनिवासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

रम्भा, इराणा, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खेर, मैना, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, यिजौरे, अनार, असन, नारियल, कैंधा, रसाद, औषला, शमी, हरड, कचनार, करञ्ज, कुष्ठ, फालीय, उत्कच, अजमोद, ककोल, वालचीनी, लौंग, मिरच, चमेली, चव्य, औषला, कुपक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, वेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, वेळ, चिरोल, मेथी, चन्नन, अरङ्क, सेंम, बीजसार, इनसे तथा इनके सियाप अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११-२१॥ उस वनके लम्बे चौड़े प्रदेश रम्य उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्या तथा रसोले पौडा और ईरोंसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ता थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धकी धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थी ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झुंझारसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाडा निर्भरके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसी विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हस, सारस, कोकिला, मयूर, वाज, कुर, तोता, उल्लूक, मैना, कबूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीडा करते थे ॥२७-२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे सभ्रमके साथ सजका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ फलरव करते हुए पक्षी कोमलगुणासे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहोंसे आ रही हो और कहाँ आई हो ॥३०॥ सफेद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुनूहल वन देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भार से झुके हुए अथ भागोंसे वह वन ऐसा

तत सौमनसाकार वन तद्वाक्य राधय १ जगाद् विक्रामो जलोचना जनकामनाम् ॥३३॥
वह्नाभिर्गुल्मकै स्तम्भै समासञ्चरमा नगा १ सङ्कुट्टया इवामान्ति प्रिये यच्छात्र लोचने ॥३४॥
प्रियङ्गुलविका परय सङ्गता वकुलोरसि १ कान्तस्येव वरारोहा शक निर्भरसाह्रदम् ॥३५॥
चरता पल्लवेनेय सभ्रस्यप्रेण माधवी १ परामृशति सौहार्दादिव चूतमनुचरात् ॥३६॥

छन्दः (?)

अथ मदालमे क्षण करा करेणुचोदित १ मधुकरविषन्तिदलनिचय प्रविशति साते कमलवनम् ॥३७॥

उपजाति

वह्नाभ्यो दर्पमुदारमुखैर्वल्मीकभृद् गवर्लीमुनाल १
लालान्वितो वज्रसमेन धार भिन्ते विपाणैर्न लसन्तुराग्र ॥३८॥

आर्याच्छन्द

भमुमिन्दर्नालवर्णं विवरास्त्रियार्तनूरतनुभागम् १
परय मयूर इष्ट्वा प्रविशन्तमहि मयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलचिन्ताडितम्

परयामुग्ध महानुभावचरित सिंहस्य सिंहवणे
रम्येऽस्मिन्नचले गुहामुन्नगतस्याराद्विकासिद्युते १
य 'श्रुत्वा रथनादमुन्नतमना निद्रा विहाय क्षण
धीश्रवापाङ्गदृशा विनृम्भ्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थित ॥४०॥

जान पडता था मानो जडे आदरसे राम आदिको नमस्कार हो कर रहा हो और सुगन्धि वायुसे
ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके स्वासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३८॥

तदनन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख देखकर रामने निकसित कमलके
समान गिरे हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये १ इधर देखो, ये वृक्ष लताआ
तथा निरुन्मत्तों गुल्मी और माडियोंसे ऐसे जान पडते हैं मानो कुटुम्ब सहित ही हा ॥३३-
३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस पियङ्गु लताको देखो १ यह ऐसी जान पडती है
मानो पतिने वक्षस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माधवीलता हिलते हुए
परछायेसे मानो सीहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते १ जिसके नेत्र मदसे
आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोसे रहित कर
दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गर्वको धारण कर
रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके गुणोंके अप्रमाण सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील
भँसा वस्त्रके ममान सींगके द्वारा वामीके उच्च शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस
साँपके शरीरका नटुत कुट्ट भाग निलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनाल
मणिने समान नीलवर्णवाले मयूरको देखकर अत्यभीत हो फिरसे उसी बिलमें प्रवेश कर रहा
है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये १
इम मनोहर पर्वतपर गुहाके अप्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाको देखो जो इतना दृढ चित्त
है कि रथना शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोडता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर

यसन्ततिलकावृत्तम्

नानामृगचतजपानसुरक्तवक्त्रो दर्पोद्भुर ऋषिनेत्रमराचिवक्त्रं ।
मूर्धोपनीतलसदुज्ज्वलबालपुच्छो व्याघ्रो नखैः खनति पापदमेप मूले ॥४१॥

मन्दाक्रान्ता

अन्त कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनाभि समेत
दूरन्यस्तप्रचलनयना भूरिश सावधाना ।
किञ्चिद्दूर्वाग्रहगचतुरा ग्रान्तयाता कुरङ्गा
परयन्ति त्वा विपुलमयनालम्बिन कौतुकेन ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

सुन्दरि परय वराह दृष्टान्तरलग्नमुस्तमुन्नतसत्त्वम् ।
अभिनवगृहीतपङ्क गच्छन्त मन्थर सवोणम् ॥४३॥

चशस्थवृत्तम्

अय प्रयत्नादिव चित्रितागको विनातिवर्णैर्बहुभि सुलोचने ।
भजत्पतिनाडनमर्भकैः सम वनैकदेशे नृगभाजि चित्रक ॥४४॥

दोधकवृत्तम्

रथेनयुषैष लघुभ्रमपक्षो द्रुत एव निरूप्य समन्तात् ।
स्वामितस्य पर शरभस्य स्तेनयति द्रुतमामिपमात्स्यौ ॥४५॥

द्रुतघिलम्वितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तक ककुदमुन्नतमाचलित बहन् ।
अयमुदात्तरवोऽत्र विराजते सुरभिपुत्रपतिरैरविभ्रम ॥४६॥

तथा धीरेसे जमुहाई लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठा है ॥४०॥ इधर नाना मृगाका रक्षि-
पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्राकी
पीली पीली क्रान्तिसे युक्त है, तथा चमकोले बालोंसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके
समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोंके द्वारा वृत्तके मूलभागको नाखूनासे खींच रहा है
॥४१॥ जिन्हाने स्त्रियोंके साथ साथ अपने बच्चोंके समूहको भीचम कर रक्खा है, जिनके चञ्चल नेत्र
बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान हैं, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमें चतुर हैं और
कौतुक चश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीपमें आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥४२॥
हे सुन्दरि ! धीरे धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाढ़ीमें मोथा लग रहा है, जिसका
बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नई कोचड़ अपने शरीरमें लगा रक्खी है, तथा जिसको
नाक बहुत लम्बी है ॥४३॥ हे सुलोचने ! प्रयत्नके बिना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे
चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस वृणग्रहल वनके एक देशमें अपने वक्त्राके साथ अत्यधिक
क्रोडा कर रहा है ॥४४॥ इधर जिसके पङ्क जल्दी जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरण बाज पक्षी
दूरसे ही सत्र ओर देखकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ा शीघ्रताके साथ मासको छीन रहा है
॥४५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आवर्तसे सुशोभित है, जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची
काँदौरको घारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है

अकृच्छ्रन्द

अचिदिदमतिघनधरनगकलित अचिदुषुबहुविधतृणपरिनिचितम् ।

अचिदपगतमयमृगपुरुषटल अचिदतिभययुतररहितगहनम् ॥४७॥

चण्डीचन्द्र-

अचिदुरमदगनपातितवृक्ष अचिदभिनवतरजालकयुतम् ।

अचिदलिङ्गलङ्कलकलकलरस्य अचिदतिस्वररवसमृतरुचम् ॥४८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

अचिद्विभ्रान्तसावक अचिद्विभ्रन्धसस्वकम् । अचिद्विराड्गुह्य अचिद्विस्तृतगुह्यम् ॥४९॥

तोष्टकचन्द्र-

अक्षय धवल अपिल हरित यलित निभृत सरव विरवम् ।

विरल गहन सुभग विरस, तरण पृथुक् विपम सुसमम् ॥५०॥

इदं तदण्डकारण्य प्रसिद्ध दयिते वनम् । परवानेरुविध कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥५१॥

नगोऽप्य दण्डरो नाम शृङ्गालीढाभराद्वण । सुवक्त्रे यस्य नाम्नेदं दण्डकारण्यमुच्यते ॥५२॥

तुङ्गया शिखरेष्वस्य प्रमया धातुसम्मना । रनया पुष्पपद्मेन प्रावृत भाति पुष्करम् ॥५३॥

अस्य गह्वरदेशेषु परधीपधिमहाशिला । निर्वातस्थप्रदोषाभा दूरगन्धस्ततमदण्डया ॥५४॥

शालिनोच्छ्रन्द

अस्मिन्नुच्चैर्निचरा मम्यतन्तस्मराराढा प्रावमद्वातसखा ।

सुकाकारान् सीकरानुमृजन्तो रापन्धये स्पष्टमासानुकारा ॥५५॥

ऐसा यह बेल सुराभिमत हो रहा है ॥४६॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सपन वृत्तांसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकारके वृक्षांसे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके बड़े बड़े कुण्डांसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत वृक्षांसे लिए सपन भाडियोंसे युक्त है ॥४७॥ कहीं अतिशयमशोभित हाडियोंने द्वारा गिराये हुए वृत्तांसे सहित है, कहीं नयीन वृत्तांसे समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहकी मनोहारी मन्दारसे सु-वर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥४८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निश्चिन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥४९॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सपन है, कहीं सुन्दर है, कहीं नीरस—शुष्क है, कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विपम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥५०॥ हे प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकवन कर्मोंके प्रपञ्चके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥५१॥ हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आकाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नामका पर्वत है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥५२॥ इस पर्वतके शिखर पर मेरु आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल लाल कान्तिसे आन्ध्रादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल वृत्तांसे समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥५३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें दूरसे ही अन्धकारके समूहकी नष्ट करनेवाली त्रैलोक्यमान औपधियोंकी बड़ी बड़ी शिराएँ बायुरहित स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥५४॥ इधर पाषाण खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दके साथ बहृत ऊँचेसे पड़नेवाले ये मरने मोतियोंके समान जलकणोंकी छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशा शुभ्रा केचित् केचिन्नीला रक्ता केचित् ।
दश्यन्तेऽस्मा वृक्षैर्व्याप्ता प्रान्ते कान्तेऽनन्त कान्ता ॥५६॥

प्रमाणिकावृत्तम्

अमा समीरणेरिते वरोष्ठि वृक्षमस्तवे । विमान्ति गह्वरे लवा रये करा वचित् वचित् ॥५७॥

रचिरावृत्तम्

अथ वचित् फलभरनम्रपादप कचित् स्थिते कुसुमपटैरलकृत ।
वचित् सगै कलरवकारिभिश्चितो विभात्यल वरमुक्ति दण्डको गिरि ॥५८॥

कोकिलकव्यवृत्तम्

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगत प्रियतरवालिधि प्रियतरमैरनुयातपथ ।
अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुषि पुरुष प्रविशति गह्वर न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥५९॥

रत्नधरावृत्तम्

पद्मा नीला शिला स्यात्तिमिरमुपचित कन्दराणा मुखेपु
स्यादेतत् किं विहाय स्फटिकमणिशिला किन्तु वृक्षान्तरस्था ।
एव स्याद् गण्डशैल किमुत गजपति सेवते गाढनिद्रा
कान्ते षोणधरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागा ॥६०॥
पद्मा क्रोञ्चरवा नाम नदा जगति विश्रुता । जल यस्या प्रिये बाध त्वदीयमिव चेष्टितम् ॥६१॥

अश्वललितवृत्तम्

मृदुमरदीरयहुरमल तस्थतरपुष्पमहितधरम् । भवशयनीयरूपसुभग सुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके फिराने ही प्रदेश सफेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं ॥५६॥ हे वरोष्ठि ! सघनवनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खण्ड ही हों ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं पडे हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त है ऐसा यह वण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके चल्लभ पीछे पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक है, और जो अपने बच्चों पर चञ्चल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा वाल दूट जानेके भयसे कठोर एवं सघन माडीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्यके कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये ! यह वह क्रोञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर

भद्रकच्छुन्द

हसकुलाभकेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम् । भृङ्गनिनादपूरितवना कचिद् विकटसङ्कोपलचयै ॥६३॥

(?) छन्द

ग्राहसहस्रचारविपमा क्वचिच्च पुरुवेदसङ्गतजला ।

घोरतपस्विचेष्टिसमा कचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताप्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरिमभिन्न कचिदुलुग्नसितोपलाशुयुक्तम् ।

जलमिह सिनदन्नि भाति बाह हरिहरयोदित सङ्गत शरीरम् ॥६५॥

यंशपनपतितम्

रत्नशिलौघरिमनिचिता कचिद्विद्यममला भाति समुद्यद्वर्कसमये दिग्विध सुरपते ।

भिन्नजला क्वचिच्च हग्नितैरपलकरचयै शैवालशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणोवृत्तम्

कमलनिनरैष्वन्न स्वेच्छकृतातिकलस्वन निभृतपवनासङ्गात् कम्पेत्त्वभीष्णकृतभ्रमम् ।

परमसुरभेगन्धाद् वचनात्तवेव समुद्रतान् मधुकपटल कान्ते र्चाव विभाति रजोरुगम् ॥६७॥

शिररिणीच्छन्द

विपित पाताले क्वचिदिह जल मुक्तवहन पर गम्भीरत्व वहति दयिते ते मन इव ।

क्वचिशीलाम्भोजैरनतिचलितै पञ्चचितैर्विभार्यविष्कापा प्रवरवसितालोकनभवाम् ॥६८॥

लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षांके पुष्प-समूहकी धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुनलरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो इस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह यज्ञे-यज्ञे सघन पापाणांके समूहसे उपलब्धित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके सवारसे विपन्न है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे बहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दाँतोंको धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमें स्थित सफेद पापागखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्यादयःनालीन पूर्ण दिवाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पापाग-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शैवालकी शङ्कासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके सङ्गसे हिलते हुए कमल समूह परं जो इन्द्रानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुँहसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

१. ६२ तमं श्लोक अश्वत्थित्छन्दस पाठ्यम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छुन्दस पाठ्यम् । उभयनारायणं एव श्लोकं विप्रते । अथवा उभयार्मन्ने उपजाति-छन्दा भवति । किन्तु विभिन्नजातिपूजाति वृत्तप्राया न दृश्यते । २. लोचनयुवम् म० ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति ज्योमगवृन्द बहुविधजलमववनकृतचरणम् ।
 प्रेमनिबद्ध तारविराव क्वचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६६॥
 सैकतमस्या राजति चेद् सवनितखगकुलकृतपदपदवि ।
 स्वजघनस्य प्राप्तसुसमग्न गतघनसुरपथशशधरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बुस्तोयाधीश बीचिधरभूरतिकान्ता ।
 तद्विचारस्फातगुणौघ शुभचेष्ट विष्णुसुन्दरमुत्तमशोला भरतेशम् ॥७१॥

रचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलङ्कृतास्तटीरहो विविधविहङ्गसङ्कुला ।
 निरन्तरा सज्जलघनौघसन्निभा इमामिता रतिमिश्र कर्णमावधौ ॥७२॥

अपरघनश्चन्द्र

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसङ्गतम् ।
 प्रमदभरवशगता सता जनकमुता निजगाढ सादरम् ॥७३॥

ग्रहर्षिणीवृत्तम्

मधेया विमलजला तरङ्गरम्या हृष्यासौ खगनिबद्धे कृताभिलाषा ।
 पतस्या प्रियतम ते मनोगत चेतोयेस्या किमिति रतिवृण न कुम्भे ॥७४॥

है तथा बहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गाम्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोंसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलासे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६८॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलरुनाम विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उष शब्द कर रहा है और तीव्र मन्दसे विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६९॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखकी धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिस पर मित्रों सहित क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण चिद्र बना रक्ते हैं ऐसा इस नदीका यह बालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलरी सन्श्रुता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासा—दावभाव रूप चेष्टाअसे सहित तरङ्गके समान उत्तम भीहोंसे युक्त पत्र उत्तम शीलको धारण करनेवाली शुभद्रा सुन्दर एवं विमृष्ट गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाआके धारक तथा ससोरभे सर्वसुन्दर भरत चन्द्रवर्त्तको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासा—पक्षियोंके सचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भीहों से समान उत्तम तरङ्गोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुण समूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलङ्कृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर हैं तथा जलसे भरे मेघ समूहसे समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदी कूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन पढ़े तब हर्षित होवां हुई सोताने आदरपूर्णक पहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इन्द्रानुसार क्रीड़ा

वियोगिनीच्युन्दः

अथ राजसुनासमोरित तद्वाक्यं राधवगोत्रचन्दमः ।

अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् भेजे रम्यभुव रमालयान् ॥७५॥

पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवपुत्रगजपतिरनपथपरिचितभ्रमप्रतिनोदनम् ।

तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिश्रियाम् ॥७६॥

(१)

पश्चात् श्रोतः संसत्तामृष्टमन्त्रिहृत्परिचलनकरणवरमद्वितमनुलं विचेष्टितमोप्सितम् ।

रामेणामा स्नानुं सक्तो विविधजलविद्वत्तिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलयाः ससप्तकट्याचिमालाकुला विमर्दितसितासितालणपयोजपत्राचिता ।

समुद्गतकलहवनातिरहस्यमासेविता सम रघुकुलैन्दुना रतिमिवाकरादापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्ज्य मुद्गरयायिना विसिनोत्पण्डितिराहितानमना ।

पुनराशुसमागमाधिता रघुपुत्रेण रता मृषा मजा ॥७९॥

मुक्त्वा नानाहृत्वासङ्ग कुसुमवनचरणजरजीविराजिगल्लुप्तम् ।

रात्वा क्षिप्रं सारोद्देशं स्वरितकृतविधिरसिताः पुरोगतयोपिताः ॥८०॥

तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरिपथगमनरदिन विधाय मनो भूयम् ।

तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्य परपट्टितिरहितमनसो विद्वन्ति समोदितम् ॥८१॥

कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जलमें हम डोंग मों क्यों नहीं
झुणभर क्रीड़ा करें ॥४४॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

अतिगधुरव करामिघातैर्महजरवादि सुन्दर विचित्रम् ।

अनुगतदयितो रघुप्रधान सलिलमवादयदन्वित सुगीत्या ॥८२॥

परितोऽकरोद्भ्रममस्य जगमगसक्तचेतसोदारचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य^१ हलहतेलङ्घनम् ।

अतिवेगवान् पुनरपेक्षजबनिपुणचारत परो भ्रातृगुणनिरतथा परम समुद्रवचापलक्षित ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललाल स्वेच्छ्याम्भोविहार प्रमदमुपनयन्त तारभाजा मृगाणाम् ।

रघुपतिरनुभूय भ्रातृदारानुयातो गजपतिरिव तीर सेवितु समग्रवृत्त ॥८४॥

वशस्यवृत्तम्

शरारयात च विधाय वर्तन महाप्रशस्तैर्वनजम्भवस्तुभि ।

स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामा कृतचित्रसङ्ख्या ॥८५॥

सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विशम्भमानस । जगयुर्मुञ्चकरया सातयाऽलङ्कृतान्तिक ॥८६॥

सन्वस्मिन् विविधा भ्रातृमा स्वादुफलान्विता । सरित स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतामका ॥८७॥

अनेकरत्नसम्पूर्णं दण्डकोऽय महागिरि । प्रदेशैर्विविधैर्युक्त परकाढमकोचितै ॥८८॥

उपकण्ठेऽस्य नगर विदुष्य सुमनोहरम् । नैजिकार्वनसम्भूता गृहीमो महिषास्तथा ॥८९॥

अस्मिन्नगोचरेऽप्येवामरण्येऽयत्तसुन्दरे । विषयावासन दुर्म परमा धृतिर मे ॥९०॥

स्वस्मिन्निहितचेतस्के नून शोकवशाकृते । स्वहितै स्वजनै सर्वै परिवर्गसमन्वितै ॥९१॥

समकते हैं—जानते हैं ॥८२-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियाँके आघातसे जलका बाजा बजाया । उस जलबाद्यका शब्द श्रुद्धके शब्दसे भी अधिक मधुर सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलकोष्ठामें आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाओंके करनेमें तत्पर थे । भाईके स्नेहसे भरे एव समुद्रपोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे । यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूरकर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्ज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और रत्नोंके साथ, तटपर स्थित मृगाको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीडा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारे पर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरवृत्ति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारका कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार धोले ॥८६॥ कि हे भाई ! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नासे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीडाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है ॥८८॥ हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनायें और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसे रख लें ॥८९॥ जहाँ दूसरोंका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश बसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा सतोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोंमें लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके

प्रज्ञानय जनन्यां नौ त्वरित न न नायवा । तिष्ठ सुन्दर नैव मे मानस शुद्धिमश्नुते ॥६२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शतसमयसङ्गमे । प्रतिज्ञाप्रदवान् सातामिह म्थास्यति यत्नवान् ॥६३॥
ततो लक्ष्मीपरे नग्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमाद्रीकृतचेतस्क पुन पद्मो जगाविति ॥६४॥
समयेऽस्मिन्नतिष्ठान्ते क्षीप्तमास्करदारणे । प्राप्नोष्यन्तमय भोम काल सम्प्रति जालद् ॥६५॥
धुन्वाकूपारनिर्घोषाश्चलज्जननगोपमा । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विद्युद्गन्तो बलाहका ॥६६॥
निरन्तर तिरोधाय गगन घनविप्रहा । मुञ्चन्ति क यथा देवा रत्नराशिं तिनोद्भवे ॥६७॥

उपजातिवृत्तम्

त्रिधाय तुद्गानचलान् महान्तो धाराभिस्त्वैर्ध्वनय पयोदा ।
नभोद्गणेऽर्मा निवृत चरन्त णप्रभासङ्गमिनो विभान्ति ॥६८॥

धंशस्थवृत्तम्

पयोमुच केचिद्मां विषाण्डुरा समीरिता वेगवता नभस्वता ।
भ्रमन्ति निष्पातममपतामना मनोविशेषा इव यौवनश्रिता ॥६९॥
अथ सद्यधुन मुक्त्वा मेघा भूदृति वर्पति । अनिश्चितविशेष सद् कुशले द्विर्गो यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिचवमिह कारे सिन्धव सप्रवृत्ता विपमतमविहारोदारपङ्का धरिता ।
जलपरिमलशीतो वाति षण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्त तेन मन्ये सुभाव ॥१०१॥

साथ-जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमें मेरा मन
शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥६१-६२॥ शब्द 'यत्न' आने पर मैं स्वयं जाऊँगा, तुम सीताके
प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥६३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर
लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये । उसी समय जिनका चित्त
प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुन कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह प्रौढम काल तो
व्यतीत हुआ अतः यह अत्यन्त भयकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥६४-६५॥ जो क्षीमको
प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते फिरते अञ्जनगिरिके समान जान
पड़ते हैं ऐसे निजलीसे युक्त ये मेघ विशाओंको अन्धकारसे युक्त कर रहे हैं ॥६६॥ जिस प्रकार
जिनेन्द्र भगवान्के जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते हैं उसी प्रकार मेघोंका शरीर धारण
करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं—पानी बरसा रहे
हैं ॥६७॥ जो हय महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको
और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशाङ्गणमें निरन्तर बिचरण कर रहे हैं तथा जिनमें
निजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक मुशोभित हो रहे हैं ॥६८॥ वेगशाली वायुके द्वारा
प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ असयमी मनुष्योंके तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे हैं
॥६९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला घनाद्वय मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता
है उमी प्रकार यह मेघ घान्यकी भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस
समय घटे वेगसे नदियों बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवी पर
निहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए

इति निगदति पद्मे केकयीसूनुरुचे
 प्रवदसि यदधीशस्त्वं तथाहं करोमि ।
 विविधरसकयाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते
 रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासामिधानं
 नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥

हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥ इस प्रकार रामके कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ । इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमं पत्र

सत शरदनुनिचा शरदङ्ककपत्रिभि । घनीव विशदश्चके^१ राज्यमाफान्तविष्टप ॥१॥
 विष्णुपुष्पमहाताम् पादपाद् रिंगवचेतम् । अलङ्कारोत्तमास्तस्य जगद् कुरुग्नना ॥२॥
 जामूनमलनिर्मुक्त भिन्नाञ्जनममद्युति । अम्बुनेव धिर धीत रराज गगनान्नगम् ॥३॥
 प्रावृट्कालगत्रा मेघकलशैर्धरिणाभियम् । अभिपिच्य गत ह्यपि विद्युक्छाविराजित ॥४॥
 चिरात् कमलिनामेह प्राप्य पञ्चभूता गणा । उद्गतमधुरालापा कामप्याय सुखामिकाम् ॥५॥
 मिथ्यव स्वपट्टकालाला उन्मज्जपुलिना पराम् । कान्तिमीयु समासाद्य शरत्पमपकामुकम् ॥६॥
 वर्षावातविमुक्तानि चिरात्प्राप्य सुखामिकाम् । काननानि व्यराजन्त सङ्गतानाव निद्रया ॥७॥
 सरासि पङ्कजाद्यानि सम शोभस्तमुत्थितै । पादपै पञ्चिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥
 नानापुष्पकृतामोदा रजनोविमलन्यरा । मृगाङ्गुलिक भेजे सुकालेशमिश्रोपता ॥९॥
 केतकीसूतिरजया पाण्डुरीकृतविग्रह । बभौ समारणो मन्द मन्दपद् कामिनाचनम् ॥१०॥
 इति प्रसन्नता प्राप्ते काल सासाहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिरिच्छितिविजमैकमहारस ॥११॥
 लब्धवानुमनन उपेक्षाशानिहितवाचण । कदाचित्तपमणा भ्राम्यन्नेककस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥
 भजिप्रदामर गन्ध विनातपवनाङ्गनम् । अचिन्तयन्न कस्यैव भवेद्गन्धो मनोहर ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरण रूपी वाणोंके द्वारा मेघसमूहको जीत कर समस्त विश्वमें व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशा रूपी स्त्रियाने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्ष रूपी उत्तमोत्तम अलङ्कार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाश रूपी आगन, मर्दित अञ्जनके समान स्वामर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही रञ्ज हो गया है ॥३॥ वर्षा काल रूपी हाथी, मेघरूपी फलशोंके द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्माका अभिषेक कर विजली रूपी कक्षाआमं सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमराके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जा कर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धारे धारे उन्मग्न हो रहे हैं ऐसी रञ्जजलस भरी नदियों शरत्कालरूपी वल्लभनों पा कर परम कान्तिको प्राप्त हो रहीं थीं ॥६॥ वर्षा वालकी तीव्र वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुतसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे सगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोंसे युक्त सरोवर तदा पर उत्पन्न हुए वृक्षाके साथ पक्षियोंके शब्दके वहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलों मुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाश रूपी स्वच्छ वरनसे सुशोभित थी ऐसी रात्रि रूपी स्त्री उत्तमकाल रूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमा रूपी तिलकको धारण कर रहा था ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा जिसका शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनीजनाको उन्मत्त करती हुई धारे-धीरे वह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमें समस्त संसार नन्माहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होने पर सिंहके समान निर्भय विचरने वाले महापराक्रमी लक्ष्मण वड़े भाई रामसे आश्रा प्राप्त कर दिशाआकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने तिनगी पवनके द्वारा लाई हुई दिव्य मुगन्धि मूँघा । उसे मूँघते ही वे विचार करने लगे

पादपाना क्रमेतेषा स्फुटकुसुमधारिणाम् । आहोस्विन्मम देहस्य कुमुमोत्करशायिन ॥१४॥
 वैदेह्या सङ्गतो राम किमुतोपरि तिष्ठति । किञ्च कश्चि समापातो भवेद्वा त्रिविष्टपः ॥१५॥
 ततो भगधराजेन्द्र पप्रच्छ ध्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयन हरे ॥१६॥
 ततो गणधरोऽश्वेचनज्ञानलोकविचेष्टित । सन्देहतिमिरादित्य पापधूलीसमीरण ॥१७॥
 द्वितापस्य जिनेन्द्रस्य पुनिवाससमायमे । विद्याधराय विद्वाय याताय शरण विभुम् ॥१८॥
 राक्षसानामाशौन महाभामेन धामता । अम्भोदवाहनायासात्कृपयेयुदितो वर ॥१९॥
 विपुले राक्षसद्वारे त्रिवृत् नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रब्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
 जम्बूद्वीपस्य जगतामिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्केति नगरी सत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
 रहस्यमिदमेकं च विद्याधर पर शृणु । जम्बूभरतवर्षस्य दक्षिणाशा समाधायत ॥२२॥
 आश्रयिवोत्तर तार लवणस्थ महोदधे । वसुन्वरोदरस्थानस्थभावापितमायतम् ॥२३॥
 याजनस्याष्टम भाग दण्डकाद्रो गुहाश्रयम् । अधोग वा महाद्वार प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
 अलङ्कारोदय नाम स्थित पुरमनुत्तमम् । स्थानायशतधर्मस्य दिव्यदेश निरीक्ष्यते ॥२५॥
 नानाप्रकाररत्नाशुभन्तानपरिराजितम् । विस्मयोपादाने शक्तमपि त्रिदिवसन्ननाम् ॥२६॥
 अप्रतर्क्यं गगनगैर्दुर्गं विद्याविजितै । सर्वकामगुणोपेत विचित्रालयसङ्कुलम् ॥२७॥
 परचक्रसमाजान्तो यद्यापःपु कदाचन । भवेद्दुर्गं समाप्त्य विष्टेऽव निर्मयस्तत ॥२८॥
 ह्युत्तरेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालक । लङ्कापुरीमभूत्समात् सन्तानोऽनेकपुत्रव ॥२९॥

कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥ क्या यह गन्ध विकसित फूलों धारण करने वाले इन वृक्षों की है अथवा पुष्पसमूह पर शयन करने वाले मेरे शरीर की है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥

तदनन्तर भगवद्देशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गीतम स्वामीसे पूछ कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगाकी चेष्टाओं को जानने वाले, सदेह रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एव पाप रूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरण में मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत हो कर प्रभुकी शरणमें आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभामने करुणा वश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन । दक्षिण समुद्रमें एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमें त्रिवृत् नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त हो कर उसी त्रिवृत् पर्वत पर चला जा । यहाँ जम्बूद्वीपकी जगती (वैदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसाने एक लङ्का नामकी नगरी बसाई है । वहाँ ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-राम मार्ता और मुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा चौड़ा स्थाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतमें गुफाद्वारसे नीचे जाने पर मणिमय तोरणासे देदीप्पमान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करने पर अलङ्कारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२५॥ यह नगर नाना प्रकारके रत्नाकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमें समर्थ है । आकाशमें गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए यह अत्यन्त दुर्गम है । वह सत्र प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनासे व्याप्त है ॥२६-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्मय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार

यथास्थितभाजानां श्रद्धान् परमं सुखम् । मिथ्याविश्रित्पतार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥३०॥
 विद्याभूता मुराणा च जेयो भेदो विचक्षणैः । तिलपर्वतयोस्तुल्य शक्तिरान्त्यादिभिर्गुणैः ॥३१॥
 पङ्कचन्दनयोर्यद्वदधरोपलक्ष्यो । तद्वन् गेचरलोकस्य देवलोकस्य चान्तरम् ॥३२॥
 गर्भवासपरिक्षेपशमनुभूय विधेर्वशात् । तत् समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजायिनः ॥३३॥
 क्षेत्रपशसमुद्भूता ये चरन्ताति गेचरा । अमराणां स्वभावस्तु मनोजोऽयं प्रितुष्यताम् ॥३४॥
 सुरूपशुचिसर्वाङ्गा गर्भवासविवर्जिता । मांसास्थिवन्नेद्रहिता देवा अनिमिषेष्णाः ॥३५॥
 जरारोगत्रिहानाश्च सततं यौवनान्विताः । उदारतेजसा युक्ता सुरसौभाग्यसागराः ॥३६॥
 स्वभावविद्यामयस्या अवधिज्ञानलोचना । कामरूपधरा धीरा स्वच्छन्दगतिधारिणः ॥३७॥
 अमो लङ्काधिता राजन् न देवा न च राक्षसाः । रक्षन्ति रक्षन्तां क्षेत्रमाहूतास्तेन राक्षसाः ॥३८॥
 तद्वशानुत्तमो जेयो युगानामन्तरैः सह । पारम्पर्याद् व्यतिरिक्तं काणो मैत्रार्णवोपमः ॥३९॥
 रक्ष प्रभृतिषु श्लाघ्येयसौतेषु बहुष्वपि । गण्डत्रयाधिपस्तस्य राज्ञोऽभयदन्वये ॥४०॥
 भगिनीं हुन्त्वा तस्य रूपेणोपतिमा भुवि । प्राप्तस्तथा महावीर्यो रमण खरदूषण ॥४१॥
 चतुर्दशहस्ताणि नृणां तस्य महा मनाम् । प्रतीतो नृपाण्यश्च सेनागिरितिरुजितः ॥४२॥
 दिक्कुमार ह्यवोदारे धरणीजडो स्थितम् । जलद्वारपुर तस्य स्थानमासीत्समर्द्धजसः ॥४३॥
 शम्भूको नाम सुन्दश्च सुती तस्य धर्भवन् । उन्धुतश्च दशप्रावाद् भुवि गीरवमाप स ॥४४॥

महाभीम राजसेन्द्रके कहने पर जो विद्याधर बालक, लङ्कापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥३०॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरों और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पापाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर बादमें कर्मोद्वेगकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं । ये विद्याधरोंके क्षेत्र विजयार्थ पर्वत पर तथा उनके योग्य कुलोंमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिये गेचर कहलाते हैं । परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव, सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक हैं, गर्भवाससे रहित हैं, मांस हड्डी तथा स्नेह आदिसे दूर हैं और दिमन्तर रहित नेत्रोंके धारक हैं ॥३५॥ वे बृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित हैं, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अयधिज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिये राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम परम्पराके अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुतसे प्रशसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकने पर उसी वंशमें तीन राज्ञका स्वामी राजण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एन हुन्त्वा नामकी बहिन है जो पृथ्वी पर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती । उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार भवनवासी देवके समान उदार है । पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलङ्कारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास स्थान है ॥४३॥ उसीके शम्भूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । साथ ही वह अपने सम्पन्नों राजणसे भी

गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि मृत्युपाशाबलोकितः । शम्भूक सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषणं वनम् ॥४५॥
 यथोक्तमाचरन् राज्ञाराधयितुमुद्यतः । एकाग्रमुनिवशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥
 असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । वध्योऽसाविति भाषित्वा वशस्यैवमुपाविशत् ॥४७॥
 दण्डकारण्यभागान्तं तां च व्रौचरवा नदीम् । सागरस्योत्तरं तीरं संस्त्यासाववस्थितः ॥४८॥
 नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिरुदगतः । ब्राह्मः सप्तदिनं स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥
 कैकयेयो^१ सुतस्नेहाद्दृष्टुमाणात् क्षणे क्षणे । अपर्यक्षासिमुद्भूत काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
 प्रसन्नवदना भर्तुर्निजगाद यथाविधि । शम्भूकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥
 भागमिष्यति मे पुत्रो मेरु कृत्या प्रदक्षिणम् । अहोभिखिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
 एव मनोरथं सिद्धं दध्यो चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुद्देशं सम्प्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥
 सहस्रामरपुष्पस्य सद्गन्धस्यैव स्वभावतः । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गारणस्य तस्य सः ॥५४॥
 दिग्धगन्धानुल्लिप्तस्य दिव्यस्त्रभूषितस्य च । गन्धो भास्करत्वास्यैव लक्ष्मीधरमुपेयिवान् ॥५५॥
 लक्ष्मणो विस्मय प्राप्तः परियज्य क्रियान्तरम् । अपासीद् गन्धमार्गो केशरीव भयोत्कृतः ॥५६॥
 अपर्यक्ष्य तरङ्गजं प्रदेशमतिदुर्गमम् । लताजालावलीकृत् तुङ्गपापाणवेष्ठितम् ॥५७॥
 मध्ये च गहनस्यास्य सुसप्तं धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाभुजैः ॥५८॥
 मध्ये तस्यापि विपुलं वनस्तम्ब^२ समुन्धितम् । सौधमन्निव सद्गन्धमविशतकुतूहलम् ॥५९॥

पृथ्वी पर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्भूकने गुरु-
 जनौके द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयङ्कर वनमें प्रवेश किया
 ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत
 हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोंको जीतने
 वाला है, ॥४६॥ 'उपयोग' पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य
 होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत पर वंशकी एक झाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक
 वनके अन्तमें कौञ्जरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है
 ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन
 ठहर कर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता है ॥४९॥
 दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थान पर आती रहती थी
 सो उसने उसी क्षण उत्पन्न हुए उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख
 प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणसे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र
 मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमें आ जावेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं
 हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार ईधर शम्भूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान
 कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी
 पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्य-
 गन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे उस सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी
 गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे
 गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने
 वृक्षोंसे आन्ध्यादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पापाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त
 दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे
 बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान घरातलके मध्यमें एक वॉसीका

अथान्ते तस्य निधनं त्रिपुराकरमण्डलम् । मर्द्याचक्रानं येन प्रदीप्तमिह लक्षणे ॥१०॥
 नष्टराक्षसमादाय लक्ष्मीमात्रातविस्मयः । जिज्ञासमानोऽप्यन्तमस्य तं येयुःस्वयमचिदन्तः ॥११॥
 गृहीतमायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्त्रं देवताः । अस्माकं स्वायम्भवीयुःस्य मनस्यममृतजन्तु ॥१२॥
 अथाबोचत सोनेयः क्रिश्चिदध्यातुल्येवगः । यीमित्रिध्वरव्यय व नु यानो भविष्यति ॥१३॥
 मद्रोत्तिष्ठ जटायुः स्य दूरमग्न्य सद्रुतम् । लक्ष्मीधरकुमारस्य निगुमान्येवग कुरु ॥१४॥
 इत्युतः करुण यावत् करोयुःपतिनु न्यगः । अहर्ली तावदायस्य जनकस्याह्नात्रात्रदत् ॥१५॥
 अथ कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताङ्गो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमान्याम्बरधरः ममायानि रत्नदृष्टनः ॥१६॥
 गृहीतध्वायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभः । राजतेऽयन्तमेतेन शैलः केसरिणा यथा ॥१७॥
 दृष्ट्वा तमोदश रामो विस्मयस्याप्तमानसः । नमः प्रमद रोदधुमुष्ठाय परिवर्त्यते ॥१८॥
 पृष्टश्च लक्ष्मणः कृत्स्न स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राणि सङ्ख्याभिर्विधामुन्यम् ॥१९॥
 दृष्ट्वा प्रतिदिनं खलं सुतं च नियमस्थितम् । यायामीन् मा दिने तस्मिन् कैःकमेव्यगनैःकटा ॥२०॥
 अपरपथं विसाराणो वनं हृत्तमरोपतः । अचिन्तयच्च यातः व पुत्रः स्थित्वादर्शमिनाम् ॥२१॥
 स्थितश्च यत्र ससिद्धमसिरसमिदं वनम् । क्षिप्रानेन परीक्षार्थं न युक्तं सुनुता हृतम् ॥२२॥
 तावद्यास्तस्थितादिद्यमण्डलप्रतिम शिरः । सत्कुण्डल करण्य च ददर्श क्वाणुमप्यगम् ॥२३॥

विस्तृत स्तम्भ (भिड़ा) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सीधर्मस्वर्गको देखनेके लिए ही मानो उँचा उठा हुआ था ॥२६॥

अथानन्तर उस धौंसोके स्तम्भमें देदीप्यमान किरणोंके समूहसे सुरोभित एक रत्न दिग्दाई दिया जिससे धौंसोके साथ-साथ समस्त वन प्रग्नलित-सा जान पड़ता था ॥२७॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशङ्क हो वह रत्न ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उन्हीं वंश-स्तम्भको उन्होंने फाट डाला ॥२८॥ रत्नधारो लक्ष्मणको देखकर वहाँ सत्र देवताओंने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ वनकी पूजा की ॥२९॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुञ्ज-कुञ्ज ओंमुओसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण यहीं देर कर रहा है कहीं गया होगा ? ॥३०॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमें दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥३१॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहने पर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि इतनेमें सीता अङ्गुली ऊपर उठाकर कहती है ॥३२॥ कि जिनका शरीर फेरारकी पङ्क्तिसे लिप्त है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलंकृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥३३॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान रत्न ले रक्खा है और इससे ये सिंहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुरोभित हो रहे हैं ॥३४॥ लक्ष्मणकी वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने बठकर उनकी आलिङ्गन किया ॥३५॥ पूछने पर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त बतलाया । इस तरह राम लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणों नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए मुलसे वहाँ ठहरे ॥३६॥

अथानन्तर जो चन्द्रनम्रा प्रति दिन रत्नको तथा नियममें स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई ॥३७॥ आते ही उसने धौंसोके उस समस्त वनको सत्र ओरसे कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहीं चला गया ? ॥३८॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह रत्न रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥३९॥ इतनेमें ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमण्डलके समान

१. करण म० । २. तावत् अहर्ली आयत्य उत्थानखेदेन युक्ता कृता । ३. वरानाम् ।

४. क्षिप्रम् ।

उपकारं कृतस्तस्या परमो मूर्च्छया चमम् । पुत्रमृत्युममृत्येन यन्न दुःखेन पीडितः ॥३४॥
 ततः सः समासाद्य हाकारमुच्चर मुचम् । उच्चिप्य कृच्छृतो दृष्टिं तत्र सूर्यन्यपातयत् ॥३५॥
 विललाप च शोकार्तां गलदन्ताकुलेक्षणा । कुररीवैकिङ्कारण्ये हृदयाघातकारिणा ॥३६॥
 स्थितो द्वादशवर्षाणि दिवाना ॥ चतुष्टयम् । पुरो मे ह । पर चान्त न विधे^२ दिवसत्रयम् ॥३७॥
 कृतान्तापकृतं किं ते मया परमनिष्ठुर । येन^३ दृष्टनिधिः पुत्र सहसा विनियति ॥३८॥
 अपुण्यया मया नूनमन्यजन्मनि बालक । कस्या अपहतो मृत्यु तत्पत्यागतमद्य ते ॥३९॥
 मयापि पुत्र जातोऽसौ कथमेतो स्थितिं गत । ईदृशोऽपि प्रयच्छेद्वा वचमातिविनाशिनाम् ॥४०॥
 एहि वस निज रूपं प्रतिपद्य मनोहरम् । अमङ्गलमिदं मायाजीडनं न विराजते ॥४१॥
 स्फुटं यातोऽसि हा वस परलोकं विधेयं शतम् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुत्तममन्यथा ॥४२॥
 अनुष्ठितं त्वया मातुः प्रतिकूलं न जातुचित् । अपुना कारणोन्मुक्तं किमिदं विनयोन्मिक्तम्^४ ॥४३॥
 ससिद्धसूर्यहासरचेदजाविष्यस्त्वमत्र ते । अस्यास्त्यक् कः पुरो लोके चन्द्रहासवृत्तो यथा ॥४४॥
 भजतां चन्द्रहासेन पदं मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न चान्तं नूनमामविरोधिन ॥४५॥
 पुरुष भोपणेश्वर्ये निद्रोप नियमस्थितम् । कुशत्रो कस्य हन्तु त्वा मृतस्य प्रसूतं कर ॥४६॥
 अर्दावोपेक्षिता तेन भवन्तं निजतोदिता । क्व गमिष्यति पापोऽप्यी साग्रतः हतचेतन ॥४७॥
 विलापमिति कुवाणां कृन्वाहं सुतमुत्तमम् । जुजुम्बे विद्रुमच्छायलोचना करसद्वत् ॥४८॥

निष्प्रभ, तथा कुण्डलोसे युक्त शिर और एक ठूठके बीच पड़ा हुआ पुत्रना घड़ देखा ॥४३॥
 उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीडित नहीं हुई । सचेत होने पर हा हा कारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिर पर दृष्टि डाली ॥४४-४५॥ मरते हुए औसुआंसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीडित चन्द्रनरा, वनमें अकेली कुररीके समान विलाप करने लगा ॥४६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा । हाय दैव ! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥४७॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रको निधि दियाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥४८॥ निश्चय ही मुक्तपापिनीने अन्य जन्ममें किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥४९॥ हे पुत्र ! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥५०॥ आओ वत्स ! अपना मनोहर रूप धरकर आओ । यह तेरी अमङ्गल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥५१॥ हाय वत्स ! भाग्य वश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है । यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥५२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अतः यह अकारण प्रियका त्याग क्यों कर रहा है ? ॥५३॥ सूर्यहास सङ्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहेगा तो इस ससारमें चन्द्रहाससे आवृत्तकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा ? ॥५४॥ चन्द्रहास सङ्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास सङ्गको सहन नहीं किया है ॥५५॥ तू इस भयकर वनमें अकेला रहकर नियमका पाठन करता था किसीका कुञ्ज भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा ? ॥५६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है । अतः वह अविचारोपायी कहाँ जावेगा ? ॥५७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनराने

ततः सगान् परिच्यञ्च शोकं नष्टासन्तति । गृहान्वा परमं मोक्षमुपायं स्फुरितानना ॥८६॥
 सञ्चरन्ती तमुद्देशं स्वैर मागानुलक्षितम् । निरैकतं युवानां तौ चित्तबन्धनकारिणौ ॥८७॥
 विनाशमगमत्तस्या ब्राधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । आदेशं ह्य तस्याभूत् स्थाने रागरस पर ॥८८॥
 ततोऽखिन्तयद्देताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । कृणोमि नरमि युच्चैरुत्तमं दधती मन ॥८९॥
 इति सखिन्यः ससाधुकन्याकल्प समाश्रिता । हृदयेनातुरा यन्त भावगङ्गावतिना ॥९०॥
 हृसांय पद्मिनीघण्डे महिषांय महाद्रुहः । सत्यं सारङ्गवालेवं तत्राभूत् सान्निध्याणि ॥९१॥
 भञ्जनं करशावानां कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य क्रिलोद्धिग्ना पुत्रागस्य तलेऽवदत् ॥९२॥
 अतिदीनहृत्तारात्रा भूसरा वनरेणुना । दृष्ट्वा तां रामरमणा कृपावष्टभमानसा ॥९३॥
 उत्थायान्तिकमागत्य करामरौनतपरा । मा मैवारिणि भाषिषां गृहान्वा पाणिपटव्ये ॥९४॥
 किञ्चिन् किञ्च त्रपाभाजं मलिनाशुक्लधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभं वाच्यं रमणान्तिस्मानयत् ॥९५॥
 ततः पद्मो जगदीशता का त्वं स्वापदमेविते । एकाकिना वने कन्ये वरसाहातिदुःखिता ॥९६॥
 ततः सम्भाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेषणा । जगद् भ्रमरौघस्य बाबानुकृतिमेतथा ॥९७॥
 पुरोपेतम मे माता नि सञ्जाया धृति गता । तत्राचैनं च शोकैः सातोऽपि विनिपातित ॥९८॥
 साह पूर्वकृतात् पाराद् वन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्य वैराग्यं दधती परम् ॥९९॥
 परमं पापस्य माहात्म्यं यद्वाञ्छन्त्यपि पश्यताम् । अरण्येऽस्मिन् महाभागे व्यालैरपि विवर्जिता ॥१००॥

हायमे लेकर पुत्रका चुग्नन किया ॥८६॥ तदनन्तर एण एकमे शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गई और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख वमफने लगा ॥८६॥ वह मार्गने समीपमें ही स्थित उस स्थान पर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्तको धोषनेजाले दोनों तहज—रामलक्ष्मणकी देखा ॥८७॥ उन्हें देखते ही उसका बैसा तीन क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थान पर परम राग रूपी रस आ जमा ॥८८॥ इसने बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषामेंसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वहाँगी इस प्रकार उसके मनमें ऊँची तरङ्गे उठने लगी ॥८९॥ ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई । वह उस समय भाव रूपी गुफामें वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९०॥ जिस प्रकार हंसी कमलनीके मुण्डमे, महिषी (मैंस) महासरोवरमें और हरिणी धान्यमें अभिलाषामें युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम लक्ष्मणमें अभिलाषासे युक्त हो गई ॥९१॥ वह हाथकी अङ्गुलियाँ खटखटाती हुई भयभीत मुद्रामें पुत्राग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९२॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी भूलसे भूतरित थी ऐसी उस कन्याको नेत्र सीताना हृदय दयासे द्रवीभूत हो गया ॥९३॥ वह उठकर उसके पास गई तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी । तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़ कर पतिने पास ले आई । उस समय वह बुझ-बुझ ललित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण स्थिते हुई थी । सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९४-९८॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जङ्गली जानवरोंसे भरे इस वनमें अतिशय दुःखमें युक्त तू कीन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९६॥ तदनन्तर सम्भाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूहका अनुकरण करने वाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्खों आने पर मेरी माता मर गई और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपाजित पापके कारण वन्धुजनोंसे रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमें प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१. मन्द्यापस्फुरितानना (?) म० । २. यथा व्यामरणं कथयितुं स्थाने कञ्चित् आदेशा भवति तद्वत् । ३. माता ।

चिरान्मानुषनिर्मुक्ते भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः चयात् पापस्य कर्मणः ॥१०४॥
 जनोऽविदितपूर्वो यो जने वदन्ति सौहृदम् । अनादृतश्च मामीष्यं व्रजति त्रपयोऽभिक्तः ॥१०५॥
 अनादृत प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः । उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासीं क्रमोऽभिक्तः ॥१०६॥
 एवभूतापि नो वाक्प्राणान् मुञ्चामि सुन्दर । तावदधैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥
 न्यायेन मद्गता साध्वो सर्वोपप्लवजिताम् । को वा नेच्छति लोनेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितिम् ॥१०८॥
 श्रुत्वा तद्वचनं तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूर्णौ नरोत्तमौ ॥१०९॥
 सर्वेशास्त्रार्थबोधाभ्युत्थालिन हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्त प्रकाशते ॥११०॥
 निर्मुक्तदुःखनिश्वास गच्छामांति तयोर्दिते । पद्मानामादिभिः सोक्ता यथेष्टं कियतामिति ॥१११॥
 तस्यो प्रयातमात्रायां तदग्राह्यलीनताहृतौ । ससौतौ विस्मितौ वीरौ स्मरेवत्रो बभूवतुः ॥११२॥
 अन्तर्हन्त च सकुद्धा समुपत्य त्वावती । चाता चन्द्रनखा धाम निज शोकसमाकुला ॥११३॥
 शोभयापहतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेष्ण । पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
 उत्थायान्यापदेशेन रामदेवसकाशतः । भटवो पादपद्मान्यां वक्षामान्वेषणातुरः ॥११५॥
 अचिन्तयच्च रिक्तात्मा वाष्पन्याकुललोचनः । आत्मन्वनादन्तर्गतिरिति तत्प्रेमनिर्भरः ॥११६॥
 रूपयौवनलावण्यगुणपूर्णं धनस्तनी । मद्नाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
 आवागन्त्येव सती वस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपीडनाल्लेपे परिगृह्य हतात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके फलसे आज आप सजनों के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, बिना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा बिना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह कमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होने पर भी हे सुन्दर ! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरो इच्छा करो मुझ दुःखिनी पर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याण रूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थ ज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्यमैं अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी आकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार कुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गई ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके वहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमें व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त रिक्त था, जिनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप यौवन सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस

१. भूतापितो (१) म० । २. मुखति म० । ३. तस्यः अशालीनता अकुलीनता तथा हृतौ ।

४. उत्थायान्यापदेशेन म० । अन्यन्याजेन ।

‘अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः । साम्प्रतः शोकशयिना दह्यते मे निरङ्कुशम् ॥११६॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेन् ॥ यूपभ्रष्टा भृगोऽप्येव कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥११७॥
सञ्चिन्त्येति वृत्तान्तिस्तत्सामपरयन् समाकृतः । मेने तद्भक्तमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥११८॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तं कार्यमारम्भणीयम् ।
अविषयवृत्तचित्ताः तत्समासन्निमुक्ता दधति परमशोकं बालवदुद्धिहाना ॥११९॥
किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति वृत्तमतिरञ्जयौ विधेकस्य कर्ता रविरिव विमलऽम्बौ राजते लोकमार्गे ॥१२०॥

इत्यर्थे रविप्रेषाचार्यश्लोके पञ्चचरिते शम्भूतनघाभिरव्यानं नाम
त्रिचत्वारिंशत्तमं पर्वं ॥४३॥



सतीका मैंने आते तथा दिलनेके साथ ही स्तनोंको पीड़ित करनेवाला आलिङ्गन क्यों नहीं किया
॥११६-११८॥ उसके त्रियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे
च्युत होता हुआ इस समय शीनरूपी अग्निके द्वारा निर्वाण रूपसे जल रहा है ॥११६॥ यह
किस देशमें उत्पन्न हुई है ? किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्राकी धारक झुण्डसे जिह्वाकी हरिणी
के समान यहाँ कहाँसे आई थी ? ॥११७॥ इसप्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे
थे तथा उसे न ढेर कर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सन और से आकाश-
पुष्पके समान माना था ॥११८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्तके धारक
मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिये । क्योंकि जो
बालकोंके समान निर्जुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो
परम शोककी धारण करते हैं ॥११९॥ ‘यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिये ?
यह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्योंका अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख शान्ति प्राप्त
कर पाते हैं, इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विधेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल
होता हुआ लोकके मार्गमें सुरोभित होता है ॥१२०॥

इस प्रकार आर्ष नाममे प्रसिद्ध, रविप्रेषाचार्य कवित पञ्चचरितमें शम्भूकके
वधना उर्ध्वन उरगे वाला तैत्तलीमना पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥



चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छयाथ विध्वसते^१ खरवध्या मनोयवे । दुःखपूरं पुनः प्राप्तो भग्नरोधो^२ यथा नदः ॥१॥

चकार व्याकुलीभूता विविध परिदेवनम् । शोकपावकतप्तानां विवस्ता बहुला यथा ॥२॥

वहन्ती चापमानं तं क्रोधादैन्यस्थमानसा । विगलद्गरिनेनाम्बुदृपणेन निरेच्यत ॥३॥

ता विनष्टयति दृष्ट्वा धरणाधूलिधूसराम् । प्रकीर्णकेशसम्भारा शिथिलाभूतमेखलाम् ॥४॥

मखविलसतकलोरुकुचहार्यां सशोणिताम् । कर्णाभरणनिर्मुक्ता हारलावण्यवजिताम् ॥५॥

विश्लिष्टककुला अष्टस्वभावतनुतेजसम् । आलोडिता गजेनेव नलिन्या^४ मद्वाहिना ॥६॥

पप्रच्छ परिसाध्यैष कान्ते शोघं निवेदय । अवस्थामिमं केन प्रापितासि दुःखमन ॥७॥

अघोर्दुरष्टमं कस्य सृजुना काऽवलोकिता । गिरे स्वपिति कं गृहे मूढं क्राडति कोऽहिना ॥८॥

कोऽन्यं कृपं यमापन्नो देव कस्याशुभावहम् । मन्त्रोद्याम्नायय दास्ये शलभं कं पतिष्यति ॥९॥

धिक् तं पशुमम पापं विवेक्यन्मानसम् । अपवित्रसमाचारं लोकद्विष्यदूषितम् ॥१०॥

अलं रुदिता नान्येव काचित् प्राकृताबला । स्पृष्ट्वा येनासितं शसं वाडवाग्निशिखासमा ॥११॥

अद्यैव तं दुराचारं कृत्वा हस्ततलाहतम् । नेत्ये प्रेतगतिं सिंहो यथा नागं निरकुशम् ॥१२॥

एवमुक्ता विस्मयामो रुदितं कृच्छ्रतः परात् । अञ्जविलम्बालकाञ्चलान्गण्डानादात् सगदगदम् ॥१३॥

अथानन्तरं जय अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान दुःखका पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोक रूपी अग्निसे सतप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका यिलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु भर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूषणने देखा ॥३॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो प्रथिवीको धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह बिखरा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गई थी, जिसकी बगला जोंघों तथा स्तनोंकी भूमि नयोंसे चिन्तित थी, जो रुधिरसे युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चाली फट गई थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मर्दान्त हाथीके द्वारा मर्दित कमलिनिकी समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूषणने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हो ? ॥७॥ आज किसका आठवों चन्द्रमा है सृजुके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ मीठा कर रहा है ? ॥८॥ कौन अन्धा कुण्डमें आकर पड़ा है ? किसका देव अशुभ है ? और मेरी प्रज्वलित क्रोधान्गिमें कौन पतङ्ग वन कर गिरना चाहता है ? ॥९॥ जिसका मन विवेकसे रहित है जो अपवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनों लोकोंको दूषित किया है उस पशु तुल्य पापीको धिक्कार है ॥१०॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्रोके समान थोड़े ही हो बड़वानलकी शिप्राके समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥११॥ निरकुश हाथीको सिंहके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥१२॥ इस प्रकार कहनेपर कड़े कटसे रोना छोड़कर वह गद्गद वाणीमें बोली । उस समय उसके कपोल

१ चन्द्रनखा । २ भग्नरोध, भग्न रोधो यत्नासी । भग्नरोधो म० । ३ गौरिव । ४ मद्वाहिनी म० ।

वनान्तरस्थित पुत्र द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपरयन्त च केनापि प्रयप्रचिद्वृत्तमूर्धकम् ॥१४॥
 तत्र शोणितशराभिनि मृताभिर्विरन्तरम् १ प्रदीप्तमिव तन्मूले ॥१५॥
 प्रशान्ताऽवस्थिते हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । एतन्न समुपलभ्य प्रशस्तं पूज्यमन्वितम् ॥१६॥
 साह दुःखमद्वयं भावनं मायवन्ति । तन्मूर्धनं निधायान्ने निमग्नं प्रवेदिता ॥१७॥
 तावच्च तेन दुष्टेन शम्भूकवधकारिणा । उषगृहास्मि वाहुभ्यां कर्तुं किमपि चिन्विता ॥१८॥
 दन्ताऽपि मुञ्च मुञ्चेति धनस्पर्शवशज्जित । न मुञ्चति हतात्मा मा कोऽपि नाचकुलोद्गत ॥१९॥
 नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाह विचने वने । एतिका प्रापितावस्था क्षणला क्व पुमान् यत् ॥२०॥
 तथापि सुप्यरोपेण केनापि परिरक्षित । अविस्मिन्तचारित्रा कृच्छ्राय वि मृता तत ॥२१॥
 सर्वविद्याधराधाराल्लोकचोभकारण । आता मे रावण रवाह शक्तेणाप्यपरानित ॥२२॥
 एतद्वपणनामा त्व भर्ता कोऽपि विवर्ण्यते । मग्नप्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगत ॥२३॥
 उतस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहृत २ । स्वयं महापथो गत्वा दृष्ट्वा स्वापादिनं तुलम् ॥२४॥
 सम्पूर्णमुत्सर्गोऽपि पूर्वमारुह्योचन । वयं मापणाकारो मत्पप्रमार्कमस्मि ॥२५॥
 आगतश्च हृत भूय प्रविरय भवनं निगम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रे स्वस्वकालप्रधारणम् ॥२६॥
 तत्र कैचिद्भुतं प्रोषु सचिवा कर्कशाशया । राजकायमभिप्राय बुद्धा सेवापरायणा ॥२७॥
 शम्भूक साधिनो येन लङ्घनं च हस्तिनम् । भसावुपेक्षितो रानन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

आँसुओंसे भीग रहे थे तथा निरसरे हुए वालोंसे आन्ध्रगंधे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी यन्त्रे मध्यमे स्थित पुत्रको देखनेके लिए गई थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने फाट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निरस्ली हुई राधिकी धाराओंसे वशाथलका मूल भाग अग्निसे प्रज्वलितने समान निराई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको निसाने मारकर पूजाके साथ साथ प्राप्त हुआ वह लङ्घन ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखाका पात्र तथा मायसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर तिलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्भूकका वध करनेवाले उन दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन किया तथा बुद्ध अमर्त्य करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कृलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन यन्त्रमें नखा तथा दाँतोंसे क्षिप्त भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिये कि अजला कहाँ और लङ्घन पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सज होने पर भी किसी अग्रशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की ओर मैं चारित्रको अस्मिन्त रखती हुई बड़े क्रष्टसे आप उससे घचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके चोभका कारण है, और इन्द्र भी निसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम एतद्वपण नाम धारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैव योगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनराने उचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली एतद्वपणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह सृगके समान नेत्राको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख प्राप्त शत्रुके मध्याह्न कालीन सूर्यके समान भयकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र हा वापिस आकर और अपने भजनमें प्रवेश कर मित्राके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रगा की ॥२६॥ उनमेंसे कठार अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले विन्तने ही मन्त्री रानाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने

उत्तुरन्ये विवेकस्था नाथ नेदं लघुकियम् । सामन्तान् दौक्याशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२१॥
 यस्यासि नमुपशं सुसाध्यं स कथं भवेत् । तस्मात् सदातकार्येऽस्मिन्स्वरा^२ कर्तुं न युज्यते ॥२०॥
 गृहवाक्यानुरोधेन राक्षसाधिपमविदे । दूतं सम्प्रेषितस्तेन युगं लब्ध्वा महाजवं ॥२१॥
 राजधैर्यात् कुतोऽयं चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतं कार्यसाधनतत्परं ॥२२॥
 तीव्रक्रोधपरतामा तावच्च खरदूषण । अभागत पुनः पुत्रगुणप्रेषितमानसं ॥२३॥
 मायाविनिहतैः क्षुब्धैः तुभिर्भूमिगोचरैः । दिव्यसेनागणं क्षुब्धस्तरितुं नेव शक्यते ॥२४॥
 भिगिदं शार्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽयं कथं बाहुनिपते मम बाहुना ॥२५॥
 इत्थुश्च परमं विभ्रदभिमानं स्वराजितं । उपपातं सुहृन्मध्यादाकाशं स्फुरिताननं ॥२६॥
 तमेकांतपरं दृष्ट्वा सखद्वानि क्षणांतरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ॥२७॥
 तस्य राजसैन्यस्य श्रुत्वा वादित्रनिस्वनम् । क्षुब्धसागराधिपं मैथिलीं प्राप्तमागता ॥२८॥
 किं किमेतद्दहो नाथ प्राप्तमित्युदगतस्वरा । आलिङ्गितस्मिन् जीवेश यस्मां कल्पतरुं यथा ॥२९॥
 न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां परितान्त्य स । अचिन्तयद्य कथं भवेच्छब्दं सुदुर्धरं ॥३०॥
 एव किमेव सिद्धस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्तिदग्धुनायस्य पूरयत्यखिलं नमः ॥३१॥
 उवाच च प्रिये नूतनमा चतुरगामिनः । नादिनं प्रचलपथा राजहंसा नभोऽङ्गणे ॥३२॥

लगे किं जिसने शम्भूकको मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है । हे राजन् । यदि उसकी उपेक्षा की जायगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७-३०॥ कुछ दिव्यकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ । यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोंको बुलाओ और रावणको भी खबर दी जाय ॥२६॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक यशमें कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनंतर उसने गुरुजनोंके घटनोके अनुरोधसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लङ्काको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें बार बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेना रूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस शूरवीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोंकी वाञ्छा करती है । मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्राके धीचसे उठकर आकाशमें जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसाकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ । यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गई जिस प्रकार कि लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सात्वता देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्धर शब्द किसका होना चाहिए ? ॥४०॥ क्या यह सिद्धका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशको व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है वे मनोहर गमन

किं वा दुष्टदिज्ञा कचिदन्ये त्वदभयकारिण । समर्पय प्रिये चाप प्रलय प्रापयाम्यमूर् ॥४३॥
 अथासन्नवमागच्छद् विविशानुपमनुलम् । वातेरितानुवन्दाम निरीक्ष्य सुमहद्वलम् ॥४४॥
 जगाद् राघव किं नु गन्दीश्वरममा सुरा । जिनन्दान् वन्दितु मन्वा प्रस्थिता स्युर्महीनम् ॥४५॥
 आहो वशस्थलं दिवा हवा कमपि मानवम् । असिरस्ते शूरीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिण ॥४६॥
 दुरर्थास्तथा सया नूनं स्त्रिया मायाप्रवाणया । निजा सखीमिता पते स्युस्त्वम् दुष्टं प्रति ॥४७॥
 नात्र युग्मवशात् सैवमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा क्वचिं दाप्य कार्मुके च न्यपातयत् ॥४८॥
 ततस्तमभ्रलिं कृत्वा मुमितातनयोऽगदत् । अयि स्थिते न सहम्मस्तव ह्येव निराजते ॥४९॥
 सरस्य राजपुत्रीं च प्रत्यराति वज्राभ्यहम् । जेषा च सिद्धनादेन मम यथापदुजवेत् ॥५०॥
 इत्युक्त्वा कङ्कच्छं समुपात्तमहायुष । यादुधमन्युवत् श्रीमोक्षधमण प्रत्यरिस्थित ॥५१॥
 इष्या समुत्तमाकारं धीरं पुरुषपुत्रवत् । पर्यसृजन् निहाय स्या जलदा इव पर्वतम् ॥५२॥
 यत्किमुद्गारचक्राणि कुन्तवाग्मश्रु खेचरै । परिकर्णान्यमौ सम्यक् शस्त्रैरेव न्यवारयन् ॥५३॥
 निरुप्य सर्वशस्त्राणि येचरै प्रहितानि स । चन्द्रदण्डान् शरान् मारुत प्रवृत्ता इवामगादिन ॥५४॥
 एकैवैव सा तेन विद्यां गरमहाचम् । रुद्रा बाणैः कदिच्छेव विश्वानि स्वयतामना ॥५५॥
 माणिक्यशकलाङ्गानि राजमानानि कुण्डले । पेनु शिरसि छाद् भूमिं खसर कमरानि वा ॥५६॥
 शीलाभा द्विरदा पेनुरश्च सह महाभङ्गा । कुर्वते निनद् भीम सदृशद्वयस्य ॥५७॥

करनेवाले तथा पद्माको हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आँगनमें शब्द करते हुए जा रहे हैं ॥४८॥ अथवा तुम्हें भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४९॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, वायुसे प्रेरित मेघ समूहके समान दीखनेवाली बड़ी भारी सेनाको समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महा तेजके धारक देव अर्थात् पुरुष चिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वापको जा रहे हैं ॥४८-४९॥ अथवा घाँसे भिडेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह लङ्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायायिनी कोने हम लोगको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनाको मोहित किया है ॥४७॥ अत्र निकटमें आई हुई सेनाकी उपस्था करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कचच और धनुष पर नष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रिये ! मेरे रहते हुए आपका शोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा फाँटिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ । यदि मुझपर आपत्ति आयेगी तो मेरे सिद्धनाइसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कचचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुखकर रड़े हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, गुह्र, धक्, माले और बाणाका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोंको रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोड़नेकी तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोंकी वह बड़ी भारी सेना अपने बाणोंसे उस प्रकार रोक ली जिस प्रकार कि मृनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खोटी इच्छाका रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिकण्डासे युक्त तथा कुण्डलासे सुशोभित शत्रुआके शिर, आकाशरूपी सरोधरके कमलाने समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवी पर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१ लङ्गसमुपात्त म० । २ प्रत्यरि म० । ३ कृत्स्नया दृष्ट्या कदिच्छा 'का कत्तुपुष्पञ्चि' इति दुस्थाने कदादेश । ४ भूमि । ५ गगनसत्पावकमलानि इव शिरसि । ६ सद्गोष्ठ इत्यर्थ, सदृशवसासन म० ।

अयमस्य महान् लाभो निधनवस्तस्य तानभूत् । यदूर्ध्वं शरीर्योधान् विव्याध सहवाहनान् ॥५८॥
 अत्रान्तरे प्ररिप्राप्त पुण्यकस्थो दशानन । क्रुद्धं कृताशयो हन्तु शम्भूकथकारिणम् ॥५९॥
 अपरयच्च महामाहसम्प्रवेशनकारिणाम् । रत्नरस्यो समुद्रां साक्षाद्वर्त्मनि स्थिताम् ॥६०॥
 चन्द्रम वान्तवदनां बन्धूकामवराधराम् । तनूदरीं च लक्ष्मीं च बलजङ्घदलोचनाम् ॥६१॥
 महामकुम्भगिरिप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनाम् । यौवनोदयसम्पन्ना सर्वार्थगुणसद्गताम् ॥६२॥
 सहितामिव कामेन कान्तिज्या दृष्टिसायकाम् । निजा चापलता हन्तु सुखेनैव यथेप्सितम् ॥६३॥
 सर्वभूमिमाहाचारी रूपानिशयवर्तिनीम् । सीता मनोमवोदारज्वरग्रहणकारिणाम् ॥६४॥
 तस्यामाङ्गितमात्राया प्रोषोऽस्य प्रलय गत । अजायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गति ॥६५॥
 अचिन्तयच्च किं नाम जावित मेऽनया विना । अयुनस्यानया का वा श्रीर्मदायस्य धरमन ॥६६॥
 इमामप्रतिमाकारां ललिता नवयौवनाम् । हराम्यथैव यावन्नो कश्चिमान्नुपगतम् ॥६७॥
 भारण्यु प्रसन्न कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्निवदमादश वस्तु यत्कीपानत्वमर्हति ॥६८॥
 निवेदयन् गुणास्तावन्नेऽल याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् यथापयन्ना प्रियो भवेन् ॥६९॥
 वितय सकल लोके शशाङ्करनिर्मला । कान्तिर्वैवस्थिता साभूत् सैव सति मलीमसा ॥७०॥
 तस्मादकार्तिसम्भूतिमकुञ्चं स्वार्थतत्पर । रह प्रयत्नमारेमे लोको हि परमो मुक् ॥७१॥

यह-यह हाथी घोड़ों के साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको डसनेवाले यड़े उड़े योद्धा भयकर शब्द करने लगे ॥१५॥ उन सनको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले वाणोंसे योद्धाओंको उनके बाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमें बाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥१८॥

तदनन्तर इसी नीचमें शम्भूक के यथकर्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमें घैठकर वहाँ आया ॥ १६ ॥ आवे ही उसने महामोहमें प्रवेश करानेवाला तथा रति और अरतिको धारण करनेवाला साक्षान् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६॥ उस सीताको मुझ चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह धनूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोंको धारण करनेवाला था, कृशाङ्गी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ रिसा घड़े हाथीके गण्डस्थलके अग्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणासे सहित था ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती था मानो इच्छित पुष्पको अनायास ही मार्गनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो । कान्ति ही उस धनुष रूपा लताकी डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए बाण थे ॥६३॥ वह सनकी स्मृतिको चुगनेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक हा है क्योंकि मनरी गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जब तक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥७॥ यद्यपि इस कार्यको अल्पपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि द्विपानेरे योग्य है ॥६८॥ लोकमें अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुतासे प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त ससारमें व्याप्त होकर स्थित है सा यह ऐसा काम करने पर भलिन न हो जाय ॥७०॥ इसलिए अकारिणी

इति ध्यावालोकिन्या विद्ययोपायमजसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
 अयं स लक्ष्मणः स्यात्तु बहुभिः कृतो वनः । अयं स रामः सीतेय सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
 अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स घन्विनः । गरुमानिव गृध्रस्य सीतां पेशमिवाद्दे ॥७४॥
 जायावैरप्रदीप्तोऽयमजस्यः स्वरदूषणः । शय्यादिभिः जगदीशो मारविष्यति ॥७५॥
 महाप्रहृष्टपरस्य नदस्मोद्गाररहसः । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
 इति सखिन्य कामार्तः शिशुवन्स्वल्पमानसः । विषयन्मरणोपाय हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
 शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरेव महाहवे । कृत्वा सिंहद्वयं रामरामेति च मुहुर्वगी ॥७८॥
 तच्च सिंहवधुत्वा स्फुट लक्ष्मणमायितम् । प्रीत्यारतिर्मयात् पन्नो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
 निर्मास्यैर्जानकी सम्यक् प्रपञ्चावलयन्तभूरिभिः । चणमेक प्रिये तिष्ठ मा भैरिति सद्गदन् ॥८०॥
 वपस्थवमितां तावज्जटापू रण्य चनतः । किञ्चिदस्मद्गतं भद्रं स्मरत्युपकृतं यदि ॥८१॥
 हृत्पुष्पा वायमाणोऽपि शत्रुनैः क्रन्दनाकुलैः । सती मुक्त्वा अनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
 अत्रान्तरे समागत्य विद्यालोकेन कीदृशः । सीतामुत्तिष्ठ्य बाहुभ्यां नलिनीमिव धारणः ॥८३॥
 कामदाहगृहीतामा विस्मृताशेषमर्षीः । आतोषयितुमार्ते पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

उत्पत्तिको वचाता हुआ यह स्वार्थसिद्ध करनेमें तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी श्रेष्ठ चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अयलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया । राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम कुल आदि उभयका उसे ठीक ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस घनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके वैरसे अत्यन्त क्रोधका प्राप्त हुआ यह स्वरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षणभरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंकी गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा थालरुके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विषपानका निश्चय करता है ॥७७॥

अथानन्तर जन लक्ष्मण और स्वरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनादकर बार-बार राम ! राम ! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादकी सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरवियोंको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षणभर यहाँ ठहरो भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण करते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हार्थीके समान दोनों भुजाओं से सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा । उस समय

हियमाणामथ प्रेक्ष्य स्वामिना वनिता प्रियाम् । सरम्भवद्विदीप्ता मा समुत्पत्य महाज्व ॥८५॥

तादृशकोटिभिरयन्त जगद्युनंखलाङ्गलैः । दाशाननसुर क्षेत्र चकुर्यात्सकसमाद्रितम् ॥८६॥

परपैरक्षुदगानैश्च वातस्पाटिताशुके । जघान जवनेभूय सर्वकायमत् यत् ॥८७॥

इष्टवस्तुविधातेन रावण कोपवानथ । हत्वा हस्ततलेनैव मर्हतलमज्जगमत् ॥८८॥

ततोऽसौ परुषाघाताद् विह्वलाभूतमानस । कुर्वन् केकायित दुःखा खगो मूर्च्छांमुपागत ॥८९॥

ततो विर्विनमरोत्थ पुष्पक जनकात्मजाम् । जानान सद्गत काम रावण स्वेच्छया ययौ ॥९०॥

शाचापहतमात्मान रामरागातिशायनात् । सीता शोकयशोभूता विललापार्तनिस्वनात् ॥९१॥

तव रजपुरुषसकहृदया कृतरोदनाम् । इष्ट्वा साताममूत् किञ्चिद् विरागीव दशानन ॥९२॥

अचिन्तयच्च मे राधा वृतेऽन्यस्यैव कस्यचित् । यदिव रीति सक्तानु कलुष विरहाकुला ॥९३॥

कीर्तयन्ता गुणान् भूय साधूनामभिसम्मतान् । पुरापान्तरसम्बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥

तस्मिन्नेव खड्गेन गूढा व्यापाद्वाभ्यमूमः । अथवा न स्त्रिय हन्तु मम येत प्रवर्तते ॥९५॥

न प्रसादयितु शक्नुः क्रुद्ध शाप नरेश्वर । अभीष्ट लघुप्रयथा द्युतिर्वा कातिरेव वा ॥९६॥

विद्या वाभिमता लघु परलोकप्रियापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समाहितम् ॥९७॥

साधूनामप्रत पूरे प्रतमेतन्मयाजितम् । अग्रसन्ना न भोक्तव्या परस्य स्नामयेति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्म बुद्धिको भुला दिया था ॥८५-८६॥ तदनन्तर रामाकी प्रिय वनिताको हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधान्तिसे प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जगद्यु वेगसे आकाशमें उड़कर खूनसे गीले रावणके यक्ष स्थल रूपी रेतको अत्यन्त तीक्ष्ण अग्रभागकी धारण कनेवाले नख रूपी हलाके द्वारा जोतने लगा ॥८५-८६॥ तत्परचान् अतिराय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा बरजोको फाबनेवाले कठोर तथा वेगशाली पद्मके आघातसे रावणके समस्त शरीरको छिन्न भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पक्षी कें कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्परचान् जिना किसी पिघ्न बाधाके सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ाकर कामकी ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका रामसे अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगा ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त सा हो गया ॥९२॥ यह विचार करने लगा कि इसने हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही क्रुद्धपरदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उमाके विग्रहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस रजसे इस मूर्खाको मार डालें अथवा नहीं, रजोको मारनेके लिए मेरा चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्याकि तो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता । इसीप्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी प्रिया, मनको आनन्द देनेवाला भार्या अथवा और भा जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करनेके लिए समय लगता हा है ॥९६-९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह

रक्षितं प्रतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । मन्त्रिपत्यनुकूले कालेन मम सम्पदा ॥६६॥
 इति सन्निधौ तामङ्गात्तले स्वस्मिन्प्रतिष्ठितम् । प्रतीक्षते हि तत्कालं मृग्यु कर्मप्रचोदित ॥१००॥
 अथेवुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य मुमितातनयोऽपान् ॥१०१॥
 ॥ कष्टं देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपामत । एकाकी मैथिली मुक्त्वा विपिने त्रिन्मण्डले ॥१०२॥
 तेनोक्तस्त्वद्वचं श्रुत्वा प्राप्नोऽस्मि स्वरयाचितम् । सोऽप्योचद् गम्यतां प्राप्य न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
 सर्वथा परमोऽसाहो जय त्वं बलिन रिपुम् । इयुक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चल ॥१०४॥
 षण्मासिवर्तते यावत् तावच्च न हरयते । सातेति हतवधेनो रामरच्युतममन्यत ॥१०५॥
 हा सीत इति भाषिन्ना मूर्च्छितो धरणीमगान् । भयं तेन परिप्लवा सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
 सजा प्राप्य ततो दृष्टिं निक्षिपन् वृक्षमण्डले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादल्पन्तमाकुल ॥१०७॥
 अथि देवि वचं यातासि प्रयच्छ वचनं द्रुतम् । चिरं किं प्रतिहासेन दृष्टासि तस्मिन्पथा ॥१०८॥
 पृथागच्छ (प्र) यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानास्येव चिरं कोपात्तव देवि न मे सुरम् ॥१०९॥
 पुन हृतवन्निर्गन्धर्व प्रदेशं तु सुगङ्गाम् । गृध्रं मुग्धपुमैश्चिष्टं कृशरेकास्वन शनैः ॥११०॥
 ततोऽन्यत्तविषयगमांस्त्रियमाणस्य पक्षिणः । कर्णभाषं दृष्ट्वा प्राप्तस्त तेनामरकावताम् ॥१११॥
 तस्मिन् कालगते पथं शोकार्तं केवले वने । विद्योमद्दहमव्यास पुनर्मूर्च्छामशिश्रियत् ॥११२॥

नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥८८॥ इसलिए इस प्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ संभन है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल ही जावेगी ॥६६॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटा कर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर यागरूपी जलकी धाराभासे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! यद्ये तु रक्षकी यात है आप बिष्णोसे व्याप्त वनमें सीताको अपेक्षी छोड़ इस भूमिमें किस लिये आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइये आपने अच्छा नहीं किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुकी सन प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह कर शङ्कासे युक्त तथा चञ्चलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापिस चले गये ॥१०४॥ जब राम चणभरमें यहाँ वापिस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ सा अथवा च्युत हुआ सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलङ्कित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥ तदनन्तर जब सजाको प्राप्त हुए तब वृक्षांसे व्याप्त वनमें इधर-उधर दृष्टि डाल हुये प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अनन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गई हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें पृथ्वीने मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमें भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे कँक करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें गमोकार मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ विद्योमद्दहमव्यास राम उस पक्षी

ममाश्वस्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टिं समाकुलः । दीनं ललाप 'नैराश्याद् भूतेनेजामानस' ॥११३॥
 रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकीं कष्टं हृत्ते दुष्करकारिणा ॥११४॥
 दर्शयस्तामभ्योत्सृष्टं हरन् शोकमशेषतः । को नाम बान्धववत् मे वनेऽस्मिन् परमेष्ठ्यति ॥११५॥
 भो वृषाश्रयपरुच्छाया सरोजदललोचना । सुकुमारादिका^१ भीरुस्त्रमावा वरगाभिनी ॥११६॥ ✓
 चित्तोत्सवकरी पद्मजोम्निमुखानिला । अपूर्वा योषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिद्व्रना ॥११७॥ ✓
 कथं निरुत्तरा यूषमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हतः । पुनर्मूर्च्छांपरीतात्मा धरणीतलमगमत् ॥११८॥ ✓
 ममाश्वस्य च सद्बुद्धो यज्ञावर्तं महापुनः । आयोप्यास्फालयन्मुक्तं दृष्ट्वापुनरित्यनम् ॥११९॥
 सिंहानां भोतिजननं नृमिहः सिंहनित्यनम् । सुमोच सुदुरत्युग्रमुक्कणद्विदधुतम् ॥१२०॥
 भूयो त्रिपाद्भाग्यं स्वकबाधोक्षरीयकम् । उपविश्य प्रमादं स्य शुशोच कलितं क्षणात् ॥१२१॥
 दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण भजता स्मरितां गतिम् । धर्मधरिषु भूदेन हारिता हा मया प्रिया ॥१२२॥
 मानुष्यं परिभ्रष्ट गहने भवसङ्केते । प्राप्नुमायद्रुत भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा ॥१२३॥
 प्रैलोक्ष्यगुणवद्वात पतितं निज्जगत्पती । लभेत कं पुनर्धन्यः कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥
 वनितामृतमेतन्मे कराङ्क्ष्य महागुणम् । प्रनष्ट सङ्गतिं भूयः केनोपायेन वास्यति ॥१२५॥
 वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तो कस्य दोषः प्रदीयते । मूलं मत्प्रागकोपेन क्वापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरने पर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमें पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११९॥ जन सचेत हुए तब सय ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा सिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयङ्कर वनमें छिद्र पारुर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अथ विछुड़ी हुई उस सीताको दिखवा कर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमें मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृषो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६-११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कह कर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११८॥ जय सचेत हुए तब कुपित हो यज्ञावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर दृष्ट्वाका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरेश्वर रामने बार-बार अत्यन्त तीव्र सिंहनाद किया । उनका वह सिंहनाद सिंहाको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९-१२०॥ पुनः विपादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तराङ्गद्वको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवणकर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुनः पाना कठिन है । अथवा समुद्रमें गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३-१२४॥ यह महागुणोंसे युक्त वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होने पर भी नष्ट हो गया है सो अयं पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमें किसे दोष दिया जाय ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह चेचारी वही पत्नी

अग्नये निमनुयेऽग्निमन्मुनेयं प्रमाद्य च । दृष्ट्यामि दृष्ट्यापारो यो मे वार्ता निवेदयेत् ॥१२०॥
 इयं ते प्रागनुयेति येन श्रवणयोः परम् । कुशाग्रद्वारा को मे वक्ष्यामृन्दिना ॥१२१॥
 दयापारोदराः कोऽग्निम् लोके पुरुषपुङ्गवः । यो मे मितावनो कान्तो दग्धयेदक्षितिम् ॥१२२॥
 हृदयागारमुदीर्य कान्ताविरहवदिता । उद्गन्तव्यदानेन को मे निर्वापयिष्यति ॥१२३॥
 इत्युत्था परमोद्विक्तो महानिहितलोचनः । अयं ह्यहं किमपि प्यायन्त्यसौ निश्चलरिपुः ॥१२४॥
 अथ ना यन्तदूरम्यन्वयाः कोऽस्वर्गं कथम् । ममाकर्ण्य दरा सगर्वा श्रवणं च न्यवापयत् ॥१२५॥ ✓
 अविन्नपदमुप्यादेऽन्त्यमे गन्धमुचिन्तय । किमिदं पङ्कजवनं भवेत्तानां कुतूहलम् ॥१२६॥ ✓
 दृष्टयं मनोहारि मन्नानुसुममङ्गलम् । स्यात् इतिनयेतोऽस्याः कदाचिन्मगमायकम् ॥१२७॥ ✓
 जगाम च तमुदरा व्याघ्रकादमुदरा । मया विना क्व वार्ताति पुनर्द्वेगमागमत् ॥१२८॥ ✓
 भो भो महोपरागेश ! धातुभिर्विविधैश्चिन्त । मृतुर्द्वेगमयस्त्वं पद्मान्यः परिदृष्टये ॥१२९॥ ✓
 विपुलस्नननग्राहा गिबोद्यो हसयामिनो । सज्जितग्या भवेत् दृष्टा मीता मे मनसः प्रिया ॥१३०॥ ✓
 दृष्टादृष्टेति किं वक्षि मूढि मूढि क मा क मा । केवल निगदयेय प्रनिरादोऽप्यमोदराः ॥१३१॥
 इत्युत्था पुनरप्यासीत् किमदृष्टेन बोदिता । कृतान्तराधुना बाला ममामया मती मती ॥१३२॥ ✓
 षण्डीमिमालयाऽप्यन्त येगव्याविरेक्या । कान्ता हता भवेद्यथा विषेऽ दुग्निपक्षुपा ॥१३३॥ ✓

गई है ॥१२६॥ मैं पापाचारी इस निर्जन वनमें जिसके पास जाकर तथा उसे प्रमत्त कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ “यह तुम्हारी प्रागनुल्य प्रिया है” इस प्रकार अगृतको प्रदान करनेवाले यचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन क्याल श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी मुनकुमाती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिगला सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलने हुए मेरे हृदय-रूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कह कर जो परम उद्देगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥

अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चन्वीका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उम दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धर्वसे सूचित होनेवाला कमल धन है सो क्या वह कुतूहल वरा उस कमल वनमें गई होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके पृथ्वीसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उमका पहलेसे देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षणभरके लिए उमके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चकवी थी । फिर ‘मेरे बिना यह कहाँ जाती है’ यह विचारकर वे पुनः उद्देगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्यकर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्नासे नम्रीभूत है, जिसके ओठ विश्वके समान हैं । जो हंसके समान चलता है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनकी आनन्द देनेवाली मीता क्या आपने देयी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हों देरों हे देरों हे तो यदाभी वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती बाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गई

किंवाऽप्यन्तर्धुपातेन नितान्तसूचेतसा । 'हमादिणा भवेदमुक्ता साधुवर्गस्य वत्सला ॥१४१॥
 पशोर्भीमैककार्यस्य मिहस्योन्नेसरस्य सा । श्रियते दृष्टिमात्रेण नखादिस्पर्शनाद्रिना ॥१४२॥
 भ्रान्तं मम मृधे भीमे लक्ष्मण मशय श्रितः । सीतया विरहश्चाय तेन जानामि नो रतिम् ॥१४३॥
 जौवलोरुमिम वेदिं सखल प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१४४॥
 दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं यत्राप्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१४५॥
 खञ्जपादस्य स्वण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्खलितस्यावदे पातः प्रायोऽनयां बहुत्वगाः ॥१४६॥
 ततः पर्यन्तं विपिने पर्यन्मृगगुरुमतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१४७॥
 अयन्तरीनवदनः कृत्वा निर्वप्य धनुर्लताम् । सितरत्नवर्णपटञ्चिन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१४८॥
 भूयो भूयो बहु ज्वायन् जगनिश्चञ्चिप्रहः । निराशतो परिप्राप्तः मूकारमुत्तराननः ॥१४९॥

अतिरचिराच्छुन्दः

महानरानिति पुरदुःखलक्षितान् पुराहृतादमुकृतकर्मजृम्भणात् ।

अहो जना भृशमवलोक्य द्रव्यता मतिः सदा जिनवर्धनकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिन प्रकारकी इच्छा प्रियाको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी बड़ी तोहफे तरफ़ें
 छठ रही हैं । जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें बिबेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रियाको
 नहीं हर लिया हो ॥१३६-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूरसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक
 किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको रखा लिया है ॥१४१॥ जिसका कार्य
 अत्यन्त भयकर है तथा जिसकी गर्दनके घाल रखे हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नरप्रादिके
 स्पर्शके बिना ही वह मर गई होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है
 और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥
 मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार
 शून्य दशाका प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जब तक
 मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है । अहो ! यह
 दुःख रूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥ प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लंगड़ा होता है
 उसीमें थोटा लगती है, जो घृत्त तुपारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिमलता
 है वही गर्तमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण
 कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थान स्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए । वह
 वन उस समय मौताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुग्ध अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़
 रख्या था ऐसे गम धनुषको ढांगी रहितकर शृंगिणी पर पड़ गये ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर
 तक ध्यान करते रहते थे, जग-जगमें उनका शरीर निरचल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे
 तथा मूकार शब्दसे उनका मुग्ध शब्दाश्रयमान हो रहा था ॥१४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि
 अहो जना ! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके उदयमें बड़े-बड़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी

न ये भयप्रभवविकारमहेते परादुमुखा जिनवचना-पुरामने ।
चराधृमात् शरणविवर्तिनामन् तदप्यन् स्वहृत्परि मृदुमह ॥१५१॥

इत्यार्षे रसिपेणाचार्यश्रोके पद्मपाठे मीनाहरणुरामविनायाभिधानं
नामचतुश्चत्वारिंशत्तम पर्व ॥१५१॥



देव, जिनेन्द्र कथित धर्ममें सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥ जो मनुष्य समाज मध्यर्था विकारोंकी
संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोंसे उपामना नहीं करते हैं, उन शरणरहित तथा
इन्द्रियोंके बशोभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोक्तजित कर्मरूपी दुःख मृत्यु सदा मंजस करना
रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्षे नामस प्रसिद्ध, रसिपेणाचार्य रचित पद्मचरितमें मीनाहरणु और राम
विनायका वर्णन करनेवाला चराधर्मपर्व समाप्त हुआ ॥१५१॥

पञ्चवत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे^१ प्रातः पुरंशिष्टो विराजितः । समेतः सचिवैरशूरैः सन्नद्धः शस्त्रसकुलः ॥१॥
 एकाकिनमसो ज्ञाता युद्धमान महानरम् ।^२ स्वार्थससिद्धिसमृतिं दीप्यमान महौजसा ॥२॥
 जानु चित्तितले न्यस्य मूर्द्धन्यस्तकरद्वयः । अन्नवादिनि नम्राङ्गः परम विनय वहन् ॥३॥
 नाथ ! भनोऽस्मि ते किञ्चिद्विज्ञाप्य श्रूयता मम । त्वद्विधाना हि ससर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
^३ कृतार्थभाषणस्यास्य कर विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ मार्भेर्गारिण्यबोचत लक्ष्मणः ॥५॥
 ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसङ्गतः । जगाद् वृणसञ्जातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥
 महाशक्तिमिम शत्रु स्वमेक विनिवारय । रणाजिरे भटान् शेषान् निधन प्रापयाम्यहम् ॥७॥
 इत्युक्त्वा 'दीपण सैन्य तेन शोघ्न विराजितम्' । अधावद् बलमपैषं प्रहृल्लदेतिसंहतिः ॥८॥
 उवाच च चिरात् सोऽहं चन्दोदरनृपात्मज । प्राप्तो विराधितः स्वधातो रणातिभ्यममुत्सुकः ॥९॥
 वृक्षानी गम्यते साधु स्थायिता युद्धरौण्डिकैः । अथ तद्वः प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥
 इत्युक्ते वैरसम्पन्नो भटानामतिसङ्कुलः । बभूव शस्त्रसम्पातः सुमहान् जनमक्षयः ॥११॥
 पक्षय पक्षिभिर्हन्ता सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमे जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देर महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयकी धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिये क्योंकि आप जैसे महापुरुषोंकी संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी-वात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे रखे हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महा आश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणामकर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आँगनमे जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने सामने जाकर कहा कि मैं राजा चन्दोदरका पुत्र विराधित युद्धमे आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल वाद आया हूँ ॥९॥ अब कहीं जाइयेगा ? जो युद्धमे शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह रखे हो जायें । आज मैं आप लोगोंको वह फल दूँगा जो कि अत्यन्त दारुण-कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमे वैर भरा तथा मनुष्योंका सहारा करने-वाला बहुत भारी शस्त्रोंका संपात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके

१. नगरे म० । २. शरीः म० । ३. स्वार्थसम्पद् विसम्भूति म०, व० । ४. कृतार्थभाषण-म० । ५. दूषणस्येद दीपणम् । ६. विराधितः क०, ख०, ब० । ७. सम्पन्न म० । ८. प्रन्वल्हन्निमततिः । ९. वच-सेन्नाह म० ।

परम्परकृताङ्गानैरति महिषिभिर्मते । सकुलजनिने युद्धे 'कृतान्धोऽन्यमहायुधं ॥१३॥
 रगाजिरे पर तेजो भयमानो नय नयम् । दिव्यकायैः सुमुख्य शरद्वज्रदिग्गजर ॥१४॥
 परेण सह सग्राम चक्रे परमभैरवम् । लक्ष्मीधर गुनामीर स्वामिनेषु सुगद्विषाम् ॥१५॥
 ततः शोषपरोत्तेन स्वरेण सरतिस्त्वनम् । अत्रात्रि लक्ष्मण 'मरये शुकुल्लोहितधनुषा ॥१६॥
 ममामजमुदार्मान् हत्वा परमचापल । कान्ताङ्गुली च समूय पाषाणाणि क गम्यते ॥१७॥
 अथ ते निशितैरङ्गैर्वीजिन नागयाम्यहम् । कृत्वा तथात्रिध कर्म फल तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
 भय-तनुत्र निर्लज परस्त्रामह्नोलुप । ममामिमुषता गत्वा परलोकं प्रचारात् ॥१९॥
 तनस्यै परुषावैर्यै समुदापितमानस । उवाच लक्ष्मणो गात्रं पूषन् सकल नमः ॥२०॥
 किं वृथा गर्जामि भुद्रु दुं श्वेचर शुना सम । बह मयामि तत्र तत्र यत्र ते ननवां गत ॥२१॥
 हनुकवास्थित स्वोक्ति विरथ गच्छाम्यहम् । चकार लक्ष्मण क्षिप्रवारकृत्वा च नि प्रभम् ॥२२॥
 तनोऽमी पतित शोषवा नयस्य कोऽलाहित । प्रचालेऽत्र पुण्येषु प्रदग्धस्त्रिप्रद ॥२३॥
 स्वह्नाङ्गुलीदेहेदृश सीमिति प्रचयावन । अस्मिन् समारम्भे सोऽन्यथाभिमुख वर्या ॥२४॥
 ह्यासत्र तथात्मास्त्रि युद्ध भवानकम् । मुमुक्षु स्वस्थिता देवा मयुराद्वा मयुर्नस्त्वनिदम् ॥२५॥
 तावद्विरमि सशुद्धो हृष्यत्य न्यपातयन् । सूर्यहास यथापांश्व लक्ष्मणोऽवतविप्रद ॥२६॥

साथ भिड गये ॥१७॥ तदनन्तर जो परम्पर पर दूसरेकां गुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे जो अत्यन्त सकुल-व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शस्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उपर महायुद्ध हो रहा था इधर रणमें मैदानमें नरीन नरान परम तेजो धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर जागासे दिशाओं और आकाशमें व्याप्त करना हुआ सरसे साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि उन्ट दैत्यन्द्रके साथ करता था ॥१३-१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त पर चञ्चल और लाल-लाल नेत्राका धागण करनेवाले सरदूपणने कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पारी 'मेरे निर्भीक पुत्रको मार कर तथा मेरी लोके स्तनोका स्पर्शकर अब तू कहाँ जाता है ? ॥१६-१७॥ आज तादृश जागासे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्षुद्र ! निर्लज ! परस्त्री सगर्वा लोलुप ! अब मेरे सम्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रगीत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाश-को गुनाते हुए निम्नांकित वचन कहे । उहाने कहा कि रे क्षुद्र त्रिचापर ! तू कुत्ते समान व्यर्थ ही क्या गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वही तुम्हें पटुचावा हूँ ॥ २०-२१ ॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित सरदूपणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यदे कीर्ण होने पर चञ्चल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल लाल दीखनेवाला सरदूपण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ गन्धका त्रिणोसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा सरदूपण लक्ष्मणकी ओर दीडा और लक्ष्मण भी सूर्यहास रत्न सींचकर उसके सामने जा टटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निन्दसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा मर्गमें स्थित दोनोंने साधु साधु-धन्य धन्य शब्दोंके साथ साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अरुणित शरीरके धारक लक्ष्मणने उपित हो अर्धदूरगमने तिरपर

१ त्रि म० । २. कृतान्धोऽन्य म० । ३ युद्धे । ४. दुष्ट श्वेचर दुःश्वेचरान्द्रो हे दुःश्वेचर ।
 ५. लीनदेह म० । ६ चित्रयुद्ध म० ।

निर्जीव पतित क्षोण्यां यभूय ररदूषण । आलेख्यरविसङ्काशो यद्वत्स्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥
 अथवा दयितो रत्ना निक्षेष्टाभूतविग्रहः । रत्नपर्वतगण्डो वा दिग्गजेन निपातितः ॥२८॥
 अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषणः 'खारदूषणः । विरथं कर्तुमारभे चन्द्रोदरवृषात्मजम् ॥२९॥
 लक्ष्मणेनेपुगा तावद्गाढ मर्मणि ताडितः । घूर्णमानो गता भूमि समाश्वसितमाप्नुत ॥३०॥
 दत्वा विरावितायाथ तद्वत् खारदूषणम् । प्रययो लक्ष्मणः प्रोक्तः प्रदेश पद सञ्चितम् ॥३१॥
 यावत्पर्यति त सुप्त भूमौ सीताविवर्जितम् । जगो चोत्तिष्ठ कि नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥
 उपाय महसा दृष्ट्वा लक्ष्मण निर्मग्नः ॥ किञ्चि प्रमोदमावातः परिव्वजनतत्परः ॥३३॥
 जगाद् भद्र मो वेति देवा केनापि कि हता । उत मिहेन निर्मुक्ता न दृष्ट्वा गयेपिना ॥३४॥
 पाताल कि भवेन्नोता नम शिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
 तत शोऽपरातादो विपादा लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्वेगानुवन्धेन न किञ्चिदपि कारगम् ॥३६॥
 नून दैत्येन केनापि हता केनापि जानकी । भ्रियमाणामिमा लक्ष्ये कर्तव्योऽत्र न मशयः ॥३७॥
 परिसान्त्वोत्तमैवाश्वैर्विबिधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भया तस्य मुखं प्राचालयन् सुधाः ॥३८॥
 श्रुत्वा तावद्वत् तार शब्दमुत्तानिताननः । अष्टच्छत् शोधर रामः सम्भ्रम किञ्चिदापयन् ॥३९॥
 किमेवा नर्दति क्षोणी गगनाक्किमय ध्वनिः । कि कृत भयता पूर्व शयुशेष भयोऽभिमतम् ॥४०॥

यथार्थ नामवाला सूर्यहास रङ्ग गिराया ॥२६॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्र लिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव ररदूषण गंसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक रण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर ररदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथ रहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमें बाणसे इतनी गहरी चौद पहुँचाई कि वेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर ररदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता सहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा । देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! ठो और कहो कि सीता कहाँ गई हैं ? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिङ्गन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र ! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहेने खा लिया है । मैंने इस घनमें बहुत गोजा पर दोखी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमें ले गया है या आकाशके शिखरमें पहुँचा दी गई है अथवा वह सुकुमारान्नी भयके कारण विलीन हो गई है ॥३५॥

तदनन्तर जिनका शरीर मोधसे व्याप था ऐसे लक्ष्मणने विपाद युक्त होकर कहा कि हे देव ! उद्वेगों परम्परा चढ़ाने में कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ना है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गई है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको भ्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उग्र शब्द सुन कुछ-कुछ संभ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुखपर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशमें यह शब्द आ रहा है ? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शयुको जेप रहने दिया है ? ॥३९-४०॥

सुमित्रान्ततोऽश्वोचक्रायाऽत्र हि मदाहने । उपकारो महान् काये येवरग कृता मम ॥४१॥
चन्द्रोदरमुत साऽय विराधित इति ध्रुव । इत्येतो दैवनेनैव हिनेन परिर्दक्षि ॥४२॥
उनुविधेन महता उनेनाम्य मुचेतम । आमधुना महानय गन्ध धुतिमुगमात ॥४३॥
त्रिभुवनचतयोर्ध्यायन् कथेय वत्तत तयो । तात्रमहावलोपत परिप्राय विराधित ॥४४॥
ततो जयजयम्पान कृत्वा विरजिताङ्गलि । जगाद् यदरम्भामा प्रगने सवित्र समम् ॥४५॥
स्वामा ख परमोऽस्माभिश्चिरान् प्राप्ता नरोत्तम । अत प्रदायतामात्रा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
ह्ययुक्ता लक्ष्मणाऽभ्यागन् मायो शृणु सुवर्तनम् । गुरा कंचापि मे यथा कृता दुर्नयवनिना ॥४७॥
तथा विरहित मोऽय पद्म गाङ्गवराकृत । यदि नाम स्वजेन् प्रागल्भ्यवद्वि विगाम्यहम् ॥४८॥
यत्प्रागवदायतामात्र भद्र प्राणानवेहि मे । ततोऽत्र प्रवृत्ते किञ्चिदर्थेभ्य कालेन परम् ॥४९॥
ततो नतानन किञ्चिन्मगप्रभुरित्तयन् । कृत्वापि भ्रममम मे कष्टमात्रा न पूजिता ॥५०॥
मुख सज्जता रनेष्ट नानावनविहारिणा । परयात्रा योजित कथे कथ मशयगह्वर ॥५१॥
दुःस्वार्णवतः प्राप्ता या या गृह्णाम्यह कृतम् । दैवनाम्मुखयने सा मा कृन्म विविधज जगत् ॥५२॥
तयाप्युमाहमाश्रित्य कर्तव्य समुदागमम् । वरामि कुर्वता भद्रममत्र वाप्सवर्मनम् ॥५३॥
इति ध्यात्वावहार्य भगवन्नुमाहमस्तुनम् । जगाद् सज्जितान् धारा वक्ष्या स्फुटतेजसा ॥५४॥
पद्मा महानरस्यास्य नाता यदि महातन्मम् । भयकारा गिरि वारि स्थल वा विपिन पुरम् ॥५५॥
गवेषयत य नेन सर्वांशसुखम् तत । यद्विचित्र कृताचारि महाभ्यामि महाभय ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणेने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समय पर मेरा उडा उपकार किया है । यह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारा दैवके द्वारा ही मानो अरुसर पर मेरे समाप भेजा गया था ॥४१-४८॥ उत्तम इन्द्रको धारण करनेवाला यह विद्याधर चार प्रकारकी वडा भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सा यह महान् शस्त्र उलाना मुनाई दे रहा है ॥४९॥ इधर निरस्त चित्तने धारक राम लक्ष्मणेने पाच जन तक यह कथा चलता है तब तक वही भारी सेनाके साथ विराधित यहाँ आ पहुँचा ॥४९॥ तदनन्तर विद्याधरके राजा विराधितने नम्रीभूत मन्त्रियाँ साथ साथ हाथ जोड़कर तथा जय जय शस्त्रका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्यामे उत्तम उत्कृष्ट स्वामा चिरकाल जाव प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमे मुझे आना दानिये ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहन पर लक्ष्मणेने कहा कि हे सज्जन ! सुनो किसी दुराचारीने मेरे अप्रज रामकी पत्नी हर लो है सा उसमे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोडते हैं तो मैं निश्चय हा आग्नेमे प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींने प्राणने साथ मजबूत किये हुए हैं इसलिए इस विषयमे कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरका राजा विराधित नीचा मुस्तकर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करने पर भी मेरी आराम पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले मुस्तसे दृञ्जानुसार निवास करता था कि स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोमे भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनका शरणमे सौंपा सो देगो ये स्वयं कष्टकारी सहायने गर्तमे पड रहे हैं ॥५१॥ दुःसरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस जिम लताको पकडता हूँ सो देवके द्वारा वही उहाँ लता उलाड द्या जाता है, जातरमे समस्त समार कर्मोके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भा मैं उत्साह धारण कर इनने इस उपस्थित कार्यको अरुस्थ करूँगा ॥५३-५४॥ इस प्रकार अतर्द्रमे विचार कर उत्साहको धारण करने हुए धार जार विराधितने तेज पूर्ण वचनोमे मन्त्रियाँसे कहा

१ अरुने, प्रथम म० । २ परिप्राप्त म० । ३ अग्रस्थ । ४ माहृमम० । ५ मज्जनुमाहनमनुमन् व० । ६ गजपता म० ।

इत्युक्तः समदोषेताः सत्त्वहा परमांजसः । नानास्वभाः खगा जग्मुर्दिशो दश यशोधिनः ॥५७॥
 अधार्कजटिनः सूनूर्नाम्ना रत्नजटी स्वभाः । खट्वा द्रागिति शुभ्राव दूरतो रुद्रितध्वनिम् ॥५८॥
 आशां च भजमानस्तत्माकर्णदिति निम्ननमः^१ । हा राम हा कुमारेति जलधेरुध्वैर्मग्नरे ॥५९॥
 'परिदेवननिरवान ध्रुत्वा त सपरिस्पुष्टम् । समुत्पपात त देश विमान यावदाचते ॥६०॥
 अरयोपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तोमिति विह्वलाम्^२ । वैदेहीं स समालोक्य यमाण क्रोधप्रतिः ॥६१॥
 तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधरायम् । कृत्वापराधमोदत्तं क त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥
 दयितां रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । मुञ्च शीघ्रमभीष्टं ते जावितं यदि दुर्मते ॥६३॥
 ततो दशाननोऽप्येनमाश्रीस्य परस्वप्नम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
 पुनश्चाचिन्तयदुद्धे^३ प्रवृत्ते सति विह्वला । मथानिरूपिता सीता कदाचित्पञ्चतां भजेत् ॥६५॥
 भावुलां^४ रत्नां चैतां परमप्याकुलामना । न व्यापादयितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येष नमश्चरः ॥६६॥
 इति सञ्जित्य सम्भ्रान्तध्वमौल्युत्तराश्वरः । 'स्वस्यस्य रत्नजटिनो बलीं विद्यामपाहरत् ॥६७॥
 भय रत्नजटी व्रतः किञ्चिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैरुल्कास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
 समुद्रजलमप्यस्थ कम्बुजोप समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्प्याङ्गपातो यथा वणिक् ॥६९॥
 निश्चलश्च शृणं स्थिष्व । समुपद्रुस्यायत भृशम् । कम्बुपर्वतमारुह्य दिशाचक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

किं इन महामानवकी पत्नी, महीतल, आकाश, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जाई गई हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सय ओरसे उसकी खोज करो । हे महायोद्धाओ ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४-५६॥ इस प्रकार कहने पर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेप-भूपासे सुशोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक रत्नधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण !' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अय तू कहा जाता है ? ॥६१-६२॥ हे दुर्बुद्धे ! यदि तुझे जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डल की बहिनकी शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति पर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होने पर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि यह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाय और यदि इस घबड़ाई हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार कर हड़बड़ाहट के कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे चलवान रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके तिलगोके समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज इव गया है ऐसे वणिग्से समान वह आयुषा अमृतत्व शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षणभर

१. यति निम्ननम म० । २. यति देवेन म० । ३. मतिविह्वलाम् म० । ४. प्रवर्तते म० । ५. रक्षितां म० । ६. रत्नधर म० । ७. कन्दनाय गन्धः ।

ततः समुद्रवानेन जिजिगृह्यमुपेयुग । अपनीतश्रमस्तेदः समाशरवामदुःखिनः ॥७१॥
येऽन्यन्येऽन्वेपणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तिनः । राघवस्याम्निक प्राप्ताः प्रणष्टवदनीजयः ॥७२॥
तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महीविन्यस्तच्छ्रुताम् । पद्मो जपाद् दार्षोणं निस्वस्य म्लानलोचनः ॥७३॥
निजां शक्तिममुञ्जद्भिर्भवतिः सातुन्वेचराः । अम्भकार्ये कृतो यतो दैव्यं ॥ प्रतिहृतकम् ॥७४॥
तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् । वाडवास्वगतं रत्नं करान् किं पुनरास्यते ॥७५॥
नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रावर्णाय फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥
विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं विहृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशुभा ॥७७॥
मन्यं ययानुबन्धेन लज्जोऽयं विधिरद्वृतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यकरिष्यति ॥७८॥
परिदेवनमारुप्ये कर्तुमेव नराधिपे । धीरं विराधितोऽश्वेचत् परिसान्त्वनपण्डितः ॥७९॥
गिरादमनुलं देव किमेवमनुसेवमे । स्वहृदरेव दिनैः परय प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
शोको हि नाम कोऽन्येव विरभेदो महत्तमः । नाशयन्माश्रित देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥८१॥
तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषमेवितम् । मयद्विधा विवेकानां भवनं चैवमुत्तमम् ॥८२॥
जीवन् परपति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि । ग्रहां हत्वमतिभद्रं कृष्णदापि न परपति ॥८३॥
कालो नैव विद्यास्य दीयतां कारणे मनः । भौदाम्नाम्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥८४॥

निश्चल बैठ कर धार-धार लम्बी साँस लेकर वह कम्यु पर्वत पर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतलवायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी बुद्ध संतुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी रोज करनेके लिए गये थे वे शक्तिभर रोज कर रामके समीप वापिस पहुँच उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जान कर म्लाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरों ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३-७४॥ अब आपलोग अपनी इच्छानुसार बैठिये अथवा अपने-अपने घर जाइये । जो रत्न हाथसे छूटकर घड़यानलमें जा गिरता है वह क्या फिर ब्रिस्तार्ह देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो बुद्ध कर्म मैने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरदर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुःख मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विपाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९-८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विपदा भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिए महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए आप जैसे उत्तम-पुरुष विवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धिका धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विपाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिये क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अरतीतश्रमस्तेदममाशरवामदुःखितः म० । २. यथा स्वेपणं म० । ३. वाडवास्या गत म०, य० । ४. विहृत् । ५. शरी म० । ६. उतामीन म० ।

विद्याधरमहाराजे निहने श्वरूपे । अर्थात्-रामनुप्राप्त दुर्न्तमवधार्यताम् ॥८५॥
 किष्किन्धेन्द्रजिह्वारी भानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिरा शोभणे भाम क्रूरकर्मा महोदर ॥८६॥
 पद्मभाषा महायोऽग नानाविद्यामहौषस्य । यास्यन्ति साम्प्रत शोभ मित्रस्वजनदु खत ॥८७॥
 नानाबुद्धमन्त्रेषु सर्वेऽस्मात् प्रकीर्तये । विजयार्धनगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिता ॥८८॥
 पवनभ्यामन म्यातो यस्य वानरलक्षितम् । केतु दूरात् समालोक्य विद्वन्वि^३ द्विपा गणा ॥८९॥
 तस्याभिमुखता प्राप्य देवयोगात् सुरा अपि । व्यञ्जन्ति विजये बुद्धि स हि कोऽपि महाशया ॥९०॥
 तस्माद्बुद्धि नत् स्थानमलङ्कारादयमाश्रिता । भामण्डलस्वसुर्वार्ता स्वस्थाभूता लभामहे ॥९१॥
 तद्धि न पुरमायातम-वयेन रमातले । तत्र दुर्गे स्थिता कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
 ह्युपमे चतुरैरथैश्चनुभिर्बुद्धमुत्तमम् । भास्वर रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
 शुशुभाते तदा यन्त न तो पुरुषसत्तमो । सातया रहितो सम्यग्दृष्ट्या घोऽशमाश्रित ॥९४॥
 चतुर्विंशमहासैन्यसागरेण समावृत । शरावानघ्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपा मज ॥९५॥
 तावद्यन्धनगासूनु नगरद्वारनि वृतम् । कृतबुद्ध पराजित्य प्रविष्ट परम पुरम् ॥९६॥
 तत्र देवनिवासाभे पुरे रजसमुज्ज्वले । यथोचित स्थित चक्रुः श्वरूपणवेशरमि ॥९७॥
 तस्मिन्मरसन्नाभे भवने रघुनन्दन । सीताया गमनारम्भे पति तु न मनागपि ॥९८॥
 अरण्यमपि रम्य व याति कान्ताममाणमे । कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं वि-^४ष्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरा के राजा श्वरूपणके मारे जाने पर दूसरी बात हो गई है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धपुरी का राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, शोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि यड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याभाके धारक तथा महा तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र-स्वजनदु खत होकर बुद्धि नाना के दु खसे शोभका प्राप्त होंगे ॥८६-८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारा बुद्धिमे सुश्रा प्राप्त किया है तथा विजयार्ध परत पर रहनेवाला विद्याधराका राजा भी इन्हें वश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनज्वरका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंने मुण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ देव योगसे देव भी उसका सामना कर निजकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमे वह कोई अदुत महा यशस्वी पुण्य है ॥९०॥ इमल्लि उठिये अलङ्कारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय लें वहीं निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी बहिनका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ वह अलङ्कारपुर पृथिव्याके नीचे है और हम लोंगाफी वश परम्परासे चला आया है उसी दुर्गमे स्थानमे स्थित रहकर हम लोंग यथा योग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोडासे जुते हुए उत्तम देदीप्यमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र्य सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेना रूपी सागरम घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनसे आगे स्थित था ॥९५॥ जब तक वह पहुँचा तब तक चन्द्रनल्लामा पुत्र नगरके द्वारसे निकल कर युद्ध करने लगा मा उसे पगजित कर वह परम सुन्दर नगरने भास्वर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवाके निवास स्थानने समान ग्लासे द्वाप्यमान था । वहाँ जाकर विराधित तथा राम लक्ष्मण श्वरूपणने भयनमे यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भयन देवभयनके समान था ता भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रक्ष मात्र भी धैर्यसे प्राप्त नहीं होते थे— यहाँ उन्हें माताके बिना मिलहुड भा अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ आगे ममाणमे वन भा

१. मा मन्त्रादयः १२ म० । २. जिह्वारि म० । ३. गण म० । ४. स्वयन्ति विषय म० ।

५. मन्त्रारि १२ म० । ६. समावृत म० ।

अर्थकान्ते गृहस्थास्य तरुण्यविराजिते । प्रासादमनुल र्वाच्यं सप्तर रघुतन्दन ॥१००॥
तत्राहंन् प्रतिमा द्रष्टुं स्नप्यकृताचनम् । क्षणविस्मृतसन्ताप पद्मो धृतिमुरागत ॥१०१॥
इतस्ततश्च तत्रार्चं वीक्षमाण कृतानति । किञ्चित् प्रशान्तदु खोमिरवतस्थे रघूत्तम ॥१०२॥
आर्घ्यावलगुप्तश्च मुन्दो माया समन्वित । पितृधाम्निविनाशन शोकां दृष्ट्वा मुपाविशन् ॥१०३॥

शालिनीचन्द्रः

एव सद्भास् सावसानान् विदित्वा नानाहु र्यै प्राणोपायुपायै ।
विघ्नयुक्तान् मूर्तिभिर्दुर्निवारैरिच्छा तेषु प्राणिनो मा कुरुष्वम् ॥१०४॥
यद्यप्याशार्च्यकमानुभावान् सक्त कर्तुं जायते प्राणमायाम् ।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद्गन्ता नाश सा रवे शर्वराव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्राक्ते पद्मपुराणे सीतारियोगदाहाभिधान नाम
पञ्चचत्वारिशतम पत्रं ॥४५॥

रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ विन्ध्य वनके समान जान पड़ता है ॥६६॥

अथानन्तर वृत्तोंके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमें अनुपम मन्दिर देवकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमें रत्न तथा पुष्पासे जिसकी पूजा की गई थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शनकर वे क्षणभर सब सत्ताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमें इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थी उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे । जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरे कुछ शान्त हो गई थी ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ साक्षात् चन्द्रनग्राके साथ लङ्कामें चला गया ॥१०३॥ गीतम ररामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोंसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं तेमें इन परिग्रहोंकी नश्वर जानकर हे भव्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्ण कर्मत्रयसे प्रागिर्याके परिग्रह सचित्त करनेकी आशा होती है तो भी मुनि समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्तकर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्प नामने प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य रचित पद्मचरितमें सीताके रियोगजन्य दाहका वर्णन करनेवाला पैतालीसवाँ पत्र समाप्त हुआ ॥४५॥

पट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

सत्रासावुत्तमे तुत्रे विमानशिखरे स्थित । रवेर रवेर प्रबन् रवे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
 मांताया शोकतसाया स्थान धांष्यास्यपद्मम् । रतिरागविमृतामा दध्यां किमपि रावण ॥२॥
 'अधुदुदिनवक्त्राया सांताया कृपण परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृष्ठत पारवतोऽग्रत ॥३॥
 भारस्यायत्यन्तमृदुभिर्दंतोऽह कुमुमेपुमि' । प्रिये यदि तत साध्वि नरहत्या भवेत्तव ॥४॥
 वक्त्राविन्दमेतत्ते सक्रोपमपि सुन्दरि । रापते चारुमावाना सर्वथेव हि चारुता ॥५॥
 प्रसीद देवि भृयास्ये सकृच्चभुविर्धीयताम् । स्वच्छक्रान्तितोयेन स्नातस्यापितु मे धम ॥६॥
 यदि दृष्टिप्रसाद मे न करोषि वरानने । एनेन पापघ्नेन सृष्ट्वा साड्य मस्तके ॥७॥
 भवत्या रमणोद्यामे कि न जातोऽस्म्यशोकक । सुलभा यस्य ते रक्षाध्या पादपद्मतलाहति ॥८॥
 कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिश परय प्रयाताऽस्मि विषदुर्ध्व रवेरपि ॥९॥
 कुलपर्वतसयुक्ता समेर सहसागरम् । परय चोणोमिमा देवि शिखिनेव त्रिनिमितात् ॥१०॥
 पुष्पमुक्ता सती सांता पराचोनिष्यवस्थिता । अन्तरे तुंगमाधाय जगादाक्षिताक्षरम् ॥११॥
 'अवसर्प ममाङ्गानि मा स्पृश पुरुषाधम । निम्नाक्षरामिमा वाणीमोदरी भाषसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखर पर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमे सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्प्रची रागसे जिसकी आत्मा निमूढ हो रही थी ऐसा रावण शोक-सतप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—'उसी ओर देखा रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अभ्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे पीछे तथा बगलमे रक्षा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ा प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोंमे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुम्हे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द शोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है न्याकि जो मुन्दर हैं उनमे सभी प्रकारसे सुन्दरता गहवी है ॥५॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुख पर एक बार च्लु ढालो । तुम्हारे च्लुकी कान्ति रूपी जलसे नहाने पर मेरा सन भ्रम दूर हो जायगा ॥६॥ हे मुमुक्षु ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—और उठाकर मेरी ओर नहीं देखाती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तक पर आपात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर न्यानमे अशोक पृष्ठ क्या नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे दस चरण-कमलका प्रशसनीय तल प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छत पर बैठकर भरोसेमे जरा दिशाओंको नो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमे चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलो, मेरा पर्यंत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किमी कारीगरके द्वारा ही बनाई गई हो ॥१०॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देखकर बैठो हुई सीता बीचमे गृण रगकर निम्नाक्षित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उत्तमे कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अङ्ग मत छू । नू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

१ अन्तु त्रिनिमितात् म० । २ भुवन् म० । ३ सहसागरम् म० । ४ त्रिनिमित्तम् म० ।

५ म० । ६ अन्ताय म० ।

पापानामकमनायुष्यमस्वर्गमयशस्करम् । असदाहितमेतत्ते विरुद्धं भयजारि च ॥१३॥
 परदारान् समाकाञ्चन् महादुःखमवाप्स्यसि । पञ्चात्तापपरीताहो भस्मस्त्रुष्टानलापमम् ॥१४॥
 महता मोहपेनेन तवोपचितचेतसः । मुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृपविलासवन् ॥१५॥
 इच्छामात्रादपि क्षुद्रं यद्व्यापापमनुत्तमम् । नरके वासमामात्रं कष्टं वर्चनमाप्स्यसि ॥१६॥
 कृत्वाचराभिमानाभिः परं बलाभिरित्यपि । मदनाहतचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्तने (न्यस्तं) ॥१७॥
 तत्र दूषणमप्रापे निवृत्ते परमप्रिया । शुक्रहस्तप्रहस्ताद्या सोद्रेगा स्वाम्यदर्शनान् ॥१८॥
 चलन्तेनुमहावण्ड कुमाराकंसमप्रमम् । रिमानं वाच्यं दाशस्य मुदितास्त हृदीकिरे ॥१९॥
 प्रदानैर्दिव्यवस्तूनां सम्मानैश्चाहुभिः^१ परैः । तामिषं मृत्युसगन्धिरप्राद्या जनकामजा ॥२०॥
 शक्नोति सुखं पातु कः शिरामागुशुचने । को वा नागवधूमूर्ध्नि दृश्यद् रत्नशलाकिकाम् ॥२१॥
 हृत्वा करपुत्रं मूर्ध्नि दशागुलित्समाहितम् । जनाम रावणं साता निम्नतोऽपि तृणाग्रवन् ॥२२॥
 महेन्द्रमरुतैस्तावद्विभवे सचिवैर्भुञ्जम् । नानादिभ्यः समायातैरागुनी रक्षसा पति ॥२३॥
 जय वधैश्च नन्देति शब्दैः ध्वजहारिभिः । उपगात् परिप्राष्टा लङ्कामात्रण्डलोपम ॥२४॥
 भविष्यत्तद्यथा रामस्या सोऽयं विद्याधराधिप । वज्राचरत्यमर्याता तत्र किं शरणं भवेत् ॥२५॥
 यावत्प्राप्नोमि नो वार्तां भर्तुं कुशलवतिन । तावदाहारकार्यस्य प्रपारयानमिदं मम ॥२६॥

क्या बोल रहा है ? ॥१३॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पाप रूप है, आयुको कम करनेवाला है, नरकका कारण है अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पञ्चात्ताप से तेरा समस्त शरीर न्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापङ्कसे व्याप्त है अतः तुझे धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धेने सामने नृत्यके हान भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारा पाप बोधकर नरकमें जायगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोसे भरी बाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

यहाँ परदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी रामा रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहने भरे शुक्र हस्त प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जन उन्होंने हिलती हुई पताशसे सुशोभित प्रातः कालीन सूर्यके समान रावणका विमान आता देखा तत्र वे हर्षित होकर उसने पास गये ॥१८-१९॥ उन्होंने दिव्य उस्तुओंकी भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अति शय प्रिय वचन कहकर रावणकी अगवान्नी की तो भी भृत्याकी उन सम्पदाओंसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ ससारमें ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिराका पान कर सके अथवा नागिनने शिरपर स्थित रत्नमया शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने वृणके अप्रभाग के समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दशहनुमन्लियोंसे सहित अञ्जलि शिरपर धारण कर उसे नार नार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओंसे आये हुए तथा इन्द्रके समान पूर्ण वैभवको धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, जयते रहो, समृद्धिमान् होओ' इत्यादि कर्ण प्रिय वचनसे जिसका स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लक्ष्मण प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधराका राचा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वही दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भा मेरा यह

उदीचीनं प्रताचीनं तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गोवीर्यरमण रयातमुद्यान स्वर्गसन्निभम् ॥२७॥
 तत्र कलतरच्छायमहापादपमकुले । स्थापयित्वा रत्नं सांता विवेश स्वनिर्केतनम् ॥२८॥
 तावद्दूषणपञ्चत्वादप्रतोऽस्य महासुखम् । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्वरम् ॥२९॥
 भ्रानुश्चन्द्रनवा पादौ सस्योन्मुक्तकण्ठकम् । अभग्या हा हतास्मीति विल्लापास्तदुद्दिनम् ॥३०॥
 रमणामनपञ्चवद्विनिर्धमानसाम् । विलपन्तोमिमा भूरि जगादैव सहोदर ॥३१॥
 अल वत्से रदित्वा ते प्रसिद्ध किं न विद्यते । जगप्रसिद्धिहित सर्वं प्राप्नोयत्र न मयाय ॥३२॥
 भग्नधा व महोचारा जना क्षुद्रकशनय । प्रायमेवविधो मर्ता भवत्या व्योमगोचर ॥३३॥
 मयेदमजित 'पू'रं व्यण न्यायागत फलम् । इति ज्ञावा शुच कर्तुं कस्य मर्त्यस्य युज्यते ॥३४॥
 नाकाले त्रियते कश्चिद्भ्रंशेनापि समाहृत । मृत्युकालेऽमृत जन्तोर्विपता प्रतिपद्यते ॥३५॥
 येन व्यापादितो वत्से समरे खरदूषण । अन्येषा वाहितेच्छाना मृत्युरेव भवाग्यहम् ॥३६॥
 स्वमारमेवमाधास्य दत्तादेशो जिनाचमे । दह्यमानमना वासमवन रावणोऽविराट् ॥३७॥
 तत्रादरनिराकाशं तत्त्वत्रिचित्तिप्रहम् । सान्माद्वेशेरिच्छाय नि श्वमन्तमिवोरगम् ॥३८॥
 भर्तारं दु खयुगेव भूषणादरविजिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य मया मज्जा ॥३९॥
 किं नाथाकुलता धसे खरदूषणमृत्युना । न विपादोऽस्ति द्युरागामापसु महताष्वपि ॥४०॥

नियम है कि जन तब भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तब तब मेरे आहार कार्यका त्याग है ॥२६॥

तदनन्तर परिचमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिराले बड़े बड़े वृक्षासे व्याप्त उस उद्यानमें एक जगह साताको ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगी ॥२९॥ चन्द्रनरा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़ फाड़कर 'हाय-हाय मैं अभगिनी मारी गई' इस तरह अश्रुवर्षासे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रकी मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनरासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ 'कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि ससारके प्राणी पूर्णभयमें जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो बुद्धशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहीं आगे तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ 'मैंने यह सब पूर्वमें सन्निहित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है' ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जन तब मृत्यु का समय नहीं आता है तब तब घससे आहत होनि पर भी कोई नहीं मरता है और जन मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जाँचके लिए निप हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसने साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मैं मृत्युमरूप हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार यहिनरो आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निरासग्रहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीति किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्तसिंहके समान अथवा साँस भरते हुए मर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देग, दुःखयुक्त की तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरमें उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ 'कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युने आकुलताको घाण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूरवीरोंको घड़ी-बड़ी आन-

पुरानेकत्र सप्रामे मुहदस्ते चय गता । न च गोचिता जानु दूषण स्मिन् शोचसि ॥४१॥
 आत्मनहेन्द्रमप्रामे आमालिप्रमुता नृपा । वा-धवास्ते चय याता शोचितास्ते न जानुचिन् ॥४२॥
 अभून्सर्वशोम्बमामीदृषि महापदि । शोक कि वदसीदानीं विज्ञायामि विमो वद ॥४३॥
 'ततो महोदर स्वैर निस्वयोपाच रावण । तदा किञ्चिपरियय धारितो दारिताचरम् ॥४४॥
 शृणु सुन्दरि सद्भावमेक ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यमि ममासूना सर्वदा कृतवान्द्रिता ॥४५॥
 यदि वाञ्छसि जावन्त मा ततो देवि नार्हमि । कोपं कर्तुं ननु प्राणा मूल मरत्य वस्तुन ॥४६॥
 ततस्तयैवमि-युने शपथेनियम्य ताम् । विलस इव किञ्चिम रावण समभाषत ॥४७॥
 यदि सा वेद्यस सुष्टिरपूर्वा^१ तु स्ववर्णना । सीता पतिं न मा वष्टि ततो मे नास्ति जावितम् ॥४८॥
 लावण्य यौवन रूप माधुर्यं चाप्येष्टितम् । प्राप्य ता सुन्दरामेका^२ कृतार्थत्वमुपागतम् ॥४९॥
 तदा मन्दोदरी कष्ट जाया तस्य दशामिमां । विहसन्ता जगद्दिव विस्तुरदन्तचन्द्रिका ॥५०॥
 इत् नाथ महाधर्यं वरो यत् कुरुतेऽर्थनम् । अयुष्या सावला नून या त्वा नार्थयते स्वयम् ॥५१॥
 अथवा निषिद्धे लोके मैथैका परमाद्या । या त्वया मानकृते चारयते परमापदा^३ ॥५२॥
 केयूरनजलिरिमै करिकरोपमै । आलिय याहुमि कस्माद् बलान् कामयमे न ताम् ॥५३॥
 सोऽवोचदेवि विज्ञाप्यमलयत्र शृणु कण्ठम् । प्रसम येन गृहामि न ता सर्वाहसुन्दरीम् ॥५४॥

तियामे भी बिपाद् नहीं होता ॥४०॥ पहले अनेक सप्रामोंमें तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सयका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज रघुदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके सप्राममें आमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे उन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सयका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले वडी उडी आपत्तिमें रहने पर भी तुम्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे दशामिन् इसका कारण बतलाइये ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण सौल लेकर तथा कुछ शय्या छोड़कर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुराने भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! मुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ तुम मेरे प्राणाकी दशामिनी हो और सदा मेने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्याकि प्राण हा तो सत्र वस्तुआके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहने पर उसे अनेक प्रकारकी शपथासे नियममें लाकर कुछ कुछ लजित होते हुए की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व स्रष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर क्षुब्धत्वताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दोतोकी कान्तिरूपी चाँदनीको फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बडा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है । जान पड़ता है कि वह खो पुण्य होन है जो स्वय आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा समस्त ससारमें वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है । जिसका कि तुम्हारे जैसे अभिमानी गुरुप वडी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा वाज्रान्दके रत्नासे जटिल तथा हाथाकी सूँडकी उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे बलपूर्वक आलिङ्गन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि !

१ तत सदृश्य म० । २ धारिता दारिताचरम् (६) । ३ रसयाम० । ४ मेता ख० । ५ परमा यम ग० ।

आमीदन्तरीयस्य मूले भगवतो मया । आत्मेकं व्रतं साक्षादेवि निर्ग्रन्थससदि ॥५४॥
 तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमादृशम् । तया निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥५५॥
 जन्तना दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापान्निवृत्तिरल्पापि ससारोत्तारकारणम् ॥५७॥
 येषां निरतिरेकापि कुलशिशोर्बजायते^१ । नरास्ते जर्जरीभूतस्त्वष्टा इव निर्गुणा ॥५८॥
 मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किञ्चिदन्तरम् । येषां न त्रिवृते कश्चिद्विराडो मोक्षकारणम् ॥५९॥
 शक्या मुह्यत पापानि गृह्णन्ति सुकृतं धनम् । जात्यन्वा इव मसारे न भ्राम्यथ यतश्चिरम् ॥६०॥
 एव भगवतो वरप्रक्रमलाघिर्गते वच । मधु पां वा नरा वेचिद्वगनाम्बरा^३ गता ॥६१॥
 सागारधर्ममपरे श्रिता विकल्पास्तथा । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति यमकिया ॥६२॥
 एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशाननं गृह्णाणैका निवृत्तिमिति शक्तिः ॥६३॥
 धर्मैरनोपलब्धैः प्रायः शून्यमनस्करः । कथं ब्रह्मसि विज्ञानी गुणसमूहकोविद् ॥६४॥
 ह्यपुष्पेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ॥६५॥
 यावत्तच्छ्रुति मा नारां परकीया मनस्विनी । प्रसभ सा मया तावत्ताभिगम्यापि दुःखिता ॥६६॥
 एतच्छास्यभिमानेन गृहात दयिते व्रतम् । का मा किल समालोक्य साध्वी मानं करिष्यति ॥६७॥
 अतो न ता स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सकृजल्पन्ति राजानः प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ॥६८॥
 यावन्मुञ्चामि नो प्रणान् तावत् सोता प्रसाधताम् । अश्मभावज्ञते रोहे वृषस्थानश्रमो वृथा ॥६९॥

मैं जिस कारण उस सर्गाङ्ग सुन्दरीको जयदंस्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्के समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रांके द्वारा यन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक चतुष्का त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भय-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके ससारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्के मुख फलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अकर्मशास्त्री प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही छोटे गृहस्थधर्मज्ञों प्राप्ति प्राप्त हो गई है । किंवा कि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्ज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणामकर मुर अमुर तथा मुनियोंके समस्त इस तरह पढ़ा कि जब तक मानवता परकीं मुझे स्वयं नहीं चाहेंगी तब तक दुःखों होनेपर भी मैं यत्पूर्वक उभवा सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देव्यस्त्र की पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिए हे देवि ! मैं उम मनोहराङ्गोको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही रहते हैं अन्यथा घटुत भागी पापा आ पड़ती है ॥६८॥ अब जय तक मैं प्राय नहीं छोड़ता हूँ तब तक मोक्षार्थ प्रसन्न परो

ततस्त तादृश ज्ञावा सजातकर्णौद्या । बभाण रमणी नरथ स्वल्पमेतत् समीहितम् ॥७०॥
 तत किञ्चिन्मधुस्वादविलासवशवतिता । सा देवरमणोद्याव जगाम कमलेशणा ॥७१॥
 तदाजा प्राप्य सम्पन्निरष्टादशमहौजसाम् । दशाननवरक्षीणा सहस्राप्यनुवचतु ॥७२॥
 मन्दोदरा क्रमा प्राप्य सातामेवमभापत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥
 अयि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विपादसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतियस्या दशानन ॥७४॥
 सर्वविद्याधरायाः पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दर कस्मापति नेच्छसि रावणम् ॥७५॥
 नि स्व भ्रमागोचर कोऽपि तस्यार्थे दु खितासि किम् ।
 सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्य विधायताम् ॥७६॥
 आभार्थ कुर्वत कर्म सुमहासुखयानम् । दोषो न विद्यते कश्चित्सर्व हि सुखकारणम् ॥७७॥
 मयेति गदित वाक्य यदि न प्रतिपद्यते । ततो यद्भवति तत्ते शत्रुभि प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
 बलीयान् रावण स्वामी प्रतिपद्यविजित । कामेन पीडित कोप गण्डेप्रार्थनभञ्जनात् ॥७९॥
 यौ रामलक्ष्मणी नाम तव कावपि सम्मती । तयोरपि हि सम्देह क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥
 प्रतिपद्यस्व तम् क्षिप्र विद्याधरमहेस्वरम् । हरवर्ष परम प्राप्ता सीरीं काला समाश्रय ॥८१॥
 इत्युक्ता चाप्यसम्भारगङ्गादोक्षीर्णवणिका । जगाद जानका जातजललोचन शरिणी ॥८२॥
 वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्ध वचन परम् । सतानामोदय वक्त्रात्कथ निगन्तुमर्हति ॥८३॥
 इदमेव शरार मे क्षिन्द नि-दायना हत । भर्तुं पुरुषमन्य तु न करोमि मनस्वपि ॥८४॥

क्योंकि घरके भरम हो जाने पर रूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६६॥

तदनन्तर राजणको वैसा ज्ञान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ । यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्परवान् कुछ मधुर विलासाकी वशावर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गई ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणकी अठारह हजार मानवती स्त्रियाँ भी वैभवके साथ उसके पीछे चली ॥७२॥ समस्त नयनीतियाँके विज्ञानसे जिसका मन अलङ्कृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीतारके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विपाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीना लोकामे धन्य है जिसका कि रावण पति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर दिया है, तथा जो तीना लोकामे अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी क्यों हो ? सर्व लोकोसे श्रेष्ठ अपने आपको सुरा करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुरके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सत्र प्रयत्न सुरके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुआँको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भङ्ग करने पर वह काम पीडित हो क्रोधको प्राप्त हो जायगा ॥७९॥ जो राम लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुम्हें इष्ट है सो रावणके कुपित होने पर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोंके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो रेवा सम्बन्धि लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहने पर जिसके सुरामे चापभारके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अध्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सच वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं । पतिव्रता स्त्रियोंके सुरासे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस

स न कुमाररूपोऽपि यदि बाह्यगडलोपम । भरस्तथापि त भर्तुरन्य नैच्छामि सर्पथा ॥८५॥
 युष्मान्भवामि सन्नेपाहारान् सर्वानिहागतान् । यथा मृत तथा नैतच्छ्रोमि कुरुतेऽसितम् ॥८६॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त स्वयमेव दशानन । सीता मदनतापार्तो गङ्गावेणामिव द्विप ॥८७॥
 समीपाभूय चोवाच पर कश्यपा गिरा । किञ्चिद्दिहसित कुर्वन्मुखचन्द्र महादर ॥८८॥
 'मा यासाद्वि सत्रास भकोऽह तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेक मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥
 वस्तुना केन हीनोऽह जगत्त्रितयवर्तिना । न मा वृणोषि यद्योग्यमाभन पतिमुत्तमम् ॥९०॥
 इयुक्त्वा स्पृष्टुकाम त सातावोच ससम्भ्रमा । अपसर्प ममाङ्गानि मा स्पृश पापमानस ॥९१॥
 उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगाना शचाव स्वामिनी भव ॥९२॥
 सीतोवाच कुशीलस्य विभवा केवल मलम् । जनस्य साधुशौलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥
 चारुवशप्रसूताना जनानां शौलहारत । लोकद्वयविरोधेन शरण मरण वरम् ॥९४॥
 परयोपि कृताशस्य तवेद जीवित मुधा । शौलस्य पालन कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
 एव तिरस्कृतो माया कर्तुं प्रवृत्ते हुतम् । नेयुर्देव्य परिग्रस्ता सज्जात सर्वमाकुलम् ॥९६॥
 एतस्मिन्नन्तरे जाते भानुर्मायाभयादिव । सम किरणचक्रेण प्रविशेशस्तगद्गुरम् ॥९७॥
 प्रचण्डैर्विगलङ्घ्यै करिभिर्चनवृद्धितै । भोषिताभ्यगमसीता शरण न दशाननम् ॥९८॥

शरीरको तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषको मनमें भी नहीं ला सकती हूँ ॥८५॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८६॥ मैं यहाँ आई हुई तुम सब स्त्रियासे सक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं फरूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमें जिस प्रकार हाथी गङ्गाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके सतापसे दुःखी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमें स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमा को कुछ कुछ हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमें बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं बीना लोकोमें वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर राजगने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ा कर कहा कि पापी हृदय ! हट मेरे अङ्गका स्पर्श मतकर ॥९१॥ इसके उत्तरमें राजगने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी शौलकी हानिकार दोनों लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणश शरणमें जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन व्यथा है । जो मनुष्य शालकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमें वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ । सब देवियों भयभीत होकर भाग गईं और वहाँका सब कुछ आकुलतामें पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीचमें सूर्य, किरण समूहके साथ साथ अस्माचलकी गुहामें प्रविष्ट हो गया सो मानो राजगनी मायासे भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, निम्नके गण्डस्थलसे मद चढ़ रहा था तथा जो अत्यधिक गर्वना कर रहे थे वेसे हाथियासे डराये जानेपर भी सीता

दंष्ट्रापरादशनस्याग्नेर्दुःसहनिःस्वने । भीषिताप्यगमसीता शरणं न दशाननम् ॥१६॥
 चण्डेयमरुहतिः सिंहप्रसन्नादकुशैः । भीषिताप्यगमसीता शरणं न दशाननम् ॥१७॥
 जलस्यकुलिङ्गभोमाचेलमजिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमसीता शरणं न दशाननम् ॥१८॥
 स्यात्ताननैः कृतोत्पातपतनैः भूरवानरैः । भीषिताप्यगमसीता शरणं न दशाननम् ॥१९॥
 तमःविण्मसितेन्दुर्देवैतान्यैः कृतहुङ्कृतैः । भीषिताप्यगमसीता शरणं न दशाननम् ॥२०॥
 पुत्र नानाविधैरग्रैरसर्गैः चणोप्रतैः । भीषिताप्यगमसीता शरणं न दशाननम् ॥२१॥
 तावच्च समतीताया विभायया मयादिव । जिनेन्द्रवेरममृतस्यै रज्जुभेयादिनि रजनः ॥२२॥
 उद्धृपादितरुपाडामि हाराणि परवेरमनाम् । प्रभातो गतनिद्राणि लोचनाम्यां रेजिरे ॥२३॥
 सन्ध्याया रजिता प्रार्थ्या दिगम्बन्तमराजत । कुट्टकुमस्येव पङ्केन भागोरगस्तुतः कृतः ॥२४॥
 नैरा ध्वान्त समुत्पायै कुरेन्दु विगतप्रभम् । उद्धवाय सहस्रांशुः पङ्कजानि न्यबोधयन् ॥२५॥
 नतो विसलनां प्राप्ते प्रभाते चण्येपक्षिणि । विभीषणादयः प्रापुर्दशस्य प्रियदग्धत्राः ॥२६॥
 परद्रुपणशोकेन ॥ निर्वोच्यनतानना । सत्वापलोचना भूमौ समाम्नीना यथोचितम् ॥२७॥
 तावत्पटाग्नरस्थाया रक्ष्याः शोकनिर्भरम् । शुधाव योषितः शब्द मनोभेद विभीषणः ॥२८॥
 जगाद् व्याकुलः किञ्चिदपूर्वमिहाह्वना । का माम करण रीति स्वामिनेव त्रियोजितः ॥२९॥

रावणकी शरणमें नहीं गई ॥६८॥ जिनके वीर दादोंसे अत्यन्त भयंकर दिग्गर्ह देते थे और जो
 हु सह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥६९॥
 जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अङ्गुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोंके
 द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥७०॥ जिनके नेत्र वैदीयमान तिलगों
 के समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े सर्पोंके द्वारा डराये जाने
 पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥७१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपरकी
 ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे चानरोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता
 रावणकी शरणमें नहीं गई ॥७२॥ जो अन्धकारके विण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार
 कर रहे थे ऐसे चैतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमें नहीं गई ॥७३॥ इस
 प्रकार चण-चण में किये जानेवाले नानाप्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता
 रावणकी शरणमें नहीं गई ॥७४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत ही गई और जिन सन्दिरोमें शब्द भरी आदिका
 शब्द होने लगा ॥७५॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी किराड़ गुल गये सो
 उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हो ॥७६॥ सन्ध्यासे रंगी
 हुई पूर्व दिशा अत्यन्त मुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले
 सूर्यकी अगवानोंके लिए कुङ्कुमके पङ्कसे ही लिप्त की गई हो ॥७७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको
 नष्टकर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा
 ॥७८॥ तदनन्तर जिसमें पक्षी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण
 आदि प्रिय दग्धव रावणके समीप पहुँचे ॥७९॥ परद्रुपणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप
 नीचेकी ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ
 गये ॥८०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई स्त्रीका हृदय-
 विदारक शब्द सुना ॥८१॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कीन अपूर्ण
 श्री करण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ त्रियोगको प्राप्त हुई

शब्दोऽयं शोकसम्भूतमस्या कम्पं समुत्पन्नम् । निवेदयति देहस्य दुःखसम्भारवाहिन ॥११३॥
 एवमुक्त समाकर्ण्य साता तारतरस्वनम् । रुरोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकं प्रवर्द्धते ॥११४॥
 जगौ च वाण्यपूर्णास्याप्रस्खलन्निर्गताक्षरम् । इह को मे देव बन्धुस्त्व बन्धुच्छसि वंसल ॥११५॥
 सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहक पत्नी सीता दशरथस्तुषा ॥११६॥
 वार्तान्वेषी गतो यावद्भर्ता मे आनुराहवे । रन्ध्रेऽहं तापदेतेन हृता कुम्भितचेतसा ॥११७॥
 यावन्न मुञ्चति प्रणान् रामो विरहितो मया । आतरस्मै द्रुतं तावन्नोत्वा मामर्पयदित ॥११८॥
 एवमुक्त समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषण । जगाद विनयं बिभ्रद् आतरं गुह्यसल ॥११९॥
 आशीविषाग्निभूतेय मोहाद् भ्रातृ कुतस्त्वया । परनारा समानात्ता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
 बालबुद्धिरपि स्वामिन् विशाज्य श्रूयता मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
 भवकीर्तितज्ञात्तैर्जटिल वलप दिशाम् । मा धावाद्दयसोदाय प्रसीद स्थितिकोविद ॥१२२॥
 परदारामिलापोऽयमपुनोऽस्तिमयङ्कर । लजनीयो जुगुप्सवश्च लोकहृदयनिपुदन् ॥१२३॥
 धिक्शब्दं प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्य समन्ततः । सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्थ सुचेतसाम् ॥१२४॥
 जानन्न सकलमर्यादा विद्याधरमहेरवर । ज्वलन्तमुत्पुङ्क कस्मात्करोपि हृदये निजे ॥१२५॥
 यो ना परकलत्राणि धावन्नुद्दिनिषेवते । वरकं स विशत्वेयं स्नेहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारकी धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न उत्कट कम्पन को सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अभ्रपूर्ण मुरसे दूदे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रनधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेनेके लिए जनक भाईके युद्धमे गया था तब तक छिद्र देर इस दुष्टहृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिछुड़े राम जन तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दें ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषणका चित्त क्षुब्ध हो उठा । तदनन्तर विनयकी धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविषसर्पकी विपरुपी अग्निके समान सन प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवश कहाँसे ले आया है ? ॥१२०॥ हे स्वामिन् ! वद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिये वचनके विषयमें आपने सुमपर प्रसन्नता की है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न हूजिए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयङ्कर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकाको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनासे यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्याके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्याके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो समस्त मर्यादाको जाननेवाले, विद्याधरके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए चल्मुक्क को अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पाप बुद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

१ पूषास्वात्मन् निर्गताक्षरम् म० । २ अरकीर्तितवाग्नि 'वने च वनवहो च दया दाव इदम्येन,
 इत्यनर । ३ त्रिनाथक म० । ४ सर्वं तत् म० ।

तद्गुत्वा रावणोऽबोचत् किं तद्दृश्यं मदीतले । आतयस्यास्मि न स्वामी परकीय कुतो मम ॥१२७॥
 इत्युक्त्वा विक्रपाः कर्तुं प्रारभे मित्रमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरबोचत ॥१२८॥
 जानन्नपि कथं सर्वं लोकावृत्तं दशानन । अत्रोदीदृश कर्म मोहस्पन्दं विचेष्टितम् ॥१२९॥
 सर्वथा प्रातरुथाय पुरेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीय निवेकतः ॥१३०॥
 निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् वक्तुमेवं महामती । समायाः धोमन कुर्वन्नुत्तस्यी रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
 त्रिजगन्मण्डनाभिरुषमारोह च वारणम् । महर्द्धिमिश्र सामन्तैर्वाहाकूटैः समारूढः ॥१३२॥
 पुष्पकाशं समारोप्य सीतां शोकममाकुलाम् । पुरः कृत्वा महामूचा प्रययी नगरींदिशा ॥१३३॥
 कुन्तामितोऽमरचक्रपञ्चजातपितृपाणयः । अग्रतः पुरयाः सत्तुः कृतसम्पन्नमनिस्वनाः ॥१३४॥
 चलिताश्चन्द्रप्रोवाः स्थूरीशृङ्गाः सहस्रशः । चक्रचुराननक्षुण्णक्षितयश्चादसादिनः ॥१३५॥
 प्रचण्डमिस्वनदण्डाः कृतर्जामृतगर्जिताः । प्रचेतुर्वैतुभिर्मुखा गण्डशैलसमा गताः ॥१३६॥
 अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतमानाविचेष्टिताः । श्लोडयन्त इवाकाशं प्रभग्मुमानवाः पुरः ॥१३७॥
 सहस्रस्यैव नृपाणां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविच्यन् मणिकाटनतोरणाम् ॥१३८॥
 सम्पद्भिरेवमाद्याभिर्हृतोऽप्यगन्तवाहसिः । सीता दशानन मेने नृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥
 अकलमपं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्य लोभमाने तु लेपमग्नौ यथाश्रुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथिवीतल पर यह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न हूँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदयने विक्रपाएँ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिश्च मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब वृत्तान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमे यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल उठकर विवेक पूर्वक अपने हिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमें ही सभाके लोभको करता हुआ रावण उठकर दड़ा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी श्रद्धियों और अश्वारूढ सामन्तोंसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक धिमान पर चढ़ा कर तथा आगे कर बड़े वैभवंसे नगरी की ओर चला ॥१३३॥ भाले, दण्ड, तोमर, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमें थे और जो संभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी पीछाएँ चञ्चल थीं, जो सुशोभित खुरोंके अग्रभागसे पृथिवीकी रोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महायत्न प्रेरित कर रहे थे और जो गण्डशैल-काली चट्टानोंवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मार कर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य वसुके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों तुरहियोंके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमें प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे नृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमलको लेव प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

समन्तकुसुम तावन्नावातरुल्लताकुलम् । प्रमदाय वन सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
 स्थित फुल्लनगस्योदधौ दृष्ट्वा यद् दृष्टिवन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥
 गिरि मत्सभिरुचानैर्वेष्टित स्वायते स ॥ रराज भद्रशालाद्यै सूर्यावर्च इवोज्ज्वल ॥१४३॥
 एकदेशानह तस्य विविधाद्भुतसङ्कुलान् । नामत सम्प्रवक्ष्यामि तव राजन् निबोधताम् ॥१४४॥
 प्रकीर्णक जनानन्द सुखसेव्य समुच्चयम् । चारणप्रियसङ्ग च निबोध प्रमद तथा ॥१४५॥
 प्रकीर्णक महापृष्ठे जनानन्द तत परम् । यत्रानिपिद्धसञ्चारो जन क्रीडति नागर ॥१४६॥
 तृपायेऽल वने रम्ये मृदुपादपसङ्कुले । धनवृन्दप्रतीकस्य सरिद्वापीमनोहरे ॥१४७॥
 दशव्यामायता वृक्षः रविमागपिरोधिन । केतकायुधिकोपेतास्ताम्बूलाकृतसङ्गमा ॥१४८॥
 निरपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्य दृचिदेशे च सत्ररा ॥१४९॥
 चारणप्रियसुद्यान मनोज्ञ पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र भ्रमणा व्योमचारिण ॥१५०॥
 तस्योपरि समारण्य ययुष्षमनिन्दितम् । सुक्षारोहणसोपान दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
 स्नानक्राद्गोचिना रम्य वायोऽस्मिन् पद्मशोभिता । प्रपा समाश्रयिष्यन्ते रचितानेकभूमय ॥१५२॥
 नारिहमातुलिङ्गाद्यै ३ फलेयैर्निरन्तरा । खजूरैर्नालिदैरैश्च तालैरम्यैश्च वेष्टिता ॥१५३॥
 तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातय । कुसुमस्तनकैरलङ्घ्या गीयन्ते मत्तपृषदै ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सन ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जाई गई ॥१४१॥ फूलाके पर्वतके ऊपर स्थित तथा दृष्टिको बाँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवाके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गोतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् । अनेक आश्रयोंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन हैं हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वत पर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक २ जनानन्द ३ सुखसेव्य ४ समुच्चय ५ चारण-प्रिय ६ निबोध और प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन प्रसीतल है पर उसके आगे जना-नन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही मनुष्य क्रीडा करते हैं जिनका कि आना जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुखसेव्य नामका वन है जो फौमल वृक्षांसे व्याप्त है, मेघ समूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है । उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमा प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियों सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पाचवें पापपहारी मनोहर वन है जिसमें चारणखड्गधारि मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर दृष्ट्वा निबोध नामका वन है जो ज्ञानका निग्राम है] और उसके आगे पद्मकरप्रमद नामका सातवाँ वन है जो धोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम तथा सुरसे चढ़नेके योग्य मोड़ियोंसे युक्त दिखाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रोडाके योग्य, पमलासे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान स्थान पर पानीयशालाएँ और अनेक गण्डोंसे युक्त मभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ गजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे गज पक्षियोंमें लगे नागिन्द्र और बोजपूर आदिवे वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद

कुर्वन्ती^१ वलालीला कोमलै^२ पल्लव करै । धूणिता मन्दवानेव पल्लुपुष्पमनोहरा ॥१५५॥
 सारङ्गदयितामिश्र प्रलम्बास्तुदशोभिन । समस्ततुङ्गवच्छाया^३ सेवन्ते धनवान्वा ॥१५६॥
 विभूति तस्य ता वाप्य सहस्रच्छन्दनानना । आलोकन्त द्वयान्तरा भस्मितोपल्लोचनै ॥१५७॥
 गहनान् कोकिलालापान् नृपयन् यो मन्दवायुना । दीपिका विहसन्तान रात्रहमरदम्भ^४ ॥१५८॥
 प्रमदाभिल्यमुद्यान सर्वभोगोसवावहम् । अग्र किं बहुनोक्तेन स्याद्भर नन्दनादपि ॥१५९॥
 अशोकमालिना नाम पत्रपद्मविराजिता । वापी वनरूपोपाता विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
 मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षालुपशोभितै । सल्लतालिङ्गितमानैर्निर्भरैश्च ससीकरै ॥१६१॥
 तत्राशोकतरुच्छ्रे स्थापिता शोकधारिणी । देवो रामालयाद् अष्टा स्वयं शारिङ्ग जानकी ॥१६२॥
 तस्मिन् दशाननोत्साभि ज्वाभिर-तरुव्रजितम् । साता प्रसाद्यते वरुणगन्धालङ्कारपाणिभि ॥१६३॥
 दिव्यै सनत्तनैर्मानैर्विक्रयैश्चाभ्युदहारिभि । अनुनेतु न सा शक्या सम्पदा चामराभया ॥१६४॥
 उपर्युपरि सरस्वती दूर्ती विद्याधराधिप । प्राहिणोद्भि स्मरोद्भारदात्रजालाकुलाकृत ॥१६५॥
 दूति सीता प्रसन्नं गृहं दशाक्षयमनुरक्तकम् । न साम्प्रतमवज्ञातु प्रसीदेत्वादिभाषते ॥१६६॥
 गताऽऽगता च सा तस्मै वदतीति विनेजस । देव साहारमुच्चय स्थिता त्वा वृणुते कथम् ॥१६७॥

नामक उद्यानमें धृष्टोकी सब जातियों विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मन्दोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुञ्जार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है माना हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लटकते हुए मेघाके समान सुरोभित तथा समस्त श्रुतुआमं छाया उपपन्न करनेवाले सघन धृष्टोकी हरिणियां सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥१५६॥ कमलरूपा सुरोसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमल रूपी नेत्राके द्वारा उस यनकी उस विभूतिको भानो अवृत्त होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहम पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं माना कोकिलआके आलापसे युक्त सघन घनाकी हँसी ही कर रही हो ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुरोभित है, स्वर्णमय खोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकार वाले गोपुरसे अलङ्कृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन कुरोरे आदिसे अलङ्कृत तथा उत्तमोत्तम लताआसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्भरासे सुरोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें वैठी शोकवती साता ऐसी जान पड़ती थी माना रंगसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी हो ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वन, गन्ध तथा अलकारोंका हाथमें धारण करने वाली स्त्रियों निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थीं ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित नित्य संगीता, अभूतके समान मनोहर वचना और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं का जा सकी ॥१६४॥ इतने पर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रात्रण एकके बाद एक दूर्ती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापिस आकर तेजरहित रावणसे कहता कि हे देव !

न चरति निपणाद्वा नाल कायेन चेतते । न ददाति महाशोका दृष्टिमस्मासु जानका ॥१६८॥
 अमृतादपि सुखादै पय प्रभृतिभि अितम् । सुगन्धि वृणुते नाह विचित्र बहुवर्णकम् ॥१६९॥
 ततो मदनदासामिज्वालालाह समन्तत । आर्त्तो^१ व्यचिन्तयत् भूरि मनोऽसौ व्यसनाप^२वे ॥१७०॥
 शोचयन्मुनदार्धोष्णनिशासानिलसन्तति । शुष्यन्मुख पुन किञ्चिद्गायत्र्यविदिताचरम् ॥१७१॥
 स्मरमालेयनिर्दग्ध भुजाति मुखपङ्कजम् । मुहु किमपि सञ्चिय स्मरयते चणनिश्चल ॥१७२॥
 अनुबन्धमहादाहा समस्ता^३वयवानलम् । क्षिपयधिरत भूमौ कुट्टिमाया विवर्त्तक ॥१७३॥
 उत्तिष्ठति पुन शून्य सेवते निजमासनम् । नि कामति पुनर्दृष्ट्वा जन प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥
 नातोन्म इव हस्तेन सर्वद्विष्टमुखगामिना । आस्फालयति नि शङ्क कुट्टिम कम्पमानयम् ॥१७५॥
 स्मरन् साता मनोघातामामान पौरुष विधिम् । निरपेक्षमुपालम्बु^४ साधनेन प्रवर्त्तते ॥१७६॥
 किञ्चिदाह्वयने वल्लुङ्कारधातिकैजने । क्षणमास्ते पुन किं किमति शून्य प्रभापते ॥१७७॥
 साता सातेति कृ वास्यमुत्तान भापते मुहु । तिष्ठयवाहमुख भूयो नखेन विलिखन् महाम् ॥१७८॥
 करेण हृदय माष्टि बाहुमुद्गानमाचते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कार तरुप मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
 दधाति हृदये पथ पुनर्दूर निरस्यति । मुहु पठति गृह्णार गगनाह्वनमीचते^५ ॥१८०॥

वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध, आदिसे युक्त, सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरसे निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुन चिन्ताने पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोद्वासका वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा रुद्ध गाने लगता था ॥१७१॥ वह कामरूपी तुषारसे जले हुए सुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नरचित फर्सपर लोटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवको बार बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर बैठकर रड्डा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओमें जानेवाली सूँडसे किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी नि शङ्क हो सब दिशाओमें घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्सकी आस्फालन करता था अर्थात् फर्सपर घुमा घुमाकर हाथ पट फटा था और उससे फर्सको कपित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आई हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रासे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्त्ती लोग जब हँकार देते थे तब चुप रह जाता था तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके वकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता साता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नयसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठता रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वल्लुङ्कारको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देगता, कभी हुकार छोड़ता कभी विस्तर पर जा लेटता था ॥१७९॥ कभी हृदय पर कमल

१ विचिन्तयद् म० । २ स्मरतावयवानलम् म० । ३ मुपालम्ब म० । ४ यति म० ।

५ मीलन म० ।

हस्त हस्तेन मसृश्य हन्ति परदेन मेदिनीम् । निरवामद्वन्द्वरयाममाहृष्याधरमाचयते ॥१८१॥
 धत्ते कद्रुह स्वान केशान् वचयति चगम् । कायेन दुस्तह दृष्टि कचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
 जम्भोचानाकृतोरस्को वाणान्ध्यादितलोचन । वातुत्तोरणमुच्यम्य भिनत्ति स्फुटद्गुलि ॥१८३॥
 अशकान्तेन हृत्तय धीनययादितेजणम् । कुमुमं कुरुने रूप पुनर्नशयति द्रुतम् ॥१८४॥
 चित्रययादुरा सीता द्रवययधुमि पुन । द्यौन चिपति हाकारान् न न मामेति जल्लति ॥१८५॥
 पुनमाया त्रिया विलण मदनप्रहर्षादिति । करोति कलालाप चित्र हि स्मरचेदितम् ॥१८६॥
 तस्य स्मराग्नित्वा दास हृदयेन सम वपु । अनुग्रन्थमहाधूप ज्वलयासाहृतेन्यनम् ॥१८७॥
 अचिन्तयष हा कष्ट कामवस्थामह गत । येनेदमपि लक्ष्मामि न बोडु स्वयराटकम् ॥१८८॥
 दुर्गसागरमच्यस्या वृहद्विद्याधरा मया । चिता सहस्रयो युदे किमिद वर्तनेऽयुना ॥१८९॥
 सर्वत्र जगति स्यातलोकापालपरिषद्द । वन्द्यागृहमुपालीता महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
 अनेक्युद्धनिर्भाननराधिपकदग्रज । सोऽह सगति माहेन मस्मोक्तुं प्रवर्तित ॥१९१॥
 चिन्तयत्रिदमन्यष कामाचार्यवशगत । भास्ता तावदसौ रात्रिदमन्यद्विबुध्यताम् ॥१९२॥
 भाकुला मन्त्रिभि साक महामन्त्रविशारद् । विभीषण समारमे निरूपयिमुमादशम् ॥१९३॥
 स हि रावणराष्ट्रस्य पुर धत्ते शतश्रम । समस्तशास्त्रगोपान्मुषीतनिर्मलमानस ॥१९४॥

रग्नता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार गृह्णारका पाठ करता—गृह्णार भरे शार्दीका उच्चारण करता और कभी आज्ञाशक्ती और देवने लगाता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्शका पैरसे पृथिवीको ताबित करता था, कभी राजासोच्छ्राम रूपी अग्निसे काले पड़े हुए अघरोष्ठको लींच कर देलता था ॥१८१॥ कभी 'कह कह' शब्द करता था, कभी वेशाको खोल कर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी तिसुहाई लेवे समय वक्षःस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको आँसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण उपर उठा अगुलियों चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर घब्रके अञ्जलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप उनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आँसुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हा हाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी पहले पंडित, राक्षस अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करता तथा वन्द्यापूर्ण यानी लाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामरूपी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईर्ष्यन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे गीत ही हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाथ में किस अवस्था को प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े उबे त्रिआधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकापालरूपी परिकर समस्त ससारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले उन्दीगृहमें डाल रक्ता था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा मस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गीतम-फहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्यउत्तुओंका चिन्तन करता हुआ रावण कामरूपी आचार्यके यशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेम निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तैयार हुआ ॥१९३॥ यथार्थमें समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

राजस्य हि तत्तत्तयो न हितो विद्यते पर । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥१६५॥
 उवाचासावहो वृद्धा राजनी यं व्यवस्थिते । उपस्थित कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥१६६॥
 त्रिभीषणोदित ध्रुवा सम्भिन्नमतिरम्यधात् । भूत पर वदाम किं गत कार्यमकार्यताम् ॥१६७॥
 स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगत । दक्षिणोपतितो बाहु खरदूषणसञ्जक ॥१६८॥
 विराधितोऽपर कोऽपि कारण या न कस्यचित् । सोऽय गोमायुता मुखवा केसरिख समाध्रित ॥१६९॥
 भव्यता पश्यतामुप्य साधुकर्माद्यादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे यातो बन्धुता यस्युचेष्टित ॥२००॥
 एतेऽपि बलिा सर्वे मानिनः क्षपिक्तेव । मन्त्रन्याक्रान्तितो वरवा निभृत्वास्तु न जातुचित् ॥२०१॥
 अमापामन्य आकारो मानस त्व-यथा स्थितम् । भुवङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुण विषम् ॥२०२॥
 नेता वानरमौलानामवङ्गकुसुमापति । न्यङ्गेण भजते पक्ष सुप्रावस्य मर सुत ॥२०३॥
 तत पद्मसुतोऽनीचद्विधायानादरस्मिन्नम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुण ॥२०४॥
 वृत्तान्तेनामुता कस्य सत्रासोऽकातिरेकः स । भवत्येव हि शूराणामादशा समरे गति ॥२०५॥
 २वातेनापहृते सिन्धो क्णे का न्यूनता भवेत् । रावणस्य कल स्फोट किं दूषणसर्माहृषा ॥२०६॥
 ग्राह्य प्रजति ने चेत् कुर्वत स्रग्प्रधारणम् । काय दशानन स्वामा काम्ये केऽपि वनोक्त ॥२०७॥
 सूर्यहासधरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधित क नामेव यस्येष्ट्यामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥१६४॥ विभीषणके समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था । वह उसके करने योग्य समस्त कार्योंमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था ॥१६५॥ विभीषणने मन्त्रियासे कहा कि अहो पुत्रजनों ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोका क्या कर्तव्य है सो पढ़ो ॥१६६॥ विभीषणका कथन सुनकर सभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सन तार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥१६७॥ स्वामी दशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥१६८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥१६९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंकी धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही बरामे हो सकते हैं बिना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार सौंपाने बाहामे तो फीमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अतंग कुसुमाशा पति हनुमान् इस समय वानर वशियाका नेता बन रहा है और वह ग्यासकर सुमीर का ही पक्ष लेता है । इस प्रकार सभिन्नमतिके कह चुकने पर पंचमुख मन्त्री अनादर पूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गितनेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्ता तसे किसेभय तथा किसको अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूर वीराकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ बायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हरलेने पर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गई ? अर्थात् कुछ भी नहीं । रावणका बल बहुत है, उसने दोष देपनेसे क्या । ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लज्जा आती है । कहीं यह जगत्का स्वामी रावण और कहीं अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास ग्रन्थकी धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुगूल प्रवृत्ति करता है—उसका

मृगेन्द्राभिष्टिताम्मानमपि काननसङ्गमम् । दम्बद्वते न किं दाया गिरि परमदुःसहम् ॥२०६॥
 सहस्रमतिनामाप सचिरोऽनन्तर जगी । सूचयन् प्रियस वाच्य पूर्व मग्गङ्गपनान् ॥२०७॥
 मानोद्धतेरिर्मवांशपर्यवहानै किमारितै । मन्त्रगोप हि सम्बद्ध स्वाभिने हिनमिच्छुता ॥२०८॥
 स्वप इत्यनया युद्धा कार्यावज्ञा न वैरिणि । काल प्राप्य कगो बह्नेर्दहेत् सङ्गमिष्टपम् ॥२०९॥
 अधप्राया महामैन्य स्यात् मरुत विष्टये । स्वलोनापि जिघृष्टेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१०॥
 तस्मात्क्षेपविनिमुक्तमिव परमदुर्गमा । भगरी नियता लङ्का मतिस्मन्दोद्दाराग्निभि ॥२११॥
 सुगोराणि प्रसायन्ता वन्त्राण्येतानि सर्वत । तुङ्गप्राकारकृष्टेषु दरयतां च कृताकृतम् ॥२१२॥
 सम्मानैर्चहुभि शशन् सेव्यो जनपदोऽनिल । राजानात्पत्तिरेव हस्यतां प्रियनादिभि ॥२१३॥
 सर्वोपाधिविधानेनै रक्षयतां प्रियकारिभि । राधा दशाननो येन सुव्यतां प्रतिपद्यते ॥२१४॥
 प्रसादता सुविज्ञानैर्मधिको परमै प्रियै । मधुरैर्वचनैर्दामै चारैरहितवृष्टि ॥२१५॥
 सुप्रातः कैन्दुरनगरमन्याद्य भण्डुहवान् । बहि स्थापयतोद्युक्तास्त्रगर्वा रक्षकारिण ॥२१६॥
 पृथ्वते न ते भेद जानन्ति बहिराहिता । काये नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिन प्रियम् ॥२१७॥
 पृथ दुर्गतरं जाते कार्ये सत्रे सर्वत । को जानाति हुता सीता स्थितामग्रापरत्र वा ॥२१८॥
 इदितश्चानया रामो ध्रुव प्राणान् विमोचयति । यस्मैयमोदशी कान्ता वर्तत प्रिये ॥२१९॥
 रामे च पद्मता प्राप्ते शोकविरक्तमानस । पृष्ठाका ध्रुवसुतो वा सीमिति किं करिष्यति ॥२२०॥

मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि मिहसे सहित हो तो भी क्या उसे दानानल जला नहीं देता ? ॥२०६॥

तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस धवावा हुआ सहस्रमति मन्त्रा गीला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले 'यसि को ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत धातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०-२११॥ 'बह छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अधज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय पानर अनिका एक कग समस्त ससारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ा भारी सेनाका स्वामी अरु प्रीत समस्त ससारमें प्रसिद्ध था तो भी रणको अग्रभागमें छोटेसे त्रिष्टुके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इमल्लिप जिना जिताके बिलम्बके इस लका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सत्र दिशाओंमें फैला दिये जायें । अत्यन्त उन्नत प्राकारके दिशरों पर चक्रपर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देर देरकी जाय ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सम्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाय और मधुर वचन बोलनेवाले राज्याधिकारी सत्र लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखें ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सत्र प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननजी रक्षा करें जिससे वह सुप्तको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पियोंको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चानुर्य, परम प्रिय मधुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दानके द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाय ॥२१८॥ मित्र नगरके स्वामी सुधीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमें उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके बाहर गया जावे ॥२१९॥ ऐसा करने पर बाहर रते हुए सुधीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सके और कार्य सौंपा जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रमत्त है ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सत्र जगह सत्र ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके जिना राम निश्चित ही प्राण द्याव देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय सी चिरहमें रहेगी वह जीवित रह हा कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब शोकसे दुःखा अकेला अथवा ध्रुव सहायकासे युक्त

अथवा रामशरीरेन मरण तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्यद्ददनयोः सङ्गतं परम् ॥२२४॥
 अपराधाविमग्नं सन् यास्यति कं विराधित । सुग्रीवस्यापि वाधन्तं श्रूयते लोके परम् ॥२२५॥
 माया सुग्रीवमन्देहकारिणी यश्च भासयेत् । दशवन्देस्वरवादस्य कोऽसौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
 तस्मात्तद्दुर्गसंसिद्धौ ॥ नाथ भजतेतराम् । योगश्चायं विमोर्वादं परिणामे शुभावह ॥२२७॥
 प्रकारेणमुना शनूनेतानन्यांश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नं क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
 एव विमृश्य विद्वांसः प्रमोदोन्वितमानसाः । यथास्व नित्यं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
 विभीषणेन यथायै शालो दुर्गतरांकृत । विद्याभिश्च विचित्राभिरङ्गा गह्वरवारकाः ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्वा किञ्चिद्दिशामनसामासवास्यानपेक्षं नासैकक फलति पुरुषस्योन्मिक्तं पांशुरेण ।
 देवापेतं पुरपकरणं कारणं नेष्टसंगे तस्माद्भयं कुरुत यतैनं सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
 राजन्कर्मण्युद्यमसमं सेवमात्रे जनानां नानाकारं कुशलवचनं यो विशलेष्ये चेत ।
 युक्तं तस्माद्विधितमनुनयन् कर्म कुर्यादशस्तं भूयो येन प्रतपति रविः शोकरूपो न कष्ट ॥२३२॥
 इत्यर्थे रविपेक्षाचार्यं प्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधानं नाम षट्चत्वारिंशत्तमं परं ॥४६॥

लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२०३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्याकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपराधरूपी समुद्रमें मग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगासे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष ससारमें क्यामी दशाननसे बढकर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी-दशाननकी ही सेवा करेगा । और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभवाद्यक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगाको भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचार कर मुदिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लह्माको गह्वरा एव पाशासे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गीतमरामा कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप यचनोसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आपके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप भगवान्ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ देवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसने प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्योंके कर्मका उद्भय विद्यमान रहता है तब तक नानाप्रकारके कुशल वचन उनमें चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य रीतिके अनुसार प्रशस्त-पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इमं प्रकारं शार्प नाममं प्रतिदं रविपेक्षाचार्यं कथितं, पद्मपुराणमें रावणकी मायाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला द्वियालिसवा परं पूर्णं हुआ ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेशस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदुःखितः । स प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्त यत्र ससुगम् ॥१॥
 तत्राद्याद्याद्वयान् भ्रमन् गच्छन् गतजावितान् । सामन्तानधसयुक्ताभिर्मित्तन्द्रयविग्रहान् ॥२॥
 दृष्टमानान् नृपान् काश्चित् काश्चिन्धिसितास्तथा । त्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरान् भटान् ॥३॥
 विच्छिन्नार्थमुजान् काश्चित् काश्चिन्धैरुवजितान् । निवृत्तान्त्रयान् काश्चिन्धैरुवजितान् ॥४॥
 गोमायुप्राप्तान् काश्चित् खनैः काश्चिन्धैरुवजितान् । रुदिताः परिवर्गेण काश्चिन्धैरुवजितान् ॥५॥
 किमेतदितिप्रष्टश्च तस्मै कश्चिद्वेदयत् । सीताया हरणं च्छेत्ती जगद्युत्तरदूषणी ॥६॥
 ततोऽभवद् भूरा दुःखा ररदूषणमृत्युतः । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेतामगमदकुल ॥७॥
 कष्टं चिन्तितमेतस्मै किलास्मै यत्नशालिने । निवेद्य दयिताशोकं मोक्षयामांति महाशया ॥८॥
 विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहादुम । भग्नो मम विपुण्यस्य कथं शान्तिर्मेविष्यति ॥९॥
 किमज्ञानमुत गता सादर सश्रयाम्यहम् । मद्रूपधारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥
 उद्योगेन विमुक्तानां जनानां मुत्तिता कुत । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयान्मुद्योगमुत्तमम् ॥११॥
 भयवानेकशो दृष्टोऽनादरः स कल्पितः । मधोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥
 तस्मान् महायत्नं दास्ये महाविद्याविशारदम् । रावणं शरणं यान्ति स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका त्वामो सुमोघ लीके बिरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ
 जहाँ कि ररदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं दूटे हुए
 रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न भिन्न हो गए हैं, ऐसे घोड़ोंके
 साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई ससिं मर रहे हैं, कहीं जिनके पीछे
 छियाँ मर रही थीं ऐसे मरे हुए अनेक सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा फट गई है,
 किन्हींकी आधी जोंघ टूट चुकी है, किन्हींकी ओंठोका समूह निकल आया है, किन्हींके मस्तरु
 फट गये हैं, किन्हींकी शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पत्नी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको
 रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ? इस प्रकार पूछने पर किसीने
 उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा ररदूषण मारे गए हैं ॥६॥

तदनन्तर ररदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुमोघ बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता
 हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं इस यत्नशालीके लिए
 निवेदन कर रही सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे
 भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृत्तको कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापाको किस प्रकार
 शान्ति होगी ॥७-८॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान
 रूपका धारण करनेवाले मायामयी सुपावका भरण कर सके ॥९॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको
 सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता
 हूँ ॥११॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवान
 चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं है ॥१२॥
 इसलिए महायत्न, देदीप्यमान और महाविद्याओमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वह

अज्ञानानो विशेष वा क्रोधचोदितमानस । दशानन कदाचिन्नो^१ हन्तु वाञ्छेदुभावपि ॥१४॥
 मन्त्रदोषमसकार दान पुण्य रश्मरताम् । दुःशीलत्व मनोदाह दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
 तस्माद्येनैव सप्रामे निहित खरदूषण । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
 तुल्यव्यसनताहेतो कालोऽयमुपसर्पति । सद्भाव हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था^२ जना भुवि ॥१७॥
 द्रष्टुं विमृश्य सज्जातचारुद्वि समन्तत । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं विराधितम् ॥१८॥
 सुप्रावागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधित । सविस्मय सतोपश्च चकार च मनस्यद् ॥१९॥
 चित्रं सुप्रावराजो मां ससेव्यं सन्निपेवते । अथवाग्रयसामर्थ्यात् पुसा किं नोपजायते ॥२०॥
 ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ष्य घनोपमम् । पातालनगरं जातं भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
 ततो हर्षमीधरोऽष्टचन्द्रनुरागादसम्भवम् । वदतुर्नानादोऽयं ध्रुयते कस्य सहत ॥२२॥
 सोऽश्वघोषच्छ्रुत्वा देवं महाबलसमन्वित । नाथोऽयं कपिकेनूनां प्राप्तस्त्वा प्रेमतत्पर ॥२३॥
 भ्रातरो रालिमुप्रावीं किञ्चिन्धानगराधिपो । तिग्माश्वरजसं पुत्रीं प्रत्यानान्वन्याविमी ॥२४॥
 बालाति योऽत्र विरयात शालशोर्वादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैले नानसीद् दशवक्रकर्म ॥२५॥
 परं प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुप्रावसान्निध्यम् । तपोऽनसुपाविच्च सर्वप्रण्यविबर्जितम् ॥२६॥
 सुप्रावोऽप्यभिसक्तत्वा सुताराया धियान्वित । राज्ये नि कण्ठके रेमे शचीयुक्तो यथा हरि^३ ॥२७॥

मुझे शान्ति प्रदान करेगा ॥१२॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिये, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट रश्मय और मनकी दाह नहीं शतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिये जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुखी हूँ इसलिये एक समान दुख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवी पर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सन औरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिये उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और सतोपसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रयार्थी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पाताल नगर, (अलकार पुर), भयसे व्याकुल है महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहीं कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त है। आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किञ्चिन्धान नगरोंके स्वामी हैं, राजा सहस्ररश्मि रजसे पुत्र हैं तथा पृथिवी पर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विरयात था तथा अभिमानसे लिए मानो सुमेरु ही था, उसने राजणका नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुप्रावके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुवारा नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो

१. यथितम् । २. आवाप । ३. सुपरांण स्व०, ज० । ४. तुल्यानन्दा म० । ५. प्रत्यानी + अर्पनी = पृथिव्या, रमी । ६. इन्द्र ।

सुतो यस्याह्मदाभित्यः गुणरत्नविभूषितः । किंकिन्धाविषये यस्य मद्रूपान्यविजिता ॥२८॥
 तयोरियं कथा यावद्भक्तैः प्रवक्ष्यते ततोऽनन्तरं ॥ १२९॥
 ज्ञातव्यानुमतिं प्राप्य विवेकेनितमङ्गलम् । राजाविहङ्गनलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥
 लक्ष्मीधरकुमाराद्यास्तं राजन् प्राशंसिस्मया । परिपन्थिरे कान्त्या विह्वलं वनागुता ॥३१॥
 उपविष्टाश्च विधिया जाम्बूनदमहोत्तले । योग्य सम्भाषणं चक्रमुनोपमया गिरा ॥३२॥
 निवेदितं ततो वृद्धैरिति पद्ममहोत्तले । देव किंकिन्धनगरे सुग्रीवस्योऽपनीरवरः ॥३३॥
 प्रभुमहोत्तले भोगी गुणज्ञानतिमन्त्रियः । केनापि दुष्टमायेन रणेनानयमाहृतः ॥३४॥
 एतस्याकृतिमाश्रित्य राजप्रमोगं पुरं चलम् । सुतारां च गृह्णन् ता कोऽपि बान्धुनि दुर्मतिः ॥३५॥
 एतस्य वचनस्वान्ते रामस्तस्मिन्मुद्योऽभवत् । अविन्तवद्य मंसोऽपि दुःखितो नाम विद्यते ॥३६॥
 मयाप सद्यो मन्ये यदि वार्धराता भजेत् । येनास्य दृश्यमानैकप्रतिपक्षेण वाचनम् ॥३७॥
 अर्थोऽयं दुस्तरोऽयन्तं कथमेतद्विषयति । हानिरेवविषयस्या मद्रुघः किं करिष्यति ॥३८॥
 सुमित्रातनयोऽष्टचक्रं कृत्वा दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदधुतिम् ॥३९॥
 ततोऽर्वा मन्त्रिणां सुगो जगत् विनयान्वितः । अन्तर्मुखोऽयं स तस्य सुग्रीवस्य वान्तरम् ॥४०॥

राज्य लक्ष्मी सहित निष्कण्ठक राज्यमे इस प्रकार श्रीका करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र श्रीका करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवरा गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित अद्भुत नामका ऐसा पुत्र है कि किंकिन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किंकिन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जब तक यह बातें चल रही थी कि तब तक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया । तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मङ्गलाचारका अवलोकन करते हुए राज भवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुख कमल कान्तिसे मिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिङ्गन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्पर्धामय पृथिवी तल पर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिषद किया कि हे देव ! यह किंकिन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महा ऐश्वर्यशाली, महामुत्तम, योगी सुप्रबल तथा मन्त्रियों को अतिशय प्यारी है । परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्य भोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोंके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके सम्मुख उसकी ओर देखने लगे । रामने मनमें विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समान हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही थापा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा । इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके समान जो जाम्बूनद नामक धीर-धीर मन्त्री या उससे दुःखका समान कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें मुख्य जाम्बूनदने बड़ी विनयसे मायामय सुग्रीव और वामनविक

१. सम्प्राप्तः म० । २. निवेशे इतमङ्गलः म० । ३. महीक्षितौ ख. । ४. मादतः म०, ३० ।

५. मदपेक्षारि । ६. अपरता = हीनता । ७. लक्ष्मण म० ।

राजन् दारुणान्दलतापाशवशीकृतः । रूप रूपवशः कोऽपि सम कृत्वास्त्य मायया ॥४१॥
 अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्यात्मजनस्य च । सुग्रीवान्त पुर तुष्टः प्राविशत्पापचेतनः ॥४२॥
 प्रविशन्त च त दृष्ट्वा सुताराङ्गा परा सती । महादेवी जगद्वास्त्वममुद्विग्ना निज जनम् ॥४३॥
 दुष्टविद्याधर कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेषः । आयाति पापपूर्णमा चारलक्ष्णवर्जितः ॥४४॥
 अभ्युधानादिकामस्य त्रिषां माकाष्टं पूर्ववत् । केनापि तरेणोप्यमभ्युपायेन दुर्णयः ॥४५॥
 अपाशङ्काविमुक्तत्वा गम्भीरो लीलयान्वितः । गत्वा सुग्रीववद्वेजे सौम्रीव स वरभनम् ॥४६॥
 पृथस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजोनुजः क्रमात् । अट्टाचीञ्च जन दीनमप्राचीञ्च समाकुलः ॥४७॥
 कस्मादय जनोऽस्माक म्लानवक्त्रेक्षणो मृशम् । विषाद वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥
 किमद्भो गतो मेरु बन्दनार्थी विरायति । किं वा प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रम्य ॥४९॥
 जन्ममृत्युजरायुप्रदानासपातु सतः । विम्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनमुपागतः ॥५०॥
 चिन्तयन्नियतिश्रम्य द्वाराणि मणिनेजसा । मासमानानि सर्वाणि सयुक्तानि सुतोरणैः ॥५१॥
 गीतक्षिपतमुक्तानि सुसानीव समततः । शङ्खितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
 प्रासादप्रवतोऽप्यहं विक्षिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थमात्माभं दुष्टलेचरम् ॥५३॥
 दिव्यहारान्तर दृष्ट्वा त शोभो दधत पुर । चित्रावतसक कान्त्या विवस्वद्वन्द्वान्मुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर धताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशासे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रीवर्ग तथा समस्त परिजनोंके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥४१-४२॥ उसे प्रवेश करते देव सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका वेप ररफर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो । यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३-४४॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शङ्कासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४५॥ इसी बीचमें बालिराजाका अनुज चास्तविक सुग्रीव, यथान्तमसे वहाँ आया । आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उसने पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विषाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान स्थान पर इरुटे हो रहे हैं ? ॥४६-४७॥ बन्दनाकी अभिलाषासे अह्नद सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोपको प्राप्त हुई है ? ॥४८॥ अथवा जन्म मृत्यु और जरामे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥४९॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणिपोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लङ्घनकर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय चार्वालापसे रहित थे, सब ओर से संतप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शङ्कासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५१-५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोके पास बैठे हुए अपनी ही समान आमावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र विचित्र आभूषणोंमें युक्त था, तथा मान्तिसे जिसका मुख कमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको

मुद्धो जगज्जं सुग्रीव प्रावृषेण्यधनोपमम् । दिद्सुग्रेषु चिपन् भावमकलो सन्ध्यावनारणाम् ॥५५॥
 तत सुमावतुल्योऽपि कुर्वन् पर्यगजितम् । उत्सर्था कोपरकास्य कटोरं मदग्निहृत् ॥५६॥
 सदोष्टो महामाखी दृष्टा ती योद्धुमुद्यती । साम्ना^२ रिददु चित्र श्रीरञ्द्राया^३ सुमन्त्रिण ॥५७॥
 सुतारेति ततोऽरोचत दुष्टोऽय कोऽपि गेचर । तुल्य सर्वेण देहेन वलेन यत्तया दया ॥५८॥
 पायुर्मेम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकौगपि । प्रायादशङ्ककुम्भापैश्चिरसंस्थितलचितै ॥५९॥
 भर्तुर्मे भूषिताहस्य महापुरुषलक्षणी । कस्यापि सार्धमस्यास्य चात्रिवालेयतुल्यता ॥६०॥
 श्रुत्वापांश्च सुतारोक्त सादृश्यद्वतनिलं^४ । मन्त्रिमिस्तद्वज्ज्ञान नि रजोत् धनिभिर्पदा ॥६१॥
 पूजाभूय च तै सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभि । गदित सम्प्राप्यैदं सन्देहद्वतमानमै ॥६२॥
 मधपस्यातिवृद्धस्य वेरवाच्यसनिन^५ शिशो । प्रमदाना च बाक्यानि जानु कार्वाणि नो मुपै ॥६३॥
 अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तया विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
 सम्प्राप्य निर्मल गोत्र मय्य शालादिभूषितै । सत्मादन्त पुर यत्नादिद् रच्य सुनिर्मलम् ॥६५॥
 अर्कोतिरिति नि-धेयमस्य नोत्पद्यते यथा । कुरष्वमपि यत्नेन विमर्शान्तिरमेतयो ॥६६॥
 अहं कृत्रिमसुग्रीव पितृभ्राम्या समाश्रित । अहं सत्यसुग्रीव मातृरात्पातुतोषत ॥६७॥

सामने देव सुग्रीव, वृद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४-५५॥ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करने वाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथोंके समान मदसे विह्वल होता और कटोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओटोंकी डसते हुए उन दोनों यलरानाको युद्धके लिए उद्यत देव श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्ति पूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ उत्तरचान् सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है । यद्यपि समस्त शरीर, धल, वचन, और कान्तिसे तुल्य दिव्यता है परन्तु प्रसाद, शङ्क, फलरा, आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किञ्चित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८-५९॥ महापुरुषाके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सटशरात्रे कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंकी सुनकर भी उनकी उस तरह अवस्था कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोकी अवस्था कर देते हैं ॥६१॥ सदेहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धि शाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि महापायी, अत्यन्त वृद्ध, वेरवा, व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोको कभी नहीं मानना चाहिए ॥६२-६३॥ लोकमें गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके निना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पा कर ही शालादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्त पुरकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥६५॥ जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सन विभाग कर अतिव्यत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अह्नामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम-वनाजटी सुग्रीवके पास गया और अह्ना नामका पुत्र माताके

मन्दिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाम्यत । सुतारावचनादेन पुरस्कृत्य व्यवस्थिता ॥६८॥
 अक्षोहिण्यस्तत सप्त प्रभुमेरुमुपाश्रिता । इतर चापि तावन्त्य सशयस्य वश गता ॥६९॥
 पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीव कृत्रिम कृत । उत्तरे तस्य सुग्राव स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥
 अक्रोच्चन्द्ररिमश्च प्रतिज्ञामिति सशये । बालिपुत्रो तत कुर्वन् सर्वत प्रतिपालनम् ॥७१॥
 सुताराभवनद्वार यो मजेकश्चिदस्य स । प्राङ्दे-दीवरशोभस्य ध्वज खड्गस्य मे ध्रुवम् ॥७२॥
 तत कपिवचावेव स्थापितौ तावुभावपि । अपश्यन्तौ सुतारास्य निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
 ततोऽयं च यसुग्रीवो दयित्वाविरहाकुल । बहुश शोकहानार्थमगच्छन् खरदूषणम् ॥७४॥
 पुनश्च मारुते पार्वभन्वतींश्च पुन पुन । परिश्रायस्व दुःखार्तं प्रसादं कुरु बान्धव ॥७५॥
 मदाय रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापघ्नी । कुरुते मे परा बाधा न गत्वा मार्यतां दुतम् ॥७६॥
 सुग्रीवस्य वच ध्रुवा तदवस्थस्य शोकिन । अज्ञातनय क्रोधाद्वाङ्मनसोऽभवत् ॥७७॥
 विमान परमध्यायमप्रतीघातसहितम् । नानालङ्कारभूषिष्ठ त्रिदशावाससस्त्रिभम् ॥७८॥
 उताह परम शिखरारुह सचिवैर्दृत । किङ्किण्यनगर प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥
 ध्रुवा प्राप्त हन्मन्तमसकौ विगतज्वर । आरुह्य द्विरद प्रात सुग्राव इव निर्वयो ॥८०॥
 त कपिध्वजमालोक्य पर सादर्यमागतम् । विस्मितो वायुपुग्रीोऽपि पतित सशयार्णवे ॥८१॥
 भविन्तयश्च सुग्रीवो द्वाविमा वयम् । एतयो कतर हन्मि यद्विशयो न लभ्यते ॥८२॥

वचनार्थे अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने रानीके विषयमें सदेशशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ सशयके वशमें पड़ी सात अक्षोहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गईं और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रक्खा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥ सप्त ओरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुन चन्द्ररिमने सशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वार पर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी रत्नके द्वारा अवर्य ही ध्वज होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रक्ते हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर रानीके विरहसे आकुल सत्यसुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खर दूषणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्के पास जाकर उसने बार बार कहा कि हे बान्धव ! मैं तुझसे पीडित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापपुद्गि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पड़े शोक युक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे घडवानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उन्माहकी धारण करता हुआ मन्त्रियावै साथ, अत्यन्त क्रान्तिमान्, नाना अलङ्कारोंसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किङ्किण्य नगर पहुँचा कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्को आया सुन यह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रावकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त साहस्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो सशयरूपी सागरमें पड़ गया ॥८१॥ यह विचार करने लगा मष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जब तक कि

अविदि चानयोर्भेदमुभयोरानरेन्द्रयो । कदाचिद् वधिष माप्नु^१ सुग्रीव मुददा वरम् ॥८३॥
 मुहूर्तं मन्त्रिभि साधं विस्तरय च यथाविधि । उदार्थानतया देव मारुति स्वपुर गत ॥८४॥
 निवृत्ते मरुत पुत्रे सुग्रीवोऽभयदातुल^२ । असी च सदृशोऽमु^३य तथैवातिष्ठदायया ॥८५॥
 मायासहस्रमण्डो महावीर्यो महोदय । उल्कायुधोऽपि सन्देह प्राप कष्टमिद परम् ॥८६॥
 निमग्न मशयाग्भोर्था व्यसनप्राप्तसदृ^४ । न जानाम्ययुना देव क इम तारयिष्यति ॥८७॥
 कान्तावियोगदानेन प्रदीप्त कपिकेतनम् । कृतञ्च भव सुग्रीव प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
 नय शरणमापातो भवन्त ध्रितरसलम् । मन्त्रिधरशरीर हि परदु खस्य नाशनम् ॥८९॥
 नवस्तद्वचन श्रुत्वा निम्नवप्यासमानसा । जाना पद्मादय सर्वे धिगहोहातिभाषिण ॥९०॥
 अचिन्तयन् पद्माज^५ सत्प्राप मम दु खत । जाताग्र समासेषु प्राय प्रेमोपजायते ॥९१॥
 पूव प्रत्युपकार मे यदि कर्तुं न शक्नोति । निर्मग्नमृगमणौ भूत्वा साधयिष्यामि निर्धत्तम् ॥९२॥
 एष व्यावर्तुराधापै सम समन्वय च व्रजम् । कर्मलान्द्रमादृय पद्मनाभोऽप्यभाषन् ॥९३॥
 ससुग्रीवो भवाग्नौ वा सर्वथा त्व मयेन्मिष । विविच भवत्सुखेय पद यत्नामि ते जिज्ञम् ॥९४॥
 तथाविध पुरा राज्ञ प्राप्य धाम सुतारया । सेवस्व मुदितोऽयन्तमग्ननि शेषकञ्चकम् ॥९५॥

त्रिगोपता नहीं जान पड़ती है तब तक इन दो में से एकको कैसे मारूँ ? ॥८८॥ इन दोनों धानर रानाआका अन्तर जाने जिना मैं कदाचित् मित्रोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार बैठूँ ॥८९॥ इस प्रकार मुहूर्त भर मन्त्रियोंके साथ त्रिषिपूरक निचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापिस चला गया ॥९०॥ हनुमान्के वापिस लौट जाने पर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायागी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥९१॥ यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकारकी मायासे रजय सम्पन्न है, महाराक्षिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अर्योंका धारक है तो भा सन्नेहको प्राप्त हो रहा है यह यडे फटकी बात है ॥९२॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छासे भरे हुए सराय रूपी सागरमें निमग्न इस सुग्रीवको कीन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥९३॥ हे राघव ! श्री त्रियोग रूपी दानानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥९४॥ यह आपको आश्रितवत्सल मुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप जैसे महापुरुषका शरीर पर दु राका नाश करनेवाला है ॥९५॥

तत्रनन्तर उनके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि कभी लोभ 'धिन्' 'अहो' 'ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥९६॥ रामने निचार किया कि भव यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्राय कर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥९७॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्मग्न साधु हो कर मोक्षसाधन करूँगा ॥९८॥ इस प्रकार ध्यान कर तथा त्रिाधित आदिके साथ क्षण भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९९॥ कि तुम चाहें यथार्थ सुग्रीव होओ और चारे कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मार कर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥१००॥ तुम पहलेकी भौति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुआको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुताराके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥१०१॥

यदि मे निश्चयोपेत- प्राणेश्योऽपि गरीयसीम् । सीता ता गुणसम्पूर्णा मद्गोपलभसे प्रियाम् ॥१६॥
 कपिनेतुरवाचेद यदि ता तव न प्रियाम् । सप्ताहाऽभ्यन्तरे चेन्नि विशामि ज्वलन तदा ॥१७॥
 अभीभिरर्हः पद्मः पर प्रह्लादमाश्रितः । शशाङ्करश्मिसदृशैर्दधान- कुमुदोपमाम् ॥१८॥
 प्रवाहेणाश्रुतस्यैव प्लावितो विरूचाननः । रोमाञ्जनभैर देह बभार च समन्ततः ॥१९॥
 अन्योन्यस्य वय द्रोहरहिनाविति चादरात् । समय चक्रतुजैर्न तस्मिन्नेव जिनालये ॥२०॥
 ततो रथवराहदुः महासामन्तसेवितौ । रिप्तिन्धनगरं तेन प्रयातो रामलक्ष्मणौ ॥२१॥
 समोर्षाभूय दूतश्च प्रह्लित कपिमौलिना । निर्मस्तिरश्च कूटेन सुग्रीवेणागतः पुनः ॥२२॥
 ततश्चालोकमुग्रीवः मनसा स्पन्दनस्थित । युद्धाय निययौ क्रुद्धः पृथुसैन्यसमावृतः ॥२३॥
 अथ दूतभट्टोपः सङ्कटश्चण्डनिस्वन । सम्प्रहारो महानासीदधसलक्षसेनयोः ॥२४॥
 सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोदग्रीवमुग्रदृष्टः । विद्यायाः करणासक्तो दृढ योद्धुं समुद्यतः ॥२५॥
 सम्प्रहारो महान् जातस्तथोश्चक्रेपुसायकैः । अन्धकारीकृतकाशश्चिरमप्राप्तयोः श्रमम् ॥२६॥
 अथ सुग्रीवमाहृत्य गदस्यालोकवानरी । विज्ञाय श्रुत हृत्वेवं तृष्टः परमुपाविशत् ॥२७॥
 निक्षेष्टविग्रहश्चाप सत्यशापामृगध्वजः । निज शिविरमार्गातः परिवार्य सुदृज्जनैः ॥२८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम धात है ॥१६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपको प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥१७॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥१८॥ असुनके प्रवाहसे तर हुए के समान उनका मुख-कमल छिल उठा तथा शरीर सय ओरसे रोमाञ्चसे व्याप्त हो गया ॥१९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥२०॥

तदनन्तर महासामन्तोंसे सेवित रामलक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथ पर आरुढ़ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥२१॥ नगरके समीप पहुँच कर सुदृढमेयानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापिस आ गया ॥२२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत्त होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥२३॥ अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महा युद्ध प्रारम्भ हुआ । उनका यह महा युद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकट पूर्ण था तथा तीक्ष्ण शय्योंसे सहित था ॥२४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ओषाको उपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उत्थित हुआ ॥२५॥ चिर काल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें यकायटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ । उनके उस युद्धमें चक्र-पाग तथा रत्न आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥२६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचा कर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझ कर संतुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥२७॥ इधर जिसना शरीर निक्षेष्ट

अत्रयीहृत्पर्यन्तश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०६॥
 नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्यान्तेन राघव । भवन्तमपि सम्प्राप्य किन्तु कष्टमतः परम् ॥११०॥
 ततः पद्मप्रभोजोचद्वज्रवतोर्ध्वमानयोः । शिरो यो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥
 अज्ञानदोषतो नाथ मानेर्गीतयैव ज्ञातुचित् । सुहृद् जैनवाक्येन जनितं त्रियसङ्गमम् ॥११२॥
 अथाहूतः पुनः प्राप्तः सुग्रीवप्रतिमो बली । सरम्भवद्विना दीप्तः पद्मेनाभिमुष्वाकृतः ॥११३॥
 अद्रिणेव स रामेण क्षोभितः सागरोपमः । निष्पन्नप्राहसद्धानसत्रारायन्तमङ्गुलः ॥११४॥
 लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः परिष्वस्य दृढ घृतः । स्त्रावैरतः समीपं मा शत्रोः कोपेन गदिति ॥११५॥
 ततः ससार पद्माभः सुग्रीवाभं समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसम्प्राप्तिञ्जनितेनोरनेजम्वा ॥११६॥
 अथ पद्म समालोक्ष्य शमाष्टपुत्रं च साधकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
 सुग्रीवाकृतिसिमुक्तं वानराद्विवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥
 स्वभावमागतं ह्यहं निःशान्तमित्रं कञ्चुकान् । शास्त्रामृगध्वजां सर्वे सधुर्मयैकवमाभ्रिता ॥११९॥
 नानाबुद्धाश्च सङ्गृह्णा यत्निस्तमनूयन् । सोऽयं सोऽयमतिस्वान् कुर्वाणा परयतेति च ॥१२०॥
 तेन तेजस्विना सैन्यं तद्विधिमनुष्मन्किना । पुरस्कृतं दिशो भजे यथा तूष्णं नमस्वता ॥१२१॥

पढ़ा था ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेर कर अपने शिथिरमे ले आये ॥१०८॥ जय सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ ! हाथमे आया चौर जीवित हो पुनः मेरे नगरमे कैसे चला गया ॥१०६॥ जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपकी प्राप्त कर भी । इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशाता करनेवाले सुग्रीवकी नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारणकर तू मेरा मित्र मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुम्हें ही नष्ट नहीं कर दू इस भयसे मैं चुन रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो यह बलवान् क्रोधान्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी भगरमच्छोके संचारसे अतिशय भरा हुआ यह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर नन्दमण्यने वास्तविक सुग्रीवका दृढ आलिङ्गन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके बैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पाम न पहुँच जावे ॥११५॥ तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया वैरा मित्र करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गई कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाको धारण करनेवाली शो निकल जाती है ॥११७॥ तत्पश्चात् जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूपमे स्थित था ऐसे साहस गतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुब्धित हो एक रूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना-शस्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह यही है यह वही है देरों देरों' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस

ताम्रससायक कृत्वा धनरत्नविक्रम । भवोपपन्नमुद्गिरय घनाघनचयोपम ॥१२२॥
 शरधारा चिपत्यस्मिन् शृङ्खलाद्वाहितान्तरम् । विवाय मण्डप बाणैरस्थ्यात् काकुत्स्थनन्दन ॥१२३॥
 सम साहसयानेन पद्मस्याभूत्पर शृङ्गम् । आनन्दो हि स पद्मस्य चिर य कुस्ते रणम् ॥१२४॥
 ततः कृत्वा रणश्रीं चिरमूर्जितविक्रम । क्षुरप्रैरस्य क्वच चिच्छेद रघुनन्दन ॥१२५॥
 तितवाभारदेहोऽथ कृतस्तीक्ष्णै शिरीषुखै । गत सुमाहसो भूमिमालिङ्ग गतप्रभ ॥१२६॥
 समासाय च तै सर्वं कुतूहलिमिरौचित । दुष्ट साहसयानोऽसाविति ज्ञातश्च निश्चितम् ॥१२७॥
 ततः सञ्जातृक पद्म सुधीव पर्यपूजयत् । स्तुतिभिश्चाभिरम्यामिस्तुष्टावोदात्तसम्मद ॥१२८॥
 पुरे कारयितु शोभा परमा हतकण्ठके । यात कान्तासमायोग समुत्कण्ठा वहन् पराम् ॥१२९॥
 भोगसागरमनोऽसौ नैवासासादृहनिशम् । चिरदृष्ट मुताप्राया म्वस्तानि शेषचेतन ॥१३०॥
 शत्रिमेसा रहिनीं प्रा पद्माभप्रमुखा मृषा । नन्दया प्रविश्य किङ्किध महाबलसमन्विता ॥१३१॥
 आनन्दोद्यानमाश्रित्य नन्दनश्चाधिदम्बरम् । स्वेच्छयागस्तियति चक्षुर्लोकपालसुरश्रिय ॥१३२॥
 सस्या^१ वर्णनमेवातिवर्णनारम्यतापि तु^३ । उद्यानस्यान्यथा कोऽसौ शक्तस्तद्गुणवर्णने ॥१३३॥
 रम्य चैत्यगृह तत्र न्यस्तचन्द्रप्रभाचनम् । तद्विष्ण्वन् प्रणम्यैतावासीनां रामलक्ष्मणां ॥१३४॥

सेनाको जन आगेकर रखेबा तत्र यह दिशाओंको उस प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकारकी पवनसे प्रेरित रुई प्राप्त होती है ॥१२१॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघ समूहकी उपमा धारण करनेवाला साहसगति, धनुषपर बाण चढाकर रामकी ओर दौड़ा ॥१२२॥ उधर जन यह लगातार बाण समूहकी वर्षा कर रहा था तत्र इपर राम भी पाणोंके द्वारा मण्डप घनाकर स्थित थे—राम भी पनयोर पाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहसगतिके साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको आनन्ददायी होता था ॥१२४॥ तदनन्तर अत्यधिक पराक्रमके धारक रामचन्द्रने चिरकाल तरु रणश्रीकाकर बाणासे उसका कण्ठ छेद दिया ॥१२५॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणासे जिसका शरीर चल्नीके समान सज्जि हो गया था ऐसे साहसगतिने प्रभा रहित हो पृथिवीका आलिङ्गन किया अर्थात् प्राण रहित हो पृथिवीपर गिर पड़ा ॥१२६॥ कुतूहलसे भरे सत्र विद्याधरोंने आकर डमे देखा तथा निश्चयसे जाना कि यह साहसगति ही है ॥१२७॥

तदनन्तर उत्पट हर्षसे धारक सुमीचने भाई—लक्ष्मण सहित रामकी पूजा की तथा मनोहर स्तुतियासे स्तुति की ॥१२८॥ शत्रुरहित नगरमें परमशोभा करानेके लिए परम उत्कण्ठाको धारण करता हुआ यह स्त्रावे साथ समागमकी प्राप्त हुआ ॥१२९॥ यह भोगरूपी सागरमें ऐसा मग्न हुआ कि रात दिनका भी उसे ज्ञात नहीं रहा । यह चिरकाल बाद दिया था अतः मुताबिके लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥१३०॥ महाबलसे सहित राम आदि प्रमुख राजाभाने एक रात्रि नगरसे बाहर निता कर वैभवके साथ किङ्किध नगरमें प्रवेश किया ॥१३१॥ यहाँ लोकपाल देवोंने समान शोभाकी धारण करनेवाले राम आदि प्रमुख राजा, नन्दनवनश्री शोभाकी विडम्बित करनेवाले आनन्द नामक उद्यानमें स्वेच्छासे ठहरे ॥१३२॥ उस उद्यानका सुन्दरताका वर्णन नहीं करना ही उसका सबसे बड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? ॥१३३॥ उस उद्यानमें चन्द्रप्रभ भगवानको प्रतिमाने सुरोभित मनोहर चैत्यालय था सो समस्त विष्णोरा नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रभ भगवानको नमस्कार कर राम

यद्विश्रैयालयस्यास्य चन्द्रोदरमुतादय । स्वमैन्यावासन कृत्वा बभूवुविगतध्रमा ॥१३५॥
 गुणधुःयनुरागेण स्वयवरणतुङ्ग्य । त्रयोदश मुता पथ सुप्रोवस्य ययुर्मुदा ॥१३६॥
 चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मैति चेतस 'सकरोपमा ॥१३७॥
 तुरायानुन्धरो नाम्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥
 अन्या सुरवती नाम सुरस्त्रासमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिख्याता मनोबह्वनकोविदा ॥१३९॥
 चारुश्रारिति विख्याता चारुश्री परमार्थैत । मदनी सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनीसवा ॥१४०॥
 अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावता ख्याता बुद्धपद्मसमानना ॥१४१॥
 तथा जिनमतिर्निधय जिनपूजनतत्पर । एता कन्या समादाय ययी तासा परिच्छद ॥१४२॥
 प्रणम्य च जगौ राम माथैतासा स्वयवृतम् । शरण भव लोकेश कन्याना बन्धुरत्तम ॥१४३॥
 दुविदुष्यै कर्तौर्माभूत् विद्याहोऽस्माकमियलम् । जातमासा मन ध्रुत्वा गोत्ररच बानुपालकम् ॥१४४॥
 ततो ह्रीमादनन्नास्या वसिता शोभया विभुम् । पद्माभमुपसमाप्ता पद्माभा नवदीवना ॥१४५॥
 विपुलद्विमुषणांजगर्भमासा महायसाम् । देहमासा विकासेन तासा रैशे नमस्तलम् ॥१४६॥
 उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहा । समापे पद्मनाभस्य तस्थु पूजितचेष्टिता ॥१४७॥

लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥ चन्द्रोदरके पुत्र—चिराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहरा कर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुप्रीवकी तेरह पुत्रियों स्वयवरणकी इच्छासे हर्ष पूर्वक वहाँ आई ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियों इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए सङ्कटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवीं द्वितीय लक्ष्माके समान श्रीकान्ता, छठवीं सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवाङ्गनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थम उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवस्वरूप मदनीसवा, ग्यारहवीं गुणाका मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती । इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥१३७-१४२॥ रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ । आप इन सब कन्याओंके स्नयवृत शरण होओ । हे लोकेश । इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही हैं ॥१४३॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोके साथ न हो ॥१४४॥ तदनन्तर लक्ष्माके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नव यौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आई ॥१४५॥ विजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भातरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥ विनीत, लावण्य युक्त शरीरकी धारण एव प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गई ॥१४७॥

आर्याच्छन्दः.

रमते क्वचिदपि चित्त पुरपरवे पूर्वजन्ममग्रन्धान् ।
 ण्पा भत्रपरिवर्त्ते सर्वेषा श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यापे रविपेणाचार्येप्रोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीनधारयान नाम
 सप्तचत्वारिंशत्तम पर्गे ॥४७॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरषोमे सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हींमें
 रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवों को है ॥१४८॥

इम प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विट सुग्रीनके
 वधका कथन करनेवाला सैंतालीसवाँ पर्गे समाप्त हुआ ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपलालनं^१ तस्य वाञ्छन्त्यो वरकन्यका । बहुभेदा त्रियाश्चतुर्दशलोकादिवागता ॥१॥
 वीणादिवादनैस्तामा गीतैश्चातिमनोहरैः । ललिताभिश्च स्त्रीलाभिर्हेन तस्य न मानसम् ॥२॥
 सर्वाकारसमानातो विभवस्तस्य पुष्कल । न भोगेषु मयश्चर्ये वेदेर्ह्य प्रति सहजम् ॥३॥
 अनन्यमानसोऽर्मा हि मुक्तिं शेषचेष्टित । सीता मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्यान्महादर ॥४॥
 न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूपं परयति नापरम् । जानकामयमेवास्य सर्वं प्रयवभासते ॥५॥
 न करोति कथामन्या कुरते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्थस्या जानकीत्यभिभाषते ॥६॥
 वायम् पृच्छति प्राप्या गिरिवं^३ कल्यादाया । जाम्बवता विपुल देश इषा स्वात् मेधिला कविम् ॥७॥
 सरस्युच्छिद्रपद्मादिकिञ्चलालङ्कृताम्भसि । चन्द्राहमियुन इष्या किञ्चित् सन्निभं कृपयति ॥८॥
 सीताशरारसम्पर्कशङ्कया बहुमानवन् । निमाद्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति^४ माहृतम् ॥९॥
 पतस्या म्या निपणोति वसुधा बहु मन्यते । सुगुप्सितस्तवा^५ नूनमिति चन्द्रमुदाचते ॥१०॥
 भवित्त्ययं किं साता मन्त्रिव्योभाविनशपिता । तामवस्था मनेन प्राप्ता स्यादस्या वापदैरिनाम् ॥११॥
 किमपि जानका वैया एता मन्दानिलेरिता । किमशुकमिदं नैतच्छलपत्रकदम्बरम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेरी इच्छा करती हुई वे उत्तम कथाएँ नाना प्रकारकी त्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकसे ही आई हों ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्त वजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करतीं थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सत्र प्रकारकी पुष्पल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोंमें नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सत्र चेष्टाओंको छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे । उन्हें सत्र ससार सातामय ही जान पड़ता था ॥५॥ वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पासमें लड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमें योंसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देशमें भ्रमण करता है अतः तू ने कहीं सीताको तो नहीं देखा ॥७॥ पिले हुए कमल आदि पुष्पाङ्गी परागसे जिसका जड़ अलङ्कृत था ऐसे सरोवरमें क्रीडा करते चकवा चकवाके युगलको देखकर वे बुद्ध सोच विचारमें पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्दकर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिङ्गन करते कि समन है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस प्रथिवी पर सीता नहीं थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उससे हाग अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गई होगी जो त्रिपत्तिप्रसन्न प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है ? मन्द मन्द वायुसे हिलती

१. नान्य म० । २. मिद्धि मास्या म० । ३. गिरिव म० । ४. समालिङ्गत म० ।

५. तथा म० ।

एने कि लोचने तस्या नैने पुणे मपट्पदे । करोऽय किं चलस्तस्या नायं प्रत्यप्रवृत्तः ॥१३॥
 केशभार मयूरीषु तस्याः पश्यामि सुन्दरम् । अपर्याप्तशशाङ्गे च लक्ष्मीमलिकसम्भवाम् ॥१४॥
 त्रिपर्णाम्भोतपण्डेषु श्रिय लोचनगोचराम् । शोणपञ्चवमध्यस्थसितपुष्पेस्मितविषम् ॥१५॥
 स्तवरेषु सुजातेषु कान्तिसम्पन्नैर्नम्रविषम् । जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥
 तामामेरोद्धभागेषु नितम्भभरताकृतिम् । ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासुताम् ॥१७॥
 पद्मेषु चरणाभितथा स्थलसम्प्राप्तजन्मसु । शोभां तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न कचिन् ॥१८॥
 चिरायति कथं सोऽपि सुमीवः कारणं नु किम् । दृष्टा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिता ॥१९॥
 मद्बियोनेन तस्या या विलीनां तां सुशोल्काम् । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसी नैति दर्शनम् ॥२०॥
 किं वा कृतार्थतां प्राप्तः प्राप्य राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थोभूतो भवेद् दुःखं मम विष्णुस्य खेवरः ॥२१॥
 एष चिन्तयतस्तस्य बाष्पविप्लुतचक्षुषः । सस्तालसशरीरस्य विवेक्षावरजो मनः ॥२२॥
 ततः समग्रम् स्वान्त कोपाङ्गितलोचनः । ययौ सुमीवमुद्दिश्य नम्रासिबिलसत्करः ॥२३॥
 गच्छतस्तस्य घातेन जङ्घास्तम्भास्तज्जन्मना । दोलायितामभूत् सर्वं महोत्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥
 वेगनिक्षिप्तनि शेषराजाधिकृतमानवैः । प्रविश्य तद्गृहं दृष्ट्वा सुमीवमिदमभ्यधात् ॥२५॥
 भाः पापं ददित्तादु गतिमग्ने परमेश्वरे । भार्यया सहितः सीधयं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

हुई लता नहीं है ? क्या यह उसका वस्त्र है, चञ्चल पत्रोंका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, ध्रुवर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चञ्चल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमें, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमें, नेत्रोंकी शोभा तीन रङ्गके कमलोंमें, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमें, स्तनोंकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमें, मध्यभागकी शोभा जिनाभिपेककी वेदिकाओंके मध्यभागमें, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमें, ऊरुओंकी अनुपम शोभा फेलेके सुन्दर स्तम्भोंमें, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४-१८॥ यह सुमीव भी यिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थोंको देयनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा ? ॥१९॥ अथवा यह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गई है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमें असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निगमन हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्षोभसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुमीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जङ्घाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न धायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आतुर होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंकी अपने वेगसे गिराकर वे सुमीवके घरमें प्रविष्ट हो सुमीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जय कि परमेस्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निगमन हैं तब रे दुर्वृत्ते ! तू स्त्रीके

१. पुष्पेषु पट्पटाः म० । २. शशाङ्गे म० । ३. नम्रविषम् (१) म० । ४. 'अभितथा नामशोभयोः' इत्यमरः । ५. मध्यममम-मनु (१) म० । ६. दृष्ट्वा म० । ७. प्राप्ता म० । ८. प्राप्ये म० । ९. अनुभवं 'दग्धम्' । १०. समग्रम् 'शान्तः' म० । ११. माननः म० ।

अहं त्वा खेचरश्चाह भोगे दुर्लभितं खल । भयामि तत्र नाथेन यत्र नातस्त्वदाकृति ॥२७॥
 पुत्रमुपान् विमुञ्चन्त वर्णान् कोपशणानिच । लक्ष्मीधर प्रणामेन सुप्राय शममानयत् ॥२८॥
 उवाच चेदमेक मे चम्यता देव विस्मृतम् । ह्युदाण्य हि भवयेव मादृशा दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
 तत्पार्यपाणया दारा सम्भ्रान्ता कम्पमूर्तय । सम्प्रणामेन नि शेष जटुलक्ष्मणसम्भ्रमम् ॥३०॥
 सज्जनम्भोद्धानोयधारा निकरसङ्गत । प्रवाति विलय वृषि जनारणिमवोऽनल ॥३१॥
 प्रणाममात्रमाध्यो हि महता चेतस शम । महद्भिरपि नो दानैरपशाम्यन्ति दुर्जना ॥३२॥
 प्रतिज्ञा स्मारयस्त्वस्य चक्रे लक्ष्मीधर परम् । उपकार यथा योगी यक्षदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
 एमच्छ मगधाशो गणेश्वरमिहान्तरे । यक्षदत्तस्य वृत्तान्त नाथेच्छामि विनेदितुम् ॥३४॥
 ततो गणपरोऽवोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यक्षदत्तस्य यथा मातु स्मृति मुनि ॥३५॥
 अस्ति श्रीःछपुर नाम नगर तत्र पार्थिव । यक्षसङ्ग प्रिया तस्य राज्ञिललि प्रकृतिसा ॥३६॥
 तत्पुत्री यक्षदत्ताय स वाद्या विहरन् सुखम् । अपरयत् परमा नारी स्थिता दुर्विधपाटके ॥३७॥
 स्मरेदुदितचित्तोऽसी तामुदिरय प्रचक्षि । मुनिनाबधियुक्तेन मैत्रमित्यभ्यभाषत ॥३८॥
 ततस्त विष्णुदुष्टोत्थोत्ति वृक्षमूलगम् । ऐश्वर्यायननामान मुनि सायकपाणि ॥३९॥
 तमुपैष्य नति हृत्वा प्रमच्छ विनयान्वित । भगवन् किं त्वया सैति निपिष्ट कौतुक मम ॥४०॥

साथ सुरका उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुम्हें भोगासक्त हो
 वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कृत्रिम सुमीयको पहुँचाया है
 ॥२७॥ इस प्रकार श्रोधाग्निके कणोंसे समान जगत्तन्त्र छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुमीयने नमस्कार कर
 शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे जुद्ध
 मनुष्योंकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुप्रायकी घबड़ाई हुई
 रित्रियों हाथमें अर्ध लेलेकर बाहर निकल आई और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके
 समस्त श्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई
 श्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्प्रन्धी उचनरूपी जलधाराओंके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन
 हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुम्पोंके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब
 कि दुर्जन बड़े बड़े दानोंसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण करावे हुए
 मुष्ठीयका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यक्षदत्तकी माताका
 किया था ॥३३॥

इसी बीचमें राजा श्रेणिकने गौतमराजीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यक्षदत्तका वृत्तान्त जानना
 चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार
 यक्षदत्तकी माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक कौञ्जपुर नामका
 नगर है उसमें यथा नामका राजा था और राज्ञिला नामसे प्रसिद्ध उनकी स्त्री थी ॥३६॥ उन
 दोनोंके यक्षदत्त नामका पुत्र था । एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय
 द्वाित्रिंशती वस्तामें स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणसे उसका हृदय
 हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके तद्देशसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने
 'मा अर्थात् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय बिजली
 चमकी सो उसने प्रकाशमें द्वाथमें तलवार धारण करनेवाले यक्षदत्तने एक वृक्षके नीचे
 बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास
 जाकर तया नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका

सोऽबोचद् या समुद्दिश्य प्रस्थित कामुको भवान् ।
 सा ते माता ततस्ता मा यासी कामीति वारित ॥४१॥
 सोऽबोचत् कथमित्यारय ततोऽस्मिन् प्रस्तुत मुनि ।
 मानसानि मुनीना हि मुदिभ्यान्यनुकम्पया ॥४२॥
 शृण्वस्मि मृत्तिकावत्या कनको नाम वाणिज ।
 धूर्नानि तस्य भार्याया बन्धुदत्त मुतोऽभवत् ॥४३॥

भार्या मित्रवती तस्य एतादत्तसमुद्भव । कृन्वास्या गर्भमज्ञात पोतेन प्रस्थित पति ॥४४॥
 श्वमुखाया ततो ज्ञात्या गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् चित्र दास्योपलिकया सह ॥४५॥
 प्रस्थिता च पितुर्गृह सार्धेन मदता समम् । सप्रेणोपलिकाद् दृष्टा मृता च विपिनामन्तरे ॥४६॥
 तत सत्या विमुकासी शालमात्रसहायिका । इमं क्रीञ्जपुर प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
 स्कातदेवाचंकारामे प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् चालयितु याता शिशुस्तावदृष्टत शुना ॥४८॥
 सुत स्वैर समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददी यक्षमहीपाय नात्वा स ह्यस्य वल्लभ ॥४९॥
 ततोऽनेन विपुत्राया राजिलाया समर्पित । सार्या च यक्षदत्ताया प्रापितस्व स वत्से ॥५०॥
 प्रयाज्य च सम्भ्रान्तप्रपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलाप चिर चर्चे हु खान् मित्रवती परम् ॥५१॥
 देवार्चनेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । स्व मे स्वसेति भापि वा स्वकेऽवस्थापितोदजे ॥५२॥
 सहापरहितत्वेन त्रययाकार्तिभासित । न सा गता पितुर्गृह तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

उच्चारण कर निषेध किसलिए किया । इसका मुझे यज्ञ कौतुक है ? ॥४०॥ इसके उत्तरम
 मुनिराने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए
 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यत्नदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ?
 इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक हो है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त
 होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि मुनी, मृत्तिकावती नामक नगरमें एक कनक नामका वणिक्
 रहता था, उसकी धूर् नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका
 नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी । एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीकी
 गर्भधारण करा कर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास श्वसुने गर्भका ज्ञात
 होने पर उसे दुश्चरिता समझ कर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिना
 नामक दासीकी साथ ले एक बड़े यन्त्राारके सघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली ।
 परन्तु जङ्गलके बीच उत्पलिकाकी सोंपने ढँस लिया जिससे वह सर गई ॥४५-४६॥ तब वह
 सरीसे रहिन, एक शीलप्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस
 मीञ्जपुर नगरमें आई ॥४७॥ यहाँ रचीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया ।
 तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवरमें वस्त्र धोनेके लिए
 गई तब तब एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालनू प्यारा कुत्ता
 था इसलिए उसने रत्नकम्बलमें लिपेटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यज्ञके लिए
 दे दिया ॥४९॥ राजाने यह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा
 उसका यत्नदत्त यह सार्धक नाम रखवा क्योंकि यत्न कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा
 दिया गया था । यही यत्नदत्त तू है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आई और उमने अपना पुत्र नहीं
 देखा तब वह दु रासे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनमें स्वामा
 देवार्चने उसे देण कर दिया पूर्णक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहिन है'
 अपनी कुटीमें रखी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर

सेयम' यन्तरीलाद्या जिनधर्मपरायणा । कुण्डरे दुविधस्यास्ते भ्रमता या त्ववेक्षिता ॥५४॥
 मनता बन्धुदत्तेन यहस रत्नकम्पलम् । अस्यास्तद्यक्षमवने तिष्ठयद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
 इयुनेन सयत नन्वा स्तुवा च हितकारिणम् । इयाय रत्नवानेव सम्भ्रमी यक्षमविधिम् ॥५६॥
 ऊचे च तेऽसिनानेन द्विनञ्चि नियत शिर । सत्यतो यदि मे जन्म न शास्ति स्पृष्टकारणम् ॥५७॥
 यथावद् वेदित तेन रत्नकम्पललक्षितम् । नय जरायुलेपेन तिष्ठयद्यापि दिग्धक ॥५८॥
 प्रयमाय्या ततस्तस्य पितृभ्या सह सङ्गम् । जातो महोन्मोपेत महाविभ्रविस्मित ॥५९॥
 कथित ते महाराज वृत्तान्तादिद्भागतम् । अयुमा प्रकृत वक्ष्ये भवावहितमानम् ॥६०॥
 हृद्यमाधर पुरस्कृत्य मुद्रावस्वरित यदी । समीप रामदेवस्य स तस्थी त्रिहितानति ॥६१॥
 सतो विन्मगर्णेण सदा प्रकण्ठेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्रवान् ॥६२॥
 काश्चिदधुतवृत्तान्तान् महाभोग हतात्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिमित्तमनुत्तम् ॥६३॥
 काश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रयुपकाराय वाचा सम्मानयन्निदम् ॥६४॥
 ओ ओ सुविभ्रमा सर्वे गणुन् आसमुत्तमा । सातामुपलभ्यन् द्वाङ् ब वरतत इति स्फुटम् ॥६५॥
 महीतले समस्तेऽस्मिन् पाताले ते जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोमाये द्वीपे वा घातकामति ॥६६॥
 कुलपर्वतदुर्गेषु कावमान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु द्योमचारिणाम् ॥६७॥
 गहनेषु समस्तेषु नागाविद्यापराङ्ममा । जानात दिक्षु सर्वास्तु सती भूविचरेषु च ॥६८॥

पिताके घर नहीं गई और वहीं रहने लगी ॥५३॥ यह अत्यन्त शीलरत्नी तथा जिनधर्मपे
 धारण करनेमें तत्पर रहती हुई द्रिद्रे देवार्चककी कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे
 देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तेन परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्पल दिया था वह
 आज भी राना यक्षके घरमें सुरक्षित रक्खा है ॥५५॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी
 मुनिराजको नमस्कार कर उनकी धठत स्तुति की । तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे
 राजा यक्षके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं
 बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूँगा ॥५७॥ इतना कहने पर राजा यक्षने
 सत्र कारण ज्यों-का-त्यों बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्पल दिखलाते हुए कहा कि यह
 अत्र भा जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताने साथ समागम
 हो गया और महा वैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा वस्त्र हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते
 हैं कि हे राजन् ! प्रकरण भा जानेसे यह वृत्तांत मैंने तुमसे कहा अब फिर प्रकृत बात कहता
 हूँ सो सामधान होकर श्रवण कर ॥६०॥

तदनन्तर मुनीव, लक्ष्मणकी आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर
 खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराङ्मग्ये गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एव
 उष कुलाम इत्यत्र ममस्त किङ्करोंको बुलाकर जिन महाभोगी किङ्करोंने यह वृत्तान्त नहीं सुना
 था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतला कर आश्चर्यसे चकित किया ॥६२-६३॥ तथा जो इस
 वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किङ्करोंका वचन द्वारा सम्मान
 करते हुए उनमें रामका प्रयुपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विभ्रमोंको धारण
 करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो ! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है ?
 ॥६५॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओं और पराङ्मग्यसे युक्त हो अत इस समस्त भूतलमें,
 पातालमें, आकाशमें, जलमें, धलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, घातकीलखड्ग द्वीपमें, कुलाचलाके

१. 'सत्या यदि मे जन्म नास्ति एव स्पृष्टकारणम्' म० । २. प्राप्ते म० । ३. महामादृतात्मिकान् म० ।
 ४. श्रीमदुत्तमा (१) म० ।

शोषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽङ्ग प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु द्रुतं जम्भुरहंयवः ॥६६॥
 युवविद्याभृता लेख नाययिवा ययाविधि । ज्ञातनि-शेषवृत्तान्तो वैदेहोऽप्युपपादितः ॥७०॥
 ततोऽर्धो स्वसृष्टुःखेन नितामन्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निभृतोऽभवत् ॥७१॥
 स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् मानुवर्भना । तारानिकरचक्रेण सम्प्रवृत्तो गवेपणे ॥७२॥
 दुष्टविद्यायानिःस्फुरान्वेषणतत्परः । ध्वज दूरात् समालोक्य सर्मारणविकम्पितम् ॥७३॥
 जम्बूद्वीपमहोद्वयं शिरसरेणोपलक्षितम् । नभस्तल पर प्राप बलदंशुकपल्लवः^३ ॥७४॥
 वियतोऽवतरद् बीष्य विमान मानुभासुरम् । उत्पातासङ्क्रितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
 आसांदनुसमालोक्य तद्भासवतिबिह्वलः । वैभतेयात् परिव्रस्तः सञ्जुकोच यथोरगः ॥७६॥
 भामन्न च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलधमणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृषुमयाकुलः ॥७७॥
 लङ्काधिपतिना नून क्रुद्धेन जनितागसा । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽयमुवागतः ॥७८॥
 किं न प्रतिभये शीघ्र मृतो रत्नाकराम्भसि । हा धिग्नान्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम्^४ ॥७९॥
 मनोरथ पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जांबिणैस्सहयाविष्टः प्रापयिष्यामि किन्त्वहम् ॥८०॥
 इति चिन्तयतस्तस्य सप्तप्राप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीप द्वितीय इव भास्करः ॥८१॥
 तत्र धूमरसर्वाङ्गमालोक्य धनपांशुभिः । वानराङ्गवज्रोऽपृच्छदनुर्कम्पासमुद्वहन् ॥८२॥

निजुज्जामे, यनके अन्त भागोमे, सुमेरु पर्वतामे, विद्याधरोके चित्र-विचित्र मनोहर नगरांमे, समस्त दिशाओमे और भूमिके विचरो अर्थात् कन्दराओमे सीताका पता चलाओ ॥६६-६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शोपाक्षवकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओमे चले गये ॥६६॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधि-पूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥८०॥ तदनन्तर वहनिके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुःखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७९॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओके समूहके साथ आकाशमार्ग-से चला ॥७९॥ वह दुष्ट विद्याधरोके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था । तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमे पहुँचा । उस समय उसके वररका अब्रल हवासे हिल रहा था ॥७९-७९॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशङ्कासे युक्त हो गया ॥७९॥ विमान को देखकर वह अत्यन्त बिह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुडसे भयभीत हो सर्प संतुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संतुचित होकर रह गया ॥७९॥ जब सुग्रीव बिलतुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरधंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लङ्काधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कृपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिर कर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया । मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्यालसे रहित होकर भी इन्द्राओं को आगे कर लीकित रहनेकी इन्द्रासे युक्त हूँ सो देवों अव क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर हो रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनसी धूलिसे जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था

१. अक्षरानुना । २. जम्बूद्वीपमहोद्वय म० । जम्बूद्वीपमहोद्वय म० । ३ पल्लव म० । ४. मनुवागम म० । ५. अर्जितः गृह्य म० । ६. दनुक्य म० ।

म त्वं रत्नजटी पूर्वमामाद् विद्यासमुन्नतः । अवस्थामादशीं कस्मादधुना भद्रं सङ्गतः ॥८३॥
 इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुवाक्यम् । सर्वान् कम्पयन् भीत्या दानो रत्नजटी भृशम् ॥८४॥
 मा भैरीभेदं मा भैरीरित्युक्तं पुनः पुनः । जगौ वृत्तावतिथीरमितिः प्रकृष्टितावरम् ॥८५॥
 प्रतिपत्तां भवन् साधो रात्रेण दुरामना । सीताहरणसत्प्रेन द्विजविद्योऽहमीदृशः ॥८६॥
 जीवितारां समालम्ब्य कथञ्चित्त्वययोगतः । चञ्चमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽन्निम कपिपुङ्गव ॥८७॥
 उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्देगं वहन् दुःखम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं गयी ॥८८॥
 समर्पं लक्ष्मणस्याथ महतां च स्वगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पथं विनयो विद्विताऽल्लिः ॥८९॥
 देव देवी नृशंसेन सती सीता दुरामना । इना लङ्कापुरीच्छ्रेण विद्या च मम कोपिन ॥९०॥
 सुवैभो सा महाकन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगोव स्यात्कुलीभूता नीना तेन घलीयमा ॥९१॥
 येनामोत् समरे भीमे निपिथ सुमहाबलः । इन्द्रो विद्यामृतामीशो वन्दिप्रदमुपाहृतः ॥९२॥
 स्वामी भरतलण्डानां यत्प्रयाणां निरङ्कुलः । कैलामोद्धरणे येन विशालं सङ्गतं यशः ॥९३॥
 मागारान्तां महो वस्य दासीवाजां प्रतीच्छते । सुरासुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥
 श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मदं निर्मितं क्रूरं मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥
 तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्रदसं काकुत्स्थनन्दनः । अद्भुतं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
 देवोपगीतमज्ञे च पुरे गौत्रप्रमाणम् । अम्बजानादधीराख विन्निवृत्तमरिभिश्चिरम् ॥९७॥

ऐसे उस रत्नजटीको देकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८३॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याभासे समुन्नत था । हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुरासमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब वहीं धैर्यधारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अश्रुओंमें कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५-८६॥ हे कपि श्रेष्ठ ! द्वेषयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लङ्कापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुक्त रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९-९०॥ जो चित्तसे हरण करनेवाली ध्वनिसे महागर्जन करती हुई मृगोंके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह घलवान् हर कर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयङ्कर संप्राममं अत्यन्त घलवान्, विद्याधरोंके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें टाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन सण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलाम पर्वतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकारी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म—अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३-९४॥ यह सुनकर नाना प्रकारके रोहकों धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उमरा आलिङ्गन किया ॥९५॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर वीचमं राघुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—

पुन पुनरपृच्छच्च वार्तामालिख्य त नृप । पुन पुनर्जगादासी प्रमोदव्याकुलासर ॥६८॥
 तत समु सुक पद्म पर्यपृच्छदतिद्रुतम् । लङ्कापुरा कियद्दूरे विवेदयत रेखा ॥६९॥
 ह्युक्तास्ते गता मोह निश्चलामृतप्रिग्रहा । अवाहमुपा गतच्छाया बभूवुर्वाग्बिविजिता ॥७०॥
 अभिप्राय ततो ज्ञात्वा विशार्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्दया दृष्ट्या राघवेन त्रिलोकिता ॥७१॥
 अथ भातिपरित्रस्ता ज्ञाता स्म इति लज्जिता । ऊर्ध्वीर मन कृपा करकुटुम्बलमस्तजा ॥७२॥
 यदीय देव नामापि कथञ्चि समुदारितम् । ज्वरमानयति त्रासाद्वाहामस्त्वत्पुर कथम् ॥७३॥
 कथं वयं क्षुद्रसामर्थ्या च लङ्कामहेहर । व्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते सम्प्रति वस्तुनि ॥७४॥
 अपावरयमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयता प्रभो । कोऽग्र दोष भवच्च ते किञ्चिद्वक्तुं हि शक्यते ॥७५॥
 अस्वयं लक्षणाभ्योर्ध्वीरः प्रग्राहसमाकुले । प्रयातो राक्षसद्वीप प्रभूताद्भुतसङ्कुल ॥७६॥
 शतानि सप्त विस्तार्गो योजनाना समन्तत । परिच्छेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशति ॥७७॥
 मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वत । योजनानि ननोत्तुङ्गपत्राशद्विपुलखत ॥७८॥
 हेमनानामगिष्कीत शिलाजालावलीचिंत । आसीत्तोष्यद्वाहस्य दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥७९॥
 तस्य कूर्चैर्दुर्मुखैश्चित्रै शिखरे कृतभूषणे । लङ्केति नगरी भाति मणिक्कमरीचिभि ॥८०॥
 विमानतटशो रम्यं प्रासादं स्वर्गसंनिभम् । मनोहरं प्रदशैश्च क्राडनादिक्रियोचिर् ॥८१॥
 त्रिगङ्गं योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्तत । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेवं वसुन्धरा ॥८२॥

यहाँका राजा बनाया ॥६७॥ राम, बार बार आलिङ्गन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्तब्ध होते हुए अक्षरोंमें बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥६८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥६९॥ इस प्रकार रामके कहने पर सब विद्याधर मोहकी प्राप्ति हो गये उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुग्ध, कान्तिहीन और वचनोंसे रहित हो गये ॥७०॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवज्ञापूर्ण नृपिसे देखा ॥७१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीराम की दृष्टिम भयभाव जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥७२॥ हे देव ! किसी तरह उद्धारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे डर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥७३॥ क्षुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लंकाका स्वामी रावण कहाँ ? अत इस समय आप इस जानी हुई वस्तुकी दृष्ट छोटिए ॥७४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥७५॥ दुष्ट मगरमच्छासे भरे हुए इस लवणसमुद्रम अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥७६॥ जो सत्र ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥७७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नी योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥७८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणिषासे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है । राक्षसाके इन्द्र नीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥७९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र विचित्र वृक्षासे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखर पर लङ्का नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंसे समान मनोहर महलों एवं मीठा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥८०-८१॥ जो सत्र ओरसे

लङ्काया परिपार्येषु सन्त्यन्येषु मनोहरा । स्वभावावस्थिता रत्नमणिवाद्यनमूर्तम् ॥११३॥
 प्रदेशा नगरोपेता रचसा क्रीडभूमय । अभिहिता महाभोगैस्ते च सर्वे नमश्चरे ॥११४॥
 सन्ध्याकार सुवेलश्च काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हसनामा च हरिसागरनिस्वन ॥११५॥
 अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये द्वापा सर्वदिभोगदा । प्रदेशा द्वव नाकस्य काननादिभिभूयिता ॥११६॥
 सुहृदिभ्रातृमि पुत्रे कलत्रैरान्वयै सह । रमते येषु लङ्केशो भूयवर्गसमावृत ॥११७॥
 त क्रीडन्त जनो दृष्ट्वा महाविद्याराधिपम् । देवाधिपोऽपि मन्येऽह समाशङ्क प्रपद्यते ॥११८॥
 भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमु कट । परैरपि परैराज्ञावन्नयो राजपुङ्गव ॥११९॥
 त्रिदशस्त समो युद्धया नास्ति नास्येव मानुष । तेनैकेनैव पर्याप्त रावणस्य जगत्प्रभो ॥१२०॥
 अपरोऽप्यनुजस्तस्य विद्यते गुणभूषण । भासुर्कणं इति क्यातस्त्रिशूलपरमायुध ॥१२१॥
 भङ्गिं कुटिला यस्य भीष्मा कालकुर्गमिव । न शक्नुवन्ति सप्रामे सुरा अप्यवलोकितुम् ॥१२२॥
 महेंद्रजितसङ्गश्च क्षितौ एयातिसुपागत । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२३॥
 एवमाद्या सुबहव प्रणतास्तस्य किङ्करा । नानाविद्याभ्युतोषेता प्रतापप्रणतारय ॥१२४॥
 यस्यातपत्रमालोच्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्वजन्ति रिपवो दर्पं समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥
 अमुष्य पुस्तकमपि चित्र वा नृहमेचितम् । नाम खोद्यारित शकमराणा त्रासकर्मणि ॥१२६॥
 एवविधममु युद्धे क शक्तो जेतुमुदत । कथा चैषा न कर्तव्या चित्रयत्नामपरा गति ॥१२७॥

तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परित्रासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पड़ती है ॥१११॥ लङ्काके समीपमें और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्नमणि तथा स्वर्णसे निर्मित हैं ॥११२॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोसे युक्त हैं, राक्षसांकी क्रीडा भूमि हैं तथा महाभोगोसे युक्त विद्याधरोसे सहित हैं ॥११३॥ सन्ध्याकार, सुवेल, काञ्चन, ह्लादन, योधन, हस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धिया तथा भोगाङ्की देनेवाले हैं, वन उपवन आदिसे विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पड़ते हैं ॥११४-११६॥ लङ्काधिपति रावण भूयवर्गोसे अश्रुत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य हृजनोंके साथ उन प्रदेशोंमें क्रीडा किया करता है ॥११७॥ क्रीडा करते हुए उस विद्याधरोके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आराङ्गाको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमें अत्यधिक बलवान् है, युद्धमें बड़े बड़े लोगोंके हार भी अजेय है और राजाओंमें श्रेष्ठ है ॥११९॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेपर देय भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है । जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका ससर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी छुटीके समान जिसकी मयंकर कुटिल भ्रुकुटीको देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१२२॥ युद्धमें ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित, वनीका पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथमें सारा ससार जान पड़ता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किङ्कर हैं जो नागा प्रकारकी विद्याओंके आश्चर्यसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नष्टीभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमें अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते हैं ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमें आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमें समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकारके इस रावणकी युद्धमें जीतनेके लिए कौन बलवान्

ततोऽनादरतस्तेषामेकैकं वीक्ष्य लक्ष्मणः । अमाणीर्दूजितं वाक्यं वनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
 सप्यं यदीदृशः स्यात्तः शनिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्रान्यनाम स्वमसी स्त्रीतत्करो भवेत् ॥१२९॥
 दाग्निमकस्यातिभोतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वल्पापि शरता ॥१३०॥
 जम्बवीपद्मनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो दिष्टया लब्धो मया स च ॥१३१॥
 चिन्त्यमस्यपरं नातः क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फल कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
 अभेनमचिरे वृद्धां क्षणं स्थित्वेव सादराः । शोकं जहोहि पद्माभ भवास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥
 विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । भव भर्ता भ्रमन् लोके वियुक्तोऽपदुःखधीः ॥१३४॥
 पद्मोऽवदन्न सेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलां यदि शक्या अपि स्त्रियं ॥१३५॥
 प्रीतिरचेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नमश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥
 जाम्बूनदस्ततोऽश्लेषप्रभो मूढग्रहस्तथा । त्यज्यतां क्षुद्रवन्मा भूमंयूर इव दुःखितः ॥१३७॥
 अस्ति वेणातटे मेही नाम्ना सर्वरुचिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णसमुद्भवः ॥१३८॥
 विशालभूतिसज्जं वयस्योऽस्यातिवल्गुमः । तज्जार्थायां समासक्तो गृहलक्ष्म्यां दुरात्मकः ॥१३९॥
 तस्या पुत्रं च वास्येन विदुतिच्छद्मना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स वनं रोपरि शाखिनः ॥१४०॥
 यथा च त ततो गेहं मूर्ककर्मा हताशयः । विद्याधरं चोत्तरं विजिद्वतस्थे कृतार्थवत् ॥१४१॥

समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िये कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥१२७॥
 तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देतकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार वलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ यह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूर वीरता कहीं है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था यह समाचार देवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसकी क्षोभित किया जाय । कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण भर ठहर कर वृद्ध लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि पद्माभ ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणोंसे असुराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोंके भर्ता होओ तथा सत्र दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझ पर कुछ भी प्राप्ति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठकी छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें सुदृढनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस घरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वरुचि नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्ण नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो यह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमें आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तकी भ्रमण करनेके दलसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बाँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायकी धारण करनेवाला मूर्ककर्मा विशाल भूति

अत्रान्तरे तमुद्देश दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् विष्वक् क्षुद्रोऽपरयत्नं तं तरुम् ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम सः । वणितं वाण्डोन्मन्दमुन्मुगश्च व्यलोकयन् ॥१४३॥
यावत्पर्यतं तं बद्धं निविद्ध ददरज्जुभिः । अन्यन्तनुद्गतापाग्रे निचेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासकचेतसा । गतो विनयदत्तस्तु स्व तेनैव समाश्रयम् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्पथे जातो महाबन्धसमुच्छ्रितः । विशालमूर्तिरालोक्य तच्च दूरापलायितः ॥१४६॥
क्षुद्रस्याथ शिखरी जातु शिखिपन्नममथोऽन्यथा । रमणो वाचयथा नीतः सम्प्राप्तो राजमूर्तुना ॥१४७॥
सन्निमित्तं महाशोकः क्षुद्रो मित्रमवापत् । मां चेदिच्छसि जीयन्तं यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो बृक्षे मया । एव परिमोचितः । अस्थोपकारमुत्पत्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्तत्ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽबोचहीयतां मय्य स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्तं कृत्रिमासी मयूरिका । कथं लभ्या वधो यस्मात्फलम्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णभोजनेराणां कन्यानां कनकविषाम् । परिवस्त्रनकुम्भानां विशालजघनधियाम् ॥१५३॥
वस्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां चारुभिर्गुणैः । पतिर्भज महाभोग प्रसीद रघुनन्दन ॥१५४॥

पर आकर कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछने पर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदमिश्रित हो वहाँसे निकला और उसने उस वृत्तकी देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया । वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन उपरकी मुर उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शालाके अग्रभाग पर मजबूत रस्सियोंसे बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त क्रियामें आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे घन्घन मुक्त किया । तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रकी साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमें महाम् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशाल-भूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रका बना हुआ एक मयूरका टिल्लीना था सो वह टिल्लीना एक दिन हवामें उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुम्हें उस तरह वृक्ष पर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बंधले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वही मयूर देओ । सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी । राजपुत्रसे तो केवल मॉगनेवालोंको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा छोड़ो और जितके नेत्र सफेद काले तथा लाल रङ्गके हैं, जिनकी कान्ति सुरणके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी कान्तिसे चन्द्रमाकी जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥

अनुबन्धमिदं हास्यं त्यज दुःखविवर्धनम् । मयूरशण्यशोकार्तो माम्ः क्षुद्रकवद् सुख ॥१५५॥
 तर्बदा सुलभाः पुंसः शिखिशण्योपमाः स्त्रियः । ब्रवामि राघव त्वाह प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽप्योत्तरमो वाक्थवर्मनि । जाम्बूनदेश नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥
 आसौद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाम्यः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
 धनयन्तृगृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । बालान्तास्तस्य संवन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥
 अन्वर्थतन्नास्ते च कुटुम्बार्थं सवीर्यताः । कुर्वन्ति कर्मविश्रान्तिं चणमप्यनुपागताः ॥१६०॥
 आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवास्त्रिलोचनः । पुण्योदयादसौ भोगान् भुक्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
 "आतृभिः ॥ पितृभ्यां च चिरं कटुभिरक्षरैः । निर्भलितोऽप्यदा यातो मानी बाह्यापरिश्रमन् ॥१६२॥
 सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेद परम गतः । कर्म कर्तुमशक्ताः मा मरणं स्वस्य वान्छति ॥१६३॥
 पूर्वकर्मनुभावेन प्रेरितः कथिकश्च तम् । समागतवाभगीदेवं श्रूयतामपि मानव ॥१६४॥
 पृथुस्थाधिपस्याह सुभानुरिति नन्दनः । गोत्रिकाक्रान्तदेशः सन् कुर्वन्मित्रभाषितम् ॥१६५॥
 पर्यटन् वसुधामेता दैवात् कूर्मपुरं गतः । आचार्येणाभिधोयेन सङ्गं प्राप्नोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
 अयोमयामिदं तेन दत्तं मे वलय शुभम् । मार्गदुःखान्भित्ताय कारुण्याकार्षेतसा ॥१६७॥
 एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिबर्षाकरणासुप्तम् ॥१६८॥

इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूर रूपी
 लृणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी लृणके समान स्त्रियों पुरुषको सदा सुलभ
 हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ । बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं
 करते ॥१५६॥

तदनन्तर वचनोंके मार्गमें अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा जि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी
 नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ
 रहता था उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल,
 क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और
 कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा चणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं
 लेते थे ॥१६०॥ इन सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके
 समान भोग भोगता था ॥१६१॥ क्रुद्ध करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता पिता निरन्तर
 कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे । एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके
 बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए क्रुद्ध कर सकनेके लिए
 समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥
 उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला के हे मनुष्य ! सुन
 ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभानु हूँ निमित्तछान्तीके आदेशका पालन करता
 हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमें भ्रमण करता हूँ ॥१६५॥ इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं
 देवयोगसे कूर्मपुर नामा नगरमें पहुँचा वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त
 हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे
 यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको

नैमिषादिष्टकालस्य सम्प्राप्तश्च समावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निजं पुरम् ॥१६॥
 राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते गणनोपिकता । एतच्चक्षुर्द्रमासाद्य नियतं नाशकारणम् ॥१७॥
 'गृहाणोत्ततत्तस्तुभ्य यच्छामि वलयं पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाञ्छसि ज्ञातितम् ॥१८॥
 लब्धस्य च पुनर्दानं शंसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च सं जनाः ॥१९॥
 ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वाद्भवायसम् । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निजं निजम् ॥२०॥
 यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दृष्टा श्वसनमोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानोता चित्तोद्देशे स पश्यति ॥२१॥
 कटकस्य प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा परं प्रापदत्तो पूजां नरेन्द्रतः ॥२२॥
 महान्तस्तस्य सञ्जाता भोगाः परमसौख्यदाः । सर्ववन्पुंसमेतस्य पुण्यकर्मानुभावतः ॥२३॥
 उत्तरीयांशुकस्योक्तं निधानं वलयं सरः । प्रविष्टो यावदाद्याय गोपेरोऽनरयदुस्तः ॥२४॥
 महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विलं महत् । शिलानिकरसन्ध्यं निर्हारं घोरनिस्वनम् ॥२५॥
 तेन गोपेराश्रयेण किल नाप्यप्रवृत्तिः । यच्च स्यात्प्रमत्तैर्प्रलयात्कामिनामसम् ॥२६॥
 आत्मश्रेयस्ततो वृत्तमुन्मूल्य स शिलाधनम् । गोपेरा नाशयित्वा स निधानं प्राप्य सांगदम् ॥२७॥
 आत्मश्रेयःसमः पद्मः सीता वलयमूर्तिवत् । प्रमादवच्च कीर्तय शब्दस्तच्छब्दवद्विभोः ॥२८॥
 महानिधानवत्पत्नी गोपेरो दशवक्त्रकः । जनास्त इव निर्मिता यूय भवत साम्प्रतम् ॥२९॥

यदानेवाला है और ग्रह उरग पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण है ॥१६॥ निमित्तहानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अर्धाध आ गई है इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कड़ा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उनम कड़ेको ले ले मैं तुम्हें देता हूँ ॥१८॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१९॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥२०॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको सोंपने डेस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गई थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लाई गई थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥२१॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सम्मान प्राप्त किया ॥२२॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त वस्तुओंके साथ साथ परम सुख देनेवाले बड़े बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥२३॥ एक बार उसने उस कड़ेको उत्तरीय धारके ऊपर रखकर जब तक सरोवरमें प्रवेश किया तब तक एक उद्दण्ड गुहेरा उसे लेकर चला गया ॥२४॥ वह गुहेरा एक महावृत्तके नीचे बने हुए अपने बड़े विलमें घुस गया । उसका वह शिलाओंके समूह से आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥२५॥ वह गुहेरा उस विलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस विलको देस मनमें प्रलयकी आशांका होती थी ॥२६॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृत्तके मूलको उखाड़कर तथा गुहेरको गारकर कड़ेके साथ साथ उसका सब राजाना ले लिया ॥२७॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान हैं, लाभकी इच्छा प्रमादके समान हैं, रात्रुका शब्द गुहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रात्रण गुहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥२८-२९॥

१. गृहाण तत्तत्तुभ्य ज० । २. गृहीत्वाद्भवा म० । ३. श्वसनमोजिना म० । नागेनेत्यर्थः ।

४. श्मशाने । ५. दूर्यतः म० ।

तच्छू ॥ समुपारयान जितजाम्बूनदोदितम् । बहवो विस्मयापन्ना बभूवुः स्मितकारिण ॥१८३॥
जाम्बूनदादयः सर्वे ततः कृत्वा प्रधारणम् । इदमुक्तुः पुनः पद्मं शृणु राजन् समाहित ॥१८४॥
अनन्तवार्ययोगान्द्रः समग्रगम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्युं परिपृष्टः समादिशत् ॥१८५॥
यो निर्वाणशिला पुण्यामनुलामचिता सुरैः । समुद्यता स ते मृत्योः कारणं च गमिष्यति ॥१८६॥
सर्वज्ञात् निशम्यैतदचिन्तयत्सविदम् । भविता पुरुषः कोऽसौ ता यश्चालयितुं क्षमः ॥१८७॥
नास्त्येव मरणे हेतुर्ममैत्युक्तं भवत्यदः । वचोयुक्तिविचित्रा हि विदुषामर्षदेवने ॥१८८॥
ततो लक्ष्मणाधरोऽवोचद्रच्छामो न चिरं हितम् । ईक्षामहे शिला सैद्धी भव्यानां रोमहर्षणाम् ॥१८९॥
रहस्यमेतत्सन्मनस्य सुनिश्चितं समन्ततः । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ता प्रमादपरिवर्जिता ॥१९०॥
जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च नलनीलौ विचक्षणौ ॥१९१॥
सपुरस्कारमारोह्य विमाने रामलक्ष्मणौ । सम्प्रयाता हुतव्योनिं रात्रौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥
अवतेशः समापे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भारा सुरासुरनमस्कृता ॥१९३॥
उपसन्नुश्च ते सर्वे मस्तकं यस्तपाययः । आशारक्षानवस्थाप्य प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥
सुगन्धिभिर्महाभाजः पूर्णेन्दुपरिमण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैरचिता तैरसौ शिला ॥१९५॥
सितचन्दनदिग्धानां कुकुमाशुक्लधारिणा । धृतालङ्करण भाति सा शचाव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपारयान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्द्हास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर पर स्पर्श विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५-१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१८७॥ भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्याकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानाकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हमलोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, अन्यनीचाको आनन्द देने वाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेंगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सत्रलोग परस्परमन्त्रणा कर तथा सन ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुप्रब, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सम्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमान पर बैठा कर रात्रि के सपन अन्धकारम शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१-१९२॥ और जहाँ यह अत्यन्त मनोहर परम गम्भार एव सुर असुराके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त हो कर आगे गये हुए दिशारक्षका को नियुक्त कर वे सन हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाने समाप गये ॥१९४॥ वहाँ जाकर उन्हाने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके निम्नने समान मुशोभित बड़े-बड़े कमला तथा नाना प्रकारके अय पुष्पोंसे उस शिला का पूजा का ॥१९५॥ जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रहा था, तथा जो नाना अलंकारोंसे अलङ्कृत था ऐसी वह शिला उस समय इन्द्रागि

तस्यां सिद्धात्प्रसक्त्य शिरस्थैः करकुटुम्बला । भक्त्या प्रदक्षिणं धनुः क्रमेण त्रिभिर्पण्डिता ॥१६०॥
 ततः परिकरं बद्ध्वा यौमित्रिनिनयं बहून् । नमस्कारपरो गन्तुं समुद्यतः ॥१६१॥
 जयशब्दं समुद्बोधय्य ब्रह्मणा धानरध्वजा । स्तोत्रं परिपठन्तान्मुत्तमं मित्रमन्तरम् ॥१६२॥
 स्थिताः सौलोक्ष्यशिरसि स्वयं परमभास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥१६३॥
 भवार्गवममुर्त्तीर्णास्त्रि श्रेयसं समुद्भवान् । आशान्मुनिगौरवस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥१६४॥
 अनन्तवीर्यसम्पन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुममोर्चनतायुक्तास्त्रि शेषक्षीणकर्मणः ॥१६५॥
 अवगाहनधर्मानानमूर्त्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुरुबलघुताशुनानमखपातप्रदेशिनः ॥१६६॥
 अममैयगुणाधारान् ज्ञानादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्टागुपागतान् ॥१६७॥
 सर्वथा शुद्धभाशब्दं ज्ञातव्येयास्त्रिभूतान् । इन्द्रकर्ममहाकृपान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥१६८॥
 तेजःपटपरीक्षेन भक्तितो ब्रह्मपाणिना । सस्तुतान् भयभीतेन चञ्चलार्थादिभिस्तथा ॥१६९॥
 ससारधर्मातिरिक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् बन्धामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिगमावहान् ॥१७०॥
 अस्या च ये गताः सिद्धिं शिलायां शालधारिणः । उपवीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥१७१॥
 जिनेन्द्रममतां याताः कृतकृत्या भवौजसः । मङ्गलस्मरणैर्नतान् भक्त्या बन्धामहे मुहुः ॥१७२॥

समान मनोहर जान पड़ती थी ॥१६६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी सिद्धि विधानमें निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्ति पूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा की ॥१६७॥

तदनन्तर विनयकी धारण करने वाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कम कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१६८॥ हर्षसे भरे बानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्के निम्नाङ्कित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१६९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेश्वियोंकी नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय ईशान्यमान तीन लोकके शिखर पर स्वयं धिराजमान हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥१७०॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, भ्रष्टतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥१७१॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असंख्यातप्रदेशी हैं ॥१७२॥ जो अपरिभित्त—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाकी प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥१७३॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरञ्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुश्रूष्यान रूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाभटवीको भस्म कर दिया है ॥१७४॥ संसार से भयभीत तथा तेज रूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥१७५॥ जो संसार रूप धर्मसे रहित हैं, सिद्ध रूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करने वाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेश्वियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥१७६॥ शीलको धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिकी प्राप्त हुए हैं पुराणोंमें जिनका कथन है, जो मर्य कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महा प्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्ति पूर्वक मङ्गल स्मरण करते हुए बार-बार बन्दना करते हैं

एव च सुचिरं स्तुत्वा पुनरेव वभाषिरे । लक्ष्मीधर समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसा ॥२१०॥
 शिलायामिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकलिवपा । ते विप्रसुदना सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
 अहन्तो मङ्गल मन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गल साधव सर्वे मङ्गल जिनशासनम् ॥२१२॥
 इति मङ्गलनिस्वानैर्विहायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलयुति ॥२१३॥
 सा लक्ष्मणकुमारेण नानालङ्कारभूषणा । केयूरकान्तबाहुभ्या घृता कुलवधूरिव ॥२१४॥
 अधान्तरिक्षे देवाना महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मय परम ययु ॥२१५॥
 तत सिद्धान् प्रमोदाध्या प्रणम्य भयवजितान् । सम्भेदशिखरस्थ च जिनेन्द्र मुनिमुवतम् ॥२१६॥
 निपया ऋषभादानामभ्यर्च्य च यथाविधि । सकल भरतक्षेत्रं बभ्रमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
 सावाह्ने सोम्यवपुषो दिव्यैर्यानेर्मंगोवचै । पृष्ठाभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्मृगम् ॥२१८॥
 परिवार्य महावार्यं राम लक्ष्मणसङ्गतम् । किष्किन्धननगरं प्रापुर्विविधुश्च महर्षय ॥२१९॥
 शबिलाश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुन प्रीता इत्यन्योऽन्य उभापिरे ॥२२०॥
 वीर्यवत् वासरे स्वर्णं पृथिव्या राज्यमेतयो । नि शोषे कण्टकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतो पराम् ॥२२१॥
 सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्धृता । उत्सादवस्थय क्षिप्रं रावण नात्र सशय ॥२२२॥
 तथापरे वच प्राहु कैलासो येन भूधर । तदा समुद्धृतं साय शिलोधारस्य किं सम ॥२२३॥
 आहुरन्ये समुद्राः कैलासस्य कृतो यदि । विद्याबल्यतस्तत्र विस्मय कस्य जायते ॥२२४॥

॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिर काल तक स्तुति कर एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुराणोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हैं ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हैं, सिद्ध परमेष्ठी मङ्गलरूप हैं । सर्वसाधु परमेष्ठी मङ्गल स्वरूप हैं और जिन शासन मङ्गलरूप हैं ॥२१२॥ इसप्रकार विद्याधरोकी मङ्गलध्वनिके साथ, महातेजको धारण करने वाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलधूके समान नाना अलङ्कारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दासे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ वही समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्भेद शिखर पर विराजमान श्री मुनिसुत्र नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके निर्वाणस्थान कैलाश आदिषी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें घूम ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महा वैभवसे सम्पन्न सब लोगोंने सायकालके समय मनके समान वेग शाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम लक्ष्मणको घेर कर किष्किन्धननगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सब ने यथा स्थान शयन किया । तदनन्तर आश्चर्य चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करने वाले इन दोनोंका कुछ ही दिनोंमें पृथिवी पर समस्त कण्टकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देओगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाण शिलाको चला कर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहते लगे कि उस समय जिसने कैलाश उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वालेके समान है ? ॥२२३॥ कुछ अन्यलोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलाश पर्यन्त उठाया था

एके च वचनं प्रोक्तुः किं विप्राद्विरमैर्मुखा । जगद्धिताय मन्त्र्यर्थं किं नोवाचो निरूप्यते ॥२०॥
 तस्मादानीयतां मीतौ समग्र्यर्थं दुराणनम् । राघवावापैविष्यामि विप्रदे किं प्रयोजनम् ॥२०॥
 सङ्ग्रामे तारको नष्टो मेरुक्षय महाजनः । कृन्तार्यमुखापारच महामैत्र्यममन्त्रिण ॥२०॥
 एते स्पष्टप्रयाषांशा महाभागा महाजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे म्रामन्ततः परम् ॥२०॥
 अन्योन्यमभिमन्यैव विद्याविधिविचारदा । राघव त्रिनयोपेताः सम्भूय ययुरादृशन् ॥२०॥
 मुग्धावाचाः समामोना नयनानन्दकारिणम् । विरेतु परितो रामममरेन्द्रमिषाम् ॥२१॥
 पद्मनाभस्ततोऽबोचत् किमवाप्यबलमन्यते । भया विनान्तरे ह्यपि दुःख निष्टनि मधिर्ला ॥२१॥
 दीर्घसूत्रमुग्धाय विप्रमघैव सर्वथा । त्रिष्टयामने सन्निः क्रियते न किमुद्यमः ॥२१॥
 तन्मूर्खमन्त्रिणो बृद्धा नपत्तिस्मरकोविदाः । संशयेनात्र किं द्वेय कथ्यतामेकनिरुधः ॥२१॥
 किं त्यमिच्छन्ति वैदेहीं विरोधमय रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःख नाय सदशत्रिप्रहः ॥२१॥
 भरतस्य त्रिरण्डक प्रतिपद्योक्तिस्तः प्रभुः । सागरद्वीपविप्रात एक एव दशाननः ॥२१॥
 शङ्कितो धातकीर्णो चोलियामवि भीतिदः । आगृह्णते पर प्राप्ति महिमान स्वगात्रिणः ॥२१॥
 शत्र्यैर्भूतोऽन्य विधस्य कृतानेकान्द्रुतनियः । इन्द्रो राघवो राम कथं ससम्पत्ते रयः ॥२१॥
 तस्माद्वुद्धि रणे यवचा यद् वयं सवदामहे । प्रसीद क्रियतां द्वेय तदेयोचत् शान्तये ॥२१॥
 मा भूत्स्मिन् कृतकौचे जगदेतन्महाभयम् । विष्वस्तप्राप्तिमहान् नष्टनिर्धमन्त्रियम् ॥२१॥

तो इससे क्या हुआ क्योंकि विशाखलके रहते हुए उसके इस कार्यमें उसे आश्रय हो सकता है ? ॥२०॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए सन्धिको उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२१॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२३॥ ये सभी तीन सण्डके राजा महाभागवान् तथा महाप्रवापी थे । इनके मित्राय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२४॥

इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाहकर विनय सहित आदर पूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२५॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करने वाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुमीय आदि राजा उस समय उस प्रकार सुरोभित हो रहे थे जिन प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुरोभित होते हैं ॥२६॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा को जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे विना दुःखी होती होगी ॥२७॥ शीघ्र ही दीर्घ-सूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकुटाचल पर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ? ॥२८॥ सब नीतिके विस्तारमें निपुण बृद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस त्रिपयमें मंशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२९॥ आप सीताको चाहते हैं या राजसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदश युद्ध—वराचरी वालोंका युद्ध नहीं है ॥३०॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन सण्ड भरतका शत्रुरहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥३१॥ घातकोखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शङ्कित रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करने वाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधराका राजा है ॥३२॥ जो समस्त संसारके लिए शान्त्य ग्रहण है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राजस है राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥३३॥ इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न हूजिये और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥३४॥ उसके कुपित होनेपर यह

योऽग्नौ विभीषण रयात् स्वय ब्रह्मा स कीर्तित । क्रूरकर्मनिवृत्तामा भावितोऽग्न्युग्रतैर्ददम् ॥२४०॥
 अलघ्वयचन तस्य कुरुते रोचराधिप । तयोर्हि परमा प्रातिरन्तरायविप्रजिता ॥२४१॥
 योधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशः पालनतोऽपि वा । लज्जया वा चिदेहस्य तनया प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
 विज्ञापनवचोयुक्तकुशलो नयपेशल । अन्विष्यतामर कश्चित्सदा रावणस्य य ॥२४३॥
 तनो महादग्निनाम्ना रयातो विद्याधराधिप । अन्नवादेप वृत्तान्तो भवता नागत ध्रुतिम् ॥२४४॥
 यत्रैरहुजनचाक्षुर्येन्द्राभ्यामा निरन्तरम् । कृतातिशयदुःखेना सुमोमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
 एषा मध्ये न परयामि महाविद्य नमश्चरम् । लङ्का गत्वा द्रुत भूयो यः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
 पवनञ्जयराजस्य शरीरं प्रथित सुत । विद्यास वप्रतापाढ्यो बलोत्तुङ्ग स याच्यताम् ॥२४७॥
 सम दशाननेनास्य विद्यतेऽजयमुत्तमम् । युक्त करोत्यसौ साम्यं निविष्ट पुरुषोत्तम ॥२४८॥
 प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्त्विति सादरैः । मारुतेरन्तिक दूत श्रीभूति प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
 शक्तिं दधतापि परा प्राययापि पर प्रबो गमौरम्ये । भविष्य नयर्तिनारविशिव काले स याचुदयम् ॥२५०॥
 इत्यार्षे रविप्रेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे काटिशिलाक्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः पत्रम् ॥४८॥

ससार महाभयसे युक्त न हो, प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३६॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। यह दुष्टता पूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अनुब्रतांका दृढतासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलघ्व हैं वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमे उन दोनोंमें निर्वाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समभावोणा इमलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी रोज की जाय जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीति-निपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लका अनेक जनोंका विधात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गई है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयङ्कर गम्भार गतोंसे युक्त हो गई है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें मैं महानिद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनञ्जय राजाका पुत्र श्रीशील विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाय ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाय तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशील (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिने धारक राजाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्तकर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविप्रेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उठानेका वर्णन पद्मनाभा अट्टालीमर्मा पर समाप्त हुआ ॥४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नमः समुपत्य जगामासौ मरुत्वः । अयुक्तैर्गृहेः पूर्णं श्रीपुरं धीनिरेतनम् ॥१॥
 तत्र हेमद्रव्यस्तलेयतेज समुज्ज्वलम् । कुन्दाभवलमाशोभि रत्ननिर्मितशेखरम् ॥२॥
 मुक्ताममसमाकीर्णं वातायनविराजितम् । अधानाकार्णपर्यन्तं प्राविशन्मास्तेगृहम् ॥३॥
 अपूर्वलोकमहात परवत्स्नस्य साद्रुतम् । भगोऽगतागत भूयो गत कृष्णं धीरताम् ॥४॥
 प्रविष्टे मास्तेर्गेहं तस्मिन् दूते ससम्भ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पात जगामेन्दुनखामत्रा ॥५॥
 सत्यम् दक्षिणं चक्षुरवधार्यं व्यचिन्तयत् । प्राप्तव्यं विधियोगेन कम कर्तुं न शक्यते ॥६॥
 ध्रुवशक्तिमसासक्तं मानुषास्तद्वदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
 वेदितागमनस्तावद् दूतो नमोदया समाम् । प्रस्वेदकणसम्पूर्णः प्रतीहारां प्रवेशित ॥८॥
 जगादाथ यथावृत्तं निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाताः पद्मभाभादयः पुरा ॥९॥
 शम्भुर्यथ वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पञ्चतागमन तस्य मानवैरुक्तम् सह ॥१०॥
 ततो निश्चयं तां वानां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मुखैस्सुपेता मुकुलैश्चणा ॥११॥
 चान्दनेन द्वयैतां सिपवमानां त्रियोषिक्ताम् । विहोत्र्यान्तं पुराम्मोक्षि परमं चोभमागतः ॥१२॥
 बाणातन्त्रागदृष्टानां प्राप्तानां कोणताडनम् । वदन्तानां सम रम्यो ध्वनिः कीर्णः समुद्गतः ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति वृत्त, आकाशमें डङ्कर अत्यन्त ऊँचे-
 ऊँचे महलोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घर स्वरूप श्रीपुर नगरमें पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने
 श्रीशैलके उस भवनमें प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके छेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त दीदीप्यमान
 था, कुन्दके समान डङ्गल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नगयी शिखरोंसे जगमगा रहा था,
 मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, भगोदोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-
 यमीचोंसे व्याप्त था ॥२-६॥ वहाँ लोगोंकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात
 देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमें पड़े हुए श्रीभूति
 दूतने हनुमान्के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥
 दक्षिण नेत्रकों कड़कते देख उसने विचार किया कि देख योगसे जो कार्य जैसा होना होता है
 उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहें देवोंके द्वारा
 भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके
 आगमन की सूचना दी थी, और खेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस
 श्रीभूति दूतको प्रतीहारीने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम
 आदि दण्डक वनमें आये, शम्भूकका वध हुआ, खरदूषणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम
 मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनङ्गकुसुमा शोकसे
 विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गई तथा उसके नेत्र निर्मालित हो गये ॥११॥ उसका हलन चलन
 बन्द हो गया तथा चन्द्रनके द्वयसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुर रूपी सागर
 परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियाँ एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके

अनङ्गकुसुमा कृच्छाललिम्बता प्राणसङ्गमम् । अधुसितस्तनी तार विलपातिदुःखिता ॥१४॥
 हा तात क प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचन मम । हा भ्रात किमिदं जात दीयता दर्शनं सकृत् ॥१५॥
 वनऽतिभीषणे कष्ट रणाभिसुखता गत । भूगोचरै कथं तात मरणवसुपाहृत ॥१६॥
 शोकाकुलचकार्णवं जाते श्रीशैलवैरमनि । नीतो नर्मदया दूत प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
 पितुर्धातुश्च दुःखेन तस्मा चन्दनलामजा । कृच्छ्रेण रामेन नीता सङ्गि प्रथमकोविदे ॥१८॥
 जिनमार्गप्रवाणासी बुद्ध्या ससारसंस्थितिम् । श्लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
 अन्येद्युर्दूतमाहूय पवनजयनन्दन । अपृच्छच्छोकसस्पृष्ट मीललोकसमावृत ॥२०॥
 नि शेष दूतं यद्वृत्तं तन्निवेद्य साम्प्रतम् । इत्युक्त्वा कारणं मृत्यो ररदूपाणमस्मरत् ॥२१॥
 ततोऽस्य श्रौयसरत्नसर्वाङ्गस्य महासुते । भ्रूस्तरङ्गवती रेखे तडित्रेणैव चञ्चला ॥२२॥
 ततश्चासपरात्पातो मुहुर्दूतं प्रतापवान् । जगाद् मधुर प्राज्ञं कौपिन्धवसंकारणम् ॥२३॥
 ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपते परम् । दयितादुःखमुपपन्नं तस्मात्कारहेतुकम् ॥२४॥
 आर्तस्तेन स दुःखेन पथं शरणमागमत् । प्रताप्य सोऽर्तिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गत ॥२५॥
 सुग्रावाहृतिचौरेण सप्त तत्र महानभूत् । चिर आन्तमहायोध सप्राप्तं श्वसुरस्य ते ॥२६॥
 उत्थाय पद्मनाभेन ततो भूयो मर्हाजसा । तस्याहृतस्य नष्टासी वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
 ततः साहसगत्याप्य स्वस्वभावं समाश्रित । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्मृत्यु नात शिलीमुखै ॥२८॥

रुदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाआके हजारों तार कोणके ताडनको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हो ॥१३॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमा बड़े कष्टसे प्राणाके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई । सचेत होने पर अभ्रुओंसे स्तनोको सिकुट करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई यह जोर-जोरसे बिलाप करने लगी ॥१४॥ यह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये मुझे यद्यपि देओ—मुझसे वार्तालाप करो । हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात ! अत्यन्त भयकर घनमे रणके सन्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनङ्गकुसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थान पर ले गई ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे सतप्त चन्दनलामाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त कराई गई ॥१८॥ जिन मार्गमें प्रवीण अनङ्गकुसुमाने ससारकी स्थिति जानकर श्लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मीलनगंसे परिषुत श्रीशैल—हनुमान्ने दूतको घुलाकर पूछा कि 'हे दूत ! ररदूपाणकी मृत्युका जो कुछ कारण हुआ है वह सन कहो, यह कह कर हनुमान् ररदूपाणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर बोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमान्की पङ्कती हुई भीह चञ्चल निचड़ी थी रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी इन्द्रिमान्ने हनुमान्का क्रोध दूर करनेवाले निम्नाङ्कित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव ! आपकी यह तो विदित हो है कि किष्किन्धाके अधिपति मुपावको उसीसे समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण शीतस्पर्श दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुर्गम हुआ सुमीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुमीवका, उसका आहृतिके चौर—शृत्रिम सुमीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महा युद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महावैजयी रामने उठकर उसे ललनागा । उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेतालाविद्या थी वह नष्ट हो गई ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जात धवननन्दन । पुनरक्त जगौ तुष्ट विस्मन्मुपपङ्क्त ॥२६॥
 कृत कृतमहो साधु प्रिय पञ्चन न परम् । यमुप्रावकुल मज्जदकार्तो चिप्रमुद् धृतम् ॥२७॥
 हेमकुम्भोपम गोत्र अयश दूषणहरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिर्बोद्धृतम् ॥२८॥
 पृथगादिपर भूरि प्रशमन् रामलक्ष्मणी । करिमन्त्रिणि ममजातो सारसीस्त्वमहागणे ॥२९॥
 श्रुत्वा पङ्कनगाया विनु शोकविरचयम् । उत्सव सुमहान् जातो दानपूजादिसत्तुत ॥३०॥
 उद्देगानन्दसम्पन्न हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रायैलमग्न जात रसद्वयसमुक्कटम् ॥३१॥
 पथ विपमता प्राप्ते स्वजने पावनजति । किञ्चिस्मत्वमापाय किञ्चिन्वाभिमुख ययी ॥३२॥
 कृष्याभिगच्छत्स्तस्य वलेनात्यर्थभूरिणा । जगादन्यद्विबोद्धृतमाकाशपरिवर्तितम् ॥३३॥
 विमान सुमहत्तस्य मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रभा दिवसरयस्य जह्वा स्वमरीचिभि ॥३४॥
 गच्छन्त त महाभास्य शतशो वन्धुपार्थिवा । अनुजग्मु सुनामीर यथा त्रिदशपुङ्गवा ॥३५॥
 अग्रत पृष्ठनश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वने । गच्छन्तः स्वेचरेन्द्राणामासीच्छुद्धमथ नम ॥३६॥
 चित्रमासीधद्वाना विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजाना च विलास स्वतन्वित ॥३७॥
 महादुरात्मयुक्तै रर्थरक्षितवेत्तुभि । विहायस्तल जात मन्ये वरुणगाकुलम् ॥३८॥
 नितानामातपत्राणा मण्डलेन महीयसा । जात कुमुदप्रच्छानामिव पूर्ण विद्यत्तलम् ॥३९॥

प्राप्त हो गया, सयकी पहिचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया । प्रसन्नतामें उसका मुख कमल तिल वठा और सतुष्ट हो कर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्तिम दूवते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया । ॥२९-३०॥ स्वर्ण कलशके समान सुग्रीवका कुल अपयश रूपी कूपके गर्तमें पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिसे धारक रामने गुण रूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करतो हुका हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुपरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमान्की दूसरी क्वी सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका क्षय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ उसने दान पूजा आदिके द्वारा महा उत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्के भजनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था । वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर दीप्यमान हो रहा था । इस प्रकार दो ब्रिजोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विपमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान् कुछ-कुछ मध्यस्थताकी धारण कर किञ्चिन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमान्की बहुत बड़ी सेनासे उस समय ससार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभास्यशालीके पीछे सैकड़ा मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम नैच चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे पीछे और दोनों ओर चलने वाले विद्याधर राजाओंकी जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलने वाले उसके घोडोंसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रहा थी ॥४०॥ जिनमें बड़े बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिन पर पताकाए पहना रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षासे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोंके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदाके

गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो च्वस्तापरध्वनिः । चक्रवालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिघनः स्थितः ॥४३॥
 मङ्गल चलता तेन सैन्येन गगनाङ्गम् । खण्डखण्डैरिवच्छिन्नमन्त्रेषु व्यलोक्यते ॥४४॥
 भासां भूपगजातानां बहुवर्गयुजां चयैः । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नभो वक्षमिवामवन् ॥४५॥
 ध्वनिं माहृतिर्यस्य ध्रुत्वा सख्यं गह्वरम् । तोषं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽद्भुतध्वनिं यथा ॥४६॥
 कृतापगमहारोभ ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किङ्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥
 बहुभिः पुण्यमानोऽर्म्भैर्विभवैश्चिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्यः सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
 सुग्रीवेन प्रतोष्टश्च यथाहं रचितादरः । कथितं चाखिलं तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥
 भर्त्सनेन ततो युक्ताः सुग्रीवाद्या नरेश्वराः । धारयन्तः परं हर्षं पद्मनाभमुपाययुः ॥५०॥
 अपरयथ नरधेष्टे स लक्ष्मीधरपूज्यम् । नीलकुञ्जितसूक्ष्मातिस्निग्धकेशं मल्लसुतः ॥५१॥
 लक्ष्मालताविपक्वाङ्गं कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्प्यन्तं कान्तिपङ्कजेन पुष्करम् ॥५२॥
 नयनानां समानन्दं मनोहरगकोविदम् । अपूर्वकर्मणां सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
 उज्ज्वलविशुद्धरुक्माङ्गुरहर्गमसमप्रभम् । मनोज्ञा गतनासायां सङ्गतध्रुववद्वयम् ॥५४॥
 मूर्तिमन्तमिवान्नं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतभ्रुवं पूर्णशारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
 विश्वप्रवालरूपोऽद्भुतं कुन्दरवेतद्विजावलिम् । कम्बुकण्ठं मृगेन्द्राभवक्षोभाञ्च महामुञ्जम् ॥५६॥

समूहसे ही व्याप हो ॥४२॥ दूसरोकी ध्वनिको नष्ट करने वाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप कर स्थित था तथा उसका जोरदार प्रतिध्वनि उठ रहा था ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप आकाशाङ्ग ऐसा दिखाई देता था मानो बीच बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूपगोंके समूहकी कान्तिसे रंगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रंगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द ध्वज कर सब बानरवंशी इस प्रकार संतोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि भेषका शब्द सुनकर मयूर संतोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किङ्किन्ध नगरके याजारोंमें महारोभा की गई; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोंने यड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल महलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदरकर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुग्रीव आदि राजा परमहर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अप्रज थे, जिनके केश काले, घुँघराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥ जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालमूयके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पङ्कजे द्वारा आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुएके समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्णकमलके भीतरों भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अप्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम मुडौल अथवा सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी मौंह चढ़े हुए धनुषके समान नम्रामृत थी, जिनका मुख शब्द शत्रुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका आँठ विष्व अथवा मूँगा या किसलयके समान

श्रीरमकान्तिमगूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवरदात्ममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
 प्रशान्तगुणमगूर्णं नानालङ्घ्यभूषितम् । सुकुमारकरं वृत्तपर्वीरुद्धयस्तुतम् ॥५८॥
 कूर्मवृष्टमहातेज सुकुमारनमद्दयम् । चन्द्राक्षुराण्यच्छायावत्पणिममुग्धलम् ॥५९॥
 अक्षोभ्यमवगम्भीरं वज्रसहातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव वृषा विनिर्मितम् ॥६०॥
 महाप्रभावमप्यक्षं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनादियोगेन चालसिंहमित्राकुलम् ॥६१॥
 शक्येव रहित शरः रोहिण्येव विना विधुम् । रूपसौभाग्यमप्यक्ष सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥
 शौर्यमाहात्म्यमनुभा मेधाविगुणमयुतम् । एवंबिधं समालोक्य माहतिः क्षोभमागतः ॥६३॥
 अचिन्तयन्न सन्भ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालनमालिङ्गितविग्रहः ॥६४॥
 श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठ स्थितो वरी ॥६५॥
 यस्यालोच्य तदा संस्थेः ह्यत्र शीतान्शुम्बनिमम् । सा साहसगतैर्मर्त्या वैतानां परिनि स्ना ॥६६॥
 हृष्टा वज्ररत्नं पूर्वं हृदयं यन्न कम्पितम् । तदद्य मम हृदये सञ्चोभ परम भवम् ॥६७॥
 इति विस्मयमापन्नः समनुसृत्य तान् गुणान् । सत्सारं पावनिः पद्मं श्रीमदम्भोजलोचनम् ॥६८॥
 दूरादुत्पाद्य हृद्वैष पद्मलक्ष्मणोदरादिभिः । जसौ प्रहृष्टचेतोमिः परिष्पन्को वयाक्रमम् ॥६९॥
 परस्परं समालोक्य सम्भाष्य विनयोचितम् । उपधानविधिरेषु स्वास्तनेष्ववस्थिते ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शङ्खके समान था, जो सिंहके समान विरुद्ध वक्षस्थलके धारक थे, महासुजाभासे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाकी धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी गीनों जाँघे गोल तथा स्थूल थी ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कलुबेके शृंगभूषणके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किण्वरूपी अङ्गुरोंसे लाल लाल गीरनेवाली गजपत्नीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर धनुषोंकी एकत्रितकर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्षके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके शिरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेधा-सद्बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे । ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् क्षोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिङ्गित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह यही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आक्षारती है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य ह्यत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गई ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर मो कम्पित नहीं हुआ यह आज इन्हें देखकर परम क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठाकर यथाक्रमसे इसका आलिङ्गन किया ॥६९॥ परस्पर इक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालापकर सब

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरमूपितभुजो ज्वलंस्त्रय्या समन्ततः ॥७१॥
 'स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । राजा वरहारेण सोढुचन्द्र इवोद्गतः ॥७२॥
 दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डलो । सुमित्रातनयो रेजे सतदिज्जलदो यथा ॥७३॥
 वानराभोगमुकुटः सुरधारणविक्रमः । अभात्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोजितः ॥७४॥
 विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः प्रुष्टतः स्थितः । अलङ्घ्यत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवीजसा ॥७५॥
 हनुमानप्यल रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । समीपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
 'सुगन्धिमालयवल्गाचैरलङ्कारैश्च भूपितौ । अङ्गाङ्गनावं भासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
 नलनीलप्रभृतयः शतशोऽप्ये च पार्थिवाः । आसीना रेजुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
 पद्मसदृशताम्रलगन्धसद्गतमाहता । त्रिभूषणकृतोद्योता सा सभेन्द्रसभोपमा ॥७९॥
 विस्मय सुचिरं राम प्रीतः पावनिरब्रवीत् । समक्षं न गुणा ग्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
 इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरादृशो । किमपि प्रियवक्त्राणं प्रत्यक्षगुणकीर्तनम् ॥८१॥
 आसीद्यस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्माभिरुज्जितम् । दृष्टः सखर्हितः स त्वं सखवान् वभ्रुपा स्वयम् ॥८२॥
 सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरमाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

नाना प्रकार तालियाँसे सुशोभित अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सय ओरसे देदीप्यमान थे जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्रसहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करने वाले तथा हार केयूर और कुण्डलोसे अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविरूत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—पेरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठे विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रक्खा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥ अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा यस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अङ्ग और अङ्गद यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामकी घेर कर बैठे हुए नल नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्रल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ बायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी घट सभा इन्द्रकी सभा के समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमान्ने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देसी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता है उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आनन्दकारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका वलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रक्खा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८२॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

धनुलम्बोदये लब्धः सहस्रामराशिते । सीतास्वयंवरेऽस्माभिः श्रुतस्तव पराक्रमः ॥८४॥
 पिता दशरथो यस्य यस्य मामण्डलः सुकृत् । छाता यस्य च सीमिन्निः ॥ त्वं राम जगन्पतिः ॥८५॥
 अहो शक्तिरहोरूपमेव नारायणः स्वयम् । समुद्रावर्तचापेरो बसन्ताकारणे रतः ॥८६॥
 अहो धैर्यमहो त्यागो यत्किन्तुः यत्पयन् वचः । महादतिमयाकारं प्रविष्टो दण्डक वनम् ॥८७॥
 एतत्त कुरते यन्मुमुक्षुश्च त्रिदशाधिपः । अहो त्वया नाथ कृतं यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
 सुग्रीवरूपसम्पन्नं हत्वा मयति साहसम् । यः कपिध्वजवरास्य कलङ्को दूरमुत्तिष्ठतः ॥८९॥
 विद्यावलविधिज्ञैर्यद्यस्य मायामयं वपुः । अस्माभिरपि नो सदा दुर्ज्ञेयं च शिरोपतः ॥९०॥
 तेन सुग्रीवरूपेण गृहीतुं प्लावग बलम् । दर्शनादेव शुष्माक तद्रूपं तस्य निःसृतम् ॥९१॥
 कर्तुं प्रत्युपकारं यो न शक्तोऽप्युपकारिणः । सुलभां भावशुद्धिं न तस्मै न हृदते कुतः ॥९२॥
 का तस्य बुद्धिर्न्यायेषु भेदेऽस्मिन् चणम् । यः कृतस्योपकारस्य विशेषं भावबुद्धये ॥९३॥
 स्वपाकादपि पाणीयान् सुखकादपि निर्वृणः । असम्भाष्यः सदा नित्यं योऽनृतजो नराजमः ॥९४॥
 स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्यं वयमनन्वगाः । सर्वे समुत्ताः कर्तुमुपकारं तव प्रभो ॥९५॥
 गत्वा प्रणोपयिष्यामि सिद्ध्याधिपतिं पुत्रम् । तव पत्नीं महाबाहो वरात्मानानयाययम् ॥९६॥
 सीताया बन्धनाम्बोर्न प्रसन्नोऽभुमिबोदितम् । सन्देहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं पश्यति रावण ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोंकी आकर अर्थात् खान अधवा समुद्र हैं । आपके शुभल यरासे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८४॥ हे नाथ ! यज्ञावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८५॥ दशरथ जिनका पिता है, मामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगन्ने स्वामी राजा राम हैं ॥८६॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८७॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८८॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८९॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहस-गतिको युद्धमें मारकर बानरवंशका कलंक दूर किया है ॥९०॥ विद्यावलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिने बानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९१-९२॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जब कि यह भावशुद्धि मिलसुल हो सुलभ है ॥९३॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार को विशेषताको नहीं जानता है उसको एक अज्ञके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९४॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोंसे निरन्तर घातालाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९५॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमें न जाकर आपकी ही शरणमें आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उत्तम हैं ॥९६॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावणको समझाऊंगा । वह बुद्धिमान है अतः अथर्व समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापिस ले आता हूँ ॥९७॥ हे रावण !

मन्त्रा जाग्रून्तोऽशोचन्ततो वाक्य पर हितम् । क्लृप्त वस मरुपुर दमेकोऽस्माकमाश्रम ॥६८॥
 अप्रमत्तेन गन्तव्यं लब्ध्वा रावणपालिताम् । न विरोध क्वचित् कार्यं कदाचित् केनचिसह ॥६९॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य त सम्प्रस्थितमुन्नतम् । विलोक्य परमा प्राति पद्मनाभ समागमत् ॥७०॥
 पुन पुन समाह्वय मार्तुति चारुलङ्घनम् । सर्वादर जगादेद स्फाता राजावलोचन ॥७१॥
 मद्राजपाट्यता साता त्वद्वियोगात् स राघव । अधुना विन्दते साध्वि न मनोनिर्वृति क्वचित् ॥७२॥
 अत्यन्त तदह मन्ये हत पौरपमात्मन । प्रतिरोध प्रपञ्चासि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥७३॥
 वेदि निर्मलशालाद्या यथा त्व मदनुग्रहा । जावित वाञ्छुसि त्वस्तु मद्रियोगेन दु खिता ॥७४॥
 अह तथापि सद्गते दु समाधानमृचुना । धार्यन्ता मैथिलि प्राणा न जान त्ववतुमर्हसि ॥७५॥
 दुर्लभ सद्गमो भूय पूजित सन्वस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो विनेन्द्रवदनोद्गत ॥७६॥
 दुर्लभादप्यह तस्मा मरण सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेद तुपनि सारमाहितम् ॥७७॥
 इदं च प्रययोपादि प्रियायै मम जावत । सतत सस्तुत देवमङ्गलीयकमुत्तमम् ॥७८॥
 वायुपुत्र हुत गवा सातावास्त महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकर चूडामणिमिहानय ॥७९॥
 यथाज्ञापयसा युक्त्वा राजवानरमौलिवृत् । कृताञ्जलिपुटो नवा सौमित्रि च समाञ्जलि ॥८०॥
 यहिचिनिर्ययी हृष्ट पूर्वमाणो विभूतिभि । शोभयन् तेजसा सर्व सुग्रीवभवनाजिरम् ॥८१॥

इसमे सदेह नहीं कि तुम उदित हुए चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥६७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाग्रून्तने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमन् । हम लोगका आधार एक तू ही है ॥६८॥ अत तुम्हें सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥६९॥ 'एयमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनुमान् लकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥७०॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लङ्काके धारक हनुमान्को बार बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साध्वि । इस समय राम तुम्हारे वियोगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥७१-७२॥ मेरे रहते हुए भी जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥७३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करता हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोगसे दु खी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुनि । तो भी रोटे परिणामसे मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि । प्राण धारण करो । जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥७४-७५॥ सर्व वस्तुओंका पुन उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के सुप्रारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥७६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरणके बिना यह जीवन तुम्हें समान साररहित देखा गया है ॥७७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्रान्त उत्पन्न हो जाये इसलिय यह सदाकी परिचित उत्तम अगृहीतसे दे देना ॥७८॥ तथा हे पवनपुत्र । तुम शीघ्र हा जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महा कातिमात्र चूडामणि यहाँ ले आना ॥७९॥ 'जैसा आक्षा हो' यह कह कर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला हनुमान राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निवृत्त आया । उस समय यह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियासे युक्त था और अपने तेजसे सुभाषके भवन

सन्दिदेश ॥ सुग्रीव यात्रदागमन मम । स्यात्तस्य तात्रदग्रैव प्रमादपरिव्रजने ॥११०॥
 विमान चारुशिखरमारुढो मारुतिस्ततः । रिभाति मरुतक मेराग्रैर्यान्व्य ह्रवोज्ज्वल ॥१११॥
 प्रययौ परया घुत्वा मितपद्मोपशोभित । विलम्बदम्पसङ्काशं भ्रामरैरुपनीत ॥११२॥
 बायुरावसमैरथैर्जङ्गमैर्द्रुममैर्गणैः । सन्धैस्त्रिदशमङ्काशं नैगाम परितो वृत ॥११३॥
 एव युक्तो महाशूल्या रामादिभिर्हृदिषित । समाश्रय्य रवेर्मार्गमध्यामौ मुनिरन्तरम् ॥११४॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्ण जगत्सिद्धिं जन्तुवर्गानां विधेरुत्तमभोगयुक्ते ।
 कश्चित् तेषां परमार्थकृत्ये नियुज्यते यत्परम यशस्तत् ॥११५॥
 कृत परेणाप्युपकारयोग स्मरन्ति नित्यं वृत्तिनो मनुष्याः ।
 तेषां न तुल्या भुवने शशाङ्को नवा कुबरो न रविर्न शङ्क ॥११६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्रोत्रो पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थान नाम एकादशोऽध्यायः पर्व ॥४६॥

सम्बन्धी समस्त आगनको क्षोभयुक्त फर रहा था ॥११०-१११॥ उमने सुमानसे कहा कि जन तक मैं न आ जाऊँ तब तक आप सनको यहीं साजधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमान पर आरुढ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्परचात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सकेद क्षत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हसोकी समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह बायुके समान वेगशाली घोड़ा, चलते फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवाके समान सैनिकासे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महानिभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरका दृष्टिकर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्यके मार्गका चङ्गहन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्यामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारसे उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है उनमेंसे कोई बिरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यम लगता है तथा परम यशकी प्राप्ति होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित, पद्मपुराणम् हनुमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४६॥

पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाज्ञनो गच्छत्प्रम्वरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमानिनीपुरराजत् ॥१॥
 सुहृदाज्ञाप्रवृत्तस्य विनीतस्य महत्मानः । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्सवः कोऽपि चेतसः ॥२॥
 पर्येत प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशां मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
 'एहा जिगमिपोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगर एष्टेराभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
 वेदिकापुण्डरीकाभे प्रासादे शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थित मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥
 बज्रपाणेरीशमुप्य^१ तस्मिन् वालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
 इदं शिपरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुर स्थितम् । महेन्द्रको नूपो यत्र दुर्मतिः सोऽवतिष्ठते ॥७॥
 दुःखतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुण्ठिबास दुरात्मना ॥८॥
 एषाऽसौ विजनेऽग्रये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पर्यङ्गयोगयुक्तामा नाम्नामितगतिः स्थित^५ ॥९॥
 भस्या भागवता तेन साधुवाच्यैः कृपाकृता । माता मां जनितारवासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
 धृत वंसरिज कुच्छू श्रुत्वा "मातुरुपप्लवम् । सायोज्ञ सङ्गम सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥
 मातर शरणं प्राप्तां मम निर्वाच्य यः कृती । व्यसनप्रतिदानेन भहेन्द्रं किन्तु^६ त भजेत् ॥१२॥
 अहपुरयमत्यन्तं मा ब्रिज द्वेष्टि सन्ततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्वमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनुमान् आकारामे जाता हुआ ऐसा सुरोभित हो रहा था मानो घट्टिन सीताको लेनेके लिए आमण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र— श्रीरामकी आज्ञामे प्रवृत्त, विनयवान्, उदारशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमान्के हृदयमे उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमे स्थित हनुमान् जब प्रौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लङ्काकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनुमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखर पर स्थित था तथा वेदिका पर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार वालिके नगरमे इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमें हनुमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखर पर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्ववासके समय हुएसे भरी मेरी माता इसके नगर आई पर इस दुष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन यन्त्री उस गुफामें—जिसमें कि पर्यङ्ग योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे—रही । इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम बच्चनोके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोंसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामें माताको सिद्धसे उत्पन्न पट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल कर कृतहृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मैं पट्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुमसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ ॥१३॥

प्रलम्भामुदन्द्वादिनादा दुन्दुमपस्ततः । महात्म्याकर्मैश्च पटहाश्च समाहताः ॥१४॥
 प्माताः शङ्खा जगत्कम्पा भट्टैश्चवेष्टितैः । युद्धशार्ङ्गैः समुत्पुष्टं ममुन्नामिनहंनिभिः ॥१५॥
 ध्रुवा परवलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वमेतया । प्रत्येपत त्रिनिजम्य मेवमुन्दमिवाचलः ॥१६॥
 सम्प्रहारीततो लभेद्द्वार्यादञ्चित्रं बलम् । चारमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्रासन्नद्यौ रयस्यतः ॥१७॥
 हनुमानियुमिस्तस्य धनुस्तिसृमिरायतम् । चित्रेद गुप्तिमिर्योगी यथामान ममुपिनयम् ॥१८॥
 चापं यावद्विर्तायं न गृह्णायावृत्तमानसः । शरैस्तावद्वयान्मुनाः प्रचण्डान्तस्य वाजिनः ॥१९॥
 रयात्ते विगताः शार्ङ्गाश्चपला बभ्रुगुण्डसम् । हनोऽकाशे नवनमो मुनानि निरयैरिगः ॥२०॥
 माहेन्द्रिय स म्प्रान्तो विमानं वरमाधितः । तदप्यस्य शरैर्लस्य मेन दुष्टमनेभिः ॥२१॥
 माहेन्द्रिसुदितो भूयो विद्यावलविकारतः । पतत्रिचक्रकनकैर्युपधेष्टातभामुरैः ॥२२॥
 विद्यावाऽनिलपुरोऽपि सं शस्त्रौघमवारयत् । यथात्मचित्तया योगा परीपङ्कदग्न्यम् ॥२३॥
 निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽमावाभ्युपानो महाग्निवत् । गृह्णीतो वायुपुत्रेण गरुडेनेन पतगः ॥२४॥
 प्रासन्नोऽपि मुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्षोभलोहितः । तयो माकृतिमप्यार राम सुग्रीवरूपवन् ॥२५॥
 अक्रान्तैस्समृद्धः सोऽपि हारिहारो धनुर्धरः । शूरागामप्रगी दंष्ट्रां मानुः पितरमग्न्यात् ॥२६॥

तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने घूमते हुए मेघ-समूहके समान उच्च शब्द करनेवाली दुन्दुभिर्याँ, महा विकट शब्द करनेवाली भेरियाँ और नगाड़े ध्वजयाये ॥१४॥ लुहट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगन्को कँपा देनेवाले शङ्ख फूँके तथा शस्त्रोंको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ पर बलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्यंत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनुमानके ढलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चौंटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, ध्रुवधारी, तथा गंध पर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनुमान तीन बाण छोड़ कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तिर्योके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनुमानने तीव्र बाण चलाकर उसके चञ्चल घोड़े रयसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रयसे छूटे हुए ये चञ्चल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी अनुप्यको मत्तसे छूटी हुई इन्द्रियों इधर-उधर घूमने लगती हैं ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र यवदा कर उत्तम विमान पर आरुढ़ हुआ सो हनुमानके बाणोंसे वह विमान भी उस तरह शण्डित हो गया जिस तरह कि किसी दृष्टिदिका मत्त शण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनुमानने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्र समूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मस्थानके द्वारा परीपङ्कके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्र पुत्रको हनुमानने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथ पर सवार हो हनुमानके सन्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करने-वाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सन्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनु-धारी था, शूरोर्मि श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनुमान् भी माताके पिता राजा

१. जगत्कम्पा म० । २. सम्प्रहारे ततो लभेद् ब० । ३. मुना निरियनैरिगः म० । ४. अक्रान्तः सन्दनः म० ।

तयोरभूमद्वयस्य क्रकचासिशिलीमुखैः । परस्परकृताघात वायुवरयाब्दयोरिव ॥२७॥
 सिंहाविव महातोषी ३ तावुदधतबलान्वितौ । ज्वलस्फुलिङ्गरक्षाक्षो श्वसन्तौ भुजगाविव ॥२८॥
 परस्परकृताक्षेपौ भवैहासस्फुटस्वनौ । धिक् ते शौर्यमहोयुद्धमियादिवचनोद्यतौ ॥२९॥
 चमत् परम युद्ध मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुनिजैः ॥३०॥
 महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विन्रियाशकिसङ्गतः । क्रोधस्फुरितदेहधूमोचायुधसहितम् ॥३१॥
 भुपुण्डा परशू चणान् शतशामुद्गरान् गदा । शिखराणि च शैलानां शालन्यमोघपादपान् ॥३२॥
 पतैर्यैश्च विविधैरायुधौघैर्मल्लसुत । न विव्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकैः ॥३३॥
 तद्व्यमायया सृष्ट शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेण वायुसूनुर्धन्यतः ॥३४॥
 उपय च रथे तस्य निपत्य सुमहाजव । कुक्कुरिकराकारकाम्या कृतरोधनम् ॥३५॥
 मातामह समादाय बल विभ्रदनुत्तमम् । दत्तसाधुस्त्वन छुरैः समारोहसिञ्ज रथम् ॥३६॥
 उरकालाद्गुल्फाणि ॥ दौहित्र परमोदयम् । प्रशसितु समारब्धो महेन्द्र सौम्यया गिरा ॥३७॥
 अहो ते वयस माहात्म्य परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वमासीदिदानीं तु नियत प्रत्यङ्गोचरम् ॥३८॥
 आसाहेवेन्द्रयुद्धेऽपि निजितो यो न केनचित् । विजयार्थनगस्योर्ध्वमहाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

महेन्द्रके सम्मुख गया ॥३६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोमे जिस प्रकार परस्पर टक्कर होगी है उसी प्रकार उन दोनोंमे फ़ोत, खड़ग तथा बाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥३७॥ जो सिंहोंके समान महाक्रोधी तथा उत्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगाके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान सोंसे भर रहे थे—फुँकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहङ्कारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर वीरताको धिक्कार है, अहो' युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगसे कभी हा हाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनूमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही घिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥३८-३९॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विन्रिया शक्तिसे सगत था और क्रोधसे निसके शरीरकी शोभा दीदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनूमान्के ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुपुण्ड्री, परशु, बाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सामीन तथा बरके वृक्ष उसने हनूमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनूमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंकी उस घर्षाकी पवन-पुत्र हनूमान्ने अपनी उल्का विद्याके प्रभावसे चूर चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजाके शुण्डादण्डके समान विशाल हायासे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनूमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उल्लङ्कर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया । शूर वीराने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरुढ़ हो गया ॥३५-३६॥ यहाँ निसकी विन्रियाश्रुत लाजल और हायासे उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभुदयको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनूमान्की वह महेन्द्र सौम्य बाणों द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वयस ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रक्खा था पर आज प्रत्यक्ष ही देग लिया ॥३८॥ विजयार्थ पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आरुढ़ इन्द्र

अयो प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यमद्भुतः । त्वया पराजितः प्राप्तो रोषं चित्रमिदं परम् ॥४०॥
 अहो पराजितो भद्र तत्र धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनीषम्यमहो संभ्रामणीयता ॥४१॥
 प्रजातेन त्वया गम्य महाविश्वपयोगिना । तुल्यमुद्योतितं सर्वमस्मदीयं मुक्तमंगा ॥४२॥
 निनयाद्यैर्गुणैर्गुणो राशिः परमनेजसः । कल्पयन्मूर्तिर्यथं करारुचस्त्यमुत्तः ॥४३॥
 जगतो गुरुभूतस्त्वं यान्धवनानां समाश्रयः । दुःखादिष्वमनसानां समन्तानां घनाघनः ॥४४॥
 इति प्रयास्य तं स्नेहाद्दुदृष्ट्वा चञ्चलकरः । अतिघ्नमस्तके नष्टं तुलकी परिगम्यते ॥४५॥
 प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमायं विहिताञ्जलिः । अनितिष्ठद्विनीतात्मा चैवाद्यातोऽन्यतामिव ॥४६॥
 मया शिशुतया निश्चिदायं यत्ते विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्त मे प्रतीक्ष्य चन्मुमर्हसि ॥४७॥
 समस्त च समाप्त्यातं तेनागमनरारणम् । पद्मागमादिकं यद्वदामागमनमारतम् ॥४८॥
 अहमायं गमित्यामि त्रिष्टुटमतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गच्छ कार्यं दाशरथेः कुरु ॥४९॥
 ह्युत्तमा वायुसम्भूतः स्वसुपत्य ययौ सुरम् । त्रिष्टुटामिसुरः पित्रं मुरालोकमिवारमः ॥५०॥
 गत्वा महेन्द्रे तुभ्यं सनथां मयकोविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वामलः समरूजयन् ॥५१॥
 मातापितृसमायोमं लोदरस्य च दशं वम् । अञ्जनामुन्दरी प्राप्य जगाम परमां धृतिम् ॥५२॥
 महेन्द्रं निभृतं धृत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽग्रामन् । विरापितप्रभूतवस्तोयमावबुद्धतमम् ॥५३॥

विद्याधरके युद्धमें भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो चन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३६-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू दिन-यादि गुणोंसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, यान्धवजनोंका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँपा और रोमाञ्चित हो उसका आलिङ्गन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनुमान्ने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहकी प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमें ऐसा हो गया मानो अन्य रूपताकी ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लङ्कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥ उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तरुका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावरयक कारणसे त्रिष्टुटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनुमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिष्टुटाचलकी ओर सुरपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीति निपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्र केतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अञ्जनाका सम्मान किया ॥५१॥ अञ्जना मुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्तकर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुमीव उसे लेनेके लिए सन्मुख गया तथा विरापित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥५३॥

धंशस्यंवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचास्त्रेजसाम् ।
 महामनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वर्याः पुरषा यलान्वितः ॥५९॥
 ततः समन्तादनुपाह्व्य मानसं जना यतश्च सततं सुकर्मणि ।
 फलं यदीयं समग्राण्य पुष्कलं हवेः समानामुपयाय दीप्तताम् ॥५९॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यश्रोत्रे पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमामिधानं
 नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोंका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बल-शाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५९॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सप ओरसे मनको रक्षाकर मदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५९॥

इम प्रकार आर्य नामने प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका
 पुनर्कि साय समागमका वर्णन करनेवाला पचामरा पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीरोलस्य विष्णुत्वेविमानस्यस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुखं नाम प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुरं परममायामि^१ चास्काञ्चनतोरणम् ॥२॥
नवमेघप्रतीकासीरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनच्चत्राम्बरोपमाः ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिताः । पद्मोपलादिमिरत्नानां यत्र भान्ति त्रयिन् प्रयिन् ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे^२ तु देरो नगरगोचरात् । बृहत्पुण्ड्रतावल्लीद्रुमकण्टकसङ्घटे ॥५॥
शुष्कापाकृतसंरोधे रौद्रभापदनादिते ।^३ घोरैऽतिपद्माकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृष्टीवे महाभयसमाबहे । विशुद्धपारसरसि कट्टगुह्यादितेविते ॥७॥
^४ दुर्बले चित्तने राजन्^५ सायुधुगलं नभश्चरम् । अष्टाह लम्बितमुखं योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य श्रेष्ठशतभोगमात्रदेरो न्यबस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितस्रग्ना जटाधराः ॥९॥
तत्पन्थे विधिवद्घोरं तपस्तिष्ठः सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्यैव नवभूषणतां गताः^६ ॥१०॥
अथासौ सायुधुगलं ग्रस्यमानं महाग्निना । अञ्जनातनयोऽपश्यत् पादपद्मयनिश्चलम् ॥११॥
असमाह्वयताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उहँमद्भूमज्जालेन स्पृष्टा बहलवर्तिना ॥१२॥
अथातस्थौ सनिग्रन्धौ युक्तयोगी शिबस्पृही । स्वकारागादिसङ्ग्रेष्चौ निरस्तांगुकभूपगौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोंसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो वहीके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोंसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान श्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो बड़े-बड़े वृक्षों, लताओं, वेलों, वृक्षों और कोंटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूर्ये वृक्षोंसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोंसे सहित था, कट्ट, गूढ़ आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गीतगत्थामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण श्रद्धिघारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं ॥६-८॥ उन मुनिवांसे पावकोश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रही थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाग्निसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल पड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायामि म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. घोरै पतिरुपाकारे म० । ४. दुर्बले म० । ५. राजन् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमद्भूम- म० ।

चंशस्थंवृत्तम्

पुरा विशिष्ट चरितं कृतात्मनां सुचेतसाधुत्तमचास्तेजसाम् ।
 महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वरयाः पुरुषा बलान्विताः ॥५४॥
 ततः समन्तादनुपाख्य मानसं जना यत्तत्त्वं सततं सुकर्मणि ।
 फलं यदीयं समग्राप्य पुष्कलं त्वे समानामुपयाय दीप्तताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्रोत्रे पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं
 नाम पञ्चाशत्तमं परं ॥५०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीर्वाका पूर्वं चरित हो ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बल-शाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनको रक्षाकर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवां परं समाप्त हुआ ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

भ्रांशीलस्य विषमुच्चैर्विमानस्यस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्गुणो द्वीपो दधिमुग्नोऽन्तरे ॥१॥
 यस्मिन् दधिमुख नाम प्रायादैर्दधिपाण्डुरैः । पुर परममायामि^१ चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥
 नवमेघप्रतापीरद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनच्चत्राग्ररोपमाः ॥३॥
 स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिता । पद्मोपलादिभिरधुना यत्र भान्ति क्वचिन् क्वचिन् ॥४॥
 तस्मिन् विप्रकृष्टे^२ तु देशे नगरमोचरान् । बुद्धत्तुणलतावल्लीद्रुमनष्टकसङ्घटे ॥५॥
 शुष्कागन्तमरोधे रौद्रश्वापदनादिते । घोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
 पतितोदारवृक्षौघे महामयममाबहे । विशुद्धचारसरसि कङ्कगुद्गादिसेविते ॥७॥
 दुर्बने बिजने राजन्^३ साधुयुगलं नमस्करम् । अष्टाह लम्बितमुजं योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
 तस्य क्रोशचमुनीगमाग्रदेशे^४ श्ववस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥
 तप्यन्ते विधिवद्गौर तपस्विनः सुचेतसः । शोभालोकजयस्यैव भवभूषणतां गताः^५ ॥१०॥
 अधासी साधुयुगलं प्रत्यमात्र महाग्निना । अज्जनातनयोऽपरयत्नं पादपद्मयनिष्ठलम् ॥११॥
 भयमाह्वयताः साक्ष कन्याः लावण्यपूर्विताः । उद्धैर्मधूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्तिना ॥१२॥
 अधातस्यौ मणिग्रन्थौ युगयोगौ शिषरस्पृहौ । स्वकारागादिसङ्केष्टौ निरस्तांशुकभूपगौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणांसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो वहीके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पांसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो यड़े-यड़े वृक्षां, लताओं, वेलों, वृक्षां और कोंटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षांसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए यड़े-यड़े वृक्षांके समूहसे युक्त था, मङ्गलमय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त रंगरे जलके सरोवरोंसे सहित था, कङ्क, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गौतमस्यामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण अद्विधारी मुनि आठ दिनका फठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं ॥६-८॥ उन मुनियोंसे पावकोश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुकवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ घारण कर रही थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे ग्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल लड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निश्चलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पृष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -आयाति म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. घोरे पतिरुषाकारे म० । ४. दुर्बने म० । ५. राजन् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमदूम-म० ।

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तापितसदृष्टी प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥१४॥
 मृत्युर्जीवननिःकात्तावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्गौ समपापाणकाञ्चनौ ॥१५॥
 दावेन^२ महता राजन् तेनात्मासत्त्ववर्तिना । अभिमूर्तौ समालोक्य वात्सल्य कर्तुमुद्यतः ॥१६॥
 आकृत्य सागरजल मेघहस्तः ससम्भ्रमः । अवर्षदुर्धतो ज्योतिर्गिरि परम भक्तिसङ्गतः ॥१७॥
 सुभृश तेन वद्धि स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्धतः चान्तिभावेन साधुना ॥१८॥
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्मदन्तयोनौनापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥
 तावत्ताः सिद्धससाध्या मेरु कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्संकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥
 प्रणेशुश्च सम तेन साधू ध्यानपरायणौ । विनयान्वितया बुद्ध्या प्रशशसुश्च मारुतितम् ॥२१॥
 अहो जिनेश्वरे भक्तिर्ब्रजता कापि यद्वदुतम् । स्वया तात परित्राता वय साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
 अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोत्रेनासौ न योगिम्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥
 अथाञ्जनामजोऽष्टद्वेष सशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये का वनेऽप्यन्तर्भाषणे ॥२४॥
 अवोचउयायसी तासां पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वय तिलोऽमरास्तुता ॥२५॥
 प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य बह्वभा ॥२६॥

हनुमान्के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानेसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिभा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकाक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और काञ्चनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंकी अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३-१६॥ भक्तिसे भरे हनूमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस धरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनूमान् जयतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९-२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंकी हनूमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंकी रक्षमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया । अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अद्यान्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन हैं ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है । हम सभी

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्धादिसम्भवाः । विद्याधरकुमारैन्द्राः कुलपुष्करभास्कराः ॥२७॥
 तेऽस्मदर्थे शिवं क्वापि न विन्दन्तेऽयिनो भृशम् । दुष्टपट्टादरको नाम तापं घते विनोयतः ॥२८॥
 अन्यदापरिप्लव्य तातेनाष्टाद्विमुनिः । स्थानेषु भगवन् केचु भव्या दुहितरो मम ॥२९॥
 सोऽरोचत् साहसगतौ यो हनिष्यति संयुगे । आसी कतिपयाहोभी रमणोऽमी भविष्यति ॥३०॥
 निशम्यामोषवाच्यस्य मुनेस्तद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाव श्मेरमाननम् ॥३१॥
 कष्टासो भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्थोत्तरधेनीश्रेष्ठं यो हन्ति मादसम् ॥३२॥
 अधया न मुनेर्गन्धं कदाचिन्नायतेऽनृतम् । इति त्रिसयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
 चिर प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवाप्तः नः । तदास्मददुःखचिन्तास्थः सञ्जातोऽद्वारकेनृकः ॥३४॥
 ततः प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथः । इषयामस्तं कदा वारमिति साहसमुद्नम् ॥३५॥
 पृतथ वनमायाता दारणदुमसद्वदम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्यां साधयितुं पराम् ॥३६॥
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य यतते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
 अद्भारैरेतुना तेन बोधिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
 ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेता दश दिशः क्षणात् । धूमाद्भारकवर्षेण वद्विता पिञ्जरीकृताः ॥३९॥
 पद्भिः स्ववत्सरीः सामैर्यदुःसाध्यं प्रसाध्यते । दत्वाद्भुपसर्गस्य तद्वधैव हि साधितम् ॥४०॥
 इहापदि महाभाग नाभविष्यद् भवान् यदि । अद्यवयाम हि योगिम्यां सहारण्ये ततो ध्रुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको विक-
 सित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर
 कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुख नहीं पा रहे हैं । उन कुमारोंमें
 अद्भारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक
 दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियाँ किन
 स्थानोंमें जावेगीं ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिको मारेगा
 वह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह
 वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हाथसे चुक करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसार
 में इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिको
 मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर
 माता - पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर
 भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले
 कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका यही एक
 मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस धीरकी कद देखेंगीं ॥३५॥ हम
 तीनों कन्याएँ मनोयुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तासे युक्त इस
 वनमें आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको
 आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ
 देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम
 लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली
 अग्निसे पिञ्जर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छः वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी
 कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥
 हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निरिच्छ ही हम सब दोनों
 मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तरर्पितसद्दृष्टी प्रतिमास्थानमाधितौ ॥१५॥
 सृजुजीवननिष्काशवनधौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्गौ समपाषाणकाञ्चनौ ॥१५॥
 दावेन^२ महता राजन् तेनाख्यासज्जवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्य कर्तुमुद्यतः ॥१६॥
 आकृष्य सागरजल मेघहस्तः ससम्भ्रमः । भवर्षदुच्यते ध्योनिं परम भक्तिसङ्गतः ॥१७॥
 सुभृश तेन वद्विः स वारिपूरेण नाशितः । महानोध इवोद्धतः क्षान्तिभावेन साधुना ॥१८॥
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥
 तावत्ताः निद्वससाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्ताकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥
 प्रणेशुभ्र सम तेन साधू ध्यानपरायणौ । विनयाम्बितया बुद्ध्या प्रशशसुभ्र मारुतिम् ॥२१॥
 अहो जिवेश्वरे भक्तिर्भजता कापि यद्व्रुतम् । स्वयां तात परित्राता वयं साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
 अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनासौ न योगिभ्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥
 अधाञ्जनाः मज्जोऽपृच्छदेव संशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये का वनेऽप्यन्तर्भाषणे ॥२४॥
 अवोचज्जयायसौ तासां पुरे दधिमुखाङ्गवे । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिस्रोऽमरासुताः ॥२५॥
 प्रथमा चन्द्रलोकाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वयौत्रस्य वल्लभाः ॥२६॥

हनुमान्के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई। तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, परन्तु तथा आभूषण दूर कर दिये थे, सुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पाषाण और काञ्चनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१२-१६॥ भक्तिसे भरे हनूमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस वरसे हुए जलप्रवाहसे यह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनूमान् जयतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९-२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर होना मुनियोंको हनूमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रक्षमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया। अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त मयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन हैं ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी यह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरनामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलोका, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है। हम सभी

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्वांसि सम्भवा । विद्यायाः कुमारेन्द्राः कल्पपुष्पहमान्करा ॥२७॥
 तेऽस्मदर्थं शिवं क्वापि न विन्दन्तेऽयिनो मृगम् । दुष्टस्वप्नारको नाम तारपं घटे विरोपत ॥२८॥
 अन्यदापरिदृष्टश्च तातेनाष्टावन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केतुं भय्या दुहितरो मम ॥२९॥
 सोऽजोचत् साहसगतिं यो हनिष्यति सयुगे । आसा कतिपयाहोमी रमणोऽमी भविष्यति ॥३०॥
 निशम्यामोघवाक्यस्य मुनेस्तद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विद्याय स्मेरमाननम् ॥३१॥
 कस्वसो भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्थोत्तरश्रेणीश्रेष्ठो यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
 अथवा न मुनेर्वाक्यं कदाचिन्नायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
 चिरं प्रार्थयमानाऽपि यदासौ लब्धवान् ॥ न । तदास्मदुद्विग्नान्तास्य सज्जानोऽङ्गारकेनूक ॥३४॥
 ततः प्रभृतिं चास्माकमयमेव मनोरथः । इक्ष्वाभस्त कदा वीरमिति साहससुन्दरम् ॥३५॥
 एतच्च वनमायाता दारणमुमस्रदम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्या साधयितुं पराम् ॥३६॥
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
 अङ्गारकेनूना तेन धांष्टिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
 ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेतां दश दिशः चणात् । धूम्राङ्गारकवर्णेण वह्निना पित्रोर्गृह्णात् ॥३९॥
 पद्भिः सवसरे सारथैर्यद्गु साध्यं प्रसाध्यते । तत्वाङ्गमुपसर्गस्य तदर्थैव हि साधितम् ॥४०॥
 इहापि महाभाग नाभविष्यद् भवान् यदि । अथक्याम हि योगिन्या सहारण्ये ततो भुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको निर-
 सित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर
 कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इन्तु क हो कहीं भी सुप्त नहीं पा रहे हैं । उन कुमारोंमें
 अङ्गारक नामक दुष्ट कुमार विरोध रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक
 दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके शाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियाँ किन
 स्थानोंमें जायेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिको मारेगा
 यह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर असोच वचनके धारक मुनिराजका वह
 वचन मुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसार
 में इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतको उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिको
 मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर
 माता - पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर
 भी जन अंगाङ्क हम लोगोंकी नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले
 कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका वही एक
 मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगी ॥३५॥ हम
 ताता कन्यायाँ मनोऽनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तोंसे युक्त इस
 धनमें आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको
 आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ
 देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम
 लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली
 अग्निसे पित्रार वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छ' वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी
 कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥
 हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों
 मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

साधु साधिवि संरिमित्य ततो माकृतिरमवीत् । 'भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥४२॥
 अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो गन्धर्वमुत्तुङ्गं येन विद्या प्रसाधिता ॥४३॥
 आख्यातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदात्मगमनकारणम् ॥४४॥
 तत्तरच्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । सभागतो महातेजास्तमुद्देशं सहानुगः ॥४५॥
 नभश्चरसमायोगे देवागमनसन्निभे । क्षणेन तद्वनं जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥४६॥
 किरिडन्ध च पुरं गत्वा भूत्या दुहितृभिः समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥४७॥
 ताश्च निरसोमसौभाग्या विभूत्या परयान्विताः । उपनिन्ये पराः कन्या रामायाविलष्टकर्मणे ॥४८॥
 पृथाभिरपराभिश्च सेन्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकीं पद्मो मेने शून्या दिशो दश ॥४९॥

अतिरुचिराधृत्तम्

गुणाम्बितैर्भवति जवैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरैः ।
 विना 'जनं मनसि कृतास्पदं सदा प्रज्जलसी गह्वनवनेन तुष्यताम् ॥५०॥
 पुराकृतादितिनिधितात् समुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।
 ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालामाभिधानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने रामके आगमनकी आदि लेकर अपने यहाँ आने तक का समस्त वृत्तान्त उधोंका त्यों विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुन कर महा तेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोंके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार क्षण भरमें यह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले बड़े वैभवसे किरिडन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रह कर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चैट्राके धारक रामके लिये समर्पित की ॥४८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशा दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोंसे सहित, शुभ चैट्राओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलंकृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके विना वह भूमि गह्वन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपार्जित तथा तीव्र रूपसे बन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रविको प्राप्त होता है और उस रविके कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्म रूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार 'आर्य' नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामकी गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्ति का वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

असौ पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबल । त्रिभुजाभिमुखोऽयासाद् सोमबन्धनन्दर प्रति ॥१॥
 अयास्य व्रजतो व्योम्नि सुमहाकामुंकाकृतिम् । चक्रमेध्याप्रताकाया जात सैन्य निरोधवत् ॥२॥
 दयाच च गति केन मम सैन्यस्य विघ्निता । अहो विज्ञायता च्छिप्र कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥
 किं स्यादसुरनाथोऽयं चमरो गर्वपर्वत । आखण्डल शिखण्डा वा नैवामेकोऽपि युग्यते ॥४॥
 प्रतिमा किन्तु जेनेन्द्रा शिखरेऽस्य महोभुत । भवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्रमविग्रह ॥५॥
 तस्य तद्वचन श्रुत्वा वितर्ककृतवर्त्तनम् । मन्त्रा पृथुमतिर्नाम वाच्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
 निवर्त्तस्य महाबुद्धे आशौल ननु किं तव । क्रूरयन्त्रयुतो नाय मायाशालो मतिं गत ॥७॥
 अनुस्वरो गियुगयासावपश्यत्पक्षलोचन । दु प्रवेश महाशाल विरक्तछामन समम् ॥८॥
 अनेकाकारववत्राढ्य आममाशालिका मकम् । त्रिदशैरपि दुर्दोष्य सर्वभक्ष्य प्रभासुरम् ॥९॥
 सङ्कोकलन्तीचगाप्रकृष्टावलिचेष्टितम् । सधिरौदगारजिह्वाप्रसहस्रविलसत्तटम् ॥१०॥
 स्फुरद्भुजप्रविस्कारिकाधू कारशब्दितम् । विषभूमान्धकारान्तजलद्वारानु सदम् ॥११॥
 यस्त सर्पति मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धत । नि कामति न भूयोऽसौ मण्डूकोऽहिमुखादिव ॥१२॥
 लङ्काशालपरिचेष सूर्यमार्गसमुत्तम । दुर्लभ्य हुनिराद्य च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
 युगान्तकालमेघौघनिर्घोषसमभीषणम् । हिसाग्रन्यमिवायन्तप्रापकर्मविधिमितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनूमान् त्रिभुजाचलके सन्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सन्मुख सोम चलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर आकाशमें चलते हुए हनूमान् की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गई और ऐसी जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघाका समूह ही हो ॥ २ ॥ यह देख, हनूमान्ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥ ३ ॥ क्या यहाँ असुराका इन्द्रचमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेंसे यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पड़ता ॥ ४ ॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतकी शिखर पर जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हा ॥ ५ ॥ तदनन्तर हनूमान्ने वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमन् श्रीशौल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥ ६-७ ॥ तत्पश्चात् कमललोचन हनूमान्ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त माया मयी महाकोटको देखा । यह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥ ८ ॥ अनेक आकारके मुद्रासे सहित था, भयङ्कर पुतलियोंसे युक्त था, सज्जो भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवाके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥ ९ ॥ जिनके अप्रभागा सकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी कराताकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरकी उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंसे अप्रभागासे सुशोभित थे ॥ १० ॥ चञ्चल सर्पोंके तने हुए फणाआकी शृङ्गारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विपैला धूम रूपी अघकार छट रहा था ऐसे जलते हुए अगारासे दु सद था ॥ ११ ॥ शूर वीरताके अहकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि सर्पोंके मुखसे मेढक ॥ १२ ॥ यह लकाके

१ चक्रे, मेध्या प्रतिकाश म० । २. तिरोभवत् म० । ३ खगति म० । ४. विघ्नता म० ।

५. मुमीशरममिग्रह (१) म० । ६ महान् बुद्धे ख० । ७ युतेनाय म०, व० । ८ जिह्वाप्र म० ।

त दृष्ट्वा मारुतिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्जितं पूर्वं मायाप्राकारकारिणा^१ ॥१५॥
 उन्मूलयन्निदं यन्त्रं विद्याबलसमूजितम् । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमलं^२ यथा ॥१६॥
 युद्धे च मानसं कृत्वा तत्सैन्यं^३ स्व महास्ववन्म् । गगने सागराकारं समवेतिष्ठिषत् सुधीः ॥१७॥
 विद्याकवचयुक्तं च^४ कृत्वा मानं गदाकरं । विवेश सालिकावक्त्रं राहुवक्त्रं रविर्यथा ॥१८॥
 ततः कुक्षिगुह्यं तस्याः परीतकैकसानुताम् । विद्यानखैरलं तीक्ष्णैः कैसरीं व्यपाटयत् ॥१९॥
 निर्दयैश्च गदादातैर्घोरघोरैश्चूर्णयत् । घातिकर्मरिंथति यद्वद्वदानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥
 भयाशालिकविद्यायां यात्या भेदं भवानहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्चटचटाध्वनिः ॥२१॥
 तेन सम्भाष्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणैव जिनेन्द्राणां कलुषः कर्मसञ्चयः ॥२२॥
 ततस्तज्जिनदं क्षुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दृष्ट्वा विशीर्यमाणं च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥
^१राजन् बज्रमुखः क्रुद्धः शालरक्षाधिकारवान् । खरितं रथमारुह्य सिंहो दावमिवाभ्यगात् ॥२४॥
 ततोऽभिमुखमेतस्य शीघ्रं मारुतनन्दनम् । नानायानयुधा योधाः प्रचण्डा योद्धुमुद्यता ॥२५॥
 बलं^५ बाज्रमुख दृष्ट्वा प्रबलं योद्धुमुद्यतम् । परमं क्षोभमायात हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
 किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्तं तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्वं^६ सम्माननविमानने ॥२७॥

कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लभ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलय कालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयङ्कर है, तथा हिसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोके द्वारा निर्मित है ॥ १४ ॥ उसे देखकर हनूमान्ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥ १५ ॥ मैं विद्याबलसे थलिय इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥ १६ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनूमान्ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारणकर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥ १७-१८ ॥ तत्पश्चात् चारों ओरसे हड्डियोंसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भोंति विद्यामयी तीक्ष्ण नगोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥ १९ ॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भङ्गको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥ २२ ॥

तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटकी नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरुढ़ हो हनूमान्के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सन्मुख जाता है ॥ २३-२४ ॥ तदनन्तर हनूमान्को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके चाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २५ ॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाकी युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनूमान्की सेना भी युद्धके लिए उठी ॥ २६ ॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥ २७ ॥

स्वामिनो दृष्टिमागँस्था सुभटा कृतगजिता । जावितेष्वपि विस्नेहा बभूवुः किमिहोच्यताम् ॥२८॥
 ततः कपिष्वनैर्यापाश्रितकृतमहादवा । वज्रायुधस्य निर्ममना घणाब्जेपुरितस्ततः ॥२९॥
 चर्त्रेणानिलसूनुश्च तेजोऽहरत् बिद्विषाम् । ऋषविष्वमिवाकाशदापातयदुरे शिरः ॥३०॥
 सरये पितृवर्धे दृष्ट्वा त लङ्कामुन्दरा तदा । नियम्य कृच्छ्रतः शोकममर्षं विपदृषिता ॥३१॥
 जवनारवरयारुढा कुण्डलोपोतितागना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥
 उत्क्रेव सङ्घतादित्यतेजामण्डलधारिणा । धूमोद्गारसमायुक्ता धनप्राग्भारवत्तिनी ॥३३॥
 सरम्भवशसम्कुललोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसदृष्टविम्बोष्ठा क्रुद्धेव श्री शचापते ॥३४॥
 अधावदिपुमुदृष्ट्य कृत्यमाना मनोहरा । मया श्रीरूल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्मि चेत् ॥३५॥
 अथ ते रावण क्रुद्धो नमश्चरमहेस्वर । करिष्यति पदेतसे करामि हसचेष्टितं ॥३६॥
 हृद्य यमालय पाप भवन्तः प्रेषयाम्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्यामगोचरः ॥३७॥
 तस्यास्त्वरितमायाम्बा यावच्छत्रमपातयत् । बाणेन तावदेतस्य तथा चाप द्विधा कृतम् ॥३८॥
 सा यावद्गृहावृत्तिं तावन्माराहतिना शरैः । नमरलक्ष समाधान्ता भिन्ना शक्तिश्च सान्तरैः ॥३९॥
 सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुखलान् शिला ॥४०॥
 बधर्पं वायुपुत्रस्य रथे हिमवदुद्यते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसन्ध्या यथोन्नता ॥४१॥

जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े बड़े युद्ध किये थे ऐसे यज्ञायुद्धके योद्धा वानरोंके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥ २९ ॥ और हनूमान्ने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र विम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥ ३० ॥ युद्धमें पिताका बध देर यज्ञायुधकी पुत्री लकामुन्दरी कठिनाईसे शौर्यको रोककर क्रोधरूपी विषसे वूषित हो हनूमान्की ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथ पर बैठी थी, कुण्डलोंके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका चक्षु स्थल आयत था, उसकी दोनों भ्रुकुटियाँ टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ कुछ धुआँ सा निकलता दिग्गता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए छाल कमलोंके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना आठ चान रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥ ३१-३४ ॥ वह देखनेमें सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर बाण चढाकर वह दौड़ी और बोला कि अरे श्रीरूल ! मैंने तुम्हें देख लिया है, यदि तुममें कुछ शक्ति है तो रखा रह ॥ ३५ ॥ आज वृषित हुआ विद्याधरोंका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥ ३६ ॥ यह मैं तुम्हें पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥ ३७ ॥ वेगसे आती हुई लकामुन्दरीका छत्र जब तक हनूमान्ने नीचे गिराया तब तक उसने एक बाण छोड़ कर हनूमान्के धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३८ ॥ लकामुन्दरी जब तक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तब तक हनूमान्ने बाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥ ३९ ॥ विद्याबलसे गम्भीर लकामुन्दरीने हनूमान्के हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान बाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार बरसाई जिस प्रकार कि उत्पातके समय उद्य

तथा नानायुधादौर्पं सर्ववेगसमोरिते । आच्छाद्यत महातेजा शुचिसूर्यं हवामुदे ॥४२॥
 विक्रान्तं च शस्त्रौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निजै शस्त्रै मायाविधिविशारद ॥४३॥
 शरा शरैरलुप्यन्त तोमराद्या स्वजातिभि । शक्त्य शक्तिभिर्नुब्रा समोल्का दूरमुद्यु ॥४४॥
 चक्रकृकचसवर्तकनकाटोपपिञ्जरम् । बभूव भीषण ज्योम विद्युद्भिरिव सङ्कुलम् ॥४५॥
 त लङ्कासुन्दरा भूमी रूपेणालम्ब्यसन्निभा । धीरा स्वभावतो राजन् लक्ष्मी कमललोचना ॥४६॥
 ज्ञानध्यानहरे कान्तैर्दुर्द्धैरैगुणसन्धते । लावण्याहतसौन्दर्यमनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥
 नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विन्ध्यधे स्मरसायकै । तथेतरधनुमुच्चै शरैराकृण्वन्सहते ॥४८॥
 विहमये जगत शङ्का सीमागयगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैव प्रविष्टा हृदयोदरम् ॥४९॥
 शरशक्तिशतघ्नीभिर्न तथा समपीकृत । यथा मदनबाणौघैर्मर्मदारणकारिभि ॥५०॥
 इव मनोहराकारा ललितैर्विशिष्यैरपि । सबाह्याभ्यन्तर इन्ति मामिषेवमचिन्तयत् ॥५१॥
 वरमस्मिन् नृपे नृपु पूर्वमाणस्य सायकै । अनया विप्रयुक्तस्य ज्ञादित न मुरालये ॥५२॥
 चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साध्यमङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या करणासक्तमानसा ॥५३॥
 विकस्वरमनोदेह त पद्मच्छदलोचनम् । अवालेन्दुमुख बाल किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
 मूर्तियुक्तमिवाङ्ग सुन्दर वायुनन्दनम् । हन्तु समुद्यता शक्तिं सजहार त्वरावती ॥५५॥

मेघावली नाना प्रकारके जल बरसाती है ॥४०-४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र समूहसे महातेजस्वी हनूमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आपादका सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होने पर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनूमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्र समूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे लुप्त हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियों शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर लंकाओंके समान दूर जा गिरीं ॥४४॥ चक्र, कृकच, सवर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे मीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो विजलियोंसे ही व्याप्त होगया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनूमान्को उधर जुदा भेद रही थी और इधर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक रींचे हुए बाणोंसे जुदा भेद रही थी । लङ्कासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६-४८॥ इस तरह जगत्की आध्वर्य करनेमें समर्थ तथा सीमागयरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनूमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट होगई ॥४९॥ वह हनूमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रोंसे उस प्रकार पीडित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि सूर्यको विदारण करने वाले कामके बाणोंसे पीडित हुआ था ॥५०॥ हनूमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार की धारक, अपनी ललित चेष्टा रूपी बाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन विताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनूमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामें आसक्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंका सुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देदीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर हनूमान्को मारनेके लिए उठाई हुई शक्ति

दृष्टो च मारयाग्रेत कथ दोषमपि श्रितम् । रूपेणानुपमानेन क्षिप्ते मर्माणि यो मम ॥१६॥
यद्यनेन सम सत् । कामभोगोदयद्युतिम्^१ । न निषेधे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥१७॥
अतः सपथमुद्दिश्य स्वनामाङ्गं हनूमते । प्रविषाय शरं मुग्धा विह्वलेनान्तःशमना ॥१८॥
पराजिता त्वया नाथ साह सम्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं सङ्घातजतिभिः ॥१९॥
^२प्रदास्य माहतिर्वाणमङ्गं स्वैरमुपागतम् । एतं परा परिप्राहो रथादरमयातरत् ॥२०॥
उपसृत्य च तां कन्यां सृगेन्द्रसमविव्रम । कृत्वाङ्गे गाढमालिङ्गत्वं कामो रनिमिवापराम् ॥२१॥
अथ^३ प्रशान्तवैरासान्वसुदिनलोचना । सातप्रयाणशोकात्तां जगदे वायुसूनुना ॥२२॥
मा रोद्री सौम्यवक्त्रे^४ त्वमल शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेषैव चारुधर्मे सनातने ॥२३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतच्छ्रुत्वा राजविवधौ स्थिता । पित्रादानपि निघ्नन्ति नरा कर्मवलेरिता ॥२४॥
वृथा रोदपि किम्वेतद्विधानमातं विवर्षय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं मुग्यते प्रिये ॥२५॥
निहितोऽयमनेनेति द्विद्वजं व्याजमात्रकम् । आयु कर्मानुभावं प्राप्सकालो विपद्यते ॥२६॥
वचोभिरभिरग्यैश्च मुग्धोऽप्यराजत । सहिता वातिनां चन्द्रिन्मुना निर्वना निशा ॥२७॥
प्रेमनिर्मलपूर्णं तवोरालिङ्गनेन स । सहप्राप्तमजं श्रमो दूरमयायात सुषेतसो ॥२८॥

शीघ्र ही सहित करली—पीछे हटा ली ॥ २३-२४ ॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥ २६ ॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमें मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥ २७ ॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लकासुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अकित एक वाण हनूमान्के पास भेजा ॥ २८ ॥ उस वाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इफ्ते हुए देवाके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके वाणोंसे परानित हो गई ॥ २९ ॥ गोदमें आये हुए उस वाणको अच्छी तरह बाँध कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनूमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥ ३० ॥ और उसके पास जाकर सिद्धके समान पराक्रमी हनूमान्ने उसे गोदमें बिठा उसका ऐसा गाढ आलिङ्गन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिङ्गन किया हो ॥ ३१ ॥

तदनन्तर जिसका वैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिनकी भौंति अचिरल अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरणसम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लकासुन्दरीसे हनूमान्ने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥ ३३ ॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मवल्से प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥ ३४ ॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तध्यानको छोड़ो ! हे प्रिये ! इस समस्त ससारमें अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥ ३५ ॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है यथार्थमें तो आयुर्कर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लकासुन्दरी हनूमान् के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुशोभित होती है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका सप्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्मलसे परिपूर्ण आलिङ्गनके द्वारा दूर भाग गया ॥ ३८ ॥

१ युति म० । कामभोगादयं युतिम् अ० । २ प्रोवाच म० । ३ प्रशान्तवैर + असी + अलदुर्दिन ।
४ सौम्यमुखे म० । ५ वातस्यापत्यं पुमान् वाति, तेन हनूमा ।

ततो यत्र नभोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खगा । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६९॥
 सन्ध्यारक्ताग्रसङ्काशा गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्थ तदयन्त शिविर पर्यराजत ॥७०॥
 गजवाजिभिमानस्था रथस्थाश्च महानृपा । तपुर ध्वजमालाज्य विविशु पृष्ठवातय ॥७१॥
 स्थितास्तत्र यथान्याय लब्धोऽसाहसमुत्सवा । कथाभिरतिचित्राणि सूरसङ्ग्रामजन्मनि ॥७२॥
 अथ च त्वरितामानं वातिं गन्तुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राप्तादिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
 विविधागोभिरापूर्णं ध्रुतदुःसहविप्रम । कान्तं लङ्का किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यत ॥७४॥
 तस्यै जगाद् वृत्तान्तमशेषं वायुनन्दन । ह्ययं प्रयुपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
 सातया सह रामस्य भद्रे भद्रसमागम । हतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यं सर्वथा मया ॥७६॥
 साञ्जवात् समतिप्राप्तं सीहार्दं तपुरातनम् । भद्रास्नेहचये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
 क्षामीद् रथोत्तरोभावा ध्वजमालाकुलाकुलाम् । प्राविष्टदादतो लङ्का भवान् दिवमिवामर ॥७८॥
 अधुना त्वयि दोषाण्ये रावणश्चण्डशासन । प्रकाशं व्रजति क्रोधं गृहीष्यति न सशय ॥७९॥
 यदीपलभ्यते चार्वां विशुद्धिं कालदेशयो । विद्युद्धामानमव्यग्रं तदा तं दष्टुमर्हसि ॥८०॥
 एवमेवेति सोऽशेषाद्ब्रवीषि विषचणै । जाकृतं तस्य विज्ञातुं गवा वाक्छामि सुन्दरि ॥८१॥
 कीदृशा वा सता साता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालित मेरुवर्दीं रावणस्य मनो यथा ॥८२॥

तदनन्तरं स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याधर रोक दिये गये थे प्रदेशमें आवास बनाकर वह सेना ठहराई गई ॥६९॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनुमान्का वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुरोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े बड़े राजा थे उन्होंने हनुमान्से पूछकर हाथियां, घोड़े, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूरवीरोंके सग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्तकर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनुमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लङ्कासुन्दरीने एकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम सुझे अवश्य करना है ॥७६॥ यह सुन लंका सुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सीहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्रके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति भद्राके नष्ट हो जानेसे रावणका सीहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आपमागोंकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाआकी पक्षिसे अलंकृत लङ्कामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें सशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि-अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है । किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह

एवमुक्त्वा मरुपुरस्तद्विन्यस्तमहाबलः । तथा मुक्तो विवेचिन्वा त्रिट्टामिमुषं ययी ॥८३॥

दोधकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यपरिहाय भृशं रसमेकम् ।

तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरपैति रसान्तरसङ्गम् ॥८४॥

कर्मविचेष्टितमेतदशुस्मिन् किन्त्वयवाद्भुतमस्ति निसर्गं ।

सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतरच रवीहा ॥८५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमच्छङ्कासुन्दरीकन्यालामाभिधानं नाम
द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥

सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, और रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८३॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विचेकवतीसे छूटकर त्रिट्टाचलकी ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसारमें यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है । जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर । उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्की लका-
सुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला बावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वाति प्रभावोदयसङ्गत । लङ्का विवेश नि शङ्क स्वल्पानुगसमन्वित ॥१॥
 द्वारे च रचिताभ्यर्चं विभीषणनिवेदनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मान च समाहृत ॥२॥
 तत स्थित्वा षण किञ्चित् ससृष्टाभि परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्य व्याजहार भरसुत ॥३॥
 उचित किमिदं कर्तुं यद्वास्यार्द्धपति स्वयम् । कुर्वते क्षुद्रवल्कश्विचोरण परयापित ॥४॥
 मर्यादाना नृपो मूलमापगाना यथा नग । अनाचारे स्थिते सस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
 ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीय समस्ताना दुःखमेव्यति नो भुवम् ॥६॥
 तए क्षेमङ्करमस्माक हिताय जगता तथा । उच्यता रावण शास्त्र वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
 यथा किल द्वये लोके निन्दनीय विचेष्टितम् । सा कार्पा जगतो नाथ कीर्तिविध्वंसकारणम् ॥८॥
 विमलं चरित लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गार्वाणलोकैःपि रचिताञ्जलिभि सुतै ॥९॥
 कैरसीनन्दनोऽबोद्ध बहुशोऽभिहितो मया । तत प्रभृति नैवासी मया सम्भाषते समम् ॥१०॥
 तथापि भवतो वाक्यान् श्रुत्वा समेय नरेवरम् । वक्तास्मि किन्तु दुःखेन रक्षय्येतेतदसौ प्रहम् ॥११॥
 भद्रोऽयैकादश ज्ञात सीताया वक्ष्यनोऽम्बने । तथापि विरति काविहङ्गेन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
 तच्छ्रुत्वा वचन सद्य महाकाण्वसङ्गत । प्रमदाह्वयमुद्यान सारतिर्गन्तुमुद्यत ॥१३॥
 अपरयच्च लताजालैस्तत्र पैराकुलीकृतम् । अरुणे पङ्क्तौ ब्यास वरखीकराक्षभि ॥१४॥

अथानन्तर-भोतम स्थामी कहते हैं कि हे मगधराज । प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोसे युक्त हनूमान्ने नि शङ्क होकर लङ्कामे प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभाषणके महलमे प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनूमान्ने इस प्रकारके सद्बचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओंका मूल है । यदि राजा स्वयं अनाचारमे स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमे प्रवृत्ति करने लगती है ॥४॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है । इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥५॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए तथा जगतके हितके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिये जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥६॥ उन्हें बतलाइये कि हे जगतके नाथ ! दोनों लोकोंमे निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिये ॥७॥ निर्मल निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमे चाह है अपितु स्वर्गलोकमे देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥८॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥९॥ फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥१०॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लङ्काधिपतिको कुछ भी विरति है—इस कार्यसे रज्जुमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥११॥ विभीषणके यह वचन सुन महा दयाभावसे युक्त हनूमान् प्रमदोद्यानम जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि नई नई लताओंके

भ्रमरप्रातृयुग्मैः सुजातैर्वन्द्योत्तरम् । फलैरानतशास्तां क्रियं पत्रकग्नितम् ॥१५॥
 पद्मादिद्यादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलङ्कृतम् । भासुर कल्पवल्लीभिः सद्गताभिर्महातरुम् ॥१६॥
 गीर्वाणकुन्देशाम प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दध साम्यमनेकाद्भुतसङ्कुलम् ॥१७॥
 ततो लीलां वहन् रम्यां वायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यान सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
 प्रणिधाय च सर्वांस्तु दिक्षु चक्षुरतिचरम् । विविधद्रुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥
 दृष्ट्वा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवञ्जितः । अचिन्तयद्रूपी सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
 स्निग्धज्वलनमद्वाया वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुमुक्कदेशी कृशोदरी ॥२१॥
 अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां रयातिमायात स्वयवस्तुमिवन्वनम् ॥२२॥
 रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णव गताप्येषा सङ्क्षी मान्ययोपिता ॥२३॥
 निषण्ण शिखराद्देवस्य मृदुलुपैन्वहम् । विरहे पद्मनाभस्य धारयामि न ज्ञावितम् ॥२४॥
 दृष्टप्रविशतनामेवं वैदेहीं पवनानमजः । निःशब्दपादसम्पातः प्राप्नो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
 ततोऽद्भुतीयक तस्या विसर्जोद्भवामसि । सहसा सा तमालोत्प स्मेराभ्रपुलकाचिता ॥२६॥
 तस्यामेवमवस्थायां गवा नार्यसन्नरान्विताः । तोषाद्वर्षपथं दिष्ट्वा रावण सत्परायणम् ॥२७॥

समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवांसे युक्त था, भ्रमरोसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिस पर सेहरा बंध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अग्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा बुझ-बुझ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित रजच्छ सरोवरोसे जो अलंकृत था, जो यड़े-यड़े वृक्षांसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे वेदीयमान था, जो देवकुल प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्रयोंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमल लोचन हनूमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवां आदिसे सघन नाना वृक्षांके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर सुपुरुषी चन्द्रमाको रंगे हुई है, केश इसके गुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनूमान् विचार करने लगा कि अहो ! लोके इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करने वाला है, परम रयातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षान् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती। अहो ! यह दुःखरूपी सागरमें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृदुको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जोधन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनूमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनूमान्ने सीताकी गोदके वक्षपर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमाञ्चांसे युक्त हो गई ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियों थीं उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार

सन्तुष्टोऽङ्गगत ताम्रयो वस्त्ररत्नादिक ददौ । श्रुत्वा स्मेरानना सीता सिद्ध कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
 विधातु महिमानं च किञ्चिदादिशु सुकः । सुगपूरमिव प्राप्त समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
 स्वनाथवचनात् साधवा सर्वान्तं पुरसयुता । गता मन्दोदरा शीघ्रं यन्नासो जनकामजा ॥३०॥
 विकचास्यद्युति साता इष्टा मन्दोदरा चिरात् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रह कृत ॥३१॥
 अधुना भज लोकेश शम्भु शोभ्यजिता । सुराणां श्रारिवाचीश स्वधनि-शेषसम्पदम् ॥३२॥
 इत्युक्त्वा कुपिताबेचयदाद भवतारितम् । पद्म खेचरि जानाति म्रियते ते पतिर्ध्रुवम् ॥३३॥
 धातो समागता भर्तुरिति तोपमुपागता । अकार्यं वदन स्मेर भजन्ती परमां धृतिम् ॥३४॥
 इति ता वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य योषित । ऊष्ण क्षुद्रववातेन एषत्येवेति सस्मिता ॥३५॥
 तत श्रेणिक वैदेही नितान्तं तुह्यवा गिरा । परम विस्मय प्राप्ता जगादैव समुसुका ॥३६॥
 गताया व्यसन घोरमग्निद्रापे महामये । कोऽयं सन्निहित साधुर्बन्धुभूतोऽतिशयल ॥३७॥
 ततो नभस्वत सूनुरेवमधितदर्शनं । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानस ॥३८॥
 परार्थं यं पुरस्कृत्य पुन स्व विनिगृह्णति । सोऽतिभीरुतया चन्त जायते निकृते मर ॥३९॥
 परमापदि सादन्त जन सन्धारयन्ति ये । अनुकम्पनशालानां तेषां जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥
 हानि पुरुषकारस्य न चा मनि निदर्शिते । प्रकारये गुरुता याति जगति धीर्यंशस्विना ॥४१॥

सुना हर्षसे वृद्धिगत किया ॥२७॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोंके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो । उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्त पुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गई जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आप जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाआसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधर ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित हो मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखकी मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर रावणकी स्त्रियाँ कहने लगीं कि क्रुधाके कारण इसे बायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसता हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आरच्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थनाकी गई थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनूमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगेकर अर्थात् पहलेसे स्वीकृतकर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकटकर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकटकर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी ससारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनूमान् आमण्डलकी नौई हजारों उत्तम स्त्रियोंके बीच

उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मध्यगतामिमाम् । प्रभामण्डलकल्लोऽसौ पद्मपत्रोमुपागमन् ॥४२॥
 नि राक्षद्विपविशान्तः सगुणैन्दुसमाननः । सहस्रांशुसमो दाप्या मातृशाम्बरनिमृषित' ॥४३॥
 रूपेणाप्रतिमो युक्तः कान्ध्या निर्गुणचन्द्रमा । किरणिते वानर विभ्रदामोदाह्ननपटुषुः ॥४४॥
 चन्द्रनाथितसर्वाङ्गः पोंतचर्चाविराजित' । ताम्बूलारक्तविम्बोष्ठः प्रलम्बाशुक्रशोभित ॥४५॥
 चलरकुण्डलविद्योतविहसद्गण्डमण्डलः । पर सहननं विभ्रद्वीर्येणान्तविवजित ॥४६॥
 सर्पन् सीता समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसयुक्तः शोभासुपययौ पराम् ॥४७॥
 कान्तिभासिसुख दृष्ट्वा त युत परया श्रिया । पद्मायतेजसा नार्यस्ता बभूवुः समाकुलाः ॥४८॥
 द्युधती हृदये कम्प मन्दोदर्यातविस्मया । समोलोकत सीताया समीपे वायुनन्दनम् ॥४९॥
 उपगम्य ततः सीता विनीतः पवचामजः । ककुब्जमलमाधाय मस्तके नम्रतायुधि ॥५०॥
 कुल गोत्र च सभ्राभ्य पितर जननीं तथा । अवेदयत्तु विभ्रद्वय पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥
 त्रिविष्टपस्ते सावि विमाने विभचान्विते । रतिं न लभते राज्ञो जगन्स्थद्विरहण्ये ॥५२॥
 त्यक्तनिःशेषकर्मणो मोक्ष प्रायेण धारयन् । स त्वा मुनिरिव ध्यायन्नैकतानोऽवतिष्ठते ॥५३॥
 वेणुतन्त्रासमायुक्त गीत प्रवरयोपिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्यति पावने ॥५४॥
 सदा करोति सर्वस्मै कथा स्वामिनि ते मुदा । त्वदीक्षणाराधया प्राणान् बद्ध्वा घत्ते स केवलम् ॥५५॥
 हृति सद्रूपेन ध्रुवा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोद परम प्राप्ता सीता विकस्यनेज्जना ॥५६॥
 विपाद सङ्घता भूयो जलपूरितलोचना । ऊचे शान्ता हनूमन्त विनीत स्थितमप्रतः ॥५७॥

पैठी हुई सीताके समीप गया ॥४२॥ जो राक्षस रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और वस्त्रोंसे सुशोभित था । रूपसे अनुपम था । कान्तिसे मृग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें वानरका बिह्व धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोंको आकर्षित कर रहा था, चन्दन से जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका विम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए वस्त्रसे सुशोभित था, अञ्जलि कुण्डलोंके प्रकाशसे जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनूमान् सीताको लक्ष्यकर घीरे-घीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४४॥ जिसका मुख कान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हनूमान्को देखकर ये कमललोचना स्त्रियों व्याकुल हो उठीं ॥४८॥ जिसके हृदयमें कँपकँपी छूट रही थी ऐसी मन्दोदरीने सीताके समीप हनूमान्को बड़े आश्चर्यके साथ देखा ॥४९॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनूमान्ने मुझे हुएमस्तकपर अञ्जलि बाँध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता पिताका नाम सुनाया । उसके बाद निश्चित हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिप्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर ये प्रायः मोक्ष धारण किये रहते हैं और मुनिको भोगि एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्र कारिणि ! बाँसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि ! वे सदा उनके सामने बड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे ही प्राणोंको बाँधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनूमान्के वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई । उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विपादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रोंमें जल भरकर सामने बैठे हुए विनयी

साहस्यमावस्थथायां निमग्ना कपिलवृण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हतेन विधिनाम्बिता ॥५८॥
 ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
 ततो मुक्ताफलस्थूलवाष्पविन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलवृणम् ॥६०॥
 मकरप्राह्नकादिचोभितं भीममणवम् । मद्र दुस्तरमुल्लङ्घ्य विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
 अवस्थां वा गतामेतां कार्यससिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागत्य नवस्यान्धासमुत्तमम् ॥६२॥
 लावण्यघुतिरूपाढ्यः कान्तिसागरसवृतः । श्रिया कीर्त्या च सयुक्तः प्रियो मे मद्र बान्धवः ॥६३॥
 प्रदेशे स त्वया कस्मिन् प्राणनाथो ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्रोत्र कचिल्लक्ष्मणसङ्गतः ॥६४॥
 किं नु दुःखचरैः सख्ये भोगैः व्यापादितोऽभुजः । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्मामलोचनः ॥६५॥
 किं वा मद्गिरहादुग्रदुःख नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किञ्चिद्द्वेने लोकान्तरं गतः ॥६६॥
 जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषग्रन्थवर्जितः । तपस्यन् किमसावास्ते भवनिर्वेदपण्डितः ॥६७॥
 शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतरङ्ग्युत प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
 त्वया सह परिज्ञाविर्मासीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
 न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टापहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
 एतत्सर्वं मम भ्रातः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः ॥७१॥
 इति पृष्टः समाधानी शास्त्रामृगकिरीटभृन् । शिरस्थकरराजीवो जगद् विकचेक्षणः ॥७२॥

हनुमान्से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुम्हें क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि हे शुभे—हे मङ्गलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुछ सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-थड़ी अङ्गुलीयों के धूँँसे जिसका आँठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनुमान्से पूछा कि हे भद्र ! मकर—प्राह्न तथा नाक आदिसे चोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लौंघकर तू किस प्रकार आया है ? ॥६०॥ इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किसलिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोंके द्वारा युद्धमें छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हों ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगूठी कहीं गिर गई होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर बिना कारण तू उनकी मित्रताको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगूठी लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित

सायके रविहामाख्ये लक्ष्मणेन निर्वाह्यते । गवा चन्द्रनम्यानिष्टा रमणं समरोपयन् ॥७३॥
 पावदाहूयते स्वामी रक्षमां सुमहाबलः । दूषणस्तावदायातो योद्धुं दाशरथि द्रुतम् ॥७४॥
 लक्ष्मणो दूषणेनामा युष्यते यावदुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्राशस्तमुद्देशं वयान्वितः ॥७५॥
 धर्माधर्मविनेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । भवतीं वीक्ष्य स क्षुद्रो भूयूय मनसो वयः ॥७६॥
 भ्रष्टनिःरोपनातिश्च निस्मरामभूतचेतनः । मायामिहस्वनं चक्रे भवतोस्तेनकारणम् ॥७७॥
 भुत्वा सिंहस्वनं पश्यो ययौ यावद्रणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहता ॥७८॥
 प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गन्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैषत सत्तमे ॥७९॥
 ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा त्वद्गणवेशणकारणम् । ईषाञ्चक्रे रक्ष्यमाणं कृत्वा मन्त्र जटापुत्रम् ॥८०॥
 तस्मै हत्वा स जैनैर्न्द्रां त्रिष्यमाणाय वेशनाम् । अवतरत्ये वने शुभरी भवर्तमानमानसः ॥८१॥
 रातश्च लक्ष्मणः पद्म निहत्य क्षरदूषणम् । आनांता रत्नजटीना त्वप्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥
 सुमीवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहसः । धल हन्तु समुद्युक्ते विषया वञ्चितो हतः ॥८३॥
 हृतस्यास्थोपकारस्य कुलपावनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुहवान्धवैः ॥८४॥
 प्रीत्या विमोषयामि त्वां विप्रहो निःप्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहामीष्टा सर्वथा नयशालिनिः ॥८५॥
 सोऽयं हृष्टापुरीनाथो पृष्ठावान् विनयान्वितः । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन मृदुः परम् ॥८६॥
 सौम्यः श्रौयंविनिर्मुक्तः सत्यमतकृतस्थितिः । करिष्यति वचो नून मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

हनुमान्, हस्त-फल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहने लगा ॥७३॥ कि जय लक्ष्मणने सूर्यहास रत्न अपने आधीनकर लिया और चन्द्रनम्याको जब राम-लक्ष्मणने बाधा नहीं तब उसने अपने पति ररदूषणको रोपयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिदाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जब तक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक ररदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ वधर लक्ष्मण जब तक ररदूषणके साथ विफट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थान पर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, वो भी यह जुद्ध आपको देख मनके वशीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गई थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जब तक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तब तक यह पापी तुम्हें हरकर मर्दों ले आया ॥७८॥ वधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धसेवसे रामको वापिस किया सो यहाँसे आकर जय वै पुनः उस स्थानपर आये तब द्वे पतित्रते ! उन्हींने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्हींने शिथिल प्राण एवं मरण-सन्न जटापुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो वनमें बैठ गये । उस समय उनका मन एक आपमें ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, ररदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा वृत्तान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमें सुमीवके रूपसे युक्त साहस गति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने इसारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ । युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंको सब तरहसे कार्यको सिद्ध करना ही संसारमें इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यत्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे

कातिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैव विभेति नितरा कृता ॥८८॥
 तत पर प्ररिप्राप्ता प्रमोद जनकामजा । हनूमन्तमिद वाक्य जगाद विपुलेक्षणा ॥८९॥
 पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्या कियन्तो मत्प्रियाश्रिता ॥९०॥
 मन्दोदरी ततोऽधोचक्षुरा सख्यशोऽन्विता । गुणोक्ता न शसन्ति धारा स्व स्वयमुत्तमा ॥९१॥
 वैदेहि तव न ज्ञात किमय येन पृच्छसि । कपिध्वज समानोऽस्य वास्येऽयस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
 विमानवाहनघण्टासघटपरिमण्डले । रणे दशमुखस्याय प्राप्त साहाय्यक परम् ॥९३॥
 दशाननसहायत्वं कृत येन महारणे । स हनूमाविति पचातश्चाजनातनय पर ॥९४॥
 महापति निमग्नस्य दशवज्रस्य विद्विष । खेगामनोऽप्यधामिप्या एकेनानेन निजिता ॥९५॥
 अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रमखामजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा धाम्बुद्धि दर्शनम् ॥९६॥
 अस्य पौरसमुद्रस्य य कान्त शिशिराशुवत् । सहोदरसम वेति य लङ्कापरमेश्वर ॥९७॥
 हनूमन्तिति विद्यात सोऽय सकलविष्टे । गुणै समुद्यतो नातो दूतत्वं चित्तगोचरै ॥९८॥
 अहो परमिद चित्र निन्दनाय विशेषत । नात प्राकृतवत्कश्चिद्गौर्यैर्दृश्यतामयम् ॥९९॥
 इयुक्ते वचन वातिर्जगाद स्थिरमानस । अहो परममुदत्तं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
 सुख प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवाञ्चित । अकार्यं धाम्बुद्धतस्तत्त्वं दीयते न मति कथम् ॥१०१॥
 आहार भोज्युकामस्य विज्ञात विपमिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथ न प्रतिपिप्यते ॥१०२॥

लिप सौप देगा ॥८५॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करना है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाल लोचना सीता हनूमान्से यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सटशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९-९०॥ तत्र मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर है, सत्त्व और यशसे सहित हैं, गुणोंसे उत्कट हैं तथा धीर वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे ऐसा पूछ रही है ? इस भारत क्षेत्र भरमे इसके समान दूसरा वानर ध्वज नहीं है ॥९२॥ विमाना तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे सग्राममे यह रावणकी परम सहायता करता है ॥९३॥ जिसने महायुद्धमे रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनूमान् इस नामसे प्रसिद्ध अञ्जनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा विपत्तिमे फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुननेमात्रसे मनको पीडा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्ग कुसुमा प्राप्त की है । जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जन रूपी समुद्रको वृद्धिज्ञत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लङ्काका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समभक्ता है ॥९७॥ ऐसा यह हनूमान् समस्त ससारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणाका धारक है फिर भी भूमि गोचरियाने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमि गोचरियाने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढचित्तके धारक हनूमान्ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥ जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छा अनुसार काम करनेवाला मित्र यदि विपमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्या नहीं

भवितव्य वृत्तज्ञेन जनेन सुखमोयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०२॥
मन्दोदरि पर गर्वं नि सार वहसे मुधा । यदग्रमहिषी भूत्वा दूतीत्वमपि सञ्चिता ॥१०३॥
क यातमपुना तत्ते सौभाग्य रूपमुत्तमम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीरय सञ्चितासि यत् ॥१०४॥
प्राकृता परमा सा त्व वर्त्तसे रतिवस्तुनि । महिषीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०५॥
मन्दोदरी ततोऽथोचत् कोपालिङ्गितमानसा । अहो तव सद्योपस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०६॥
दूतयेनागत सीता यदि त्वा वेत्ति रावण । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यद्यैव कस्यचित् ॥१०७॥
येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन भारित । पुरस्कृत्य तमेवास्व कथं सुग्रीवकादय ॥१०८॥
भूयैव दशवक्त्रस्य विस्मृत्य स्वरूपचेतसा । स्थिता किमथा कुतुर्वराका काष्ठघोदिता ॥१०९॥
अतिमूढहतात्मानो निर्लज्जा क्षुद्रवृत्तय । अकृतज्ञा वृथोत्सिक्ता स्थितास्ते शत्रुवृत्तभिर्जा ॥११०॥
इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेव या कथसे मृया ॥१११॥
शूरकोविदगोष्ठीषु कीर्त्यमानो न किं त्वया । प्रियो मे पञ्चनाभोऽसौ शत्रुतोऽयद्वृत्तविश्रम ॥११२॥
वज्रावर्तधनुषोप भूत्वा यस्य रणागमे । भयञ्जरितकम्पाद्वा स्तीदन्ति रणशालिन ॥११३॥
लक्ष्मीपरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रह । शत्रुपक्षय कर्तुं समर्थो वीचिणादपि ॥११४॥
किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तरीयं महार्णवम् । पतिरेव समायाति लक्ष्मणेन समन्वित ॥११५॥

किया जाता है ? ॥१०७॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कुछज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०८॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही नि सार गर्व धारण करती हो जो पटराही होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०९॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नतरूप इस समय कहीं गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषकी दूती बनने बैठी हो ? ॥११०॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण लो हो गई हो । अब मैं तुममें महिषीत्व (पटरानी पना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गई हो ॥१११॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता धता रहा है—बढ़ बढ़कर बात कर रहा है ॥११०॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१११॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनक्षत्रके पति-पदस्थायकके मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुमोवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥११२-११३॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढतासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥११४॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर सीताने कुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११५॥ शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११६॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे कँपते हुए डूरी होने लगते हैं ॥११७॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखनेमात्रसे शत्रुपक्षा का जय करनेमें समर्थ है ॥११८॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर

पश्यामीय पति युद्धे स्वल्पकैरेव वासरे । निहत मम नाथेन जगदुत्कृष्टतेजसा ॥११७॥
 एषा गन्तासि वैधव्यं क्रन्दस्थेपा चितोज्झिता । या त्व पापस्तेमर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
 मयर्दयात्मजा तीव्रमेवमुक्ततिकोपणा । परम शोभमायाता कम्पमानाऽधराधरा ॥११९॥
 एका नानासपनीना सहस्रैः सम्भ्रमस्पृशाम् । अष्टादशमिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
 सम करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभिः । निर्भर्त्सनमतिकूर्शैराक्रोशैः कुर्वती भृशम् ॥१२१॥
 श्रीमास्तावन्मरुपुत्र समुत्थाय जवान्वित । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधर ॥१२२॥
 ता दुःखहेतवः सर्वां वैदेहीं हन्तुमुद्यता । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिता ॥१२३॥
 पादताडितभूभागा विभूपादरवजिता । ययुः क्रूराशया सर्वां घनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥
 आजनेन ततः सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साधुना ॥१२५॥
 समथितप्रतिज्ञासौ सुनिर्मलमनोरथा । अभ्युपगच्छदाहारं कालत्रेशमानसा ॥१२६॥
 ससागरा महौ देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेद्यमन्नं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥१२७॥
 एव हि बोधिता तेन वैदेही कृष्णावनि । ऐच्छदन्नं यतः साध्वी सर्वाचारविचक्षणा ॥१२८॥
 इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथात्र प्रवरं रक्षण्यं द्रुतमानीयतामिति ॥१२९॥
 मुक्ता कन्या स्वशिविरं श्रीशैलेन चपाचये । भानावगमुदिते जातो विभाषणसमागम ॥१३०॥

अभी आता है ॥११६॥ तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिको युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकालतक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो कोंपते हुए ओंठको धारण कर रही थी । ऐसी मन्दोदरी परम शोभकी प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह सभ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोंसे मारनेके लिए उद्यत हुई । वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनूमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनूमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोंसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायकी धारण करनेवाली वे सब स्त्रियों रावणके पास गईं ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनूमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी । जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनूमान्ने इस प्रकार समभाषा था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समभाषे जाने पर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ॥१-८ तदनन्तर हनूमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशसनीय अन्न लाओ ॥१२८॥ इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गई और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनूमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

आहारो वायुप्रेग तत्र भुक्ती मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगेन मुहूर्तास्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
मुहूर्तं चतुर्थं नु समानोत्तमिरास्त्रिया । आहारं मैथिलीमुकमिति जानन्ति कौविदाः ॥१३२॥
चन्दनादिभिरालिखे भूतले दर्पणप्रभे । पुष्पोपकारसम्पन्ने नलिनीपत्रयोभिनि ॥१३३॥
सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं पथ्य पेयादिपूर्वकम् । स्यात्स्यादिभिर्महापात्रैः सौजर्गादिभिराहृतम् ॥१३४॥
घृतसूपादिभिः काश्चिपाप्यो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसमच्छायाः शालीनां काश्चिदोदने ॥१३५॥
पट्टसैरुपदशैश्च काश्चिदोचनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चित्पिण्डोदयोचितैस्तथा ॥१३६॥
पयसा सत्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः । लेह्यैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः पश्चादपेक्षितैः ॥१३७॥
पुष्पं परममाहारमिरा परिजनान्विता । हनूमन्त पुरस्कृत्य भ्रातृयावेन बसता ॥१३८॥
महाश्रद्धान्वितस्त्वाम्ना प्रणिपत्य जिनेरवरान् । समाप्य नियमं धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥
निधाय हृदये राममभिरामं पतिप्रता । पवित्राङ्गा दिने मुहूर्ते साधुलोकप्रयुजितम् ॥१४०॥
रविरिमम्बुतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक् प्रशस्यते ॥१४१॥
निष्कृतभोजनविधिः किञ्चिद्विधव्यथा गता । विज्ञापितेति भूयोऽपि सोता पवनसूनुना ॥१४२॥
आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुल्लस्य नदीनाथ नेप्यामि भवतीं क्षणान् ॥१४३॥
पश्य त विभवेष्टुक्तं राघवं त्वपराधपणम् । भवद्योगसमानन्दं जलोऽनुभवतु त्रिवः ॥१४४॥

हनूमान्ने विभीषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ मुहूर्तमें इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आई ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे छीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गई, फूलोंके उपलरसे सजाई गई जिससे वह कमलिनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्याली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ थीं, दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रहीं थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थीं ॥१३५॥ कितनी ही थालियों रचि बढानेवाले पट्टरसे भोजनोंसे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतलीं तथा कितनी ही पिण्डबंधनेके योग्य व्यञ्जनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही दहीसे निमित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रवड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादविष्ट भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आई, सो हनूमान्को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया, 'जब तक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नहीं लूँगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया । अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया । तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमें धारणकर उस पतिप्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो मूर्मकी किण्णोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढानेवाला है, आरोग्यदायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥ १३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनूमान्ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धे पर चढ़ो मैं समुद्रको लौंकर अभी क्षण भरमें आपको ले चलींगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे

ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा रुदती जनकात्मजा । जगादादरसयुक्ता विचिन्तितयथास्थिति ॥१४५॥
 'अन्तरेण प्रभोरात्रा गमन मे न युज्यते । इत्यवस्था गता दास्ये तस्मै किमहमुचरम् ॥१४६॥
 प्रत्येति बाधुना लोकं शुद्धिं मे मृत्युना विना । नाथ एव तत् कृपय मम ज्ञास्यति सांप्रतम् ॥१४७॥
 यावन्नोपद्रवः कश्चिज्जायते दशवक्त्रकात् । तावद्वज्रं द्रुतं भ्रातर्नालम्बवमिह चणम् ॥१४८॥
 त्वया मद्बचनाद् वाच्यं सन्त्यक् प्राणमहेरवर । अभिधानैरिमैर्मूर्ध्नि निधाय करकुड्मलम् ॥१४९॥
 तस्मिन् देव मया सद्धं मुनयो ज्योमचारिण । वन्दिता परम भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
 विमलाश्रमसि पद्मिन्या नितरासुपशोभिते । सरसि क्राडिता स्वेच्छमस्माकमतिमुन्दरम् ॥१५१॥
 आरण्यकस्तदा हस्ती समयातो भयङ्कर । ततो मया समाहृतस्वमुन्मद्यो जलान्तरात् ॥१५२॥
 'उद्दामोऽसी महानागश्चास्काडनकारिणा । समस्तं त्व्याजितो दर्पं भवता निश्चलोकृत ॥१५३॥
 आसाद्य नन्दनद्वये बन्धे पुष्पभरानते । शापः पञ्चलोभेन नमयन्ता प्रदासिमी ॥१५४॥
 अमद्भिरचञ्चलैर्भुङ्गैरभिभूता ससम्प्रमा । भुजभ्यां भवतारिण्यप्य जनिताकुलतोऽभिज्ञता ॥१५५॥
 उद्यन्तमन्यदा भानु माहेन्द्रादिविभूषणम् । अहमम्भोजपण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥
 भगतिप तत् किञ्चिदार्थारसमुपेयुयां । बालेनोपलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
 भन्यदा रतिशैलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्टस्त्वमिति विभ्रम्या कौतुकं परशोभया १५८॥
 एतस्मिन् कुसुमे पूर्णां विपुला स्निग्धताश्रुप । किन्नामानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदा ॥१५९॥

ध्यानमे तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करने वाली एव आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामे पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ॥१४५-१४६॥ इस समय लोग मृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई ! जब तक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ वृणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथानकोके साथ साथ मेरे वचनोमे प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमे एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९-१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमे हमलोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमे एक भयङ्कर जङ्गली हाथी यहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१-१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस वृण्ड महाहस्तीका सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलके भारसे भुके हुए वनमे, मैं नूतन पत्रोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृत्तकी एक शाखाको मुका रही थी । तब उड़ते हुए चञ्चल भ्रमरोंने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबड़ायी हुईको आपने अपनी भुजाओंसे आलिङ्गन कर छुड़ाया था ॥१५४-१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसाकी थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी सी दडीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६-१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखर पर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एव मनके हरण करनेमे निपुण ये कौनसे वृत्त हैं ? ॥१५८-१५९॥ तब इस प्रकार

तत्तत्त्वयेति दृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते यथा नन्दिदुःखमा इति ॥१६०॥
 कर्णकुण्डलनवाश्र स्थितास्तोरे वय यदा । तदा सन्निहितौ जातौ मध्याह्ने स्योमगौ मुनी ॥१६१॥
 त्वया भया च भिचार्यं तयोरागतयोस्ततः । अमृत्याय महाथाद् रचितं पूजनं महत् ॥१६२॥
 अत्र च परमं ताभ्यां दत्तं विधिसमन्वितम् । पञ्च चातिशया जातात्तत्प्रभावेन सुन्दराः ॥१६३॥
 पात्रदानमहोदानं महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽमरैश्चके साधु सम्यग्वनिधितः ॥१६४॥
 अदृष्टतनुमिदं वैदुन्दुभिः सप्यनिः कृतः । पपात गगनाद्वृष्टिं कीदृशीं शृङ्गनादितः ॥१६५॥
 सुवर्णीतो ववौ वायुः सुगन्धिर्नारजो मृदुः । मणिरत्नसुवर्णाङ्गा धाराभ्रममपूरयत् ॥१६६॥
 चूडामणिमिमं चोद्दं हृदप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नापायं तन्यात्वनन्तमयं प्रिय ॥१६७॥
 जातामि नाप ते भाव प्रसादिनमलं मयि । तथापि यत्नतः प्राणां पारुषां सङ्गमनाशया ॥१६८॥
 प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽयं भया सह । सात्प्रत त्वयि यत्नस्थे सङ्गमो नौ विस्मयः ॥१६९॥
 ह्युत्ते हृदतीं सीतां समाश्रास्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैस्सीताप्रदेशतः ॥१७०॥
 पाण्यङ्गुलीयकं सीता तदाशक्तारौरिका । मानसस्य हृताश्रास मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
 अयोधानगता नाप्यञ्जस्तसारङ्गलोचनाः । बाधुनन्दनमारोक्ष्य स्मितवस्मितसङ्गता ॥१७२॥
 परस्परं समाश्रयमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगरयोर्द्वौ कोऽन्यहो नरपुङ्गव ॥१७३॥
 अवतीर्णः किनेपः स्वाङ्गिप्रहो हनुमायुधः । देवः कोऽपि तु शीलस्य शोभा दृष्टुं समागतः ॥१७४॥

पूछे जाने पर आपने प्रसन्नमुख मुद्रासे सुशोभित हुए कहा था कि हे देवि ! ये नन्दि वृत्त हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निवृत्त आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने उठकर, भित्ताके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पञ्च आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवोंने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीप्त नहीं रहा था ऐसे देवोंने दुन्दुभि वाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पशृष्टि हुई ॥१६५॥ सुप्तकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इनके बाद दृढ़ विश्वासका कारण यह उत्तम चूडामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका मुझपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रमादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जब कि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कह कर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनुमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीवाने अङ्गुलिको हाथमें पकड़कर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियों थीं वे हनुमान्को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगीं कि अहो ! इस पृथ्वीके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि खजम् । उपवीणनमारेणे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥
 काचिदिन्दुमुखा वाम हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य त भग्वान्यधामना ॥१७६॥
 ईष काचिदभिज्ञाय वधूनिदमचिन्तयत् । अलम्बद्वारसन्मानं कुतो मोक्षतिरागत ॥१७७॥
 वरदाजनमुद्याने कृत्वा सम्भ्रान्तमानसम् । हारमाल्याम्बरधरो भास्वान् बह्विकुमारवत् ॥१७८॥
 निसर्गवात्तया गया प्रदेश किञ्चिदग्यगात् । तथाविधा व तां वार्त्तामशृणोद्ग्राहसाधिप ॥१७९॥
 क्रोधसस्पर्शचित्तेन निरपेक्षवमायुषा । तावदाज्ञापिता शूरा रावणेनोऽप्रकिङ्करा ॥१८०॥
 विचारेण न व कृत्य पुष्पोद्यानातिरेवि य । मद्रोहा कोऽप्यय चित्र नीयतामन्तमायुष ॥१८१॥
 भमा तत समागय दधुविस्मयमागता । किमिन्द्रजिज्ञैश्च स्याद्भास्कर अवणोऽथवा ॥१८२॥
 परयामस्तावदि युक्त्वा तैरियुक्त समन्तत । भो भो शृणुव मि शेया उद्यानस्याभिरक्षका ॥१८३॥
 किं तिष्ठत सुविश्रब्धा किङ्करा कृतिता ध्रिता । किमिति धृतमस्मामि कथ्यमानमिदं बहि ॥१८४॥
 कोऽप्युरामतयोद्यानं प्रविष्टो बृहत्सेव । स चित्र मार्यतामेप गृह्यतां दुर्विनातक ॥१८५॥
 धावध्वमसङ्गो कोऽसौ सोऽयमेव यत कुत । कस्य कस्तादृश इवेति किङ्करध्वनिरुद्गत ॥१८६॥
 तत कामुकिकान् रघू शक्तिकान् गदिकाश्च तान् । खड्गिकान् कौन्तिकान्, बहसङ्कातानायतो बहून् १८७
 किञ्चित् सम्भ्रान्तयोर्वीरतिर्भृगाधिपपराक्रम । रत्नरास्त्रासृगञ्छायासमुद्गाहितपुष्कर ॥१८८॥
 अवरोहस्ततो देशात्तैरदृश्यत किङ्करै । आकुलवचिनिर्मुक्तं प्रलम्ब विप्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियामें कामसे आकुल होकर कोई स्त्री शिर पर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बाँये हाथमें दर्पण रख उसमें हनुमान्का प्रतिबिम्ब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गई ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछ-कुछ पहिचान कर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सन्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? १७७॥ इस प्रकार धनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंकी सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोंकी धारण करनेवाला एव अनिकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावकी प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किङ्करोंको आज्ञा दी कि तुम लोगोंको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है । पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाय—मारा जाय ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किङ्कर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥१८२॥ अथवा कुछ भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कह कर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षक ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उद्दण्डतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनातको शीघ्र ही मारा जाय अथवा पकड़ा जाय ॥१८३-१८४॥ रावणके प्रधान किङ्करोंकी बात सुनकर उद्यानके रक्षक किङ्करोंने 'दीहो, कौन है वह, यहीं कहाँ होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ है ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८५॥ उन किङ्करोंमें कोई धनुष लिए हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले सभाले हुए थे, और कोई मुण्ड के मुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे । उन सबकी देह हनुमान्के मग्नमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिद्धके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८६-१८८॥ तदनन्तर आकुलता

ततस्तमुचदादित्यमण्डलप्रतिमस्त्रिपदम् । प्रदृष्टाधरमालोक्य विशीर्षाः किङ्करा गणाः ॥१६०॥
 ततः किलापरैः शूरैः प्रत्ययानैः किङ्कराविपैः । तन्किङ्करबलं गच्छदितश्चेनश्च धारितम् ॥१६१॥
 शक्तिनोमरचक्रान्निगदार्मुंस्पागयः । सर्वतो वासुगृहेतं सुधराः किङ्करास्ततः ॥१६२॥
 मुमुचुश्च घन शस्त्र उपेष्टवाना यथा बुभुधम् । अदृष्टमादृशरोक्षताः पर सहातवन्तिनः ॥१६३॥
 उत्पत्त्य वायुपुत्रोऽपि नि शम्भो धीरपुङ्गवः । संघात तुष्टवृत्तानां शिलानां वारमक्षिपत् ॥१६४॥
 भीमभीगिमहद्भोगमाश्वद्वुजजवेरितेः । पादपादिभिरादिसन् कालमेव ह्वोद्यतः ॥१६५॥
 अश्वत्थान् शालग्रामोपासन्दिचम्पकमेरान् । नीपाशोरुदम्भान् पुत्तागानर्जुनान् धवान् ॥१६६॥
 जात्रानात्रातनांशोभ्रा (सृगराजान्) स्वर्थापसैः । विशालान् पनसाघांश्च चिच्छेप क्षेपनन्तिनः ॥१६७॥
 यमञ्ज्जरितं कांक्षितपरानुत्तूलयन् । सुष्टिपादप्रहारेण विपेषाम्यान् महाबलः ॥१६८॥
 आकृदारमम तेन मैत्र्यमेकेन तन्मनम् । समानकूल गतं क्वापि चणेन प्रियजीवितम् ॥१६९॥
 महायैर्भृगुराजस्य कुर्वन्तो मृगशामनम् । कियज्जिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सर्वं सहोद्भवम् ॥१७०॥
 पुत्ताश्रेवर्तर्णस्य कैकुत्सलपरोधनम् । भूयो युद्धमभूदुग्रं प्रान्तविष्वस्तकिङ्करम् ॥१७१॥

मे रहित एवं लटकते हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनुमान् जय उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किङ्करोंने उसे देखा ॥१८६॥ उस समय क्रोधके कारण हनुमान्की कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ च्चवा रहा था । उमे देव किङ्करोंके मुण्ड भाग खड़े हुए ॥१८७॥ तदनन्तर जो किङ्करोंमें प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूमरे किङ्कर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किङ्करोंके दलको इकट्ठा किया ॥१८८॥ तदनन्तर जिनके हाथमें शक्ति, तोमर, चक्र, रत्न, गदा और धनुष ये देसे उन किङ्करोंने चिल्ला कर सब ओरमें हनुमान्को घेर लिया ॥१८९॥ वे किङ्कर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था । तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूमा उड़ानी है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९०॥ धीरशिरोमणि पथन-पुत्र हनुमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षां और शिलाओंके मगूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१९१॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित भुजाओंके वेगमे फेंके हुए दूल आदिसे प्रहार करता हुआ हनुमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१९२॥ हनुमान् बिना किसी बिलम्बके पीपल, सागीन, घट, नन्दी, चम्पक, शकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमों, लोभ्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षांकी उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९३-१९४॥ उस महाबलवानने कितने ही लोगांकी शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ टाला—पर पकड़कर पड़ा दिया और कितने ही किङ्करोंको लात तथा घुँसांके प्रहारसे पीस टाला ॥१९५॥ हम अनेकेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह ध्याकुल हो। सग भरमें प्राण बचाकर कहीं भाग गई ॥१९६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगांपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोंकी क्या आवश्यकता है ? और जो व्यामायिक तेजको छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोंसे क्या लाभ है—निर्णेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं ? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिघिसे नीचे उतरे हुए हनुमान्का दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

सभावापीदिमानानामुद्यानोत्तमसन्नमम् । चूर्णितानां तदावातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥
 पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेरमसु । महारथ्यापथा जाताः शुष्कसागरसन्निभाः ॥२०३॥
 भग्नोत्तुङ्गापणश्रेणिः पातितान्नेककिङ्करः । बभूव राजमार्गोऽपि महासमामभूतमः ॥२०४॥
 पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः कम्पितचक्रपङ्क्तिभिः । बभूवाम्यरमुत्पातादिव अरयत्सुरायुधम् ॥२०५॥
 जङ्घावेगा-समुद्यद्वा रजोभिर्वहुवर्णकैः । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानां च पुष्करैः ॥२०६॥
 पादावष्टम्भमिश्रेषु भूभागेषु निमज्जताम् । बभूव गृहशैलानां पातालैश्चैव निस्वनः ॥२०७॥
 दृष्ट्वा कञ्चित्करेणान्य कञ्चित्पादेन किङ्करम् । उरसा कञ्चिदसेन वातेनान्यं जघान सः ॥२०८॥
 आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां महत्प्रशः । पततामुत्करै रथ्या जाता पूरसमागता ॥२०९॥
 हाहाहीकारगम्भीरः पीराणामुद्यतो ध्वनिः । क्वचिच्च रत्नकूटानां भङ्गात्कणकध्वनः ॥२१०॥
 वेगेनोपनतस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजाः । कोपादिबोधयुः पश्चात्कृतघण्टादिभिः स्वनाः ॥२११॥
 उन्मूलितमहालानां वधसुः परमा गजाः । वायुमण्डलपर्णानामाश्वस्तुल्यत्वमागताः ॥२१२॥
 अथस्तात् स्फुरिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कवशेषताम् । चक्रारुढेव निःशेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥
 लङ्काकमलिनीलखण्डं ध्वस्ताराक्षसमौनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विद्योभ्य वहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किङ्कर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनूमान्के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, घापिका, विमान तथा बाग बगीचोंसे सुशोभित मकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गई थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची दुकानोंकी पंक्तियों तोड़ कर गिरा दी गई थीं, तथा अनेक किङ्कर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥ गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और कोंपती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे बरस ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जङ्घाओंके वेगसे उड़ती हुईं रङ्ग घिरङ्गी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किङ्करकी दृष्टिसे मार रहा था, किसीकी हाथसे पीस रहा था, किसीकी पैरसे पीट रहा था, किसीको वृक्षस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही साथ गिरनेवाले हजारों किङ्करोंके समूहसे वह लम्बा चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोंका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमयी शिरारोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनूमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंची चली जाती थीं जिसमें वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुईं कोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रहीं हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी रथमें सजाकर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गईं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥ जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको तोभितकर ज्योंही हनूमान्रूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥

तावत्तोयद्रवाहेन सम सनह्य वेगत । पश्चादिन्द्रजितो एतौ द्विपस्यन्दनमप्यग ॥२१५॥
 हनूमान्बाधदेतेन सम योद्धुः समुद्यत । प्राप्तं चागदितं तस्य बलं धन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
 बाह्याथा भुवि लङ्काया महाप्रतिभय रणम् । जातं हनूमत गे^१ लक्ष्मणस्यैव दापणम् ॥२१७॥
 युक्तं सुचतुरैरैव रथमारुह्य पात्रिण । समुद्भूय शर सैन्यं राजसत्तानामग्रायत ॥२१८॥
 अपेन्द्रचित्तवारेण पार्श्वमोहोरगैस्सित^२ । चिरमायोधितो नांतं पुरं क्रिञ्चिद्विचिन्तयन् ॥२१९॥
 ततो नगरलोकं विभ्रन्ध म निराचित । कुर्वन् भजनमार्थाद्यो विद्युद्वण्डवदीक्षित ॥२२०॥
 प्रवेशितस्य चास्थान्या तस्य दोषान् दशानन । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विद्धि पुरप्रेनिजै ॥२२१॥
 दृताहृत समायात किष्किन्ध स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वस्तं चक्रे तथ वश रिपो ॥२२२॥
 साधूरसर्गमपने द्वीपे दधिमुत्साह्ये । गन्धर्वकन्यकास्तिस्रः पद्मस्थाप्यनुमोदिता ॥२२३॥
 विध्वस्तं वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुत्सस्य च । कन्यामाभिलषन्नस्य बहिरस्थापयद् बलम् ॥२२४॥
 भग्नं पुष्पनगोद्यानं तत्पाल्य^३ विद्वलाकृता । बहवः क्रिडन्ता ध्वस्ता प्रपादि च विनाशितम् ॥२२५॥
 घन्तन्तन्निमुणेन पुनस्नेहाक्षिरन्तरम् । पयसा पोषिता स्त्रीभिर्वृक्षका ज्वलमाहता ॥२२६॥
 वृक्षैर्विवाजिता बह्वस्तरलायितपल्लवा । धरण्या पतित्वा मान्ति विषवा इव योषिता ॥२२७॥
 पल्लुपुष्पभरानन्ना विविधास्तरज्जातयः । इमंशानपात्रपञ्चाया एतेन ध्वसिता स्थिता ॥२२८॥

त्याही हाथियोने रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र हा उसके पाछे लग गया ॥२१५॥ हनूमान् जन तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघवाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लङ्का की बाह्यभूमिमें हनूमान् का विधाधराके साथ उस तरह महाभयह्वर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका परद्रुपणके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनूमान् चार घोडासे जुते रथ पर सवार हो बाण तीक्ष्ण राजसौकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥२१८॥

अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो वीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशासे पोंध लिया गया था ऐसा हनूमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले लोड फौड करता हुआ विद्युद्वण्डके समान देखा गया था वही हनूमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्णक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ राजपने अपने विश्व पुत्रोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध ध्वण किये ॥२२१॥ विश्व पुत्रपाने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया । वहाँसे लङ्का आते समय इसने राजा महेन्द्रक नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुत्सनामक द्वीपमें मुनिगुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजका तीन कन्याएँ रामको घरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वस्त किया तथा उसकी कन्या लकामुन्दरोकी शीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्त स्त्रियाका विह्वल किया, बहुनसे क्रिडर नष्ट किये और प्रपा-पानी पाने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूखी स्तनोंसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनने पल्लव चञ्चल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२२७॥ फल और फलोंसे भारसे भुर्फी हुई नाना वृक्षाकी जानियों इसके द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर दी गई हैं जिससे वे

॥ महोरगमन्त्रविधि । २. वद हिमन ख० । ३ तत्काल्या विद्वला कृता २० । ४ प्रपा पानीय शानिका तत्प्रभृति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावण कोपभागत* । अवन्ध्ययत्तमाहूय विनाग रोहश्चक्रे ॥२२१॥
 उपविष्टोऽर्कसङ्काशो दशास्य सिंहविष्टरे । पूजायोग्य पुरा वातिमाक्रोशदिति निर्दयम् ॥२२०॥
 उद्वृत्तोऽयमसौ पाप निरपेक्षपोन्मिक्त । अधुनैतस्य का छाया धिगेतेनेचितेन स्मि ॥२२१॥
 *यापाद्यते न किं दुष्ट कर्ता नानागमाग्रयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुत्तमम् ॥२२२॥
 ततस्त-मण्डलप्रान्तस्थिता प्रवरविभ्रमा । महाभाग्या विलासिन्यो नवयावनपूजिता ॥२२३॥
 कोपस्मितसमायुक्ता निमालितविलोचना । विनाय शिरसि कम्पमेवमचूचुरनाद्रात् ॥२२४॥
 प्रसादायस्य यतोऽयि प्रभुता चित्तिमण्डले । पृथिव्या विचरन् स्वेच्छ समस्तबलवज्रित ॥२२५॥
 एतत्तत्स्वामिन प्रातेर्भवता दशित फलम् । भूमिगोचरदूत व य प्राप्सोऽस्यनिनिन्दितम् ॥२२६॥
 सुकृत दशवरप्रस्थ बधमाधाय पृष्टत । वसुधाहिण्डनविलष्टो भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२२७॥
 पवनस्य सुतो न त्व जातोऽव्यय्येन वेत्तिन् । अष्टमकुलानस्य निवदयन् चेटितम् ॥२२८॥
 चिह्नानि विदजातस्य सन्ति नाहंषु कानिचिन् । अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नाचगोचर ॥२२९॥
 मत्ता केसरिगोश्रय्ये शृगालानाध्रयन्ति किम् । नहि नाच समाश्रित्य जायन्ति कुलजा नरा ॥२३०॥
 सर्वस्वेनापि य पुत्रो यद्यप्यसकृदागत । सुचिरादागतो द्रोही स्व निम्राद्यस्तु वर्तसे ॥२३१॥
 इमैर्निगदितै क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुति । को जानाति विना पुण्यैर्निम्राह को विधेरिति ॥२३२॥

श्मशानके वृत्तांके समान जान पड़ने लगी हैं ॥२२८॥ हनुमानके इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बँधधा दिया ॥२२९॥

तदनन्तर सिंहासनपर बैठा, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसकी पूजा करता था ऐसे हनुमानके प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार कठोर बचन बकने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्या नहीं मारा जाय ? अरे ! मेने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियों खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त ही नेत्र बन्द करती तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनुमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३४॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियाँकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३५॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे रोदको प्राप्त हुए राम लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनजत्रयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जाकरसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु अब वह तोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदनोन्मत्त सिंह सियाराकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर मा सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल पाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनासे हनुमानकी जोष आ गया जिससे वह हँस कर वाला कि कौन जानता है पुण्यके बिना विधाताका

स्वयं दुर्मतिना साहसमेनासन्नमृद्युना । हतो दिने कतिपर्यैर्द्रव्याम् क प्रयास्यथ ॥२४२॥
 सोमिन्नि सह पद्मेन बलोलुङ्ग समापतन् । न मेघ इव सराद्भु नगै शय्या मनेनृप ॥२४३॥
 अमृत परमादरै कामिकैरमृतोपमै । चाति कश्चिद्यथा नाशमेवेन विपश्चिन्नुना ॥२४४॥
 अमृत खासद्वेष्टोपैरिन्धनैरिव पावक । परस्त्रानृगया सोऽय विनाश क्षिप्रमेव्यनि ॥२४५॥
 या येन भाविता बुद्धि शुभाशुभगता ददम् । न सा शक्याऽन्यथाकृतं पुण्ड्रसमैरपि ॥२४६॥
 निरर्थक प्रियशतैर्दुर्मती दायते मति । नून विहितमस्यैतद्विहितेन हतो हत ॥२४७॥
 प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्नन्तोर्विन्श्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाक विचेष्टने ॥२४८॥
 मर्यादमार्गं यथा कश्चिन्सुगन्धि मधुर पय । प्रमादा विपश्चिन्मित्र पाशा ध्वस प्रपद्यते ॥२४९॥
 तथाविधो दृशास्य स्व परस्त्रामुनलोलुप । वचनेन विना क्षिप्र विनाश प्रतिपश्यते ॥२५०॥
 गुरुन् परिजन वृद्धान् मित्राणि प्रियबान्धवान् । मातादीनपकर्णं त्वं प्रवृत्त पापवस्तुनि ॥२५१॥
 कदाचारसमुद्रे त्व मद्भावावर्तमध्यग । प्राप्नो नरकपालाल कष्ट दुःखमवाप्स्यसि ॥२५२॥
 त्वया दृशास्य जालेन महारथशयो नृपाल । अव्योऽग्रमपुत्रेण रक्षया क्षयमाह्व ॥२५३॥
 अनुपालितमर्यादां चित्तो पूजितचेष्टिता । पुङ्गवा मच्चो परयात्रां तु रोषा पुलाङ्कवत् ॥२५४॥
 ह्युक्त क्रोधसरत्त खड्गमालोक्य रावण । जगाद् दुर्निनातोऽय सुदुर्वचननिर्भर ॥२५५॥
 त्यन्मृद्युमयो विभ्रमगलमव ममाग्रत । द्रष्टुं खलाम्बिता मध्ये नगरस्य दुराहित ॥२५६॥

निप्राह्य दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥ जिसको मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्वृद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिसप्रकार पर्यंत मेघको नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारासे तृप्त नहीं होने वाला कोई मनुष्य विपकी एक घूँटसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईधनासे अग्निके समान हजारों ब्रियोके समूहसे तृप्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी तृष्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२४७॥ दुर्वृद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ा प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है । जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी घृद्धि नष्ट हो जाती है । सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विपमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण । तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियवन्धु तथा माता आदिको अनमुना कर तू पापकर्मम प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचार रूपी समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुम अधम पुत्रने राक्षसाका वश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें झिलकेके समान नि सार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया । वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उद्दण्ड अत्यधिक दुर्वचनोंसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने वदपन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शाप ही दुर्दशा की जाय ॥२५६-२५७॥

सशब्देरायते स्थूलैर्बद्धो रज्जुमिरायते । ग्रीवाया हस्तपादे च रेणुरुक्षितविग्रह ॥२५८॥
 वेष्टित किङ्करी क्रूरैर्भ्राम्यता च गृहे गृहे । हास्यमान रुरैर्वायै वृत्तमण्डलपूरकृत ॥२५९॥
 इमक वनिता दृष्ट्वा नराश्च पुरवासिनः । शोचन्ति कृतधिकारा विकृता कम्पितानना ॥२६०॥
 क्षिनिगोचरदूतोऽयं सोऽयं दूतः प्रपूजितः । पश्यतैनमिति स्थानं पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥
 ततस्तैर्विविधाक्रोशैः सप्राप्तं कोपमुत्तमम् । जयासीद् बन्धनं क्षित्वा मोहपाशं यथा यति ॥२६२॥
 पादविन्यासमात्रेण भव वा गोपुरमुच्चतम् । द्वाराणि च तयान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
 शक्रप्रासादसङ्काशं भवनं रत्नसा विभो । हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसङ्कुलम् ॥२६४॥
 पतता वेशमना तेन यन्त्रितापि महानरी । धरणी कम्पमानांता पादवेगानुधातत ॥२६५॥
 भूमिसम्प्राप्तसौवर्णप्राकारं रश्मिगह्वरम् । वज्रचूणितशैलाभं जातं दाशमुखं गृहम् ॥२६६॥
 कपिमौलिभृतामीशं श्रुत्वाैवविधन्त्रिकमम् । प्रमोदं जानकीं प्राप्ता विपादं च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥
 वज्रोदरी ततोऽबोधत् किं वृथा देवि रोदिषि । सन्त्रोदथ शृङ्खलं परं यातं मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥
 निशम्य वचनं तस्या विकसद्येनपङ्कजा । गच्छन्तं मारुतिं दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
 अधिन्तपद्य वार्तां मया नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यत्सर्वं गच्छतं प्रवरो जव ॥२७०॥
 दृष्टतश्चास्य स्नानम्दा पुष्पाञ्जलिमुञ्जत । समाधानपरां भू वा शरिरवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
 उवाच च प्रह्लादः सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हतविघ्नश्चिरजीव भोगवान् वायुतन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लम्बी मोटी लोहेकी साकलोंसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बाँधा जाय, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाय, दुष्ट किकर इसे घेर कर कठोर बचनोंसे इसकी हँसी करे तथा घर घर घुमावे । इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख क्षियों तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह घोषणा की जाय कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनूमान बन्धनको छेड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेड़ कर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्ष पूर्वक आकाश में जा उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनूमानके पैरकी आघातसे इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खम्भे ही खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहाँकी पृथिवी बड़े बड़े पर्वतोंसे जकड़ी हुई थी तथापि चरणोंके वेगके अनुधातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चिह्न धारण करने वाले वानरवशियोंके राजा हनूमानको इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार बार विपादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि ! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, यह हनूमान बन्धन तोड़कर आकाशमें उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनूमानको जाता देख सीताके नयन कमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनूमान अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्ष पूर्वक हनूमानके पीछे उस प्रकार पुष्पाञ्जलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितृत्ता पूर्वन्मन्युदारा सरलमुन्नराधि व्याप्यकातिप्रधाना ।
 अभिसरपरिमुना कर्म सत्कर्तुर्माशा जनयति परम तद्विस्मय दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥
 भगवत् सुकृतसङ्ग तेन निसु च स र विरसफलविधाधि क्षुद्रकर्म प्रयत्नान् ।
 भवत परमसोऽस्यास्वादलोभप्रसक्तः परिनितरविभासो जन्तव कान्तलाला ॥२७४॥

इत्यापे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्प्रत्याभिगमन नाम त्रिपञ्चाशत्तम पर्व ॥५३॥

पुत्र ! समस्त ग्रह तैरे लिए सुखदायक हा तथा तू विघ्नोंको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गीतम रगामो कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्हाने पूर्वन्ममे उत्तम आचरण किया है, जो सदा रहै, तथा चिनको कार्तिका समूह समस्त ससारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आश्वादके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतने वाला एव मनोहर लीलाभाका धारक होता है ॥२७४॥

इम प्रफार आर्ष नामस प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनर्ग पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद कैकिन्ध हनूमान् बलमग्रतः । विधाय^१ पुरिविखस्तप्वज्जत्रादिचारुतम् ॥१॥

बहिर्निष्पान्तकैटकिन्धजनसागरवीक्षितः । विवेश नगर धीरो निसर्गोद्गारविभ्रमः ॥२॥

विचिताद्धान् महायोधान् दृष्टुं नगरयोपिताम् । गवाक्षापितवक्त्राणां सञ्चमं परमोऽभवत् ॥३॥

प्राप्य यं वाममात्मोय हितो भूत्वा पिता यया । वातिरावासयत्^२ सैन्यं यथायोग्यं सन्नतत ॥४॥

तत सुग्रीवराजेन संगम्य ज्ञापितक्रियः । जगाम पद्मनाभस्य पादमूलं निवेदितुम् ॥५॥

प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य सारुतिः । वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्धामुपगतम् ॥६॥

क्षीणमप्यभिगमाह्वं क्षीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नागं दात्रेनैवाकुलं कृतम् ॥७॥

वर्तमानं महाशोकप्राप्तं द्रष्टुं विष्टम् । पद्मं वातिरुपासयन् मूर्धन्यस्तकराम्बुदम् ॥८॥

प्रथमं वातिना हर्षधियमागोरुषक्षुपा । वक्त्रेण जानकीवार्तां शिष्टावाचां^३ सतोऽखिला ॥९॥

अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्योक्तं स सीतया । चूडामणिं मरेन्द्राय समर्प्यागन्तुं कृतार्थताम् ॥१०॥

चिन्तयेव हस्तपद्मायः निपण्णं श्रान्तवक्त्रे^४ । शोकमलान्तं द्वासीत्स वेणाबन्धमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओं और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गई थी ऐसी सेना आगे कर हनूमान् किटकिन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किटकिन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनूमान्ने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने झरोखोंमें मुद्रा लगा रखे थे, ऐसी नगर-निवासीनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनूमान्ने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनूमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपां अग्निसे उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनूमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम वो हनूमान्ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडामणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानो थककर ही बैठा हो और सीताकी चौटीमें बंधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानो शोकसे ही दुःखी होकर मलिन हो

पद्मस्याञ्जलिर्वातोऽग्नौ पतद्वाप्यो हृतप्रभः । दृशा दृष्टो नु पंतो नु वार्तां शृणुं सन्नमात् ॥१२॥
 आसीनमञ्जलावेनं दौर्जत्यविरलाद्गुलौ । गलन्किरणधारौघं शुशोच धरणीपतिः ॥१३॥
 पूरिताञ्जलिमग्न्यामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रदित्वैव मरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
 प्रियायास्तदभिज्ञानं यत्राप्यङ्गे नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिष्वङ्ग इवामवत् ॥१५॥
 सर्वव्यापी समुद्भिन्नो रोमाञ्चः कर्णयो घनः । अङ्गेष्वसम्भवस्तस्य प्रमोद इव निर्भरः ॥१६॥
 अपृच्छच्च परिष्वग्य भारति कृतसम्भ्रमः । अपि सत्यं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥
 जगाद् प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया धार्त्ता समानीता सुखी भव इलापते ॥१८॥
 किन्तु त्वद्विरहोदारदावमप्यविवर्तिना । गुणौघनिम्नगा बाला नेत्राश्रुकृतदुर्दिना ॥१९॥
 वेगोघश्च्युतिश्चायं मूर्द्धजारयन्तनुःखिता । मुहुर्निश्चसती दीन चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
 तनूदरो रचभावेन विरोपेण त्रियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः क्रुद्धाभी रक्षसां विभोः ॥२१॥
 सततं चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तमवर्तनुस्थितिः । दुःखं जीवति ते कान्ता कुरु देव यद्योचितम् ॥२२॥
 मामारणिश्च, ध्रुवः ग्लानपद्मेणग्निरम् । चिन्तयाकुलितं पद्मो बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥
 दीर्घमुणं च निरवस्य लस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवितं स्वस्य जन्म चानेकधा भृशम् ॥२४॥

गया हो ॥११॥ यह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अञ्जलिमें पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो । रामने उसे यही उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या प्रिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियों धिरल हो गई थीं ऐसी अञ्जलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओंका समूह भर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अञ्जलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिकी रामने भस्तक पर धारण किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानों उस चूडामणिने स्वयं रोकर ही जलकी अञ्जलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानकी रामने अपने जिस अङ्गपर धारण किया उसीने मानों सीताका आलिङ्गन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें जिसकी संभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमाञ्च निःकल आया मानो हर्षका निर्भर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने बड़े संभ्रमके साथ हनूमान्का आलिङ्गन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलाङ्गी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने मर्त्रीभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है । मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुखी हों ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरह-रूपी दायानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेगोघघनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, धार-धार दीनतापूर्वक साँसे भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह कुरोदरी तो स्वभावसे ही भी परम आपके वियोगसे और भी अधिक कुरोदरी जान पड़ती है । शयनकी प्राँधभरी स्त्रियाँ उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती हैं । इस तरह हे देव ! आपको प्रियवत्सभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनूमान्के उक्त वचन सुन कर रामके नेत्ररुमल ग्लान हो गये । वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो उठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरकी धारण करनेवाले राम लम्बी तथा गरम साँत

१. जातोऽग्नी म० । २. श्रयानुसम्भ्रमात् म० । ३. रदित्वा च० म० । ४. हे महीपते ! ।

५. च्युत्छाद्य ग० ।

ततस्तद्विद्वित ज्ञा वा सौमित्रिदिदमब्रवीत् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयता मन ॥२५॥
 लपयते दार्घ्यसूत्रं व किष्किन्धनगरप्रभो । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥
 'दशास्य कस्य नगरी श्वो गन्तास्मि विसंशयम् । नोभिरणवमुत्तोर्यं पादुभ्यामेव वा नुतम् ॥२७॥
 अधोचे सिहनादाराणे मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैव भाषिष्ठा कोविदो भवान् ॥२८॥
 भवतो या गतिं सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
 गवा पवनपुत्रेण सप्ताकाराहिं गोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोचानोपवनान्विता ॥३०॥
 अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । सहातमृ युरस्माकं सम्प्राप्तोऽयं विधेर्वशात् ॥३१॥
 उचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमुज्जितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तं सन्प्राप्तं मृगवत्परम् ॥३२॥
 विभेति वसवपन्नाहं को वासी किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरप्रत ॥३३॥
 अस्माकं यद्वह सन्ति सखेष्टेन्द्रा महारथा । विद्याविभवसम्पन्ना कृताश्चर्या सहस्रशः ॥३४॥
 रपातो घनगतिर्स्ताम्रो भूतनादो गजस्वन । क्रूर केली किलो भीम कुण्डो गोरतिरद्भुतः ॥३५॥
 नलो नालो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽशनिर्णव । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राहो वज्रदट्टो दिवाकरः ॥३६॥
 उल्कालाङ्गलुदिभ्याम्यहोहोऽस्मिन्तपोरप । हनूमान् सुमहाविद्य प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
 महेन्द्रकेतुः पुत्रसमारणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिरद्वयुक्त सुतास्तस्य महाबला ॥३८॥

भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनूमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! शोक क्या करते हो ? कर्तव्यमे मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैर कर कल ही नि सन्देह नीच रावणकी नगरी लङ्काको चलेंगे ॥२७॥

तदनन्तर सिहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानिके समान मत कहो । आप विद्वान् पुरुष हैं ॥२८॥ आपकी जो दशा लकामे हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुल निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवन पुत्र हनूमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरोंसे सहित एक बाग बगीचोंसे सुशोभित लकापुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर देव वरा हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओत्सर्गपूर्वक वचन कहे कि क्या तुम सिहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा यह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेग शाला हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं घनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अद्भुत, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदट्ट, दिवाकर, उल्का और लाङ्गल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहमे निर्वाध पौरुषको धारण करनेवाला हनूमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीव्र पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक

किङ्किण्यस्वामिनोऽन्येऽपि सामन्ता परमौजसः । विचन्तेऽर्चैतकम्माणो निर्मृया शासनैरपि ॥३१॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सेचराश्रमुरानतम् । लक्ष्मीधराग्रजं तेन निदधुर्विनयान्वितम् ॥३२॥
 अथेचात्रिरे तस्य वदनेऽयत्तसौम्यके । भृकुटीनाम्क भीमं धृयोरिव लतागृहम् ॥३३॥
 लङ्काया तेन विन्यस्ता दृष्टि शोणस्फुरविषम् । केतुरेवामिवोपाताम् राक्षसचयशसिनाम् ॥३४॥
 तमेव च पुनर्यस्ता चिरमध्यस्थता गते । दृष्ट्याग्निं निजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ॥३५॥
 कोपकम्परलथ चास्य केशभार स्फुरत्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरादुषु तमसा जगत् ॥३६॥
 तथाविधं च तद्वक्त्रं ज्योतिर्वलयमध्यगम् । ज्वरठाभवदुपातप्रभामास्करसक्षिभम् ॥३७॥
 गृहीतगमनपथेऽक्षसा नाशनायतम् । दृष्ट्वा वे गमने सम्भा ज्ञाता सम्प्राप्तमानसा ॥३८॥
 राक्षसाकृतनुशास्ते सम्पृथगेन्दुधुतेगिराम् । खलिता ज्योमगास्त्रिग्रहेतय सम्पदान्विता ॥३९॥
 प्रयाणतूर्यसङ्घात नादपूरितगङ्गात्मम् । द्वापयिवा रणौ सुखी प्रस्थितौ रघुनन्दनी ॥४०॥
 बहुले मार्गशोपस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोमाहं शकुनैरेभिस्तेषां ज्ञेयं प्रयाणकम् ॥४१॥
 दक्षिणावर्त्तनिर्भूमशला रम्यस्वन शिखा । परमालङ्कृता नारा सुरभिप्रेरकोऽनिल ॥४२॥
 निर्गन्धमयतरङ्गप्र गम्भीरं बाहिपितम् । घणानिस्त्रनित कान्त कलशो दग्निपूरित ॥४३॥

महापराजमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भकर बीचमें नहीं छोड़ते, आक्राकारी हैं और आदेशको प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधराने अपने भीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्परचात् जिसका सौम्यभान अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयङ्कर भृकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह निकुञ्जके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लङ्काकी ओर जो लाल लाल दृष्टि लगाये हुए हैं, वह राक्षसाका क्षय सूचित करनेके लिए उत्रित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस मुन्द धनुष पर लगा रक्खी है जो चिरफालसे मध्यस्थताकी प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है ॥४३॥ उनका केशोंके समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिरर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका रजाना ही तुल गय था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था माने प्रलय फालका वेदाप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी उतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधराके मन लुभित बड़े तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओंसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सुन कर आकाशमार्गसे चल पड़े । उस समय वे सब विद्याधर नानाप्रकारके शस्त्र धारण किए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाआसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मीने द्वारा गुफाओंकी पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक वाजे घञ्जवट कर प्रस्थान किए ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रत्येक कालमें होनेवाले निम्नाङ्कित शुभ राहुनासे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय नि देखा कि 'निर्भूम अग्निनी ज्वाला दक्षिणावर्त्तसे प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूर और शवद कर रहा है, उत्तमोत्तम अलमारोंसे युक्त रत्नी सामने खड़ी है, मुगन्धिकी फौजों वायु वह रही है ॥५०॥ निर्गन्ध मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है ॥५१॥

१ कृतकम्माणो ज०, क० । २ चतुरानल ज० । ३ दृष्ट्वा म० । ४ बड्डी । ५ गमने ज० । ६ सोमाहं च दग्निपूरित म० ।

उत्किरिततरां दष्टो धामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्यघो निर्मुक्तमधुरस्वरः ॥५२॥
 भेरीशङ्खरवः सिद्धिर्जय बन्द ब्रज द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषां मङ्गलमुद्ययुः ॥५३॥
 चतुर्दिग्भ्यः समाघातैः पूर्वमाणो नभश्चरैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युक्तः सितपद्मविधूपमः ॥५४॥
 नानायानविमानास्ते नानावाहनकेतनाः । व्रजन्तो ध्योग्नि वेगेन बभुः खेचरपुङ्गवाः ॥५५॥
 किष्किन्वाधिपतिर्वतिः शल्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुपेणश्च कुमुदावास्तथाः नृपाः ॥५६॥
 एते ध्वजोपरिन्यस्तमहाभासुरवानराः । असमाना इवाकाशं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥
 रेजे विराधितस्यापि हारो निर्भरभासुरः । जाम्बवस्य महापृष्ठो व्याघ्रो सिंहवस्य च ॥५८॥
 वारणो मेघकान्तस्य शोषाणामन्वयागताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता भावारुद्रेषु चोज्ज्वलाः ॥५९॥
 तेषां यभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्तरः । लोकपालोपमस्तस्य स्थितः पञ्चान्मरुततः ॥६०॥
 वृताः सामन्तचक्रेण यथास्वं परमौजसः । लङ्कां प्रति व्रजन्तस्ते रेजुः सञ्ज्ञातसम्मदाः ॥६१॥
 सुकेशतनयाः पूर्वं लङ्कां मात्यादयो यथा । विमानशिखारूढारचेलुः पद्मादयो नृपाः ॥६२॥
 पादवन्धः पद्मानभस्य विराधितनभश्चरः । पृष्ठतो जाम्बवस्तस्यौ सचिवैरन्वितौ मित्रैः ॥६३॥
 धामे भुजे सुपेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च सम्प्राप्ता वेलन्धरमर्दीपरम् ॥६४॥
 वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परमं युद्धमातिथ्यं समुपानयन् ॥६५॥

हिनहिनाहट फ़ैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ बायीं ओर नवीन गोबरको बार-बार बिखेरता तथा पङ्क्तोंको फैलाता हुआ काफ़ मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ भेरी और शङ्खका शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो । इत्यादि मङ्गल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मङ्गलरूप शुभशकुनोंसे उन सबका ऊत्साह वृद्धिगत हो रहा था । चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोंसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसीलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनों पर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध-नगरके राजा सुग्रीव, हनूमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुपेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान वानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको असनेके लिए हो उद्यत हुए हैं ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निर्भरके समान हार, जाम्बवके ध्वजामें महापृष्ठ, सिंहवकी जामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे आये अनेक चिह्न सुशोभित थे । ये सभी उज्ज्वल छात्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनूमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लङ्काते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदि ने लङ्का और प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ़ लङ्काकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी बगलमें स्थित था और अपने हाथोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ बायें हाथकी ओर सुपेण और दाहिने ओर सुग्रीव स्थित था । इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेलन्धर नगर पर पहुँचे ॥६४॥ वेलन्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था

ततो गलेन सस्पृष्टं जिवा निहतसैनिक । बद्धो बाहुबलाब्धेन समुद्र खेचर पर ॥६६॥
 सम्पूज्य च पुनर्मुक्तं पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽस्थिताश्चैते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
 सत्यश्री कमला चैव गुणमाला तथापरा । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिता ॥६८॥
 कल्पिता पुरोभोग्या योषिद्विगुणविभूषिता । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरस्त्रीसमविभ्रमा ॥६९॥
 तत्रैका रचनीं स्थित्वा सुवेलमचल गता । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचर ॥७०॥
 जिवा तमपि सहस्रामे हेलामात्रेण खेचरा । चिक्रीदुर्मुदितस्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
 तत्राचयवने रम्ये सुलेनाक्षेपितक्षपा । अन्येषुरुद्यता गन्तु लङ्का तेन सुविभ्रमा ॥७२॥
 तुह्यभ्राकारयुक्ता सा हेमसप्तसमाकुलाम् । कैलासशिखराकारं पुण्डरीकैविराजिताम् ॥७३॥
 विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्ता प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥
 पेशालवैरलतुङ्गैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषिता पवित्रा च महेन्द्रनगरीसमा ॥७५॥
 लङ्का ह्युत्तमासत्ता सर्वे खेचरतुङ्गवा । हस्तद्वापकृतावसा बभूवु परमोदया ॥७६॥
 युद्धे हसरथ तत्र विजित्य मुमहावलम् । रम्ये हसपुरे क्रीडा चक्रुरिच्छानुमाग्निनीम् ॥७७॥
 सुहृ प्रेषितदूतोऽयमेष रथो वा विशसयम् । भामण्डल समापातीयेवमाकाक्षयास्थिता ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

य य देश विहितसुकृता प्राणमात्र भ्रयन्ते तस्मिन्स्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्ग भजन्ते ।
 नद्योतेरा परजनमत किञ्चिदपानुष्ठानाम् सर्वं तेषा भवति मनसि स्थापित हस्तसक्तम् ॥७९॥

सो उसने परम युद्धके द्वारा नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने
 स्पर्धाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बाँध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी
 होनेपर उसे सन्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया । राम आदि सन्त
 लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और
 रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा
 देवाङ्गनाओंके समान जान पड़ती थीं । हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए
 समर्पित कीं ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये ।
 वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास
 जीतकर विद्याधरोंने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीडा की जिस प्रकार कि देव मन्दन वनमें रहते
 हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुशलता पूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम
 शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लङ्का जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके
 समान सफेद कमलोंसे सुरोमित थी, नाना प्रकारके फलों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल
 वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाआसे अलंकृत थी, नाना रङ्गोंसे उज्ज्वल ऊँचे ऊँचे जिम
 मन्दिरोंसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लङ्काको
 निरुद्वर्तिनी देव परम वैभवके धारक विद्याधर हस्तदीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हसपुर
 नामा नगरमें महाबलवान् राजा हसरथकी जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीडा की ॥७७॥ जिसके
 पास धार-नार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार
 प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गीतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे
 शत्रुओंको जातकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं । उद्यमशील पुण्यात्मा जीवाके लिए कोई भी

तस्माद् भोग भुवनविकट भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जितवरमुखादुद्रातः सर्वसारः ।
 आस्तां तावत्स्यैपरिचिन्तो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम् । धर्माद्स्माद्भवति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥

वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७६॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उद्भूत सर्वश्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगीका नरवर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लंकाके लिए प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थित ज्ञात्वा प्रतिसैन्ययत्नं पुरु । युगान्ताम्भोधिवेलेव लङ्का क्षोभमुपागतम् ॥१॥
सम्भ्रातमानस किञ्चित्कोपमाप दशानन । चक्रे रणकथा लोको वृद्धवधस्यवन्धित ॥२॥
महार्णवत्वा मेघस्ताडिता सुभयावहा । त्वंशङ्कररत्नस्तुक्तो वज्राम गगनाद्गणे ॥३॥
रणभेराग्निनादेन पर प्रमुदिता मया । सन्नद्धा रावण तेन प्राप्ता स्वामिहितैषिणि ॥४॥
भार्याबोऽमलचन्द्रश्च भास्कर स्वन्दनो विभु । तथा हस्तप्रहस्ताद्या सन्नद्धा स्वामिनि श्रिता ॥५॥
अथ लङ्केश्वर वीर सङ्ग्रामाय समुद्यतम् । विभीषणोऽभ्युपागतस्य प्रणम्य रचिताञ्जलि ॥६॥
शास्त्रानुगतमैयुद्धं शिक्षानामतिसम्मतम् । आयत्या च तद्वाचे च हित स्वस्य जनस्य च ॥७॥
शिष्य सीमान्तो वाग्य पदवाक्यविशारद । प्रमाणकोविदो धीर प्रशान्तमिदमववात् ॥८॥
विस्तीर्णां प्रवरा सप्तमहेंद्रस्येव ते प्रभो । स्थिता च रोदसा व्याप्य कीर्तिं कुन्ददलामला ॥९॥
कीर्तेतो क्षणमात्रेण तेय मागा परिचयम् । स्वामिन् सन्ध्याभररेखेव प्रसाद परमेश्वर ॥१०॥
चित्र समर्प्यता सीता तव किं कार्यमेतया । इरयते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्ट केवलो गुण ॥११॥
सुखोदधी निमग्नस्य स्वस्थस्तिष्ठ विषण्ण । अन्वद्यो महाभोगस्तवात्माय समन्ततः ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुकी बडी मारी सेनाको निकटमे स्थित जानकर लका, प्रलयकालीन समुद्रकी चेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त सभ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ शोधको प्राप्त हुआ और मुण्डोंके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करने वाली भेरिया घजाई गई तथा तुरही और शङ्खोंका विशाल शब्द आकाशरूपी अङ्गणमें घूमने लगा ॥३॥ उस रणभेरीके शब्दसे परम प्रभोदकी प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समाप आने लगे ॥४॥ मारीच, अमलचन्द्र, भास्कर, स्पन्दन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कथच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लकाके अधिपति चार राजणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणामकर शास्त्रानुसूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्याके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एव शान्तिपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहने लगा । विभीषण, सीन्यमुखका धारी, पदवाक्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमे निपुण एव अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी सपदा इन्द्रकी सपदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुदकलोक समान निर्मल कीर्ति आकाश एव पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥९॥ हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति सध्याकालीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमे नष्ट न हो जाय अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिए शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाय । इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेम दोष नहीं दिखायी देता किन्तु गुण ही स्पष्ट दिखायी देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुग्य रूपी सागरमें निमग्न हो सुखसे बैठो । तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओरसे निर्दोष

समाने जानकी तस्मिन् पद्मनाभे नियुज्यताम् । निजः प्रकृतिसम्बन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥
 श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वाव्य जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाढ्यमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥
 साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैव भापसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥१५॥
 अत्यन्त यद्यधीरस्त्व भीरुश्च कर्त्तव्यमानसः । स्वबैरमविवरे स्वस्यस्तिष्ठ किं तव भापितैः ॥१६॥
 'यदर्थं मत्तमात्तद्गमहाह्वन्द्वभनकारिणि । पतद्विषयशखौषे सद्ग्रामेऽप्यन्तभीषणे ॥१७॥
 हत्वा शत्रून् समुद्रदुत्तात्तीक्ष्णया खड्गवायया । सुखेनोपाज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्रद् वीरसुन्दरी ॥१८॥
 सुदुर्लभामिदं प्राप्य तत्क्षौरत्नमनुत्तनम् । मूढवन्मुच्यते कस्मात् स्वया व्यर्थमुदाहृतम् ॥१९॥
 ततो विभीषणोऽनोचदिति निर्भेत्संनोद्यतः । पुत्रनामासि शत्रुस्त्वमस्य दुःस्थितचेतसः ॥२०॥
 महाशीतपरीतसखमजानन् हितमात्मनः । अन्यचिन्ताशुरोद्येन हिमवारिणि मज्जसि ॥२१॥
 उद्धतं भवने बद्धि शुकैः पूरयसीम्धनैः । अहो मोहग्रहातंभ्य विपरीतं तवेहितम् ॥२२॥
 जाम्बूनदमयो यावत्सप्राकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तापिर्णलैर्ह्वा न परित्यज्यते ॥२३॥
 तावन्मृगसुतां साध्वीं पद्माव स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमर्पयितुं द्रुतम् ॥२४॥
 मैत्रा सीता समानोत्ता विद्या तव कुबुद्धिना । रघौभोगिचिलं लङ्कामेपानीता विप्रीपथिः ॥२५॥
 सुमित्रानन्दन क्रुद्धं तं लक्ष्मोधरश्छवम् । सिंहं रणमुखे शक्ता न यूयं व्यूहितुं गजाः ॥२६॥

हैं ॥१२॥ श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सम्मानकर सीता उन्हें सौंप दी जाय क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही अत्यन्त मानपूर्ण तथा आगमके विरुद्ध निम्नाङ्कित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपोक या नपुंसक जैसे दीनहृदयके धारक हो तो अपने घरके बिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मदीनमत्त हाथियोंके झुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शखोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त मयदायक संग्राममें तलवारकी पैनी धारासे उद्गुण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीको उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर भूल्ले पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाय ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७-१६॥

तदनन्तर डॉट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीत की बाधासे युक्त हो दूसरेकी इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है गोसा लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको रुखे इन्धनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनसे युक्त सुवर्णमयी लङ्का जबतक लक्ष्मणके बाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री-सीताका सौंप देना सब लोगोंके कल्याणके लिए उचित है ॥२३-२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए बिलस्वरूप इस लङ्का नगरीमें विपकी औपधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिंहके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे

अर्णवाद् धनुर् यस्य यस्यादित्यमुखा शरा । पक्षे भामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनै ॥२७॥
 ये तस्य प्रणतास्तुङ्गा रवेरागा महाधिषा । महेन्द्रा मलयास्तारा धीपर्वततनूरहा ॥२८॥
 किङ्किन्वास्त्रिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरा लका । कैलीकिन्वा सतिलका सन्ध्याद्वा हैहयास्तथा ॥२९॥
 प्राग्भारदधिवज्राश्च तथान्ये सुमहाबला । विद्याविभवसम्पन्नास्ते तु विद्याधरा न किम् ॥३०॥
 एव प्रवदमान स श्लोघमेरितमानस । उत्थाय रावण रज्जुमुद्रतो हन्तुमुद्यतः ॥३१॥
 तेनापि कोपवरयेन दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलित प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥
 युद्धार्थमुद्रतायेतो आतराबुप्रतेजसौ । सचिवैर्वीरितौ कृच्छ्राद्रतो स्व स्व निवेशनम् ॥३३॥
 कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुखैरेतौ प्रस्थापितस्ततः । जगाद् रावणो विभ्रन्मानस पौरुषाशयम् ॥३४॥
 आधराशः इव स्वस्य स्थानस्याहिततपर । दुरात्मा मण्डूरीतोऽथ परिजि कामतु द्रुतम् ॥३५॥
 अनर्थोद्यतचित्तेन स्थितेन किमिहामुना । स्वाङ्गेनापि न मे कृत्य प्रसिद्धप्रवृत्तिना ॥३६॥
 तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेत न नयाम्यहम् । ततो रावण द्वाहम् न भवामि विमशयम् ॥३७॥
 श्रीरत्नधवल पुत्र सोऽप्यह न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्वयी मानी लङ्कातोऽथ विभीषण ॥३८॥
 साम्राभिश्चोऽश्वाभिः ३ शिराजि परिवारित । अक्षीहिणीभिरध्वजै गन्तु पद्मस्य सधयम् ॥३९॥
 विशुद्धनेमवज्रेन्द्रप्रचण्डचपलाभिषा । उद्धातारनिसङ्घाता कालाद्याश्च महाबला ॥४०॥
 घूरा परमसामन्ता विभीषणसमाश्रया । सान्त पुरा सप्तर्वशा नानाशस्त्रविराजिता ॥४१॥

घेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमें है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, धीपर्वत, किङ्किन्वा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, कैलीफिल, गगनतिलक, संध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुर आदिके बड़े बड़े अभिमानों राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहे हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर श्लोघसे भरा रावण तलवार उभार कर खड़ा हो गया ॥३१॥ और इधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त किया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी श्लोघके बशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा स्तम्भा उठाव लिया ॥३२॥ मुझके लिए उद्यत, उम तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोका । तदनन्तर रोके जाने पर वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३३॥

तत्परचात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-भुरग आप्त जनोंने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठार चित्तको धारण करता हुआ थोड़ा कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४-३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? भुके तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अङ्गसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण हो नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अयानन्तर 'क्या मैं भी रत्नध्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानी विभीषण लङ्कासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्दर शस्त्रोंको धारण करनेवाली बृद्ध अधिक तीस अक्षीहिणी सेनाआसे परिपुष्ट हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विशुद्धन, इभवन्न, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमें रहनेवाले थे वे वयमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्त पुर और सारभूत श्रेष्ठ घन लेकर नाना शस्त्रोंसे सुशो-

वज्रन्तो बाहूनैश्चिग्रैश्चादित्वा नभस्तलम् । परिच्छदसमायुक्ताः हंसद्वीपं समागतः ॥४२॥
 द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोज्ञे ततस्तटे । ते सरिच्चुम्बिते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥
 विभीषणागमे जाते जातो वानरिणां महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाक्म्पः समन्ततः ॥४४॥
 समुद्रावर्तभृत्सूर्यहास लक्ष्मीभृदैर्घृत । वज्रावर्तं धनुः पद्मः परामृशदुदादरः ॥४५॥
 अमन्त्रयन्त सम्भूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहदैममिव प्रस्त धृन्दबन्धमगाद् बलम् ॥४६॥
 युवा विभीषणेनाथ दण्डपाणिविचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाशं मधुराक्षरः ॥४७॥
 समायामुपविष्टोऽसी कृतप्रणतिराहृतः । निजगादानुपूर्वेण विरोधं भ्रातृसम्भवम् ॥४८॥
 इति चावेद्यन्नाथ तव पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येव धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥
 भद्रम् शरणं भक्तः प्राप्तोऽहं श्रितवत्सल । आज्ञादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥
 प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतीहारेण भाषिते । सन्मन्त्रो मन्त्रिभिः सार्द्धं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥
 मत्तिकाण्ठोऽग्रवोरपद्मं कदाचित्पुद्गलमनैपक* । प्रेषितः स्याद्दृशास्येन विचित्रं हि नृपेहितम् ॥५२॥
 परस्परभिधाताद्वा कलुषवमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५३॥
 ततो मत्तिसमुद्रेण जगदे मतिशालिना । विरोधो हि तयोर्जातः श्रूयते जनवरजतः ॥५४॥
 धर्मपक्षो महानीति शास्त्राश्चुल्लिताशयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥
 सौन्दर्यकारणं नात्र कर्महेतु* पृथक् पृथक् । सततं तत्प्रभावेण स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

भित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके बाहूनांसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियांसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तट पर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दरिद्रोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषणका आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ घबड़ाये हुए मन्त्री एकत्रित हो इच्छानुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर प्राधियोंकी सेना झुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो झुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ घुलाये जानेपर वह सभामें गया और प्रणाम कर बैठ गया । तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ मत्तिकाण्ठ मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने छलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताको प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद (पक्षमें स्वच्छता) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली मत्तिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोंके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय घुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह-उपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही

प्रहृतेऽस्मिन् स्वमायायान् श्रुती कुट्टन नैषिक^१ । गिरिगोभूतिनामानावमूनी वटुकीं हि ॥१३॥
 तस्मिन् सूर्यदेवस्य राज्ञा नाज्ञा मतिप्रिया । अद्वाद् मतकं ताम्रवामिद् मुहुरन्वान्द्रया ॥१४॥
^२भोदनच्छादिते हेमपूर्णं यष्टुकपालिक । गिरि सुवर्णमालोक्य लामादितरगणिगा ॥१५॥
 अन्यथा खलु कौशान्या यणिगुनाम्ना वृद्धघन । तद्वार्था कुट्टन्निद्राण्या तस्य पुत्रो यभूवतु ॥१६॥
 अहिदेवमहादेवी तौ मृते जनके गर्तौ । मुषनी यानपात्रेण त्रिमवच्छेदभास्की ॥१७॥
 सर्वमाण्डेन तौ रत्नमेकमानयता परम् । घस्य तन्नायन हस्ते स त्रिधासनि होतरम् ॥१८॥
 परस्परं च दुश्चिन्ता तौ विप्रेच सम गर्ता । मात्रे चानाय तद्व्य विरागाम्या समप्रितम् ॥१९॥
 माता त्रिप्रेग तौ हन्तुर्मच्छदयोऽमिता पुन । कौलिण्या तैर्विरक्तैस्त्वद्व्य विस क्रतोऽगिलत् ॥२०॥
 आनायिकृशीतोऽपी विक्रातस्तद्वृष्टे पुन । तत्तरतया स्वमा मल्यं द्वि-दाना रसमेवत ॥२१॥
 मातरं भ्रातरौ चैषा विध्यान्कुतुं ततोऽप्यन् । लोभमाह्वमावेग स्नेहाद्य शममागत ॥२२॥
 प्राण्णा निरर्षस्य तद्वल जातार्तना परस्परम् । ससारभावनिविण्णा समन्तास्ते प्रथमतः ॥२३॥
 तस्माद्द्वय्यादिलामेन भ्रात्रादीनामपि स्फुरम् । मसारे नायते वैर यानवन्तो न कारणम् ॥२४॥
 द्रव्यते घैरमेतस्मिन् नैवयोगापुन शम । गोमूनि सोदरो लोभाद्रितिया हत एव स ॥२५॥
 तस्मात्प्रेषितदूतोऽय महाबुद्धिर्विर्भाषण । आनायता न योनायदृष्टा ताऽत्र परिरुक्ता ॥२६॥

कारण है । कर्मके प्रभावसे ही ससारमे यह विचित्रता स्थित है ॥२६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—नैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥२७॥ उमा ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक जलके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्नान करवा कर तथा ऊपरसे भात ढककर दान दिया । उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देखा लिया कि इन कपालोंमें स्नान है तब उसने स्नानके लोभ से दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्नान स्वयं ले लिया ॥२८-२९॥ दूसरी कथा यह है कि कौशान्यी नामा नगरीमें एक वृद्धघन नामका यणिक रहता था । कुट्टिन्ना उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और महोदेव नामके दो पुत्र हुए थे । जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये । 'सुनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे । यहाँ सब वर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये । वह रत्न दोनों भाइयोंमें से जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेका इच्छा करने लगता था ॥३०-३१॥ दोनों भाई अपने छोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥३२॥ माताने भी विप देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चलकर वह ज्ञानकी प्राप्ति हो गई । तदनन्तर माता और दोनों पुत्राने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥३३॥ उस मच्छकको एक घोरर पकड़ लाया जो इन्हीं दोनोंके घर बेचा गया । तदनन्तर इनकी बहिनने मच्छकको काटते समय वह रत्न देखा ॥३४॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विप देकर मारनेका इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवशा पीछे शान्त होगई ॥३५॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद ससारका दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥३६॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदिके लोभमे नाई आदिके बीच भी ससारमे वैर होता है इसमें यानि सम्मन्य कारण नहीं है ॥३७॥ इस कथामे वैर दिखाई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुन शान्त हाता गया है और पूर्व कथामे गिरिने अपने सुने भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥३८॥ इसलिए दूत भेजनेवाले इस महाबुद्धिमान् त्रिभी

ततो दग्धिनमाहूय अगुरेत्यति तेन च । शचा निवेदिते प्राप्नो पद्म रत्नश्रव सुत ॥७१॥
 ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभु त्वमिह जन्मसि । परत्र जितवापश्च ममाय निश्चय प्रभो ॥७२॥
 समये हि कृते तेन श्रोचे रामो विसृजयम् । योजयामि त्वक लङ्का भव सन्देहवजित ॥७३॥
 विभाषणसमायोगे वर्तते यावदुत्सव । तावत्सिद्धमहाविष प्राप्त पुष्पवतीसुत ॥७४॥
 प्रभामण्डलमायात विजयार्द्धवगाधिपम् । पद्मादय पर दृष्ट्वा समानर्तुं प्रभाविणम् ॥७५॥
 निर्वाहं दिवसानष्टौ नगरे हसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्काभिमुखमवजन् ॥७६॥
 स्वप्नर्नैविधिधैर्यानि स्थूरापृष्ठैर्मरुजवै । प्रातृपेण्यधवच्छायैरनेकपदम्बकै ॥७७॥
 अनुरागोत्कटभूयै वीरै सन्नाहभूषणै । वयु खेचरसामन्ता समन्ताच्छुक्लपुष्करा ॥७८॥
 अग्रप्रयाणकन्दस्ता प्रवीरा कपिकेशव । सहस्रामघरणीं प्रापुस्तद्योग्यस्त्वमुदाहृतम् ॥७९॥
 विंशतिर्योजनान्यस्या रुद्रतापरिकर्तित । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणक्षिते ॥८०॥
 नानाद्युधैर्विचिह्नाता सहस्रैरुपलक्षिता । नृदुचरुमणिस्मेव समवर्तत युद्धम् ॥८१॥
 ततो नागारवासहाना दुन्दुभीना च मि स्वनम् । श्रुत्वा हर्षं दशस्योग्याधिरागैतरणोत्सव ॥८२॥
 आशादानेन चाशेषान् सामन्ताः समन्तामवत् । नहि ते वञ्जितास्तेन युद्धामन्देन जातुचित् ॥८३॥
 भास्कराभाः पयोदाह्वा काञ्चनाः श्योमवल्गवा । गन्धर्वगातनगरा कम्पना शिवमन्दिरा ॥८४॥

पणको घुलाया जाय । इसके विषममे योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेमे कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिये यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे । तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर रावण ही जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो । मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममें भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निश्चलताकी शपथ कर चुका तब रामने सशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लकाका राजा बनाऊंगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्धके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस इस नामक नगरमें आठ दिन बिताकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सबने लकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनों, वायुके समान वेगशाली घोडों, बर्षाकालीन मेघोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहा, अनुरागसे भरे भृत्यों और कवचरूपी अभूषणोंसे विभूषित वीर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर वानरवशी राजा युद्धकी भूमिमें सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिये उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंको धारण करनेवाले हजारों योद्धाआसे सहित वह युद्धकी भूमि मृत्युके चक्ररत्नकी भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद रणका उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वञ्चित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्याभपुर, मेघपुर,

सूर्योदयामृतमिदं शोभामिहपुराभिधा । नृत्यगीतपुरात्मोक्तिप्रस्तनमन्त्रा ॥८५॥
 यदुनादा महाशैलधकाद्धा मुरन्पुरा । आमतो मन्थानंदा आगुदा श्रीमनोहरा ॥८६॥
 रिपुनया शशिस्थाना मार्तण्डाभिरालका । ज्योतिर्दण्डा परिचोदा अक्षरसरराज्या ॥८७॥
 एवमाद्या पुराभिधया महान्वेगप्रायिवा । सचिवैरन्विता प्रीता दशाननमुवागता ॥८८॥
 अष्टवाहनमग्राद्वृत्तिप्रतिपत्तिभिः । रावगोऽपूतयद्भूषात् सुप्रामा विद्वान्निव ॥८९॥
 अर्चादिगामहाराणि चत्वारि शिकुतुप् प्रभो । स्वराक्षिर्नित्यं प्रोक्तं बलस्य प्रमिन्नं सुप्तं ॥९०॥
 एकमर्चादिगोनां तु किष्किन्धनगरप्रभो । सहस्रं माप्रनेकं तु भानन्दलविभोरपि ॥९१॥
 सुप्रव मन्त्रैः साकं तथा पुनर्वतामुत । आहूय परमाद्युक्तं तस्यनु पदलक्ष्मणौ ॥९२॥
 अनेकगोप्रचरणा नानानान्युपलक्षणा । नानागुणविद्यालयाता नानारन्दा नमस्करा ॥९३॥
 पुण्यानुभावेन महानराणां भवति शत्रोरपि पार्थिवा स्वा ।
 कुपुष्पभात्रा तु पिरं सुराणां विनाशकाले परता मन्त्रे ॥९४॥
 भ्राता सम्राट् सुहृदश्च वरयो ममैव यत्तु सुहृद मदेति ।
 ससारवैषिभ्यविदा नरेण नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ॥९५॥

इत्यार्षे रविवेणाचार्यश्रीके पञ्चपुराणे विनीषणमभागनामिधानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमः पर्वः ॥१५॥

काञ्चनपुर, गगनवल्लभपुर, गन्धर्व गीतनगर, कपनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मणागतपुर, कितरगीतपुर, यदुनादपुर, महाशैलपुर, चन्द्रपुर, सुवपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, आगुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुनयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तण्डाभपुर, विशालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिचोदपुर, अररपुर, रत्नपुर और परानयपुर आदि अनेक नगराके यहे ऋडे विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियासे साथ राजगके समाप आ गये ॥८४-८८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर वन सत्र राजाआका पस तरह सन्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोंका सन्मान करता है ॥८९॥ विद्वानोंने राजगकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षीहिणा दल उतलाया है । उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥९०॥ किष्किन्धनगर के राजा सुमीवकी सेनाका प्रमाण एक हजार अक्षीहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षीहिणी दल था ॥९१॥ परम न्योगी सदा सावधान रहनेवाले सुमीव और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥९२॥ वन समय युद्ध भूमिमें नानाश, नानाचातियो, नानागुण तथा नानाक्रियाआसे प्रसिद्ध एव नानाप्रकारके शस्त्राका उद्योग करनेवाले विद्याधर एकरित हुए थे ॥९३॥ गीतमन्त्रा कहने हैं कि हे राजन् ! पुण्यके प्रभावसे महापुरुषाके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पर हो जाते हैं ॥९४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा पन्धु है और यह मेरा सदा मुख देनेवाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा ससारका विचित्रताको जाननेवाले मनुष्योंको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविवेणाचार्य द्वारा कथित पञ्चपुराणमें विनीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पञ्चपत्रो पर्व पूर्ण हुआ ॥१५॥

पट्पञ्चाशत्तमं पर्व

भगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत् पुनरेव गणेश्वरम् । अक्षोहिण्या प्रमाण मे वक्तुमर्हसि सन्मुने ॥१॥
 शत्रुभूतिरस्यागादाच्छणु श्रेणिक पार्थिव । अक्षोहिण्या प्रमाण ते सक्षेपेण वदाम्यहम् ॥२॥
 अष्टाविमे गता रथाति प्रकारा गणनाकृता । चतुर्णां भेदमह्वाना कार्यमान विधेयताम् ॥३॥
 पत्ति प्रथमभेदोऽत्र तथा सेना प्रकीर्तिता । सेनामुख ततो गुल्म बाहिना पृतना चमू ॥४॥
 अष्टमोऽनाकृतासङ्गस्तत्र भेदो बुधै स्मृत । यथा भवन्त्यस्मी भेदास्तथेदानीं वदामि ते ॥५॥
 एको रथो राजशैकस्तथा पञ्च पदातय । त्रयस्तुरङ्गमा सैपा पत्तिरित्यभिधापते ॥६॥
 पत्तिस्त्रिगुणिता सेना तिस्र सेनामुख च ता । सेनामुखानि च त्राणि गुल्ममिच्छुकीर्यते ॥७॥
 बाहिना त्राणि गुल्मानि पृतना बाहिनात्रयम् । चमूस्त्रिपृतना ज्ञेया चमूत्रयमनीकनी ॥८॥
 अनाकिन्यो दश प्रोक्ता प्राज्ञैरक्षोहिणाति सा । तत्राह्वाना पृथक् सख्या चतुर्णां कथयामि ते ॥९॥
 अक्षोहिण्या प्रकाश्यानि स्थाना सूर्यवर्चसाम् । एकविंशतिसङ्ख्यानि सहस्राणि विचक्षणै ॥१०॥
 अष्टौ शतानि सख्या सहितान्यपराणि च । राजाना कथित ज्ञेय सङ्ख्यायान रथसङ्ख्याय ॥११॥
 एकलक्ष सहस्राणि नव, पञ्चाशदन्वितम् । शतत्रय च विज्ञेयमक्षोहिण्या पदातय ॥१२॥
 पञ्चपत्तिसहस्राणि पञ्चशता च दशोत्तरा । अक्षोहिण्यामिय सङ्ख्या बाजिना परिकीर्तिता ॥१३॥
 एव सत्ययलोपेत विज्ञायापि दशाननम् । बल कैक्किन्धमभ्यार ज्ञ भयेन विवर्जितम् ॥१४॥
 तस्मिन्नासत्रता प्राप्ते पद्मनाभप्रभोर्जले । जनानामि चमूद्वाणी नानापक्षगतामनाम् ॥१५॥

अथानन्तर भगधपति राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे इस प्रकार पूछा कि हे सन्मुने । मेरे लिए अक्षोहिणीका प्रमाण कहिए ॥१॥ इसके उत्तरमें इन्द्रभूति—गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् श्रेणिक । सुन, मैं तेरे लिए सक्षेपसे अक्षोहिणीका प्रमाण कहता हूँ ॥२॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेनाके चार अङ्ग कहे गये हैं । इनकी गणना करने के लिए नाचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं ॥३॥ प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पाँचवाँ बाहिनी, छठवाँ पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकनी । अब उक्त चार अङ्गमें से जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ ॥४-५॥ जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है ॥६॥ तीन पत्तिकी एक सेना होती है, तीन सेनाओंका एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुखाका एक गुल्म कहलाता है ॥७॥ तीन गुल्मोंकी एक बाहिनी होती है, तीन बाहिनियाका एक पृतना होती है, तीन पृतनाओंकी एक चमू होती है और तीन चमूकी एक अनीकनी होती है ॥८॥ विद्वानोंने दस अनीकनाकी एक अक्षोहिणी कही है । हे श्रेणिक ! अब मैं तेरे लिए अक्षोहिणीके चार अंगोंकी पृथक् पृथक् सख्या कहता हूँ ॥९॥ विद्वानों ने एक अक्षोहिणीम सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंकी सख्या इक्कीस हजार आठसौ सत्तर बतलाई है । हाथियाकी सख्या रथोंकी सख्याके समान जानना चाहिये ॥१०-११॥ पदाति एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास होते हैं और घोड़ोंकी सख्या पैंसठ हजार छह सौ दस कहा गई है ॥१२-१४॥ इस प्रकार चार हजार अक्षोहिणी राजणके पास थीं । सो इस प्रकारकी सेना से सहित रावणने अतिशय बलवान् जानकर भा किष्किन्धपति—सुग्रीवकी सेना निर्भय होकर रावण के सन्मुख चली ॥१४॥ जब रामकी सेना निकट आई तब नाना पक्षमें विभक्त लोगाम इस प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥१५॥

परयताम्बरयानोद्गुणेश शास्त्रधीकर । दशास्यचन्द्रमारुद्ध परस्त्रीच्छावलाहकै ॥१६॥
 अष्टादश सहस्राणि पर्त्तीना यस्य सुत्रिणाम् । सीताया परयतैकस्या कृते त शोकशालितम् ॥१७॥
 रक्षसा धानराणा च कस्य नाम क्षयो भवेत् । एव बभूव सन्देह सैन्यद्वितयवर्णिनाम् ॥१८॥
 वलेऽस्मिन्मारुदशायो मारुतिनां भोषण । विस्फुरन्दीर्घतिग्मास्तु सूर्यतुल्योऽत्र शनजित् ॥१९॥
 सागरोदारमयुग्म साचादितिलोपमम् ३ । साऽत्र रावणस्येति नरा केचिद् वभाषिरे ॥२०॥
 अन्तर वित्यशूरस्याशूरस्य च न ज्ञातुचित् । न त ज्ञातमस्ति नान्त कि न वो धीरवोधतम् ॥२१॥
 यद्वृत्त दण्डकारण्यस्य वनस्य महतोऽन्तरे । अत्यन्तदारुण युद्ध लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥२२॥
 चन्द्रोदरमुत प्राप्य तुल्य स्वाङ्गेन केवलम् । मृग्योरातिथ्यमानीतो येनासी ररक्षण ॥२३॥
 अतिप्रकटवीर्यस्य लक्ष्मानिलयवचसः । भवता तस्य न ज्ञात कि वा यत्नमुत्तमम् ॥२४॥
 एतेन वायुपुत्रेण निर्भैर्यं मयमम्भयाम् । रामपत्नीं समाख्यास्य परार्थास्तत्पुत्तिना ॥२५॥
 रावणस्य महासैन्य विजित्याच्यन्तदारुणम् । लङ्कापुरीं परिध्वस्तः भग्नप्राकारतोरणा ॥२६॥
 एव विदिततत्त्वाना स्फुट वचसि निर्गते । जगाद् ग्रहसन् वाक्य सुवचनार्त्तगर्वनिभैर ॥२७॥
 गोप्यदप्रमित वधैतद्वचल वामरलक्ष्मणाम् । क्व चैतसागरोदार सैन्य त्रैटुमुद्धतम् ॥२८॥
 इन्द्रेण साधितो यो न पतिविद्याभूतमयम् । एतस्य चापिन साध्वो रावण सञ्जायते ॥२९॥
 सर्वतैजस्विमूर्ध्ना विमोरस्यातिष्ठन । श्रोतु नामापि क शक्न्येतैनध्वजपतिन ॥३०॥

कोई कहता था कि देवो जो विद्याधररूपो नक्षत्रोंके समूहका स्वामी है और जो राक्ष-
 हानरूपी किरणोंसे सहित है ऐसा यह रावणरूपी चन्द्रमा परनारीकी इच्छारूपी मेधासे आच्छा-
 दित हो रहा है ॥१६॥ जिसकी उत्तम कान्तिको धारण करने वाली अठारह हजार स्त्रियाँ हैं वह
 एक सीताके लिए देवो शोकसे शल्य युक्त हो रहा है ॥१७॥ देवो राक्षसी और धानरामसे
 किसका क्षय होता है ? इस प्रकार दोना सेनाओंके लोगोंको सन्देह हो रहा था ॥१८॥ उधर
 धानरोंकी सेनाम कामदेवके समान जो हनुमान् है वह अत्यन्त भयकर है, उसका शौर्यरूपी
 सूर्य अतिशय देवीप्यमान हो रहा है और इधर राक्षसोंकी सेनामे इन्द्रजित् सूर्यके समान है ॥१९॥
 कोई कह रहे थे कि रावणकी यह सेना समुद्रके समान विशाल, अत्यन्त उग्र तथा साक्षात्
 दैत्याकी सेनाके समान है ॥२०॥ क्या तुम कभी शूर वीर और अशूर-वीरका अन्तर नहीं जानते ?
 क्या तुम्हें पिछली बात याद नहीं है ? और क्या तुम सबको धीर-वीर मनुष्यकी पहिचान नहीं
 है ? ॥२१॥ कोई कह रहे थे कि विशाल दण्डकवनके मध्यमे महाउल्लूखान् लक्ष्मणका जो युद्ध हुआ
 था और उसमें केवल अपने शरीरके तुल्य चन्द्रोदरके पुत्र—विराधितको पाकर उसने सर दूपणों
 यमका अतिथि बना दिया था । इस प्रकार अत्यन्त प्रकट पराक्रमके धारक लक्ष्मणका उत्कृष्ट
 पल क्या आपलोगोंको सिद्धित नहीं है ? ॥२२-२४॥ कोई कह रहा था कि उस समय परहितमें
 लगे हुए अनेके हनुमान्ने मन्दोदरीकी डाँटकर तथा सीताको सान्त्वना देकर रावणकी अत्यन्त
 उग्र सेना जीत ली थी तथा जिसके कोट और तोरण तोड़ दिये गये थे ऐसी लङ्काको क्षत विक्षत
 कर दिया था ॥२५-२६॥

इस प्रकार तत्तन्ना मनुष्योंके स्पष्ट वचन निश्चयने पर गर्वसे भरा समुद्र राक्षस हँसता
 हुआ निम्न प्रकारके वचन बोला ॥२७॥ यह कहने लगा कि धानर चिह्नको धारण करने वाले
 धानरवशिष्याकी यह गोरुरके समान तुच्छ सेना कहीं ? और यह त्रिदृग्वासियोंकी समुद्रके
 समान विशाल एवं उत्कट सेना कहीं ? ॥२८॥ जो विद्याधराका अधिपति रावण इन्द्रके द्वारा भी
 पराजित नहीं किया जा सका वह एक धनुर्धारीके वश कैसे हो सकता है ? ॥२९॥ जो समस्त

सुपांवरभुजो बांरो दुर्द्धरधिदशैरपि । सुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥
 यस्मिंश्चलधरः सदृश्यः कालाग्निरिव दीप्यते । सोऽयं विजयीते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥
 यस्यातपत्रमालोक्य शरदिन्दुमिवोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोर्ध्वसमुपयाति समन्ततः ॥३३॥
 उदात्ततेजसस्तस्य रथागु यस्य ह्यतोऽपि कः । समर्थः पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥
 इति बहुविधवाचां द्वेषरागाश्रितानां प्रकटितनिजचित्प्रार्थनासङ्कटानाम् ।
 द्वितयबलजनानां दष्टनानाक्रियानाम् अजनि जनितशङ्को भावमार्गो विचित्रः ॥३५॥
 चरितजननकालाभ्यस्तरागेतराणां भवमपरिमितानामप्यय चित्तमार्गः ।
 भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोक स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे—उभयबलप्रमाणविधान नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५६॥

तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे (अर्थ) चक्रवर्ती रावणका नाम भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन नहीं जानता ? ॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा सकता है ? ॥३२॥ उदित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंकी सेनारूपी अन्धकार सय ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भौतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे, जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ देखी गई थीं । ऐसे समयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शङ्काको उत्पन्न करनेवाली हुई थी ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके योग्य समयमें भी रागी, द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता है—राग द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी सेनाओं के प्रयाणका कथन करनेवाला छुणनवो पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परमैव्यसमारलेपममृष्यन्तोऽथ मानवा । उद्गच्छद्दर्पमकोप्या दृष्टा मन्त्रधुमुपता ॥१॥
 उद्वेष्टेय दयिताग्राहुपाश कृच्छ्रेण कंचन । मधुम्य मिहमङ्गाशा लङ्कानो नियंतुभंग ॥२॥
 वीरपत्नी प्रिय काचिदालिङ्ग्यैवमभाषत । धृतानेकमहोद्योधपरमाहवभिर्भूमा ॥३॥
 सङ्ग्रामे रिपतं पृष्टे यदि नाथागमिष्यमि । दुर्यशस्तद्दृष्ट्वा प्राणान् मोक्षयामि धृतिमात्रत ॥४॥
 किङ्कराणामतः पान्थो वारागामंतिगतिना । धिक्शब्द मे प्रदाम्यन्ति किं नु कल्पम परम् ॥५॥
 रणप्रपाततः धीरसुरोद्योगविभूषणम् । त्रिशार्ङ्गकवच प्राप्तञ्चलच्छमग्न्मवम् ॥६॥
 द्रक्ष्यामि यदि धम्याह भगन्तमविकथनम् । जिनेद्भानर्चयिष्यामि ततो आगन्तुमिदम् ॥७॥
 आभिमुख्यगतं मृधु वर प्राप्तो महाभग । पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनाहृतः ॥८॥
 स्तनद्वयसमुप्रीड काचिदालिङ्ग्य मानवम् । जगाद् पुनरेव सः प्रदीप्यामि जवान्वितम् ॥९॥
 अवद्वक्ष्यस्थलस्यानरनचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वय शोभां मम यास्याति सर्वथा ॥१०॥
 प्रातिवेशिमरुषोधानामपि पत्नीं त्रितप्रियाम् । न सहे कुन एवेश मद्दिप्ये स्वा यिनिनितम् ॥११॥
 काचिज्जगाद् ते नाथ हताश प्रगभूषणम् । पुराण रुद्धं जातं ततो वैशतिशोभनम् ॥१२॥
 अतो नवमगन्मस्तस्तनमण्डलसौन्दर्यम् । द्रक्ष्येऽहं वारपरनाभिषिकामिमुखपट्टम् ॥१३॥

अथानन्तर परचमके आममणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य नठते हुए अहंकारसे लुभित हो हर्ष पूर्वक कञ्च आत्रिक धारण करनेके लिए वद्यत हुए ॥१॥ सिंहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमें पड़े हुए प्राणरत्नभाके बाहुपाशको बड़ी कठिनाईसे दूरकर लुभित हो लङ्कासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रम्य था, ऐसी किसी वीरपत्नीने पतिका आलिङ्गनकर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ ! यदि सप्राप्तमें पावल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूँगी ॥४॥ क्योंकि ऐसा होनेसे रीर त्रिकराका गर्जली पत्त्रियाँ मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या होगी ? ॥५॥ निनके वक्षस्थलमें घात आभूषणके समान सुरोभित हैं, निनका कञ्च टूट गया है, प्राप्त हुई विजयमें योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भारताके कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूँगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेयका पूजा करूँगी ॥६-७॥ महायोद्धाओंका सम्मुखगत मृत्युको प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखको धिक्कार शब्दसे मलिन जीवन त्रिताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोना स्तनोंसे पतिका आलिङ्गनकर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिङ्गन करूँगी ॥९॥ आपके वक्षस्थलके गाढ़े गाढ़े रक्तरूपी चन्दनोंको चर्चसे मेरे दोना स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त होंगे ॥१०॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाना है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंका पत्राकी भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूँगी ? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभागा पुराना घावरूपी आभूषण रुद्ध हो गया है—पुनरुत्पन्न हुआ है, इसलिए आप अधिक सुरोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अतः नूतन घावपर रसे हुए स्तनमण्डलको सुप्त पहुँचानेवाले आपको जब देखूँगा तब मेरा

काचिदूचे यथैतत्ते वदनं सुखितं मया । तथा^१ वसति सञ्जातं सुखिष्यामि व्रणाननम् ॥१४॥
 अनतिप्रौढिका काचिद्भूषणमिवोदिका । सप्रामे प्रोचते नाथे प्रौढत्व ससुपागता ॥१५॥
 चिराय रचितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुखे । ॥यज्ञैकपदे कान्ता कान्तसरलेपतपरा ॥१६॥
^२अवितृप्तं भटा काचिद्वृत्तं ब्राह्मणस्य पथौ । तथापि मदनप्राप्ता रणयोग्यमसिञ्चयत् ॥१७॥
 काचिदुत्तानितं^४ भर्तुर्वन्दनं वनजेच्छया । नैमिषोऽस्मिन्मद्वाचात् सुचिरं कृतचुम्बना ॥१८॥
 काचिद्वरस्तरे भर्तुं करजघनमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छुद्धपातस्य सत्यङ्गारमिवापयत् ॥१९॥
 इति सञ्जातचेष्टासु दयिता यु यथाययम् । भटानामित्यभूद्वाणी महासप्रामशालिनाम् ॥२०॥
 नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् । त्यजन्यमिमुखा जीव शत्रूणां हृद्भक्तीतय ॥२१॥
 उज्जितवन्तिदन्ताग्रदोलादुद्धृतिं भटा । कुर्वन्ति न विना पुण्यै शत्रुभिर्घोषितस्तथा ॥२२॥
 गजदन्ताग्रभिस्सस्य कुम्भदारणकारिणः । यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कथयितुं क्षमं ॥२३॥
 त्रस्तं शरणमायात् दत्तपृष्ठं प्युतायुधम् । परित्यज्य पतिष्यामो दयिते शत्रुमस्तके ॥२४॥
 भवत्या वान्जितं कृत्वा प्रत्यागच्छ रणाजिरात् । प्रार्थयिष्ये समारलेपं भवन्तीं तोषधारिणीम्^५ ॥२५॥
 पृथमादिभिरालापैः परिसान्ध्यं निजप्रिया । धीरा निर्गन्तुमुद्युताः^६ सङ्ख्येयसौरपससुसुक्ता ॥२६॥

मुखकमल खिल उठेगा और धीर पत्नियों सुमे वडे गौरवसे देखेंगी ॥१३॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वस्तुस्थल पर उत्पन्न हुए घावके मुखका चुम्बन करूँगी ॥१४॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि अधिक प्रौढ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर वह प्रौढताको प्राप्त हो गई ॥१५॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानकी रक्षा करता घेठी थी परन्तु जब पति युद्धके सन्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिङ्गन करनेमें तत्पर हो गई ॥१६॥ यद्यपि किसी योद्धाकी स्त्री पतिके मुखकी मदिरा पीता पीती छत्र नहीं हुई थी तथापि कामाकुलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१७॥ कोई कमललेचना स्त्री पतिके ऊपर उठाये हुए मुखको टिमकार रहित नेत्रोंसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१८॥ किसी स्त्रीने पतिके घत्त स्थलपर नखका उज्ज्वल घाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका ध्याना ही दे दिया था ॥१९॥ इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित योद्धाओंकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बोला कि हे प्रिये ! ये मनुष्य प्रशसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके सन्मुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुवरा प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरह बखान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्यके बिना मर्दान्तर् हाथियोंके दाँतोंके अग्रभागसे मूला नहीं मूल सकते ॥२२॥ हाथीदाँतके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखानेवाले एव शस्त्र डाल देनेवाले पुष्पको छोड़ शत्रुके मस्तकपर दूट पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अभिलाषा पूर्णकर तथा रणाङ्गणसे लौटकर जब आपको सन्तुष्ट कर दूँगा तभी आपसे आलिङ्गनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके वार्तालापसे अपना प्राणवत्त्वमाओंको सान्त्वना देकर युद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक धीर मनुष्य घरासे बाहर निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेमें दोनों भुजाएँ डालकर ऐसी मूल गई मानो किसी गजराजके गलेमें कमलिना हो

१ यथा म० । २ अवितृप्तमणी म० । ३. मदन प्राप्ता म० । ४. दुत्तानित म० । ५. प्रापयिष्ये म० ।
 ६. तोषधारिणीम् म० । ७. सख्ये म० ।

प्रियातोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठार्पितमुज्ज्वला । काचिद्दोलाशनं चक्रे गजैन्दुस्येव पद्मिनी ॥२७॥
 काचिसन्धाहरदस्य पशुर्देहस्य सङ्गमम् । अत्राप्य परमं प्राप्ता पीडामङ्गमपि भिता ॥२८॥
 अर्द्धबाहुलिकां दृष्ट्वा काचिकान्तस्य वक्षसि । ईर्ष्यास्तेन सस्पृष्टा किञ्चिद्विचित्रलोचना ॥२९॥
 अर्द्धमन्नाहनामायं मया परिहिता प्रिये । इति पुराणयोगेन पुनस्तोपमुपागता ॥३०॥
 ताम्बूलप्रार्थनव्याघ्रात् काचित् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्चत् सुतिनीं कृच्छ्रात् कृत्वा मगविभूषितम् ॥३१॥
 काचिन्नित्यर्थमानापि प्रियेण रणकाञ्चिणा । सन्धाकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥
 एकतो द्रविताहट्टिन्यतः तर्पयन्निस्वनः । इति हेतुद्रव्यादोलामारुहं भटमानसम् ॥३३॥
 स्त्रीणां परिहरन्तीनां वाष्पपातममङ्गलम् । सत्यामपि विद्वद्यां जिमेगे नाभवत् दशाम् ॥३४॥
 अगृह्णातैव सन्धाहं केचित् त्वरितमानसाः । ययालब्धवायुर्धं योधा निर्युर्दृग्गालिनः ॥३५॥
 रणसज्जाततोपेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणसीङ्घस्य वर्मं माति स्म नो निजम् ॥३६॥
 श्रुत्वा परधर्मव्यस्वनं कश्चिद् अतोत्तमः । चिररुद्धैर्मणैः रक्तं मुमोचोद्धासविप्रहः ॥३७॥
 पिनदं कस्यचिद् धर्मं सुदृढं तोषहारिणः । धर्मानं ततः शीर्षं पुराणं कट्टावितम् ॥३८॥
 विधत्तं कस्यचिन्नाया समाधानपरायणा । सारयन्तो मुहुस्तस्य शिरस्त्राणं सुभाषिता ॥३९॥
 प्रियापरिमलं कश्चिद्विषयार्तः स्ववक्षसः । कट्टं प्रति नो चक्रे मनः सङ्ग्रामालालः ॥४०॥
 एष विमर्गता योधाः कृष्णतः सान्त्वितप्रियाः । आङ्गुलीमृतचित्ताश्च शपथोयेषु ताः स्थिताः ॥४१॥

मूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहिन रखता था इसलिए उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमें स्थित होनेपर भी परम पीड़ाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलपर अर्द्धबाहुलिका देष्ट ईर्ष्यासे भर गई तथा उसके नेत्र कुछ-कुछ संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहिना है । इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः संतोषको प्राप्त हो गई ॥३०॥ किसी सुरिया स्त्रीने ताम्बूल वाचनाके वहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषितकर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किसी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके वहाने पली जा रही थी ॥३२॥ एक ओर तो धल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारण रूपी दोलाके ऊपर झारुद्ध हो रहा था ॥३३॥ अमाङ्गलिक अश्रुपातको बचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे 'नेत्रोका पलक नहीं मगाती' थी ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अहंकारी योद्धा, कवच पहिने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न संतोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इतना फूट गया कि वह चिरकालके भरे घावोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किसी योद्धाने नया मजजुत कवच पहिना था परन्तु दर्पित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोपको पछा रही थी ॥३९॥ किसीकी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर मुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो बड़ी कठिनाईसे प्रियाओं

१. सत्रहवीं (टि०) । २. दृष्ट्वा म० । ३. शीर्षं पुराणं कट्टावितम् म० । ४. दीयमानः म० ।

५. कट्टकं म०, ल० ।

अथाप्रकीर्तिमाप्नोत्सत्त्वादनलालसौ । द्विरदस्वन्दनारूढायसोर्धेरिवत्स्वनी ॥४२॥
 प्रथम निर्गतोदाचप्रतापी शौर्यशालिनी । हस्तप्रहस्तनामानौ लङ्कातो निर्गन्तौ मृषी ॥४३॥
 अनाष्टुष्टाऽपि सत्काले स्वामिनो राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥४४॥
 मारीचः सिंहजयनः स्वयम्भूः शम्भुरत्तमः । पृथुः पृथुबलोपेतश्चन्द्रार्क्षी शुक्सारणी ॥४५॥
 गजवीर्यवानामानौ वज्राघोः वज्रशृङ्गुतिः । गम्भीरगिनदो नम्रो मकरः कुलिशस्वनः ॥४६॥
 उग्रनादस्तथा मुन्दः निकुम्भकुम्भशब्दितः । सन्ध्याघोः विभ्रमकूरो माल्यवान् खरनिस्वनः ॥४७॥
 जम्बूमाली शिरसावीरो दुर्दंष्ट्रश्च महाबलः । एते केसरिभिर्युक्तैः सामन्ता विर्ययू रथैः ॥४८॥
 वज्रोदरोऽपि शक्राभ कृतान्तो विघटोदरः । महाशनिरवरचन्दनस्रो मृत्युः सुभीपणः ॥४९॥
 कुलिशोदरनामा च धूम्राघो मुदितस्तथा । विपुञ्जिह्वो महामाली कनकः शोधनध्वनिः ॥५०॥
 शोभणो धुन्धुरदामा हिण्डिण्डिमिहम्बरः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाह्लादयः ॥५१॥
 व्याघ्रपुष्पैरिमैस्तुङ्गै रथैरज्ञासिताम्बरैः । अहयवो विनिर्घाताः शत्रुविष्वंसत्रुदयः ॥५२॥
 विद्याकौशिकविजयतिः सर्पबाहुर्महाद्युतिः । शस्त्रप्रशस्तनामानौ रागो भिन्नाञ्जनप्रभाः ॥५३॥
 पुण्यचूडो महारक्तो घटाक्षः पुण्यसेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्त्तस्मरायणौ ॥५४॥
 कामाग्निः कामराशिश्च कनकामः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥
 एतेऽपि वातरहोभी रथैर्युक्ततुरङ्गमैः । यथायथ विनिर्जंगमुरालवेग्यो रसद्वलाः ॥५६॥
 कदम्बनिटवी भीमो भीमनादो भयानकः । शार्ङ्गलक्ष्मीक्षितः सिंहशलाहो विपुदम्बक ॥५७॥

को समन्ता-धुमा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियों व्याकुल चित्त होती हुई शय्याओंपर पड़ रही ॥४१॥

अथानन्तर उत्तम कीर्तिरूपी मधुरसके आस्वादनमे जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रथ पर आरुढ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका एतक प्रताप पहले ही निरल चुका था, और जो शूरावीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निरले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय इनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अचसरपर दोष भी गुणरूपताको प्राप्त हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजयन, स्वयम्भू, शम्भु, वराम, विशाल सेना से सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, वीभरस, इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीरनाद, नम्र, मकर, घञ्जनाद, उग्रनाद, मुन्द, निकुम्भ, कुम्भ, सन्ध्याक्ष, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, ररनाद, जम्बूमाली, शिरसावीर और महाबलवान् दुर्दंष्ट्र ये सब सामन्त सिंहासे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४८॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतान्त, विघटोदर, महावक्त्र, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीपण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विपुञ्जिह्व, महामाली, कनक, शोधनध्वनि, शोभण, धुन्धु, उदामा, हिण्डि, हिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको दंदोप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी सामन्त महा अहंकारी तथा शत्रु नाशकी भावना रखनेवाले थे ॥४९-५२॥ उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पबाहु, महाद्युति, शस्त्र, प्रशस्त्र, राग, भिन्नाञ्जनप्रभ, पुण्यचूड, महारक्त, घटाक्ष, पुण्यसेचर, अनङ्गकुसुम, काम, कामावर्त्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाम, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामन्त, चापुके समान वेगशाली पोंढ़ेके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने धरोंसे निकले । इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रही थी ॥५३-५६॥ तदनन्तर कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक,

१. -यमेटी रिलस्वनी म० । २. प्रयागे म० । ३. सिंहवनः म०, रा० । ४. वज्राक्षो म० । ५. गम्भीरो निन्दो म० । ६. विभ्रमः श्रो म०, रा० । ७. -प्रभी म० ।

हृदिनरचपलरचोलरचलरचलकादयः । राजादिभिरिमेयुक्तैर्निर्ययुर्मास्त्रै रथैः ॥५८॥
 कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अध्वर्युपञ्चमोकोऽयः कुमारानां स्मृता बुधैः ॥५९॥
 विशुद्धराक्षसान्काः कुमारस्तुल्यविग्रमाः । प्रयातयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥
 आवृतास्ते मनुष्यकैः कुमारैरारविग्रमाः । बलिनो मेघवाहाद्याः कुमारैन्द्रा विनिर्ययुः ॥६१॥
 अर्ककीर्तिममो भूया दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजिघ्रिष्यथो कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥
 विमानमर्कमङ्गाश नाम्ना ज्योतिःप्रभ महत् । कुम्भकर्णः समारूढस्त्रिशूलाद्यो विनिर्गतः ॥६३॥
 मेरुशृङ्गप्रतीकाश लोकवितथशब्दितम् । विमान पुष्पकामिषयामारूढः शक्रविग्रहः ॥६४॥
 सन्द्वाष्ट रोदसी सैम्यैर्भास्वरायुवपाणिभिः । निष्पान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमसुतिः ॥६५॥
 स्यन्दनैर्वाणैः सिंहैर्वराहैः कुरुभिर्भृङ्गैः । सूर्यैर्विहगैश्चित्रैः सीरभैर्यः क्रमेलकैः ॥६६॥
 ययुर्भिराहिपैर्यज्ञैस्त्यलसमुद्भवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्र वाहनैर्वह्नुपकैः ॥६७॥
 भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः किष्किन्धाधिपतिं तथा । हित्ता राक्षसनाथाय निर्ययुः सेवराधिपाः ॥६८॥
 अथ दक्षिणतो दृष्टा भयानकमहास्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता भल्लूका बद्धमण्डलाः ॥६९॥
 बद्धान्वतमसा पक्षीर्गुदा विहृतनिस्वनाः । आम्बन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महाक्षयम् ॥७०॥
 अभ्येऽपि शकुनाः क्रूरं स्यन्दन्तो भयरासिनः । बह्वुबुराडुलीभूता भीमा वैहायसास्तथा ॥७१॥
 शीर्षातिगर्भसम्भूदा विदन्तोऽप्यशुभानिमान् । महासैन्धोदता योद्धुं दृष्टोवाग् विनिर्ययुः ॥७२॥

शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलाङ्ग, विशुद्धस्युक, हृदिन, चपल, चोल, चल और चञ्चल आदि सामान्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथों पर आरूढ होकर निकले ॥५८-५८॥ गीतमरवाभी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम लेले कर कितने प्रधान पुरुष कहें जावेंगे ? उस समय सब मिला कर साढ़ेचार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वत्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रम के धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे घिरे, कामके समान सुन्दर, महाशूलयान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर वीर बुद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित्, जयन्तके समान बाहर निकला ॥६२॥ त्रिशूल राक्षस धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिः-प्रभ नामक विशाल विमान पर आरूढ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकमें प्रसिद्ध मेरुका शिखरके समान सुशोभित पुष्पक नामक विमानपर आरूढ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हाथोंमें नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादितकर निकला ॥६४-६५॥ तत्परचातुर्य, हाथी, सिंह, सुकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नानाप्रकारके पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जलजलमें उत्पन्न हुए नानाप्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामान्त लोग बाहर निकले ॥६६-६७॥ जो भामण्डल और सुधीय के प्रति क्रुद्ध थे तथा रावण के हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महाभयङ्कर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बाँधकर खड़े हुए थे ऐसे रीक्ष दक्षिणकी ओर दिखायी दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पक्षोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रक्खा था, जिनका शब्द अत्यन्त विहृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीघ आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इस प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत भारी गर्वसे मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्यत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नों जानते थे तो भी यत्न करने के लिए बराबर

प्राप्ते काले कर्मणामानुरूपादातु योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।
 शक्तो रोद्धु नैव शक्नोऽपि लोके वार्तान्येषा केव वाङ्मात्रभाजाम् ॥७३॥
 वीरा योद्धु दत्तचित्ता महान्तो बाहुरूढा, शस्त्रभाराजिहस्ता ।
 वृवावज्ञा वारकाणा समेषा^१ यान्त्यप्युद्ग्राही रवि प्रयमीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमन नाम सप्तपञ्चाशत्तम पर्व ॥५७॥



नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७२॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है । फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, बाहनों पर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथ में था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुराभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निपेध करनेवाले इन समस्त अशकुनोकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लङ्कासे बाहर निकली इस यातना वर्णन करनेवाला सतावनवा पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥



अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

आस्तृणुद्वीचय तसैन्यमुदेलमिव सागरम् । नलनालमस्तृणुप्रताम्बवाद्या सुमेवरा ॥१॥
 रामकार्यममुचुक्ता परमोदारचेष्टिता । महाद्विषयुतैर्दीप्तैः स्यन्दनैर्निर्ययुर्वरैः ॥२॥
 सम्मानो जयमित्रश्च चन्द्रामो रतिवर्धन । कुमुदावर्तसज्जश्च महेन्द्रो भानुमण्डल ॥३॥
 अनुद्धरो दृढरथ प्रीतिकण्ठो महाबल । समुन्नतवल सूर्यज्योति सर्वप्रियो बल ॥४॥
 सर्वसारश्च दुर्बुद्धि सर्वद सरमो भर । अमृष्टो निर्विघ्नश्च सत्रासो विघ्नसूदन ॥५॥
 नादो धर्वरक् पापो लोलपाटनमण्डलौ । सङ्ग्रामचपलाद्याश्च परमा खेचराधिपा ॥६॥
 शार्ङ्गलक्ष्मणैस्तुत्रै रथै परमसुन्दरैः । नानायुधयुताटोपा निर्घम्मु पृथुतेजस ॥७॥
 मरुतो हिमशान् भङ्ग प्रियरूपाद्यस्तथा । एते द्विपयुतैर्योद्ध्य निर्वयु सुमहारथैः ॥८॥
 दुर्मेघ पूर्णचन्द्रश्च विधि सागरनि स्वन । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्च दनपादपा ॥९॥
 चन्द्राशुप्रमताघातो महाभैरवकीर्तन । कुण्डसिंहकटि कुष्ठ समाधिचक्रलो हल ॥१०॥
 इन्द्रायुधो गतजास सङ्ग्रामाहाराद्य । एते हरियुतैस्तूर्ण सामन्ता निर्घयू रथैः ॥११॥
 विद्युत्कर्णो बल शील स्वपञ्चरचनो घन । सम्मेदो विचल साल काल क्षितिबरोऽङ्गद ॥१२॥
 विकालो लालक कालिभङ्गश्चोर्मिकजित । तरङ्गस्तिलक काल सुपेगस्तरलो बलि ॥१३॥
 भामा भामरथो धर्मा मनोहरमुख सुख । प्रमत्तो मर्दको मत्त सारो रत्नजग्न शिव ॥१४॥
 दूषणो भाषण कोण विघ्नराट्यो विराधित । मेरु रणरत्नि क्षेम वेलाक्षेपो महाधर ॥१५॥
 नचप्रलुब्धसज्जश्च सङ्ग्रामो विजयो जय । नचप्रमालक चोद तथातिविजयाद्य ॥१६॥

अथानन्तर लहराते हुए सागरके समान व्याप्त होती हुई रावणकी उस सेनाको देख, श्रीरामके कार्य करनेमें वद्यत परम उदार चेष्टाओंके धारक नल, नील, इन्द्रमान्, जान्मव आदि विद्याधर, महागर्जसे जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियोंसे युक्त रथोंपर सवार हो कटकसे निकले ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राम्भ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुद्धर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अमृष्ट, निर्विघ्न, सत्रास, विघ्नसूदन, नाद, धर्वरक्, पाप, लाल, पाटनमण्डल और संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रासे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे रथापर सवार हो बाहर निकले । ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोंके समूहकी धारण कर रहे थे तथा विशाल तेजसे धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भङ्ग तथा प्रियरूप आदि ये सत्र हाथियोंसे जुते उत्तम रथापर सवार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुर्मेघ, पूर्णचन्द्र, विधि, सागर नि स्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्राशु, अप्रतीघात, महाभैरव, कुष्ठ, सिंहकटि, कुष्ठ, समाधिचक्रलो, हल, इन्द्रायुध, गतजास और स्कन्दप्रहार आदि, ये सत्र सामन्त सिंहासे जुते रथापर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपञ्चरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, क्षितिधर, अङ्गद, विकाल, लोलक, कालि, भङ्ग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरङ्ग, तिलक, कील, सुपेग, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भाषण, कोण, विघ्न, विराधित, मेरु, रणरत्नि, क्षेम, वेलाक्षेपो,

एते वाजियुतै कान्तैर्मनोरथजवै रथै । महासैनिकमध्यस्यैरध्यामत रणाजिरम् ॥१७॥
 विद्युद्वाहो मरुद्वाहु सानुर्जलदवाहन । रवियान प्रचण्डालिखितेऽपि घनसन्निभे ॥१८॥
 महारथवरैर्नानावाहनोद्गासिताम्बरै । युद्धश्रद्धासमायुक्ता दद्याद्युर्माकृतै समा ॥१९॥
 विमानमुत्तमाकार नाम्ना रत्नप्रभ महत् । आरूढो यत्नवानस्थात् पद्मपक्षो विभीषण ॥२०॥
 युद्धावर्धो वसन्तश्च कान्त कोमुदिनन्दन । भूरि कोलाहलो हेडो भावित साधुवत्सल ॥२१॥
 अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागर सागरोपम । मनोज्ञो जिनसज्जश्च तथा जिनमतादय ॥२२॥
 नानावर्णविमानाग्रभूमिकास्थितमूर्त्तय । दुर्धरा निययुर्योद्धु बद्धसन्नाहविग्रहा ॥२३॥
 पद्मनाभ सुमित्रात्र सुप्राबो जनकामत्र । एते हसविमानस्था विरेजुर्गंगान्तरे ॥२४॥
 महायुद्धप्रताकाशा नानायानसमाधिता । लङ्काभिमुखमुद्युक्ता गन्तु खेचरपाधवा ॥२५॥
 सधारलम्बिताम्भोद्वृन्दनिर्घोषभैरवा । शङ्खकोटिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्यु स्वना ॥२६॥
 भग्भाभेर्घो मृदङ्गाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुका । मल्लाम्लातकहक्कारश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणका ॥२७॥
 कर्करा हेतुकगुञ्जाश्च काहला ददुरादय । समाहता महानाद मुसुधु कर्णधूर्णकम् ॥२८॥
 वेषुनादाद्वाहासाश्च ताराहलहलारवा । ययु सिंहद्विपस्वाना महिपस्यन्दनस्वना ॥२९॥
 क्रमेलकमहारावा निनादा मृगपक्षिणाश्च । उत्तस्थु पिहितायोराशेऽपि विटपनि स्वना ॥३०॥
 तयोर-योन्मयमासङ्गे जाते परमसैन्ययो । लोक सशयमारूढ समस्तो जीवित प्रति ॥३१॥
 घोषा घोष पर प्राप्ता विकम्पितमहोधरा । प्रशोप गन्तुमारुढ प्रभुन्व चौरसागर ॥३२॥

महाधर, नक्षत्रलुब्ध, सप्राभ, विजय, रथ, नक्षत्रमालक, सौद तथा अतिविजय आदि घोडासे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेग वाले, तथा महासैनिका के मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणाङ्गणमें पहुँचे ॥१२-१७॥ विद्युद्वाह, मरुद्वाहु, सानु, मेघवाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सत्र सामंत् भी मेघाके समान नाना प्रकारके वाहनोसे आकाशको वेदीप्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथापर सवार हो युद्ध की अभिलाषासे दौड़े । ये सब वायुके समान तीव्रवेग वाले थे ॥१८-१९॥ जिसे गमकी पक्ष रथी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमानपर आरूढ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्ध, वसन्त, कान्त, कोमुदिनन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ, जिनसज्ज तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करनेके लिए बाहर निकले । ये सत्र नाना वर्णों वाले विमानोंकी अग्रभूमिमें स्थित थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कचचांसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और भामण्डल ये सत्र हमोंके विमानाभिमें बँठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ जो महामेघके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ थे, ऐसे विद्याधर राजा लकाकी और जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयकर शत्रु थे, तथा जो करोड़ों शस्त्रोंके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही वादित्राके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥ भमा, भेरी, मृदङ्ग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, मल्ला, अम्लातक, हक्का, हुकार, दुन्दुकाणक, कर्कर, हेतुकगुञ्जा, काहल और ददुर आदि बाजे ताड़ित होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥२७-२८॥ घोंसोंके शब्द, अट्टहासकी घन्नि, तारा तथा हलहलके शब्द, सिंहों और हाथियोंके शब्द, भैंसाओं और रथोंके शब्द, ऊँगोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने लगे । इन सबके शब्दाने शेष समस्त ससारके शब्दोंको आच्छादितकर दिया ॥२९-३०॥ जब उन दोनों विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनने प्रति मशयम पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त घोषकी प्राप्त हुई, पर्यन्त हिलने लगे और लुभित हुआ

सदपेनिगंतैयैरसहैनिजवर्गंत । दन्तुरीभूतमत्युध बलद्वयमलक्ष्यत ॥३३॥
 चक्रकचक्रन्तासिगदागनिशिलीमुखैः । भिण्डिमान्नादिभिश्चोप प्रवृत्त युद्धमेतयो ॥३४॥
 औहयन्तः सुमन्त्रद्वयः शस्त्रजलितबाहवः । समुत्तेतुर्भटाः शूराः परसैन्यं त्रिवचनः ॥३५॥
 अतिवेगममुत्पातः प्रविष्टाः शास्त्रं बलम् । शस्त्रसत्तारमार्गार्थमवसम् । पुनर्मनान् ॥३६॥
 लङ्कानिवासिभिर्योवैस्त्वगतैरतिभूरिभिः । सिंहैरिव राज्ञा भद्रं नीता वानरपक्षिणः ॥३७॥
 पुनरन्यैर्मतैः शोच्यमानोऽन्तः समुज्ज्वलः । रघोयोधान् विनिर्जन्तुर्भासुरा वानरपञ्चजाः ॥३८॥
 मेघमान बलं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागसमाहृष्टो महाबलममाहृतौ ॥३९॥
 गजध्वजममालम्ब्य गजस्यन्दनवर्तिनी । मा भैषेति कृतस्त्वानी परमोक्तनिपटी ॥४०॥
 हस्तप्रहस्तमामन्ताहुत्पाय सुमहाजवी । निन्यतुः परमं भद्रं बलं वानरलक्ष्मणाम् ॥४१॥
 शास्त्राभ्युपगम्य तावत्प्रतापं निभृतो परम् । क्रोडवारणसवृत्तबाह्व्यूढमहारथी ॥४२॥
 शौर्यगर्वाविवायुक्षरीरैः परमपुंजी । नलनीली परिहृष्टौ मीपणौ गोदुमुमुचतौ ॥४३॥
 ततो बहुविधं शस्त्रैश्चिरं जाने महाहवे । क्रमात्समायुनिस्त्वाने निपतन्मृतपुटैः ॥४४॥
 नलेनोपत्य हस्तो वा विह्वलो विरधीकृतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतर्जावितः ॥४५॥
 तावालोच्य ततो राजन् विपर्यस्तौ महोत्तले । विनायका यमुवैतद्वाहिनीय पराङ्मुखा ॥४६॥

लवण समुद्र शोषणकी प्राप्त होने लगा ॥३७॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर आये हुए, असह्यशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनों सेनाएँ अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३८॥ कुछ ही समय बाद दोनों सेनाओंमें चक्र, ककच, कुन्त, रत्न, गदा, शक्ति, बाण और भिण्डिमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३९॥ जो एक दूसरेकी चुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनकी भुजाएँ शस्त्रोंसे वेदीयमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमें प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूर वीर योद्धा उड़ल रहे थे ॥४०॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उड़लकर पहले तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥४१॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्यामें थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजितकर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजितकर देते हैं ॥४२॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा वेदीयमान वानर राजाओंने राक्षस योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥४३॥ तत्पश्चात् रावणकी सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिंचे तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त उठकर आगे आये । ये हाथीके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे पृथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरुढ़ थे, 'ढरो मत, ढरो मत' यह शब्दकर रहे थे, अत्यन्त उत्कट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे । इन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार्ग-काट मचा दी ॥४४-४५॥ यह देख जो परम प्रतापको धारण कर रहे थे, मूर्ख, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूर वीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४६-४७॥

तदनन्तर जिसमें क्रम क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त या ऐसा महायुद्ध जब बिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उड़लकर हस्तको रथ रहित तथा विह्वल कर दिया और नीलने प्रहस्तको निर्जोय बना दिया ॥४८-४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर

चंशस्थवृत्तम्

विभर्ति तावद् दृढनिश्चय जन प्रभोर्मुप पश्यति यावदुत्तमम् ।
 गतविनाश स्वपत्नौ विशीर्यते यथारचक परिशीर्णुम्बकम् ॥४०॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि सद्यराणा विना प्रधानेन न कार्ययोग ।
 शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४१॥
 प्रधानसम्बन्धमिद् हि सर्व जगद्यथेष्ट फलमभ्युपैति ।
 राहुप्लुष्टस्य रवेर्विनाश प्रयाति मन्दो निकरः करणाम् ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यभोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तवधामिधान नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥



हस्त और प्रहस्तको पृथ्वीपर पड़ा देर राखणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गई—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जब तक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे बड़े मुखको देखता रहता है तभी तक दृढ निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्टा बिखर गया है ऐसी गाढोंके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योंका कार्य किसी प्रधान पुष्प के बिना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आम्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इत प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अठावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥



एकोनपष्टितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽर्थेन विद्याविधिविशारदी । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वा न केनचित् ॥१॥
 महदाश्चर्यमेतन्मे ताभ्या तौ निहतौ कथम् । अत्र मे कारण नाय गणध्वज्जुमहंसि ॥२॥
 ततो गणधरोऽवोचच्छृणुत तत्त्वविशारद । राज्ञम् कर्माभिनुज्ञाना जन्तूना गतिरादृशा ॥३॥
 पूर्वकर्मनुभावेन स्थितिर्दु कृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहित पुत्र ॥४॥
 असौ मोषयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु । यो येन मोषित पूर्वमनर्थे पतितो नर ॥५॥
 भासैल्लौकिकमर्यादा प्रसिधेः हिमकवामिन । नि स्वा कुटुम्बिन स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥
 इन्धक पल्लवश्चैव तत्रैकोदरमग्मवी । पुत्रद्वारपरिविष्टौ विप्रौ लाङ्गल्यर्मकी ॥७॥
 सानुकम्पी स्वभावेन साधुनिन्दापरादिसुखौ । जैनमित्रपरिविष्टाद् भिषादानादिसेविनी ॥८॥
 द्वितीय नि स्वयुगल प्रतिवेशमोषित तयो । स्वभावनिर्दय क्रूर लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥
 वग्नने रानदानस्य सञ्ज्ञाते कलहे सति । साम्प्रानयन्धरीद्राभ्या हताविन्धन्पल्लवी ॥१०॥
 साधुदानाद्वरिषेत्रे जाती सन्नेगभोगिनी । पश्यद्भयस्ये जाती देवलोकनिवेशिनी ॥११॥
 अधर्मपरिणामेन क्रूरी तु प्राप्तपञ्चती । शशी कालं ज्वरारण्ये जाती दुःखान्तिसङ्घटे ॥१२॥
 मिथ्यादर्शनयुक्ताना साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिना पापकृताना भवत्येवेदृशी सति ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! विद्याभाकी विधिमें निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जीते जा सके वे चढ़ा आश्चर्य है कि नल और नील के द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मोंसे प्रेरित प्राणियोंकी ऐसी ही गति होती है ॥३॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमें पड़े हुए जिन मनुष्योंको उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-सकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥

इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमें लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कुछ दरिद्र कुटुम्बी पास पासमें रहते थे ॥६॥ उनमें इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके प्राक्षण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे, साधुआकी निन्दासे विमुक्त थे, तथा अपने एक जैन मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमें तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंकी पत्नीसमें ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार राजाकी ओरसे जो दान वेंटता था उसमें फलह हो गई जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ मुनि दानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमें उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए । वहाँ दो परयकी उनकी आयु थी । उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमें उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्म रूप परिणामसे मर कर दुःखोंसे परिपूर्ण कालञ्जर नामक वनमें चरमोश हुए ॥१२॥ सो ठीक

ततस्तिथंश्च सुचिरं भ्रान्त्वा विविधयोगिषु । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्सौ तापसस्त्वमुपागतौ ॥१४॥
 बृहज्जै बृहकायौ फलपण्यदिभोजिनौ । तपोभिः कथितौ तीव्रं कुक्षाने द्वौ मृतौ च तौ ॥१५॥
 व्रमादिरिभ्ये जातावशिवन्वा कुक्षिसम्भवी । पुत्री बह्मिनीमारस्य विजयादस्य दक्षिणे ॥१६॥
 आशुकारासुराकारात्रिमौ जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिवौ रक्षसा विभो ॥१७॥
 पूर्वा ॥ प्रत्युती नाकात् सुमनुष्यत्वमागतौ । शूद्राश्रमे तपः कृत्वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥
 पुण्यश्यान् परिश्रष्टो स्वर्गादिन्धकपक्षवौ । किष्कुसङ्गे पुरे जातौ नलनीली महाबलौ ॥१९॥
 यत्तद्वस्तुप्रहस्तयोः नलनीली भवान्तरे । निहती फलमेतस्य पराश्रयः सदागतम् ॥२०॥
 हस्तवान् हन्यते पूर्वः पालकः पाल्यतेऽधुना । औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥
 यः वाच्य जायते कोषो दण्डकारणवज्रितः । नि सन्दिग्धः परिज्ञेयः ॥ रिपुः पारलौकिकः ॥२२॥
 यः वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा । असन्दिग्धः सुविज्ञेयो मित्रमन्वयः जन्मनि ॥२३॥
 क्षुद्रोमिणि जले सिन्धोः शीर्षणोत्तमः ॥ स्थले स्नेच्छाश्च वाधन्ते यत्तद्वद्वुः कृतज्ञः फलम् ॥२४॥
 मत्तैरिगिरिभैरानैर्घोरैर्धनुर्विधायुधैः । सुधैर्गैर्वाजिभिर्हंसैर्मृगैश्च कञ्चातृते ॥२५॥
 विप्रदेऽविप्रदे वापि नि प्रमादस्य सन्ततम् । जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥
 निरन्तमपि निर्यन्तं यत्र तत्र स्थितं परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवा ॥२७॥

ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुओंकी निन्दा करनेवाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥११॥ तदनन्तर निर्यञ्जोंकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमणकर दोना बड़ी कठिनतासे मनुष्य पर्याय प्राप्तकर तापस हुए ॥१४॥ यहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील डीलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे । मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयार्थ पर्यतके दक्षिणमें बह्मिनीमार विद्याधरकी अश्विनी नामा स्त्रीकी कुक्षिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोना ही शीघ्रतासे कार्य करने वाले असुरोंसे समान आकारके धारक थे, जगन्म अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवकरवर्गसे ज्युत हो कर उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए । तदनन्तर शूद्रस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे ज्युत हो किष्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलको मारा था इसका फल लौटकर इस भव में उन्हींको प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभयमें जो जिसे मारता है वह इस भयमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभयमें जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भयमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभयमें जो जिससे प्रति उदासीन रहता है वह इस भयमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे नि सन्देह परलोक सम्पन्नी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे नि सन्देह पूर्वभयका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहरोंसे जलम जर्जर नाववाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि वाधा पहुँचाते हैं तथा स्थलमें स्नेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्यतों के समान महोन्मत्त हाथिया, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगसे धारक घोड़ों एवं बबब धारण करनेवाले अटकारी भृत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यकी रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा

१. प्राणुमारशुकायै व० रा०, आशुकारशुकायौ व० । २. उदासीन- म० । ३. चक्षुषाम् म० । ४. शीर्षे वां म० । ५. निवा म० । ६. स्थिर म० ।

दश्यते बन्धुमन्वस्य विप्राभ्यालिङ्गितो घनी । त्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽप्य शक्तोऽभिरक्षितम् ॥२८॥
पात्रदानैः प्रैत शालैः सम्यक्त्वपरितापितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नर ॥२९॥
दयादानादिना येन धर्मो नोपाजित पुरा^१ । ब्रौवित चेप्यते दीर्घं बान्धवा तस्यातिनि फला ॥३०॥

न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।

इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिरिष्यन्ति ॥३१॥

दोधकवृत्तम्

एष समोपकरोति सुचेता दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।

बुद्धिरिय निपुणा न जनानां कारणमत्र निज्जाजितकर्म ॥३२॥

इत्यधिगम्य विषयज्ञमुःखैर्बोद्धसुखानुसङ्गीणनिमित्तैः ।

रागतर कलुष च निमित्त कृयमपोऽम्भितकुत्सितचेष्टैः ॥३३॥

भूविषयेषु निपातमुपैति प्रावणि सजति गच्छति सर्पम् ।

सम्तमसापिहिते पथि नेत्री को रविणा जनितप्रकल्पे ॥३४॥

इत्याप्ये रनिपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तनलनीलपूर्वभगवानुकीर्त्तन नामैकोनपष्ठितम पर्व ॥५६॥



मनुष्य जहाँसे हटता है, जहाँसे बाहर निकलता है अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई नन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई नन्धुओंके मध्यमें स्थित है, पिता जिसका आलिङ्गन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी यह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके बिना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विज्ञ पुरुषोंको शत्रुओं पर भी क्षमा करनी चाहिये ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है । लोगोंको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने मुरादु रके बाह्य निमित्तोंको गौण कर खोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको निमित्त कारणोंमें तीन राग अथवा दोष नहीं करना चाहिये ॥३३॥ गाढ़ अन्धकारके द्वारा आन्ध्रादित मार्ग जध सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्ढामें गिरता है, न पत्थर पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस प्रकार आर्य नामके प्रसिद्ध, रनिपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वभगोंका वर्णन करनेवाला उनसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥



षष्ठितमं पर्व

हस्तप्रहन्तसद्गौरी विज्ञाय निहतौ तत । अन्येषु रूद्धधुरक्रोधा बहवो योद्धुमुद्यता ॥१॥
 मारीच सिंहजघन स्वयम्भु शम्भुरुजित । शुक्रसारणचन्द्रकजगद्गोभसनि स्वना ॥२॥
 ज्वरोग्रनममरा वज्राण्योचामनिष्ठुरा । गम्भीरनिनदाचाश्च सन्नदारभसान्विता ॥३॥
 सिंहसंगृह्णन्वाहोदस्यन्दनापितमृतंय । क्षोभयन्त परिप्राप्ता कपिकेनुवरुधिनीम् ॥४॥
 तान् ममारततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्यिवाश्वरान् । हूमे वानरवशाया पाथिवा योद्धुमुद्यता ॥५॥
 मदनानुरसतापप्रस्थिताऽशानन्दना । दुरितानवधुप्पास्त्रविघ्नप्रीतिद्वरादय ॥६॥
 भन्योन्वाहृतमेतेषाममवत् परम रणम् । कुर्वन्निर्जटिल व्योम शस्त्रैर्वहुविधैर्धनम् ॥७॥
 अभिलष्यति सन्तापो मारीच समरे तदा । प्रथित सिंहजघनमुद्यान विघ्नसञ्ज ॥८॥
 आक्रोश सारण पाप शुक्राख्यं मन्दनो ज्वरम् । तेषा स्पर्द्धवतामेव युद्ध जात नियन्त्रितम् ॥९॥
 तत विलपेन सन्तापो मारीचेन निपातित । नन्दनेन हत कृष्णऽज्वरः कुन्तेन वरुसि ॥१०॥
 प्रथित सिंहकटिना विघ्नक्षोहामकीर्तिना । हतोऽय युद्धमहार सवितास्त समागमत् ॥११॥
 ध्रुवा स्व स्व हत नाथ निमग्ना शोकसागरे । स्त्रियो विभावरामेतामनमन्तामिव मेनिरे ॥१२॥
 अन्येषु सन्ततक्रोधा सामन्ता योद्धुमुद्यता । वज्राख्यं क्षपितारिश्च भृगेन्द्रदमनो विधि ॥१३॥
 शम्भु स्वयम्भुरचन्द्रावांस्तथा वज्रोदरादय । राक्षसाधिपवर्गीयास्तेष्वोऽन्ये वानरपञ्चा ॥१४॥

अथानन्तर हस्त और प्रहस्त वीरोको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुतेसे योद्धा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयंभु, शम्भु, अर्जित, शुक्र, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्गोभस, नि स्वन, वर, उग्र, नकर, मर, वज्राख्य, वद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारणकर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहीं और परिपुष्ट घोडोंसे जुते हुए रथोंपर आरुढ़ थे तथा वानर पशियोंकी सेनाको क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-४॥ वन राक्षस वशी उत्तमोत्तम रानाओंको आते देख वानरवशके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमेंसे कुछके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंजुर, सताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर आदि ॥६॥ आक्रोशको अस्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनों पक्षके लोगोका एक दूसरेको ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें सताप, मारीचको चाह रहा था, प्रथित, सिंह जघनको; विघ्न, वद्यामको, आक्रोश, सारणको, पाप, शुक्रको और नन्दन, उग्रको, वेग रहा था । इस प्रकार स्पर्धासे भरे हुए इन सब योद्धाओंका विषट युद्ध हुआ ॥८-९॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचके स ताप पी गिरा दिया । नन्दने वत्त स्थलमें भालेका प्रहारकर बड़े षष्ठसे ज्वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह जघनने प्रथितरी और वद्यामने विघ्नको मार गिराया । तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसहार हुआ ॥११॥ अपने अपने पतिको मरा सुन स्त्रियों शोकरूपी सागरमें निमग्न हुई और उस रात्रिको अनन्त—बहुत भारी मानने लगी ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राख्य, क्षपितारि, भृगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयंभु, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा

जन्मा तराजितक्रोधकर्मबन्धोद्ध्येन ते । योद्धु परममासक्ता निजजावितनिरुद्धा ॥१५॥
 क्षपितारि समाहृत सक्रोधेन महारुपा । शृगारिदुमनो बलिना सहितो बाहुशालिना ॥१६॥
 विधिर्वितापिनाऽयोयमेव जात महाहवे । मटेऽज्ञातसङ्गेषु निपत सुपलेष्विव ॥१७॥
 शार्दूलस्ताडित पूर्व बज्रोदरमताडयत् । सक्रोध सुचिर युद्ध क्षपितारिरमारयत् ॥१८॥
 विशालयुतिनामा च शम्भुना विनिपातित । मृत्यु स्वयम्भुवा नातो विजयो यष्टिताडित ॥१९॥
 चितापिविधिना ध्वस्तो गदाघातेन कृच्छृत । साम चैरिति ह्यन्ये साम ता शतशस्तदा ॥२०॥
 अवसोदत्ततो द्रुमा इव फिक्किन्धपतिर्वलम् । परमक्रोधसम्भारो यावत्सद्यद्दुमुद्यत ॥२१॥
 जज्ञनातनयस्तावत्तत्त्वसैम्येन युग्महान् । कार्णोड रथ हेममास्त्रो योद्धुमुचयी ॥२२॥
 रथ सामन्तसङ्घातो द्रष्टुं पवमानजम् । गवामिव गणो भ्रान्तस्त्रत केशरिदर्शनात् ॥२३॥
 ऊचुश्च राक्षसा सोऽय हन्मान् बानरभञ्ज । अद्यैव विधवा बोषा पर बह्नी करिष्यति ॥२४॥
 माला तस्याप्रतो भूतो युद्धार्थी राक्षसोत्तम । समुद्ध्य रथ तस्य पुरो वार्तिरजायत ॥२५॥
 तयारभून्महयुद्ध शरीराकर्णसहितै । उषात्तसाधुनिस्वान क्रमेण परमोदतम् ॥२६॥
 सचिवा सचिवै साक रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिमि सत्रा खग्वा सुकरणोद्यता ॥२७॥
 मालिन नष्टमालोष्य शक्या पवनजमन । बज्रोद्गोऽमवचरथ पुर परमविक्रम ॥२८॥
 चिरकृतरणोऽप्य वातिमा विरथाहृत । रथमन्य समाकृष्ट मारुति समथावत ॥२९॥
 हृवा त विरथ भूयो मारुति परमोद्य । उपर्येवाहपत्तस्य रथ मादतरहतम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३-१४॥ जन्मातरांमैं सचित क्रोध कर्मके तौन उन्मये वे अपने जीवनमें निग्रह हो भयकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे सक्रोधने क्षपितारिकी छलकारा, भुवाआसे सुशोभित बलीने सिंह दमनको बुलाया और वितापिने विधिकी पुकारा । इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर निमके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों ॥१६-१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने बज्रोदरकी मारा । दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले सक्रोधको क्षपितारिन मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालयुतिकी मार गिराया, स्वयंभूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा की और विधिने गदाके प्रहारसे चितापिकी बड़ी कठिनाईसे मार पाया । इस प्रकार उस समय सामन्ताके द्वारा सैकड़ों सामन्त मारे गये थे ॥१९-२०॥

तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जयतक कनक धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हन्मान् हाथियासे जुने रत्नमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१-२२॥ जिस प्रकार सिंहकी दैर्घ्य गायका समूह भयभीत हो इधर उधर भागने लगता है, उसी प्रकार हन्मान्को देख राक्षस सामन्ताका समूह भयभीत हो इधर उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हन्मान् आज ही अनेक क्रियाकी निधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी रानमाका शिरोमणि, माली हन्मान्के आगे आया सो हन्मान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ बानावन रीच-रीचकर चढ़ाये हुए बाणासे उन दोनोंका ऐसा महायुद्ध हुआ कि निमिम क्रम क्रमसे ठीक ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव, सचिवाके साथ, रथी रथियोंके साथ और घुड़सवार घुड़सवारोंके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हन्मान्की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी ययाद्वर उससे सामन आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हन्मान् ने जब उसे रथ रहितकर दिया तब यह दूसरे रथपर सवार हो हन्मान्की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम अभ्युदयके

रथन्दनोद्वाहिनामाद्विचूणित स रणाजिरे । अमुञ्चत द्रुत प्राणान् हुङ्कारेणापि वज्रित ॥३१॥
 ततोऽस्याभिमुख तस्यै स्वपञ्चवधकोपित । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो वलौ ॥३२॥
 असावुधितमात्रश्च ध्वज वानरलान्धनम् । चिच्छेद वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्रसदृशेषुणा ॥३३॥
 केतुकल्पनद्वयेन तस्य मारुतिना धनु । कवच च ततो नीत पुराणतृणशीर्णताम् ॥३४॥
 'ततस्तनुदरीसूनुवर्ध्वान्य कवच दृढम् । अताडयन्मरुत्सूनु तीक्ष्णैर्वल्गुसि सायकै ॥३५॥
 बालनीलो पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवै । असेवत स तै सौर्य धरणीधरधारर्ध ॥३६॥
 अधास्य वायुपुत्रेण रथयुक्त महोद्धतम् । मुक् सिंहराज पृष्ठीचन्द्रवक्त्रेण पत्रिणा ॥३७॥
 दृष्टाकरालवदनै स्फुरद्गोहितलोचनै । तैरुपत्य निज सैन्य सकल विह्वलीकृतम् ॥३८॥
 महाकहोल्सङ्काशस्तस्य सैन्यार्णवस्य ते । मूर्धनक्रसमाना वा जाता प्रबलमूर्तय ॥३९॥
 षण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिण । सैन्यमेघसमूह ते परम कोभमानयन् ॥४०॥
 रणसमारचक्रेऽसौ सैन्यलोक समन्तत । सिंहकर्मभिरत्यर्थमहादु खयशीकृत ॥४१॥
 बाजिनो वारणा भक्ता रथारोहाश्च विह्वला । रणव्यापारनिमुक्तानैर्दुर्दश दिशस्तत ॥४२॥
 ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपरयद्वावण वासिर्दुरेऽवस्थितमग्रत ॥४३॥
 आरब्ध च रथ सिंहैर्युक्त परमभासुरै । अधावद्वाणमुद्गृह्य विशय्यदैरुत्तु प्रति ॥४४॥

धारक हनूमान्ने उसे पुन रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ चढ़ा दिया ॥३०॥ जिससे रथको खींचनेवाले हाथियोंके पैरोंसे चूर-चूर होकर उसने रणाङ्गणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हुंकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पत्नके लोंगोंकी मृत्युसे कुपित हो हनूमान्के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश बाणके द्वारा हनूमान् की वानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनूमान्ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण ठण्ठके समान जर्जरता प्राप्त करा दी अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मज्जुत कवच धारण कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा हनूमान्के वस्त्र स्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिकी धारण करनेवाले हनूमान्ने उन बाणोंसे ऐसे मुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरमाये हुए नालोंके स्पर्शसे उद्विग्न हुए सुरका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनूमान्ने पृष्ठीके चन्द्रमाके समान कुटिल बाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ोंसे भयकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उछलकर अपनी समस्त सेनाको विह्वलकर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी बड़ी तरङ्गोंके समान जान पड़ते थे अथवा अतिशय बलवान् क्रूर मगर-मच्छाओंके समान दिखायी देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विमृद-दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेघोंके समूहको अत्यन्त क्षोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी ससारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सन ओरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, भदोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विह्वल हो युद्ध सम्पन्धी कार्य छोड़ दशां दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सन सामन्ताके भाग जानेपर हनूमान्ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥

तदनन्तर यह अत्यन्त वैदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो बाण खींचकर रावणकी

दशास्यस्त्रासित वीच्य निज वेसरिभिर्नैलम् । समीप चाञ्जनासूनु कृतान्तमित्र दुन्दरम् ॥४५॥
 चक्रे योद्धुमभिप्राय यात्रस्तत्राहतपर । तान्महोदरोऽस्वान्ते सरमेण^१ समुपयी ॥४६॥
 महोदरस्य च वातेष्व वत्तते यात्रदाहव । तावत्ते हरय प्राज्ञैर्गृहीता स्त्रामिभि शनै ॥४७॥
 वशीभूतेषु सिंहेषु जाता सन्तो महारूप । वायुपुत्र समुपेत समस्ता राक्षसध्वजा ॥४८॥
^२तथाप्यनिलसूत्रस्तान् शुब्रत शरसहर्षा । दधार मण्डलाभूतान् पत्रत्रिसधिवै कृता ॥४९॥
 ते शिलांमुखसज्जाना ग्रहितास्तस्य राक्षसै । सयतस्य यथाऽऽज्ञोऽज्ञा नाभवन्कम्पकारिण ॥५०॥
 रक्षोभिर्वेष्टित दृष्ट्वा तैस्तमतिभूरिति । ज्ञमे वानरवर्गीणा समराय समुपयु ॥५१॥
 सुपेणो नलनीली च प्रीतिद्वरो विराजित । सन्त्रासको^३ हरिकटि सूर्यज्योतिर्महाश्र ॥५२॥
 जाम्बूनवसुतापाश्व सिंहराववपुत्तै रयै । कृष्णप्रावणसै-यस्य निवारयितुमुद्यता ॥५३॥
 तै समापतितै सैन्य दशार्मावस्य सर्वत । परीपहेरिव ध्वस्त महातुच्छश्च घतम् ॥५४॥
 आर्त्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा पुपुषु च दशाननम् । आदिप्यश्रवणो योद्धुमुद्गतो तुमहाश्र ॥५५॥
 दृष्ट्वा समुद्गत वीर उवल^४ त रणतेजसा । सुपेणादानिमे प्रापु साधारयितुमाकुल ॥५६॥
^५इन्दुररिमजयस्कन्दध्वन्त्राभो रतिपर्धन । अज्ञोऽज्ञदोष्य समेद कुमुद चरिमण्डल ॥५७॥
 बलिध्वजतरङ्गस्य सारो रत्नजग्न जय । वेलाक्षेपी वसन्तस्य तथा कोलाहलाव ॥५८॥
 ततस्ते बहुबलजेन प्रवारा पद्मपद्मिग । लज्जा महादिव कर्तु शयुषामन्तदु सहम् ॥५९॥

और दीक्षा ॥४४॥ अपनी सेनाको सिंहोके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्धर हनुमान्को पास आया देख, कञ्च आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने उग्राही युद्धका विचार किया त्याही वसने पास बैठा महोदर नोधपूर्वक ठठ खड़ा हुआ ॥४५-४६॥ इधर जन तक्र महोदर और हनुमान्का युद्ध होता है राय तक वे छूटे हुए सिंह धीरे धीरे बुद्धिमान् स्वामियाके द्वारा पकड़ लिये गये ॥४७॥ सिंहाके वशीभूत होने पर जिनका तीव्र क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवन पुत्र पर दृढ़ पड़े ॥४८॥ तथापि अतिशय कुराह हनुमान्ने, वाण समूहको छोड़ने वाले उन ससस्त राक्षसोंको वाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥४९॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्यों के द्वारा कहे हुए दुर्जचन सयमी मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसों के द्वारा छोड़े हुए वाणोंने समूह हनुमान्के कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं हुए अर्थात् धीर वीर हनुमान्, राक्षसोंके वाणोंसे कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥५०॥

तदनन्तर हनुमान्की बहुतसे राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥५१॥ सुपेण, बल, मील, प्रीतिकर, विराधित, सन्त्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाश्र और जाम्बूनदके पुत्र आदि । ये सत्र सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथा पर सवार हो वही कठिनायीसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५२-५३॥ जिसप्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ घत परिपदोंके द्वारा ध्वस्त—नष्ट भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सत्र ओरसे आते हुए वानर पक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गई ॥५४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महानलग्नान् भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥५५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान वीर भानुकर्णको उठा देख, ये लोग सुपेण आदिको महारा देनेके लिए पहुँचे ॥५६॥ चन्द्ररश्मि, जयस्कन्द, चन्द्राभ, रतिपर्धन, अङ्ग, अङ्गद, ममेद, कुमुद, चन्द्रमण्डल, बलि, चण्डतरङ्ग, सार, रत्नजग्न, जय, वेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥५७-५८॥ ये सत्र राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा,

१. मक्रायेन म० । २. सूनाश्र म० । ३. सत्राहको हरिकोटि म० । ४. इन्द्ररश्मि म० क० ।
 ५. वरुवन्जेन म०, क० । ६. शयुषामन्तदु सहम् म० ।

क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्यया स्वापिताः सर्वे देशानावरणी जया ॥६०॥
 निद्राप्रणितनेत्राणां तेषां शस्त्रावसङ्गिनाम् । करोम्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥
 निद्राविद्राणसङ्ग्रामानेतानव्यकचेतनान् । दृष्ट्वाऽमुञ्चत सुप्रभो विद्यां द्वाक्प्रतिकोधिनीम् ॥६२॥
 प्रतिबुद्धस्तथा तेभ्य सुतरा जाततेजसः । हनूमदादयो योद्धुं प्रवृत्ताः सङ्कुलं परम् ॥६३॥
 शास्त्रानेसरिचिह्नानां बलमत्यर्थपुष्कलम् । छुत्रासिपत्रसङ्कीर्णमच्छिन्नरणलालसम् ॥६४॥
 स्पर्द्धमान समालोभ्य धुन्वसागरसन्निभम् । अवस्थां च स्ववाहिन्याः परिप्राप्तमसुन्दरीम् ॥६५॥
 उत्सेहे रावणो योद्धु प्रणम्य च तमिन्द्रजित् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यममापत महापुतिः ॥६६॥
 तात तात न ते युक्त सप्रप्राप्त मयि तिष्ठति । निष्फलत्वं हि मे जन्म सख्येवं प्रतिपद्यते ॥६७॥
 नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुक्षिता गतिः । सतो भव सुविश्रम्यः करोम्येव तवेप्सितम् ॥६८॥
 ह्युपायः मुदितोऽयन्तमारुह्य गिरिसन्निभम् । त्रैलोक्यकण्टकानिख्यं गजेन्द्रं परमप्रियम् ॥६९॥
 गृहीताश्वसर्वस्वो महासचिवमद्गतः । क्रुद्धवाक्खण्डलसङ्काशः प्रवीरो योद्धुमुद्यतः ॥७०॥
 कपिभञ्जयल तेन विविधायुधसङ्कटम् । प्रस्तमुत्थितमात्रेण महावीर्येण मानिना ॥७१॥
 किंविन्धाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्नोति विद्धः शरैराकर्णसहितैः ॥७२॥
 किमप्य शत्रुजिघ्राय शत्रो वहिरियं नु किम् । उतायमपरो भानुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

ऐसा महायुद्ध करने लगे कि जो शत्रु-सामन्तांको अत्यन्त दुःख था ॥५६॥ तदनन्तर रणको
 राजासे युक्त उन सब वीरोंको क्रोधसे भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा सुला दिया ॥६०॥
 तत्पश्चात् निद्रासे जिनके नेत्र धूम रहे थे ऐसे शस्त्रोंको धारण करनेवाले उन वीरोंके हाथ
 सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण
 जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख
 सुभीचने शीघ्र ही प्रतिकोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे
 प्रतिबुद्ध होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ़ गया था ऐसे हनूमान् आदि वीर अत्यन्त भयङ्कर
 युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानर वंशियों की वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, रत्न तथा
 वाहनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्ध की लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करनेवाली थी,
 और क्षोभ को प्राप्त हुए सागरके समान जान पड़ती थी । इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा
 अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानर वंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण
 युद्धके लिये उत्साही हुआ सो महादीपिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह
 कहने लगा कि ॥६४-६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर
 होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर मेरा जन्म निष्फलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे !
 जो तृण नरके द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए
 आप निश्चिन्त रहिये आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे
 भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकण्टक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्र पर सवार होकर
 युद्धके लिये उद्यत हुआ । उस समय जिसने आदर रूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह
 इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान जान पड़ता था तथा अतिशय धीर-
 धीर था ॥६९-७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी यानोंकी
 सेना स्रजमात्रमें भर ली—दबा दी ॥७१॥ सुभीचकी सेनामें ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे
 इन्द्रजीतने पान तक खिंचे हुए बाणोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुखसे

प्रत्यमान निज सैन्य वीक्ष्य शङ्कन्ति तत । सुग्रीव स्वयमुघात प्रमामण्डल एव च ॥७४॥
 तद्गणानामभूद्युद्धमन्योन्याह्वानसङ्कुलम् । शस्त्रान्वकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७५॥
 'अश्वैश्चा सम एवमा नामा नामै रथा रथै । निजनाथानुरागेण महोत्साहो भग भवै ॥७६॥
 जगादेन्द्रजित क्रुद्ध किष्किन्धेरा पुर स्थितम् । अपूर्वैरश्वमूलेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥
 दशस्यरासन त्यक्त्वा शास्त्रामृगपशो त्वया । क्वायुना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥
 इन्द्रोवरनिभेनाद्य सायकेन तवामुना । शिरसिज्वनदमि सरथा कुरता क्षितिगोचरी ॥७९॥
 किष्किन्धेशस्ततोऽवोचन् किमेभिर्गोत्रितैर्मुधा । मानशङ्कमिद् भग्न तच्च परय मयायुना ॥८०॥
 इयुक्ते कोपसन्भार बहन्निन्द्रजितोऽङ्गुनम् । चापमास्फालयन्नस्य समोपत्यमुपागत ॥८१॥
 शशिमण्डलसङ्घाशङ्कुरघ्वायुमेवित । सुमोघ शरसङ्घात किष्किन्ध्यापिप्रति प्रति ॥८२॥
 सौऽन्याकर्णतमाङ्गुष्ठान् बाणाघादोपलक्षितान् । निजरक्षामहादृक्क्षिप्तैरेन्द्रजित प्रति ॥८३॥
 तेन बाणसमूहेन सन्ततेन निरन्तरम् । जात नमस्तल सर्व मूर्तिगुणमिवापरम् ॥८४॥
 मेघवाहनवारेण प्रमामण्डलमुन्दर । आहतो वज्रनक्रश्च विराधितमहोन्मृता ॥८५॥
 विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तम । राजन् वचसि चत्रेण मानुरेणमिवापतित ॥८६॥
 ताडितो वज्रनक्रेण सोऽपि चत्रेण वचसि । विना हि प्रतिदानेन महती आपत्ते श्रया ॥८७॥
 चक्रमुत्साहनिध्वेजन्नमवह्निकणोत्करै । चक्रमुत्साहकुलिङ्गीपपित्रतो गगन गतम् ॥८८॥

इसप्रकारके यचन निरुल रहे थे कि—यह इन्द्रजित् नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार
 देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य हो उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजीतुके
 द्वारा दृष्टि देग्न स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए बटे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओंमें
 ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलानेके शब्दमें व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिसमें आकाश
 अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिसमें प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ घोड़े घोड़ोंसे, हाथी
 हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने नामाके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल
 सैनिकोंसे भिड़ गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत
 गगनस्पर्शी स्वरसे बोला ॥७७॥ 'कि अरे ! पशु तुल्य नीच यानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़
 कर अब तू मेरे वृषित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥७८॥ आन मैं इस नील कमलके समान श्याम
 तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम लक्ष्मण तेरी रक्षा करें ॥७९॥ तदनन्तर
 सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थकी गर्जनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मान कुरी शिखर में अभी
 ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारको धारण करने वाला इन्द्रजित् अङ्कुत
 रूपसे धनुषका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके
 समान छत्र की छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर बाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर
 अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिंचे तथा शब्दसे युक्त बाण इन्द्रजित्
 की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत बाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो
 गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे वीर मेघवाहनने भामण्डलको लक्ष्य
 कर और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गौतम स्वामी श्रेणिकसे कहते हैं
 कि हे राजन ! राजा विराधितने वज्रनक्र राजाकी छाती पर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे
 गिरा दिया ॥८६॥ इसके बटले वज्रनक्रने भी समलकर विराधितकी छाती पर चक्रका प्रहार
 किया मो ठीक ही है क्योंकि बटला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय

१. श्रुतैरथै म० । २. महोत्साहभग म० । ३. समाङ्क्यन् म० । ४. निजरक्षमशरश्च म० ।

५. राजनक्षमि म० ।

लङ्घानाथस्य पुत्रेण निस्त्र सूर्यनन्दनः । कृतं सङ्ग्रामशौण्डेन सङ्ग्रामादनिवर्तकः ॥८६॥
 तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्र निराकृतम् । धुष्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥८७॥
 अपतीर्य ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । मिहस्यन्दनमारुह्य पित्ररीकृतपुष्करम् ॥८८॥
 समाहितमतिर्नानाविद्यान्मगतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो बिभ्रद्भस्त्रवमिवाहवे ॥८९॥
 अश्व घनौघनिर्घोषं समग्रमुच्य सवारणम् । दिशः किंकिण्वराजस्य चकारालोऽरुवर्जिताः ॥९०॥
 तेनापि पवनारोहेण कृतद्रुगध्वजादिना । तदश्वं वाष्प्य क्वापि नांत तूलोत्करोपम् ॥९१॥
 घनवाहनरीरोऽपि प्रमामण्डलमूचत । आग्नेयास्त्रनियोगेन चकार धनुस्त्रिवनम् ॥९२॥
 तस्य स्फुल्लिङ्गसमर्गोऽन्येषामपि चापिनाम् । धूमोद्गगानमुद्यन्त धनुषि भयवीक्षितम् ॥९३॥
 नितान्तमद्भुयोद्धूषणो जीवितप्रमनादिव । प्राप्तानां परमाज्जोऽपि धनुषां ते तदामवन् ॥९४॥
 वारणेन सतोऽश्वेण शरित जनकजम्भजः । आग्नेयास्त्र निराश्वके स्वचक्रे कृतपालनः ॥९५॥
 सतो मन्दोदरीस्तनुधक्ते न रथवन्नितम् । तयाग्निधमहासत्त्वमाकुलश्चविवर्जितम् ॥९६॥
 प्रयोगकुशलश्चाहमश्वं तामसमक्षिपत् । तेनान्धकारित सैन्यं सर्वं जनकजम्भनः ॥९७॥
 ३स मात्रानाद् द्विप न जमा नत्तमीय न च शत्रवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छद्यो मूर्च्छानिव समागतः ॥९८॥

चक्र और फयचकी टक्करसे जो आग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकारा इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई जल्काओके तिलगोके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लङ्घानाथके पुत्र इन्द्रजित्ने सुमीषको नि शस्त्र कर दिया फिर भी वह संमामसे पीड़े नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुमीषने भी वस्त्रके द्वारा इन्द्रजित्के सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक हो है क्याकि पुण्यात्मा जीवांके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर शोध से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतर कर आकाराको पीला करने वाले सिंहोंके रथपर आरुढ़ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसकी बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ । ९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करने वाला वारुण अश्व छोड़ कर सुमीषकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बदले सुमीषने भी छत्र तथा ध्वजा आदिको छेदने वाला पवन घाण चलाया जिससे इन्द्रजित्का वारुण अश्व रुईके समूहके समान फही चला गया ॥९४॥

उपर फौर मेघवाहनने भी आग्नेय वाण चलाकर राजा भामण्डलके धनुषको दग्धन धना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोके सम्बन्धसे अन्य धनुष धारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे मन सेनाने यह भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक घोड़ाओंके प्राण मसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो । ९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाका रक्षा करते हुए भामण्डलने शीघ्र ही वारुण अश्व छोड़ कर आग्नेय अस्त्रा निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्दोदरीके पुत्र मेघवाहनने इस प्रकारके महारगावर्मा एवं आनुलतासे रहित भामण्डलको रथ रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ टाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेमें कुशल मेघवाहनने सुन्दर तामस घाण भी चलाया जिसमें भामण्डलकी ममल सेना अन्धकारसे युक्त हो गई ॥१००॥ यह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शत्रु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था । गाढ़ अन्धकारसे आन्ध्रादित हुआ यह मानो मूर्च्छाओं ही प्राप्त हो रहा था

अन्धामृतो दशास्यस्य सुतेन जनकामन । विमुक्तविपश्मार्धैः वेष्टितो नागसायकैः ॥१०२॥
 तै रमो व्याससर्वाङ्गो विस्फुरज्जोगामासुरैः । चन्दनद्रुममङ्गाय पपात वसुधातले ॥१०३॥
 एवमिन्द्रनितेनापि कृता किष्किन्धमृशत । अवस्थाध्वान्तनागाखद्वयव्यापारकारिणा ॥१०४॥
 तदा विमायगो विद्वान् विद्याधरवस्तुनि । कृत्वा करपुट मूर्ध्नि वभापे पद्मन्त्रमणी ॥१०५॥
 पद्म पद्म महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । एता परय दिशश्चक्षुषा शरैरिन्द्रनितेरितैः ॥१०६॥
 वियत्तल धरित्रो च तस्य चाणैरिन्द्रनितैः । दत्पातमृतनागाभैरातेनेज्यन्तदु स्रष्टे ॥१०७॥
 कृत्वा सुमाववैदेहो निरखो^१ बागमायकैः । वद्धौ निपातितौ मूमौ^२ भयनासुतनि^३ स्रष्टैः ॥१०८॥
 उद्गारे विनिते देव^४ श्रीमामण्डलपण्डिते । वारे सुप्रोवराचै च बद्धविद्याधराधिपे ॥१०९॥
 सद्भातमृषुमरमाकमासन्न विद्धि राघव । एतौ हि नायकावुप्रावस्मत्पश्यस्य केवली ॥११०॥
 एतामनायकामृता विद्याधरवरधिनाम् । पलायनोद्यता परय समग्रश्रित्य दिशो दश ॥१११॥
 आदिपथप्रवणेनामौ परय मारननन्दन । विनिय समुदाबुद्धे कराम्या बद्धविग्रह ॥११२॥
 शरनैरितपद्मदेवमुकासुं ककट^५ । गृह्णात प्रसभ वीर ज्वह्रध्वजपुङ्ख ॥११३॥
 यात्रसुप्रावमात्रैश्च^६ पतितौ धरणोत्तले । न सम्भावयते क्षिप्र रावणो रणकोविद ॥११४॥
 सावनेनै स्वय गत्वा निमग्नवानयम्यहम् । ख साधारण निर्नायामिमा खेचरवाहिनाम् ॥११५॥
 यावदेवममौ पक्ष लक्ष्मण चाभिभापने । सुनारातनयस्तौवद् रावण स्वैरमलक्षित ॥११६॥

॥१०१॥ जन भामण्डल उस तामसयाणसे अन्धा हो रहा था तब मेघनाहनने उसे विपरीत धूम का मूह छोड़ने वाले नागपाशोंसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फलासे सुशोभित उन नागोंसे निम्ना समस्त शरीर व्याप्त था और इसीलिए जो चन्दन वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नाग पाश इन दो अस्त्रों को चलाते वाले इन्द्रजिन्ने भी सुमीनकी दशाकी अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बाँध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर त्रिधामय शत्रोसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा राम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, ये दिशाएँ इन्द्रजिन्ने के द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोंके समान आभावाले, अत्यन्त दुःप्रायी उसके निरन्तर बाणोंसे आक्राश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्दोदरीके पुत्रोंने सुमीन और भामण्डलको अस्त्र रहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग बाणोंसे उन्हें जोधकर पृथिवी पर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय धनुर भामण्डल और अनेक त्रिधाधरोंके राजा वीर सुमीनके पराजित होने पर हे राघव ! समस्त लीजिये कि हम लोगोंका सामूहिक मृत्यु निश्चयवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देखो, यह त्रिधाधरोंकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशा विशाओंमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देखो कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनुमान्को जानकर अपने हाथोंसे उसे कैदकर रक्खा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कण्ठ बाणोंमें जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनुमान बलान् कैद किया गया है ॥११३॥ रण विशाब्द राजपका पुत्र, जब तक पृथिवी पर पड़े हुए सुमीन और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचता है तब तक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनोंको मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित हम त्रिणाग मेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जब तक विभीषण राम और लक्ष्मण

१ म पुनः तेन पाठ 'सर्वाङ्गे विस्फुरज्जोगामासुरैश्चन्दनद्रुम । यथा तथाप तैर्मुक्त पपात वसुधातले ॥' २ निरखो म० । ३ मन्त्रोपनिषत् । ४ देवे म० । ५ भामण्डली ।

अग्नयं भानुकर्णस्य परिधानममुञ्चत । हीभाराकुलितो जातः सेतुदरणविह्वलः ॥११७॥
 यावद्वातः समाधानपरोऽसौ राक्षसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदानिलिः ॥११८॥
 नवो बद्धो यथा पक्षां निर्गतः पञ्जरोदरात् । आसीत्सुचकितो वातिः प्रत्युग्रसुतिसद्वतः ॥११९॥
 ततो मुदितसग्रीवी विमानशिखरस्थितौ । हनूमदङ्गदौ वीरौ रेजतुः सुरसन्निभौ ॥१२०॥
 ताभ्यामङ्गकुमारेण चन्द्रोदरमुत्तेन च । सम लक्ष्मीधरः सेनां समाख्यातयितुं स्थितः ॥१२१॥
 मन्दोदरीसुत तावदभिधाय विभीषणः । स पितृव्यं समालोक्य चिन्तामेतामुपागतः ॥१२२॥
 तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥१२३॥
 नागपाशैरिमौ बद्धौ मृत्युं यातौ विशसयम् । एतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्पणम् ॥१२४॥
 हूतिं सज्जिन्त्य निर्वाताविन्द्रजिन्मेघवाहनौ । गहनाहवमेदिन्याः कृतार्थत्वाभिमानिनौ ॥१२५॥
 भक्तद्वौ सेविते ताभ्यां सम्भ्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरामुक्कङ्कटस्तरलेखणः ॥१२६॥
 उक्तार्थं स्वरधातृवीरस्तथोर्निकम्पदेहयोः । अवस्थान्तरमदाज्ञांशगसायकनिर्मितम् ॥१२७॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽबोध्य पद्मनाभ विचक्षणः । श्रयतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२८॥
 भव्यजितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । धीमामण्डलसुग्रीवौ रीतावस्त्रविमुक्तताम् ॥१२९॥
 रावणस्य कुमारभ्यां शृणुतामुपगमार्णवैः । तत्र स्वयां मया वापि साध्यते किं दशाननः ॥१३०॥
 ततः पुण्योदयात्पद्मः स्मृत्वा लक्ष्मणमग्नवर्चः । तदा स्मर वर लब्धं योग्युपद्रवनाशने ॥१३१॥

से कहता है तब तक सुताराके पुत्र अङ्गदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वस्त्रके संभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जब तक कुम्भकर्ण वस्त्रके संभालनेमें लगता है, तब तक हनूमान् उसकी भुजपाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बँधा पक्षी पिजड़ेके मध्यसे निकलने पर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनूमान् भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलने पर चकित तथा उग्र तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और संतोषसे युक्त वीर हनूमान् और अङ्गद विमानके अप्रभाग पर बैठ देवोंके समान सुरोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाको धैर्य बँधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाय तो पितामें और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सन्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बँधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचार कर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जाने पर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कबच पहिन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतर कर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्चेष्ट पड़े हुए थे । वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देखी ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर युद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिये, जहाँ वे महाविद्याधरोंके स्वामी, अतिशय घलघान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न ये भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अत्र रहित अवस्थाको प्राप्त हो नागपाशसे बाँध लिये गये हैं यहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१२९॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियोंका उपसर्ग दूर

महालोचनदेवस्य तदभिष्यानमाव्रत । सुखावस्थस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥
 भालोऽथविधिनेत्रेण ततो विज्ञाय सम्प्रमा । विद्याया प्राहिणोद्युक्त चिन्तावेग निज गुरुम् ॥१३३॥
 गत्वा कथित स क्षेम सन्देश सादर सुर । साम्यामुक्ते ददौ विधे परिवारसमन्विते ॥१३४॥
 सैह पद्मावदातस्य यानमर्पयदद्भुतम् । समुद्योतितदिकृच्छक सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥
 विधेस प्राप्य सम्मान्य धीरौ चिन्तागति मुदा । पृष्टवार्ता जिनेन्द्राण्य पूजा तौ चन्तु परम् ॥१३६॥
 पर साधुप्रसाद च प्रस्तावे सद्गतोदयम् । सशसनुर्मुदोदारगुणग्रहणत परी ॥१३७॥
 अद्राक्ष्य च सुराक्षाणि भासुराणि सहस्रश चारणाभिमत सृष्टिप्रभृतीनि सुविभ्रमौ ॥१३८॥
 चन्द्रादित्यसमे ध्वजे चारुचामरमण्डिते । रत्नानि च प्रदक्षानि पिहितानि निर्जाजसा ॥१३९॥
 गदाभरण विद्युद्भक्ता लक्ष्मीधर भिता । ह्य समुसल पद्म दैव्यान् भयकारणम् ॥१४०॥
 महिमान पर प्राप्य साम्या सम्मदसद्गत । आशा शतानि कृत्वासी गतो देवस्त्रिबिष्टपम् ॥१४१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुक्तकृतस्यानवद्यस्य धीरैर्ज्ञेयं स्तुत्य फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
 यत्तन्प्राप्य प्रमदकलितः दूरमुक्तोपसर्गां सज्जायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुमुदभूतवायां ॥१४२॥

करने पर हमलोगोंको जो घर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे सुरसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अधिष्ठान रूपी नेत्रके द्वारा सन समाचार जान कर गरुडेन्द्रने शीघ्र ही दो विद्याओं के साथ अपना चिन्तावेग नामका देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल सदेश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दी ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहकी देदीप्यमान करने वाली गरुडवाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीर धीर राम लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्तकर चिन्तागति देवका बड़ा सम्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुडेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी वडे हर्षसे स्तुतिकी प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत देदीप्यमान शस्त्र सामने रखे देखे अर्थात् उस देवने वे सन शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥ सुन्दर चमरीसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान ध्वज तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्भक्ता नामक गदा लक्ष्मणकी प्राप्त हुई और दैत्योंकी भय उत्पन्न करनेवाले ह्य तथा मुसल नामक शस्त्र रामकी प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्तकर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ वह देव अपने स्थानको चला गया ॥१४१॥

गीतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् । जो योग्य समय पर प्रशसनीय एवं अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीर धीर मनुष्योंकी जानना चाहिये । धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही छूट जाते हैं और वे महाशक्तिसे सम्पन्न हो स्वपरका

१. गत्वा कथित. क्षेम सन्देशः म० । २. तयो म० । ३. निधेश प्राप्य । ४. चित्तगति म० ।

५. आन्तां म० ।

आस्तां तान्मनुजजनिताः^१ सम्पदः काञ्चितानां यच्छ्रन्तोष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकथितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकांक्षा येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालाम्बो नाम पष्ठितम् पर्व ॥६०॥



फलप्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी यात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती हैं । इसलिए सुप्तकी इच्छा रखनेवाले हे भव्यजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्ति का वर्णन करनेवाला साठवें पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥



एकपष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवच-द्वयविग्रही । लक्ष्मीश्राव-सलक्ष्माणौ तेजोमण्डलमध्यगौ ॥१॥
 नागारिवाहनारूढो सुकान्तौ पञ्चलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सैह्यारुढेतेनौ ॥२॥
 परपञ्चय कर्तुमुद्यतो परमेश्वरौ । सप्रामादरणीमध्य तेन सद्यतुल्यकटौ ॥३॥
 भद्रतत्त्ववितो जात सौमित्रिर्मिश्रवत्सल । दिव्यातपत्रविभ्रिसदूरभास्करदाधिति ॥४॥
 श्रीशैलप्रमुखेर्वीरैर्भूत इवगतेतनै । दधानस्त्रैश्च रूपमशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥
 अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादित्यभास्वरम् । दृष्ट विभीषणेनेद् जगद्विस्मृततेजसा ॥६॥
 गरुडनेतने तस्मिन् सग्रासे तत्तथायनम् । अद्य सान्तमस ह्यपि गत गरुडतेजसा ॥७॥
 गरुमपचवातेन चोभितचारसिन्धुना । नाता विपथरा नारा कुभावा इव साधुना ॥८॥
 ताव्यपचवितिसुक्तमपूतालोक्तमङ्गतम् । जाम्बूनदरसेनैव जगदासीद्विनिमित्तम् ॥९॥
 ततो नभश्चराधीशो गतपद्मगन्धर्वौ । प्रभामण्डलसुग्रावी समाश्वासनमावतु ॥१०॥
 मुखेन प्राप्य निद्रा च रत्नाशुक्तसमावृतौ । अलगद्गलतारेखासमलङ्कृतविग्रहौ ॥११॥
 अधिक भासमानाङ्गी ध्यकोपद्मासविनिर्गमी । निद्राक्षयै पर कान्ती स्वस्वसुखाविबोधिती ॥१२॥
 ततो विस्मयमापन्ना श्रीवृक्षप्रथितादय । विद्याधरगणाधीशः पश्यन्नु कृतपूजना ॥१३॥
 नाथावापसु वानेका दृष्ट्वा न जागृष्विह । विभूतिरकृता जाता कुतश्चिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिनके शरीर दिव्य कवचोंसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमें गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड वाहनपर आरूढ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमें स्थित थे, सिंह तथा गरुड चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पञ्चका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१-३॥ जिन्होंने दिव्यद्वज के द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दी थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शीघ्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनुमान् आदि प्रमुख वानरवशी वीरोंसे विदे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करने पर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एक-साथ उन्नत हुए गारह सूर्यसे ही मानो वेदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह वस प्रकारका सयन तामस अत्र गरुडके तेजसे न जाने कहाँ चला गया ॥७॥ लज्जण समुद्रके जलको चोभित करनेवाली गरुडके पट्टोंकी वायुसे सय नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा खोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुडके पट्टोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्पर्शरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुप्तसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कम्बलोंसे आवृत थे, सर्परूपी छताओंकी रेखाओंसे जिनके शरीर अलङ्कृत थे अर्थात् जिनके शरीरमें नागपाशके गडरा पड़ गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक मुशोभित थे, और जिनके रत्नासोच्छ्वासका निकलना अन स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुप्तसे सोये पुरुष निद्राक्षय होनेपर उठ बैठते हैं ॥११-१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए श्रीवृक्ष आदि विद्याधर राजाओंने

वाहनावस्सम्पत्तिरावपत्रे परा सुति । ध्वजो रत्नाणि चित्राणि श्रूयते दिव्यमादशम् ॥१५॥
 पद्मनाभस्तताऽगादात्तश्चो हृषडनमा मन । वनसर्गे च शैलाग्रे देशगोत्रविभूषयो ॥१६॥
 चतुराननयोगेन स्थितयोर्देवनिमित्तम् । प्रातिहार्यं समुद्भूत केवलं च सुरागमम् ॥१७॥
 गरडे द्रव्य तोष च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुध्यानप्रयोगेन महाविद्यासमागमम् ॥१८॥
 ततस्तेऽपहिता ध्रुवा परमा योगिसङ्ख्याम् । इन्द्रभूषु परिप्राप्ता प्रमोदं विक्रानना ॥१९॥

चशस्थवृत्तम्

इहैव लोके विकट पर बसो मतिप्रगल्भ वसुदारचैदितम् ।
 भवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भवयापितसापुसवया ॥२०॥
 तथा न माता न पिता न वा सुहृन् सहोदरो वा कुक्ते नृणां प्रियम् ।
 प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमा यथा हित पर साधुजन शुभोदयाम् ॥२१॥
 इतिप्रशसापितमाविताभिर जिनेन्द्रमार्गोक्तिविस्मिता परम् ।
 मल सनारायणमाश्रिता कभुर्मुहाविभूषा समुपाश्रिता गुपा ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भग्याम्भोजमहासैशुसवकर्त्री ध्रु वा पवित्रा कपा
 सर्वे हर्षमहारसोद्दिगिता प्राप्ति दधाना पराम् ।
 तीन्द्रोक्तिपुण्डराकनयनी सम्प्रसदेवार्चनी
 ते विद्याधरपुङ्गवा सुरसमा सर्वाभिरुचयम् ॥२३॥

पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूछा कि दे नाथ । आप दोनोंकी विपत्तिके समय जो पहले कभी देखने
 में नहीं आइ ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिये ॥१३-१४॥ बाहन,
 अस्त्ररूपा सपत्ति, धन, परम कान्ति, धनार्थ और नाना प्रकारके रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए
 हैं वे सब दिव्य हैं, नैवोपनात हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सभके लिए
 कहा कि एकनार दशार्धविल पर्यंतके अग्रभाग पर देशभूषण और कुलभूषण मुनियाको उपसर्ग
 हो रहा था सो मैं यहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजाको
 वेचल स्नान उपन हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य
 उद्गम हुए, दयाका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे सतुष्ट हुआ और उससे हम घरका प्राप्ति हुई ।
 इस समय उसी गरुडद्रुपे ध्यानसे इन महाविद्याओंकी प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ तदनन्तर
 साधवान हो मुनियाकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और उनके
 मुखरमल हर्षसे विकसित हो रहे थे । ऐसे उन सब विद्याधर राजाधाने कहा कि ॥१९॥ भक्ति
 पूर्वकता हुई साधुसेवासे प्रभावसे मनुष्य इसाभवम चिराल उत्तम यश, बुद्धिका प्रगल्भता,
 उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिकी प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिचन उत्तम बुद्धिकी धर्मेन लगा
 कर मनुष्याका जैसा भाव्यसे सपन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न
 पिता करना है, न मित्र करता है और न सगा भाई हा करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल
 तप प्रशसा कर निदाने अपना भावनाएँ समर्पित का थीं और निनेन्द्रमार्गों उन्नतिमें जा परम
 आश्रयका प्राप्त हो रहे थे, ऐसे महाविभूषसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त
 सुराभित हो रहे थे ॥२२॥ इस तरह भव्य जाय रूपा कयलादे उत्तवका करने वाला पवित्र

घंशस्यवृत्तम्

नृपाक्षपुण्यो जननान्तरे जन करोति योग परमैरिहोमवै ।

न केवल स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनान् ॥२७॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सुग्रीवभामरुद नसमाद्यासन नामैकपट्टिम पत्र ॥६१॥



कथा सुनकर जो हर्ष रूपी महारसके सागरमें निमग्न हो परम प्राप्तिमें धारण कर रहे थे, तैमे देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंमें धारण करने वाले उन देव पूजित राम-लक्ष्मणकी सत्र प्रकारसे पूजा की ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तरगम पुण्यका सचय करने वाला मनुष्य, इस ससारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम तन्मयासे संयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको धिरेकाकर अन्य लोगोंका भी अत्यधिक वैभवके साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरा को भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामने प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामरुद नरा नागपारा से युक्त हो आश्विन प्रासिका वर्णन करने वाला इक्ष्मठना पत्र समाप्त हुआ ॥६१॥



द्वापष्टितमं पर्व

अपरेषुमहोद्भूतविक्रमोऽन्मजोविदा । युद्धार्थोपात्तसम्भारा रणशौण्डाः समुद्युः ॥१॥
 वानरायैः खमालोभ्य सैन्यैर्व्याप्त निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसन्निभ श्रुत्वेभास्वध्वनिं तथा ॥२॥
 भ्रम्युजितमतिमानां सादरोऽमरविभ्रमः । सत्त्वप्रतापसयुक्तः सैन्याणवसमावृतः ॥३॥
 तेजसा शस्त्रजातेन ज्वलयाद्यैश्च विष्टम् । कैलासोद्धारवीरोऽपि निरैर्द्रात्रादिभिः समम् ॥४॥
 उद्गता बद्धवचाः सङ्ग्रामात्यर्थलालसाः । नानायानसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥
 पूर्वांनुग्रहमङ्गोभमहारीरवसन्निभाः । परस्पर भटा धीराः लग्नास्ताडनकर्मणि ॥६॥
 चक्रश्चपाशामिषट्पाष्टिघनमुद्गरैः । कनकैः परिघाचैश्च गगन गह्वर्नीकृतम् ॥७॥
 लग्नमर्धायैर्मर्धायैर्गजैर्गजैर्गजैर्गजैः । रथिनश्च महाधोरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥
 सैह सैह न पादान् पादातेन च चञ्चलम् । सम महाहव कर्तुमुद्यत समविजयम् ॥९॥
 ततः कापिञ्चज सैन्य रघोर्घोषैः पराजितम् । नालादिभिः पुनर्नीतं शस्त्रसम्पातयोग्यताम् ॥१०॥
 भूयोऽलघिस्त्रलोललोल्लङ्घेन्द्रपाधिवाः । इमे समुद्यपुर्दंष्ट्रा निजसैन्यपराभवम् ॥११॥
 विपुद्गदनमारीचचन्द्रार्कशुक्रसारणाः । व्रतान्तष्ट्रयुजोमृतनादसङ्कोधनाद्यः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणवाङ्कुरे धीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरांकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शङ्ख और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज सुन कैलासको उठानेवाला धीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निरुत्था । रावण अत्यन्त घलघती बुद्धिका धारक था, मानी था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शस्त्रसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२-४॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच धाँध रक्खे थे, जिन्हें संग्रामकी उत्तम लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके वाहनोंपर आरुढ़ थे, नाना प्रकारके बड़े बड़े शस्त्र जिन्होंने धारण कर रक्खे थे और जो पूर्वांनुग्रह मोक्षके कारण महानारण्यके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर वीर योद्धा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, वक्रच, पाश, रज्ज, षष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, फनक तथा परिष आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके समूहके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके संगम्य गया, महा धीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ रड़े हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चञ्चल तथा समान पराक्रमकी धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो गजस योद्धाओंने वानरांकी सेनाको पराजित कर दी, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उमे पुनः शस्त्रधर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त करा दी, अर्थात् वानरोंकी सेना पहले तो कुछ पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः शस्त्रधर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चात् अपनी सेनाका पराभव देख, समुद्रकी तरफोंसे समान पद्मल लहरोंसे निम्नादिन गज पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विपुद्गद, मारीच, चन्द्र

१. निम्नम म० । २. अश्वानां मन्द । ३. गजानां मन्द । ४. मोक्षम म० । ५. वक्रचम म० । ६. विपुद्गद म० ।

भज्यमान निजं सैन्यं वीक्ष्य तैः राजसोचमैः । कपिष्वजमहायोधाः परिप्रायुः सहस्रशः ॥१३॥
 प्रस्ता राजससैन्यास्तैरच्छितैर्विधायुधैः । महाप्रतिभयैर्वीरैर्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥
 निजसैन्यार्णवं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविरासेन कपिप्रलयवर्द्धिता ॥१५॥
 लङ्केः कोपनो योद्धुं बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपश्रोपमान् दूरं विक्षिपन् शत्रुमैनिकान् ॥१६॥
 ततः पलायनोद्युक्तान् परिपाल्य तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणः ॥१७॥
 आहवेऽभिसुखाभूतं भ्रातरं वीक्ष्य रावणः । यमाणं पृथुकज्योषो वाक्यमादरवर्जितः ॥१८॥
 कनीयानसि स त्वं मे भ्राता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पाम्नो मास्यां न त्वां शनोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥
 विभीषणकुमारेण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्वं मे नीतः किमवमर्ष्यते ॥२०॥
 ततः कुमारकोपस्त पुनरप्याह रावणः । ह्रीष क्षिप्रं धिगस्तु त्वां नरकात् कुचेष्टितम् ॥२१॥
 त्वया व्यापादितेनापि नैव मे जन्यते छतिः । भवद्विधा हि नो योग्याः कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥
 यद्विद्याधरस्तन्तान त्यक्त्वा शूद्रोऽप्यमाश्रितः । कर्मणामतिदूराभ्याग्नैर्न त्यक्त्वेत्तं शासनम् ॥२३॥
 ततो विभीषणोऽबोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याण भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥
 एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्थ श्रेयः स मेच्छसि । रावणेण समं प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥
 अभिमानोद्धतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । आ कलङ्क स्ववशस्य कार्यावीप्सिभिर्मितकम् ॥२६॥
 अथवा मर्गमिष्ट ते क्षुरपे यत्र भूयः । मोहस्य तुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

अर्क, शुक, सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि ॥१३॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख वानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१४॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महामयकर, धीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंको धारक उन वानर योद्धाओंने राजसोंकी सेनाको धर ववाई ॥१५॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित वानर रूपी प्रलयानिके द्वारा अपनी सेना रूपी सागरको सब ओरसे पिटा जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सुने पत्तोंके समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करनेके लिए म्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर वानरोंकी शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए खड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सन्मुख राड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ यह पचन योद्धा कि तू छोटा भाई है अतः तुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, खड़ा मत रह मैं तुझे देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने बड़े भाई—रावणसे कहा कि तू उसके द्वारा मेरे मामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ पश्चात् विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संश्लिष्ट ! नरकात् ! तुझ कुचेष्टीको धिक्कार है ॥२१॥ तुझे मार डालनेपर भी मेरा यग नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न तुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उन्नत करनेके योग्य हैं ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेमे त्रिज श्वासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुझ मूर्खने भी विद्यावर्गको मन्त्रानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! मेरे कल्याण के लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें जन्मे पर भी यदि श्रपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और सीताको सन्निहित कर दे । अहंकार छोड़कर रामकी प्रसन्न कर स्त्रीके निमित्त अपने वंशकी कल्याण कर ॥२५॥ तुझे मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो तू ही है, क्योंकि कि

त्रिनिशम्य वचस्तस्य तरुणमोघसङ्गतः । निशात वाणमुद्दृष्ट्य समधावत रावणः ॥२८॥
 रथाश्ववारणाऋदाः स्वामितोषे हि तत्पराः । अन्येऽपि पाथिवा लज्जा रणे सुभटदारणे ॥२९॥
 आयातोऽभिमुख तस्य राक्षसेन्द्रस्य रहसा । अष्टमीचन्द्रवक्त्रेण ध्वज आन्तेपुणाऽच्छिनत् ॥३०॥
 तेनापि तस्य सरभसम्भारात्रान्तचेतसा । धनुर्द्विधाकृत चिप्वा सायकं निशिताननम् ॥३१॥
 ततोऽपरमुपादाय चापमाशु विभीषणः । द्विधाकरोदनुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥
 एव तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसङ्घये । जनकस्य पर भक्तः शक्रजियोद्घुमुचयी ॥३३॥
 लक्ष्मणाधरेण रद्धोऽसौ पर्वतेनेव सागरः । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽप्रतः कृतः ॥३४॥
 ययौ सिंहकटि नीलो युद्धशम्भु तथा नलः । स्वयम्भु दुर्मतिः क्रुद्धो दुर्मर्षोऽपि घटोदरम् ॥३५॥
 दुष्ट शक्राशनि कालिस्तथा चन्द्रनख नृपम् । स्कन्दो भिन्नाञ्जन विघ्न विराधितनराधिपः ॥३६॥
 एषात मयमहादैत्यमङ्गदो भासुराङ्गदः । कुम्भकर्णस्तु कुम्भ समीरणसमुद्भवः ॥३७॥
 'किष्किन्धेशः, समात्याख्य केतु जनकनन्दनः । काम दृढरथः क्षुब्ध शोभणाभिः पयर्मूर्जितम् ॥३८॥
 अन्येऽप्येव महायोधा यथायोग्य परस्परम् । आरेभिरे रण कर्तुमाह्वानमुखरानना ॥३९॥
 गृहाण प्रहरागच्छ जहि ध्यापादयोद्विर । विन्धि भिन्धि क्षिपोत्क्षिप्त क्षिप्त दारय धारय ॥४०॥
 यथान स्फोटयार्कपं मुञ्च चूर्णय नाशय । सहस्व दस्व नि सर्प सन्धस्त्रोच्छ्रय कक्षय ॥४१॥
 किं भीतोऽसि न हस्मिन्वा धिक् त्वा कातरको भवान् । कस्य विभेसि नष्टोऽसि मा कम्पिता क्रगम्यते ॥४२॥

मनुष्योंको भी इस बलवान् मोहका तिरना अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीव्र वाण चढाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर रहने वाले, रथों, घोड़ों और हाथियों पर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करने वाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर वड़े वेगसे सन्मुख जा कर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल घूमने वाले वाण से रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके भार से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीव्रणमुख वाण चला कर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ पश्चात् प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करने वाला महायुद्ध चल रहा था तब पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोक्ता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोका और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नील, सिंहकटि (सिंहजघन)के सन्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्षने कुम्भोदरका, दुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नाञ्जनका, विराधित राजाने विघ्नका, देवीप्यमान केयूरके धारक अङ्गदने प्रसिद्ध, मय नामक महा दैत्यका, हनुमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुग्रीवने सुमालीका, भामण्डलने केतुका, दृढरथने कामका और क्षुब्धने शोभण नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय घुलानेके शब्दमें जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे पहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मार डालो, छेरो, भेदो, फेंक दो, उठो, घेंटो, रखे रहो, विदागण करो और धारण करो ॥४०॥ बांधो, फाँड़ डालो, पसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, संधि करो, उग्रत हो ओ, समर्थ बनो । तू क्यों टर रहा है ? मैं तुम्हें नहीं मागता, तुम्हें धिक्कार है, तू बड़ा पातर है, तुम्हें धिक्कार है, तू क्यों क्षम्यत हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? क्षम्यत मत दो,

अथ स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । मुग्धतेऽथ यथा मृष्टं न तथा मुच्यते रणे ॥४३॥
 गजितैरिति धीराणां तूयनादैस्तयोद्धतैः । वदन्तोऽपि दिशो मत्ताः चतुर्नामान्यकारिताः ॥४४॥
 चक्रशक्तिगदायष्टिकनकाष्टिपनादिभिः । दृष्टालमिव सज्जानं गगनं भीषणं परम् ॥४५॥
 रत्नाशोभनं किं तत् किं वा श्लिष्टकाननम् । परिभद्रदुर्मारण्यमुत जातं चत बलम् ॥४६॥
 कश्चिद्विपदित दृष्ट्वा कङ्कटं विज्वलन्धनम् । मन्थये त्वरित भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ॥४७॥
 कश्चिन्सन्ध्यायं दन्ताग्रैः खड्ग परिकरं दृढम् । यथा दीपः पुनर्यौदुष्य श्रममुत्तं प्रवर्तते ॥४८॥
 मत्तवारणदन्ताग्रपुतवक्ष्यलोऽपरः । चक्षुर्गणसमुद्धूतैर्वीजितः कर्णचामरैः ॥४९॥
 उत्तारिष्यामि कर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तो यज्ञे सतः शिरसे सम्प्रसार्य भुजद्वयम् ॥५०॥
 धानुपर्वतमङ्गाराः केचित् चतुर्गजमङ्गराः । समुचः शोभरासारसेऽव्योदितमृच्छितम् ॥५१॥
 पर्यस्ता भूतले केचिद्विशोः शास्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदुरीष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२॥
 उपमहन्त्य सरम्भ त्यक्तशस्त्रास्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा प्यायन्तः परमाचरम् ॥५३॥
 विपाणकौटिमसत्तपाणयः केचिदुल्कटाः । आन्दोलन गजैर्द्वानामप्रतः समुपासिरे ॥५४॥
 रक्तखट्वां विमुञ्चन्तश्चक्षुः शास्त्रपाणयः । कट्या नर्तन चक्रुः शतशोऽभिधयानकम् ॥५५॥
 केचिद्विपनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकट्टाः । प्रविष्टाः सलिल विलेष्टा जीविताशपरादुमुखाः ॥५६॥

तू अरेला कहाँ जायगा ? ॥४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ॥४३॥

इस प्रकार धीर-वीरोंकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकार युक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हो ॥४४॥ चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आर्घि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सबने निगलनेके लिए दाढ़ि ही धारण कर रहा हो ॥४५॥ खुनसे लथपथ चायल सेनाको देर कर ऐसा संदेह होता था कि क्या यह अशोकका लाल बन् है ? या पलाशका फानन है, या पारिमत्र वृक्षोंका बन् है ? ॥४६॥ किसीका कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उसप्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेहके टूट जाने पर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥४७॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोंके अग्रभागसे तलवार तथा हाथोंसे कमर कस कर भ्रमरहित हो फिरसे युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥४८॥ मद्योन्मत्त हाथीके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल चायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चञ्चल कानोंसे ऊपर उठे हुए कर्णचामरोंसे योजित हो रहा था ॥४९॥ जिसने रत्नों का कर्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसार कर हाथोंके दाँतोंके बीच सो रहा था ॥५०॥ जिनसे खुनके निर्मल भर रहे थे तथा जो गोलके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओंने जलकणोंकी वर्षाके सिञ्चनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ॥५१॥ जो ओठ हस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और देदी मौँहोंसे जिनके मुख भयंकर दिग्ग रह रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवी पर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ॥५२॥ कितने ही धीर वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शत्रुका त्याग कर परब्रह्मा ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५३॥ कितने ही प्रचण्ड वीर स्त्रीसोंके अग्रभागकी हाथोंसे पकड़ कर हाथियोंके आगे मूला मूला रहे थे ॥५४॥ जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों उल्लते कवच—शिररहित घड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥५५॥ जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दुर्ग्री योद्धा, जीवनकी आशासे विमुक्त हो शस्त्र

१. मुञ्चतेऽपि म० । २. तदुन्नतेः म० । ३. पारिमत्रकुमारणा म० । ४. सद्भूतः म० ।

५. निमुञ्चन्ति म० ।

इंद्रो ममरे जाने लोकसन्त्रासकारिणि । परस्परममुद्भूतमहाभटपरिचये ॥५७॥
 महेन्द्रजिद्वयो वागैलंघमीमन्त सिताननैः । लघ्नरक्षादयितु वीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥
 महातामसरात्र च भीम शत्रुजिद्विचिपत् । विनाशं भानवीयेन तदस्त्रेणानयद्रिपुः ॥५९॥
 तमुग्रै शत्रुजिद्वभूयः शरैराश्रयिषाम्कैः । आरब्धो वेष्टितु क्रुद्धः सरथं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥
 येनतेयास्त्रयोगेन नागास्त्रं स निरासरोत् । पूर्वोपाच यथा पापजाल योगी महातपः ॥६१॥
 ततोऽमत्यगणान्तरस्थ हस्तिवृन्दस्यलातृतम् । विरथ लक्ष्मणश्चक्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥
 पाण्डयन् स निज सैन्य वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्तास्त्र महाध्वान्तपिहितारिद्रास्यकम् ॥६३॥
 विद्याया तपनास्त्र च हत्वा तस्य विचिन्तितम् चिक्षेपेच्छाष्टवाकारानाश्रीमुखशिलांमुखात् ॥६४॥
 मद्ग्रामाभिमुखो नागैः कुटिल व्यासविग्रहः । इन्द्रजिष्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥
 पद्मेनाऽऽदित्यकर्णोऽपि सुयुद्धे^३ विरघोऽकृतः । आदित्यास्त्र शनैर्हत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥
 सग्रेष्टव सर्वतो नागैः पतितो धरणीतले । पुरेव बाहुबलिना श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥
 'चित्र श्रेणिक ते बाणाः भवन्ति धनुर्वाभ्रिता । उल्कांमुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥६८॥
 क्षण बाणः क्षण दण्डः क्षणं पाशात्त्वमागताः । आमरा ह्यस्त्रमेवास्ते यथा चिन्तितरूपगाः ॥६९॥
 कर्मपातैर्यथा जावो नागपाशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पद्माज्ञां प्राप्याऽऽश्रमीये रथे कृतः ॥७०॥

छोड़ पानीमें धुस गये ॥५६॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करने वाला, लोक संत्रास
 फारी महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्रजित् तोष्ण बाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को
 आच्छादित करनेमें लीन थे ॥५७-५८॥ इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक रात्र
 छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने
 नाग बाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया । तब
 लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्र को उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपसी
 योगी पूर्वोपार्जित पापोंके समूहको दूर कर देता है ॥६०-६१॥

तदनन्तर मन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मण
 ने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाको रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने
 ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महा अन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मण
 ने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्का मनोरथ नष्ट कर दिया और इन्द्रजित्नुसार आकृतिको धारण करने
 वाले नागराज छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर
 नागोंके द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा
 था वसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ तब रामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर
 तथा नागास्त्रों फलावर युद्धमें भानुकर्णको रथ रहितकर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार बाहुः
 चलाने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बाँध लिया था, उसी प्रकार रामने भी भानुकर्ण
 को सथ औरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतल पर गिर पड़ा ॥६७॥
 गीतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे बाण चड़े हो विचित्र थे । जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते
 थे तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुखवाले हो जाते थे और शरीरपर
 जाकर नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे बाण क्षण भरके लिए बाण हो जाते थे, क्षण भरमें दण्ड-
 रूप हो जाते थे और क्षण भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सथ रात्रोंके भेद देवो-
 पनीन थे तथा गज पाश रूपको धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार
 मंसारा प्राणी कर्मरूपी पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित

१. रिपु म० । २. दन्ता म० । ३. युद्धो म० । ४. म० पुस्तके ६८-६९तमसंस्कृतमें
 'निराश्रयान्ते दृष्टा पीनान् मनन्तः । शस्त्रज्जलपिलामेन वनिद्रव्यरदिना ॥' एवं श्लोकोऽपि सन्ति ।

मन्दोदरीमुनोऽप्येव बह्वो नारायणाज्ञया । विराधिनेन याने स्वे स्थापित इत्यन्तविग्रह ॥७१॥
 तावद्गणमुनेऽभागीद् दशवक्त्रा विभीषणम् । सद्बुद्धोऽमिमुष्वाभूत् चिर 'सोद्वारणमियम् ॥७२॥
 प्रहारमिममेक मे प्रतीच्छ यदि मन्यस । सत्य पुरयमागमान रणकण्टकप्रचण्डकम् ॥७३॥
 इयुक्त्वा विस्फुरपिङ्गफुलिङ्गालिङ्गिताम्बरम् । शूल चिक्षेप लुप्तोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे शरे ॥७४॥
 त भस्माकृतमालोक्त्य शूलमत्युग्रमायुधम् । अधिक रावण क्रुद्ध शक्ति चगाह दाहनाम् ॥७५॥
 यावत्परयति सञ्ज्ञातमप्रतो गरुडेष्वनम् । प्रदिन्द्रीवरसङ्काश भामुर पुष्पोत्तमम् ॥७६॥
 प्रलयाम्मोदसम्भारयगम्भीरोदारनिस्वन । विशयर्द्धमुखोऽत्रोचत् तमेव साड्यक्षिर ॥७७॥
 अन्यस्यैव मया शस्त्रमुद्यत वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासजता मम ॥७८॥
 अभिवाञ्छसि मत्तुं वा यदि दुर्भेत लक्ष्मण । प्रतीच्छेय प्रहार मे तिए प्रगुणविग्रह ॥७९॥
 विभीषण समुत्सार्य सोऽपि हृष्टैः मानवान् । दशास्यमभिदुद्राव चिर सद्ग्रामवेदितम् ॥८०॥
 नि मर्पत्तारकाकारस्कुलिङ्गनिकरा तत । चिक्षेप रावण शक्ति कापमभारसङ्गत ॥८१॥
 वज्रस्तस्य तथा भिन्न महाशीलवनेषमम् । अमोघक्षेपया शक्त्या दिव्यया यन्तद्वीप्रया ॥८२॥
 लक्ष्मणोरसि मा सक्ता भामुराङ्गमनोहरा । परमप्रेमसम्बद्धा शोभने स्म वदूचित ॥८३॥
 गाढप्रहारटु खार्त्त स परायणविग्रह । महातल परिप्राप्तो गिरिवज्राहतो यथा ॥८४॥

हो गया । तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ वधर जिसका शरीर बेचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्की भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमें क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणनियाको सहन करने वाले विभीषणने कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सबमुच ही रणकी रोजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहार की मेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोसे आगशको व्याप्त करने वाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने बाणासे बीचमें ही समाप्त कर लिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयङ्कर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देख रावणने अत्यन्त क्रुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्योंही सामने देखा है तो उसे आगे रखे हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुष्पोत्तम, लक्ष्मण दिखायी दिये ॥७६॥ लक्ष्मणकी देह प्रलय कालीन मेघ समूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताडन करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जन मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट रखे होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार मेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनायीसे विभीषणको अलगकर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे रोंद खिन्न हो गया था ऐसे रावणके सन्मुख दीडा ॥८०॥

तदनन्तर क्रोधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओके समान तिलगाका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाना तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान था ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके तटके समान लक्ष्मणका वज्रस्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वज्रस्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीने समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी थे तथा जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्रसे ताडित पर्वतने समान पृथिवी पर गिर

दृष्ट्वा त पतित भूमौ पद्म पद्मामलोचन । विनियम्य पर शोक शत्रुघातार्थमुद्यत ॥८५॥
 सिंहयुक्तं समारूढं स्यन्दनं क्रोधपूरित । शत्रुमायातमात्रेण चकार विरथ बला ॥८६॥
 रथान्तरं समारूढश्चिह्नपूर्वशरासन । यावच्चाप समादत्ते भूयोऽथ विरथीकृत ॥८७॥
 पद्मामस्य शरैर्ग्रस्तो दशाम्यो विह्वलीकृत । न समर्थो बभूवुषु ग्रहातु न च कार्मुकम् ॥८८॥
 लोटितोऽपि शरैस्तान्निस्तथापि धरणांतले । रथे विलोक्यते भूयो रात्रिं स्वेदमद्गत ॥८९॥
 विच्छिन्नचापकवच षड्वार विरथीकृत । तथापि शक्यते नैव ॥ साधयितुमश्रुत ॥९०॥
 प्रोक्तश्च पद्मनाभेन पर प्राप्तेन विस्मयम् । नात्पायुष्को भवानव यो न प्राप्नोऽसि पञ्चताम् ॥९१॥
 मद्याहुमेरितैर्वाणैर्वेगवज्जि शिताननै । महाभृताऽपि शर्यन्ते मन्थेऽन्यत्र किमुन्यताम् ॥९२॥
 तथापि रक्षितं पुण्यैर्जन्मान्तरसमजितै । शृणु अल्पामि किं चित्ते वचनं लेखराधिप ॥९३॥
 सप्तप्राप्तेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्या ख्या ॥ इत । प्रेतस्याभिमुखं तस्य बाक्षे यद्यनुमन्यसे ॥९४॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रार्थनामभङ्गदुर्विध । ययौ दशाननो लङ्कामृद्वयाऽऽखण्डलसन्निभ ॥९५॥
 एकस्तावदप्य ध्वस्तो मया शत्रुमेहो कट । इति किञ्चिदुच्यते प्राप्नो विवशं भवनं निजम् ॥९६॥
 अन्विष्य विलतास्तत्र बोधान् विमान्तवत्सल । विवेशान्तं पुरं धारो दर्शनभ्रमनोदन ॥९७॥
 निरद्वं भ्रातरं श्रु वा पुत्राचरणकारिणी । शोचन् प्रियजन परयन्नाशा चक्रे दशानन ॥९८॥

पडे ॥८४॥ उन्हें भूमिपर पडे देर कमल लोचन राम, तीन शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंह जुते रथपर बैठे एव क्रोधसे भरे यलवान् रामने सामने जाते हा शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जन तक वह दूसरे रथ पर चढता है तब तक रामने उसका धनुष तोड दिया । तदनन्तर वह जन तक दूसरा धनुष उठाता है तब तक उसे पुन रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके वाणासे म्रत हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो वाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥८८॥ यद्यपि रामने तीन वाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लुटा दिया था तथापि वह स्नेह रित्त हो पुन दूसरे रथपर आरूढ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोडा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोडे हुए वेगशाली तीक्ष्णमुख वाणोंसे पहाड भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होतेपर भी जन्मान्तरमे संखित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है । अब हे विद्याधरराज ! सुन, मैं तुम्हसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ सप्ताममं सामने आये हुए मेरे जिस भाईको तूने शक्तिके द्वारा घायल किया है वह मरनेके सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख लें ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भङ्ग करनेमे दरिद्र था और इन्द्रके समान जिसकी शोभा बढ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' कह कर वैभयके साथ लङ्काकी ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महानलयान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमे कुछ धैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमे प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर वीर रावणने घायल योद्धाआकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिमे देखा तथा इस तरह उनका स्नेह दूर कर अन्त पुरमे प्रवेश किया ॥९७॥ भाई दुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंको शत्रुके पास रका सुन रात्रि शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंकी ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेका आशा की ॥९८॥

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्व्यतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्र कर्मणो भावयन्ते फलमविरतयोगाग्मन्तवो भूरिभावा ॥६६॥
यनति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाश इतरिपुरपरश्च स पद याति धीर ।
विकल्पितपृथुशक्तिचन्धन सेवतेज्ज्यो रविरचितपदार्थोद्भासने हि प्रवाण ॥१००॥

इत्यापे धीरविप्रेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिसत्तापामिधान नाम द्वापष्टितम पर्न ॥६२॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जोष, अपने त्रिविध आचरणोंके अनुरूप पूर्वभवामें जो कर्मका सञ्चय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पडता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥६६॥ इस ससारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर धीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे चन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्प नाममें प्रसिद्ध, रनिप्रेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनके दु गमा वर्णन करनेवाला वासठना पर्न समाप्त हुआ ॥६२॥

त्रिपष्टितमं पर्व

तत समाकुलस्वान्त पद्म शोकेन ताडित । परिप्राप तमुद्देश यत्र तिष्ठति लक्ष्मण ॥१॥
निविचेष्ट तमालोक्य चित्तिमण्डलमण्डनम् । शक्याऽऽलिङ्गितवक्षस्क पद्मो मूर्च्छामुपागत ॥२॥
सम्प्राप्य च विराट् सज्ञा महाशोकसमन्वित । दुःस्नाग्निदीपितोज्ज्वल विप्रलापमसेवत ॥३॥
हा वत्स विधियोगेन महादुर्लभमर्णवम् । उत्तार्य सङ्गतोऽप्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥
अपि मद्गन्धिसन्धेष्टो मदर्धं सततोद्यत । क्षिप्र प्रयच्छ मे वाद्य किं मीमेनावतिष्ठसे ॥५॥
जानास्येष वियोगे ते मुहूर्त्तमपि नो सहे । कुर्वालिङ्गनमुत्तिष्ठ क्व गतोऽसौ तवाद्गर ॥६॥
अद्य केयूरदृष्टौ मे भुजावेत्ती महायती । भावमात्रकरी ज्ञातो निष्किंवा निष्प्रयोजनौ ॥७॥
निक्षेपो गुरभिरुच मे प्रयत्नेव समपित । गवा किमुत्तर तेष्यो दास्यामि त्रययोजित ॥८॥
ए सौमित्रि क्व सौमित्रिरिति गाढ समु सुक । लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रव्यति प्रेमनिर्भर ॥९॥
एन पुरुषधीराणां हारयिवा त्वकामहम् । मन्ये जीवितमा मीय हत निहतपीरय ॥१०॥
दुष्कृतस्योदगस्थस्य रचितस्य भवान्तरे । फलमेतन्मया प्राप्त सीतया मे किमन्यथा ॥११॥
यस्या कृते 'क्षतोरस्क शक्या निर्दयनुज्ञया । भवन्त भूतले सुप्त पर्यामि दृढमानस ॥१२॥
कामार्थां सुलभा सर्वे पुरस्स्यागमास्तथा । विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥
पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थान पर्यामि तत्रनु । यस्मिन्नवाप्यते आस्ता जवनी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीड़ित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षस्थल शक्तिसे आलिङ्गित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकार स्वरूप लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जन सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एव दुःख रूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोगसे इस दुर्लभ सागर को उल्लंघन कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स ! तू सदा मेरी भक्तिमें सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अब शीघ्र ही मुझे वचन दे-मुमसे वार्तालाप कर मीनसे क्या बैठे है ? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अब उठ आलिङ्गन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥६॥ आन बाजूबन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गई, तेरे बिना सर्वथा निष्फल और निष्किय हो गई ॥७॥ माता पिता आदि गुरुजनोंने तुझे धरोहरके रूपमें प्रयत्न पूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जा रहित हुआ आकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? ॥८॥ प्रेमसे भरे समान लोग अत्यन्त उत्सुक हो मुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥९॥ तू वीर पुरुषोंम रत्नके समान या सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थ होन हुआ अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरमे जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदय में आ रहा है । और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे बिना सीतासे क्या प्रयोजन है ? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय-नागणने द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षस्थल विष्टोण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथिवी पर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥१२॥ इस समारामे पुरुषको काम और अर्थ तथा नाना प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुप्त हैं ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें घूम कर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई माता तथा

हे सुग्रीव सुहृदस्व ते दक्षित खेचराधिप । यनाऽनुना निज देश भामण्डल भवानपि ॥१५॥
 जीविताराः परित्यज्य दक्षिता जानकीमिव । ज्वलन् च प्रवेशास्मि सप्त आत्रा विसशयम् ॥१६॥
 विभीषण न मे शोकस्तथा साताऽनुगोक्षच । यथा निरपकारित्व मम सम्बाधते त्वयि ॥१७॥
 उत्तमा उपवृत्तिरिति पूर्व पश्चात्तु मध्यमा । पश्चादपि न ये तेषामधमव हतमनानाम् ॥१८॥
 कृतपूर्वोपकारस्य साधोऽन्युधिरोधिन । दत्ते नोपकृतं किञ्चित्तेन दक्षेतरामहम् ॥१९॥
 भो भामण्डलसुग्रीवी चित्ता रचयता द्रुतम् । परलोक गमिष्यामि कुरुत युक्तमात्मन ॥२०॥
 ततो लक्ष्माधर स्पर्ष्टुमिच्छन्त रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तर ॥२१॥
 मा इराक्षालंभन देव दिव्यास्त्रपरिमृच्छितम् । प्रमादो जायते श्रेष्ठ प्रायो हि स्थितिरीदृशा ॥२२॥
 प्रपद्यस्व च धीरास्व कातरस्व परित्यज । भवन्तीह प्रतीकारा प्रायो विपदमायुषाम् ॥२३॥
 प्रताकारो विलापोऽत्र नानुदात्तजनोचित । परमार्थानुसारेण त्रियता धीरमानसम् ॥२४॥
 उपाय सर्वेषा कश्चिदिह देव भविष्यति । जाविष्यति तव भ्राता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥
 ततो विषादिन सर्वे पर विद्याधराधिपा । उपायचिन्तनास्तत्ताश्चकुरिन्धमन्तराग्नि ॥२६॥
 दिव्या शक्तिरिय शक्या न निराकर्तुं मौषधै । उद्गते ऽप्योतिषाम्नां दुःख जायति लक्ष्मण ॥२७॥
 भयोत्साहं कव्यभादाक्षिमावर्द्धन सा महो । किङ्करैर्विहिते शुद्धद्वयप्राकारमण्डपा ॥२८॥

पिता पुन प्राप्त हो सकते हो ॥१५॥ हे विद्याधरोंके राजा सुग्रीव । तुमने अपनी मित्रता दिखाई ।
 अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल । तुम भी अपने देश जाओ ॥१६॥ इसमें सशय
 नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कर भाईके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगा
 ॥१६॥ हे विभीषण । मुझे सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार
 पीडा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम
 मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते हैं परन्तु जो कार्यके पीछे
 भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमें मौचताका ही निवास समझना चाहिये ॥१८॥ हे विभीषण ।
 तू साधु पुण्य है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बन्धुसे विरोध किया है फिर भी
 मैं तेरा कुछ भी उपकार नहीं कर सका इससे मन ही मन जल रहा हूँ ॥१९॥ हे भामण्डल और
 सुग्रीव । शीघ्र ही चित्ता बनाओ । मैं पर लौक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो ।
 जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥२०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की तो उन्हें महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने
 मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव । दिव्यअस्त्रसे मूर्छित लक्ष्मणको मत छुओ क्यो कि देसा
 करनेसे प्राय प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको
 प्राप्त होओ, कातरता छोड़ो, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस सप्तामगे अधिकाश विद्यमान
 हैं ॥२३॥ छुट मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमें भैर्य युक्त
 किया जाय ॥२४॥ हे देव । इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जावित
 होगा क्यो कि यह नारायण है नारायणका असमयम मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विषादसे
 भरे सप्त विद्याधर राजा उपायके चिन्तनमें तत्पर हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि यह
 दिव्य शक्ति औपधियाने द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्यादय होने पर लक्ष्मण वड़ी
 कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित
 रहना कठिन हो जायगा ॥२६-२७॥

तदनन्तर किङ्कराने आगे निमेषम ही शिर रहित धड आदिको हटा कर उस युद्धभूमिको
 शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे ऊँचे ढेर कनाते तथा मण्डप आदि रखे कर दिये ॥२८॥ उस

सप्तरुप्यादसम्पन्ना^१ कृतदिक्चयनिर्गमा^२ । वहिः कवचितैर्योधैर्गुप्ता कामुकधारिभिः ॥२१॥
 प्रथमे गोपुरे नीलप्रापपाणिः प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्यौ गदाहस्तो घनोपमः ॥२०॥
 त्रिभीषणस्तृतीये तु शूलपाणिमहामनाः । सङ्माल्यचित्ररत्नांशुराशानबदशोभत ॥२१॥
 सङ्घद्वयदत्तार्णस्तुतीये कुमुदः स्थितः । सुपेणः पञ्चमे ज्ञेयः कुन्तहस्तः प्रतापवान् ॥२२॥
 सुर्पावरभुजो वीरः सुर्मावः स्वयमेव च । रराज भिण्डमालेन पष्ठे वज्रधरोपमः ॥२३॥
 प्रदेशो सप्तमे राजमहारिपुबलान्तकः । मण्डलाग्र समाकृत्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥२४॥
 पूर्वद्वारेण सचारे शरभः शरभध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाम्बवो यथा ॥२५॥
 प्रदेशमौत्तरद्वारं व्याधामात्यौघसकुलम् । स्थितश्चन्द्रमरीचिश्च बालिपुत्रो महाबलः ॥२६॥
 एव विरचिता षोणो खेचरेशः प्रयतिभिः । रराज द्यौर्विवात्यर्थं निर्मलैरदुग्मदलैः ॥२७॥
 यावन्तः केचिदन्ये ॥ समरादनिवर्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशौ स्याप्य बानरकेतवः ॥२८॥

उपजातिवृत्तम्

एव प्रयत्नाः कृतयोगपरचाः सदैविनो लक्ष्मणजीवोने ।
 नविस्मया सोऽस्तुचः भ्रमाना^३ स्थिताः समस्ता गगनायनेशाः ॥२९॥
 न तस्मै नो धर्येवो न मागा न चापि देवा विनिवात्यन्ति ।
 यदाभनो सज्जनितस्य लम्प-फल नृणां कर्मरवेः प्रकाशम् ॥३०॥

इत्यार्षे श्रीरविप्रेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिभेदरामविलापाभिधानं नाम निपटितं पर्व ॥६३॥

भूमिको सात चौत्रियोमे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन चन्द किया और कनच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धाओंमें बाहर रखे रह कर उसकी रक्षा की ॥२६॥ पहले गोपुर पर धनुष हाथमें लेकर नील पैदा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करने वाला मेघ तुल्य नील रङ्गा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण रङ्गा हुआ । यहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सय ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥२०-२१॥ कवच और तरकसको धारण करनेवाला कुमुद चौथे गोपुर पर रङ्गा हुआ । पांचवें गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुपेण रङ्गा हुआ ॥२२॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुर्माव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था । तथा सातवें गोपुरमें बड़े बड़े शयुगजाओंकी सेनाकी भीतके घाट उतारने वाला भामण्डल स्वयं तलवार स्वीच कर रङ्गा था ॥२३-२४॥ पूर्व द्वारके मार्ग में शरभ चिह्नेसे चिह्नित ध्वजाको धारण करने वाला शरभ पहला दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रि समूहसे युक्त उत्तर द्वारकी घेर कर चन्द्रगिरि नामका बालिका महाबलवान् पुत्र रङ्गा हुआ था ॥२५-२६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई यह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहमें आकाश के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥२७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटने वाले जो अन्य बानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर रखे हो गये ॥२८॥ गीतम रामजी कहते हैं कि हे ध्रेणिऋ । जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर ये मय रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मणके जीवित होने में सँदेह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सहित थे एवं मानो थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथा स्थान रखे हो गये ॥२९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्म रूपी सूर्यने प्रकाश स्वरूप जो पल मनुष्योंकी प्राप्ति होने वाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न छोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥३०॥

इस प्रकार ऋषि नामने प्रदिद, रविप्रेणाचार्य द्वारा कवि पद्मपुराणमें शक्तिभेद एव

रामायणापर वर्णन करनेवाला निरगटों पर समाप्त हुआ ॥६३॥

१. बदतति-न० । २. दिक्चय म० ।

चतुःपष्टितमं पर्व

नियत मरण ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशानन । पुत्रभ्रातृवध बुद्धी चकारात्यन्तदुःखित ॥१॥
 हा भ्रात परमोदार भगवन्तहितोद्यत । कथमेतामवाप्नोसि बन्धावस्थामसह्यताम् ॥२॥
 हा पुत्रो मुमहाचार्यो भूनाविच ददौ मम । विधेनियोगत प्राप्नो भवन्तो बन्धन भवम् ॥३॥
 किं करिष्यति व शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितामाह विरस वा करिष्यति ॥४॥
 भवन्निरुक्तमै प्राप्तेर्बन्धु स समागतै । बाप्येऽहं नितरा कष्ट किमिदं मम वर्तते ॥५॥
 पूव गजेन्द्रबद्धनिजयूथमहागज । अग्रकार पर शोकमलेषत स सन्ततम् ॥६॥
 शक्या हत गत भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधर परम् । सम्प्राप्ता जानका शोकमकरात्परिदेवनम् ॥७॥
 हा मद्र लक्ष्मण प्राप्तस्त्वमवस्थामिमां हताम् । कृते मे मन्दभाग्याया विनात गुणभूषण ॥८॥
 ईदृशमपि चान्द्रामि भवन्तमहमोचितुम् । विमुक्ता इतदैवेन न एमे पापकारिणो ॥९॥
 भवन्त तादृश वीर प्लता पापेन शत्रुणा । इ मे कृतो न सन्देह प्रवारे मरण प्रति ॥१०॥
 विद्युक्तो बन्धुभिः भ्रातृदिक्षे ससन्नमानस । अवस्थामागतोऽस्वेता कृच्छ्रादुच्चार्य सागरम् ॥११॥
 अपि नाम पुन श्रीकाकोविद् विनयान्वितम् । परयेय चारुवाक्य त्वा परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुःखी होता हुआ मनमें पुत्रा और भाईके वधका विचार करने लगा । भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अवरय मर गया होगा और उसके प्रतिकार स्वरूप रामपक्षके लोगोंने कैद किये हुए इन्द्र-चित् तथा मेघघाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा । इस विचारसे यह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उत्पन्न रहता था सो इस अयुक्त बन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥२॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महा बलवान् और मेरी भुजाआके समान दृढ थे । कर्मके नियोग से ही तुम इस जूतन बन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोंका क्या करेगा ? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुरुष बन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिये मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्या रहा है ? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—कुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजनी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जन सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिसे पायल हो पृथिवी पर गिर पड़े हैं तब यह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनोत ! हाय गुण रूपी आभूषण-से सहित ! तुम मुक्त अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमें पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? अर्थात् जब उसने आप जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका मला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनोंसे विद्रोहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पारकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं पीड़ा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलने वाले एवं

कुर्वन्तु सर्वथा देवास्तव जायितपालनम् । विशदयता द्रुत गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥
 एव विलापिना कृच्छ्राच्छोकिनी जनकामजा । भावप्राप्तिभिरानाता खेचरीभि प्रसाद्वनम् ॥१४॥
 जायते देवि नाद्यापि निरचयो देवरस्य ते । अतो न वर्तते कर्त्तुमेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥
 भव धीरा प्रवीराणा भवत्येवेदश गति । भवन्ति च प्रतीकाराश्चिद् हि जगताहितम् ॥१६॥
 इति विद्याधरावाक्यकिञ्चिदसाऽमूदनाकुल । शृण्विदानीं यदेतस्मिन्नात लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥
 प्राप्सो दूष्यगृहद्वार पुरुषश्चाकदर्शन । प्रभामण्डलवारेण प्रविशन्ति नोदिता ॥१८॥
 कस्य कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा विविचसि । तिष्ठ तिष्ठ समाचक्ष्व नात्राविदितसगम ॥१९॥
 सोऽवोचदद्य मे मास साग्न प्राप्तस्य वर्तते । पद्म समाश्रयामीनि प्रस्तावो नवलम्पत ॥२०॥
 अयुना दर्शये शीघ्र जीवन्त यदि लक्ष्मणम् । द्रष्टुं भवति बाष्ठा वस्तत्रोपाय वदाम्यहम् ॥२१॥
 इत्युक्ते पतिष्ठेन भामण्डलमर्हभृता । दत्त्वा प्रतिनिधिं द्वारे भीतोऽमी पद्मगोचरम् ॥२२॥
 सप्रयुज्य प्रणाम स जगाद महान्द्र । मा त्विस्थास्व महाराज कुमारो जायति ध्रुवम् ॥२३॥
 सुप्रभा नाम मे माता जनक शशिमण्डल । देवगते पुरेऽह च चन्द्रप्रतिमसङ्ग ॥२४॥
 जातुचिद्विचरन् ध्योमिन् वेशाभ्यक्षस्य सूनुभा । सहस्रविजयात्वेन वैरिणाऽह निराकृत ॥२५॥
 ततो मैथुनिकावैर सृष्ट्वा क्रोध समायुज्य । तस्य जात मया सार्द्धं रणं सुभद्राकणम् ॥२६॥

परम आश्चर्यके कार्य करने वाले तुम्हें फिर भा देव सङ्गो ? ॥१७॥ देव सन प्रकारसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करे और सन लोगोके मनको हरण करने वाले तुम शीघ्र ही शल्य रहित अवस्थाको प्राप्त होओ ॥१८॥ इस प्रकार विलाप करने वाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखने वाला विद्याधरियोने सार्वना प्राप्त कराई ॥१९॥ उन्हाने समभाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभीतक निश्चय नही जान पडा है इसलिए इसके विषयमे विलाप करना उचित नही है ॥२०॥ धैर्य धारण करो, वीरोकी तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसको प्रतीकार होते हैं यथार्थमें पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥२१॥ इस प्रकार विद्याधरियोके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥२२॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सु दूर मनुष्य डेरेके द्वार पर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँसे आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खडा रह खडा रह सन बात ठीक ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगोका आगमन निषिद्ध है ॥२३-२४॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२५॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगोको लक्ष्मणकी शीघ्र ही जीवित देरनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२६॥ उसके इतना कहते ही राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे रामके समीप ले गया ॥२७॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! रोद मत कीजिये, कुमार निश्चित ही जीवित हैं ॥२८॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल है । मैं देवगीतपुरका रहने वाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२९॥ किसी समय मैं आकाशमें घूम रहा था उसी समय राजा वेशाभ्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया ॥३०॥ तदनन्तर उसी सम्बन्धी वैरका स्मरणकर वह क्रोधको प्राप्त हो गया

ततोऽहं चन्द्रवत्पदं दृष्ट्वा तेन ममाहृतः । मय्यहंन्द्रोद्भवोऽहं नमो निरुत्तरोऽने ॥२०॥
 पतन्तं नमो मनान्तेषु तारकादिन्दुमन्त्रिणम् । साकेतं चिरतिष्ठतीति भरतः समदीक्षत ॥२१॥
 शक्तिगणितवद्वर्धं निरुद्धन्दुनवारिणम् । तेनह्य कस्मात्तेन साधुदा योऽवदायिव ॥२२॥
 गतिः परादिता काश्चि ज्ञातं रूपं च पूर्वकम् । अधिकं च सुखं जन तेन मे गन्धर्वरिणा ॥२३॥
 तेन मे पुण्येन्द्रेण नततेन महानना । जन्मान्तरनिर्दं दत्त फलं वत्स स्वदीक्षनम् ॥२४॥
 वरान्तरे म मन्थ्रान्तः सुरूरो रघुनन्दनः । प्रपद्ये भद्रं जानामि तद्गन्धोदकमन्मथनम् ॥२५॥
 सोऽजोऽवहेव जानामि श्रूयतां वेदयामि ते । पृष्टो हि स भवा राजा तेन चेति निवेदितम् ॥२६॥
 यथा किञ्च मनस्तोऽयं देशः पुरसमन्वितः । अनिभूतो महारोगीरामोऽदमनिकरकैः ॥२७॥
 दरोषातमहादाहचरलापापरिखयाः । सर्वशूलारविच्छर्दिष्ववपुराणैः काश्यपः ॥२८॥
 क्रुद्धा इव पर तीव्राः त्वेवै रोगास्तदामभवन् । सौत्र विरपे प्रातो नैकोऽपस्ति न पालितः ॥२९॥
 केवलो द्रोणमेधाहः सामान्यरघुगन्धवः । वृरो देव इषारोगः क्षुतो निजपुरे मया ॥३०॥
 आह्वय म मयाऽश्वचि माम् त्व नोरजो यथा । काण्डोरेवनिमुक्तं तथा मा कलु मर्हसि ॥३१॥
 ततः सौरभमस्तद्दूरदिग्बल्यं जलम् । तेन विशतोऽहमात्म्यं प्राहबोद्धावतां पराम् ॥३२॥

जिससे उमका मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक सत्रन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए तारादिन्धुके समान मुझे देख अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका वक्षस्थल शस्त्रमुक्त था ऐसे मुझको देख राजा भरत दयासे दुखी हो बैठे । तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्पुरुषने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गई और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस मुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥३०॥ पुरुषोंने इन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है । भाषार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फलस्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥

इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र ! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो ? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव ! जानता हूँ सुनिये मैं आपके लिए बताता हूँ । मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोषात—जिसमें वक्षस्थल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापरिखाय—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्वशूल—जिसमें सर्वाङ्गमें पीडा होती है, अरुचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते हैं, रवयधु—जिसमें शरीर पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे । इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल, द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रियों पशुओं तथा वन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥३७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम ! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अविलम्ब नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी मुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिङ्मण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझ पर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

न केवलमह तेन वारिणांस्तपुर मम । पुर देशश्च सजात सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥
 कर्ता रोगसहस्राणा वायुरत्यन्तदुःसह । प्रणष्टो वारिणा तेन मर्मसम्प्रेदकोविदः ॥४१॥
 मयैव सतत पृष्टो मामेतदुदक कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिदं शीघ्रं कृत रोगविनाशनम् ॥४२॥
 सोऽवोचच्छ्रुयता राजन्नस्ति मे गुणशालिनी । विशल्या नाम दुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥
 यस्या गर्भप्रपन्नायामनेकव्याधिपीडिता । देवी ममोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥
 जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्य पूजासमुद्यता । शोषे सर्वरन्ध्रना पूजनीया मनोहरा ॥४५॥
 स्नानोदकमिदं तस्या महासौरम्यसद्व्रतम् । कुरते सर्वरोगाणा तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥
 ततस्तद्वह्माकर्ण्य द्रोणमेघस्य भाषितम् । पर विस्मयमापन्नं सम्पदा तामपूजयम् ॥४७॥
 नगरीतश्च निष्कस्य नाम्ना सत्त्वहित मुनिम् । गणेश्वर समप्राञ्च प्रणम्य विनयान्वितः ॥४८॥
 तत खेचरपृष्टोऽसौ समाख्यासोन्महायति । वैशल्या चरित दिव्य चतुर्ज्ञानी सुवत्सल ॥४९॥
 विदेहे पौण्डरीकाख्ये विर्यये स्वर्गसंनिभे । चक्रो त्रिभुवनानन्द पुरे चक्रधरेऽभवत् ॥५०॥
 नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य तनया गुणमण्डना । अपूर्वा कर्मणा सृष्टिर्वाण्यप्यलवकारिणी ॥५१॥
 ता प्रतिष्ठपुराधीशः सामन्तोऽप्य पुनर्वसुः । दुर्धाराहरदारोप्य विमान स्मरचोदितः ॥५२॥
 क्रुद्धाचक्रधरादाज्ञा सम्प्राप्यामुष्य किङ्करी । चिर कृतवतो युद्ध विमान चणित भृशम् ॥५३॥
 चूर्ण्यमानविमानेन मुक्ता तेनाकुलामना । पपात नभसः काम्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥२६॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्त पुर, नगर और समस्त देश रोग रहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगोंको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एव मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गई ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगोंको नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! सुनिये, मेरी, गुणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करने वाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शोषात्तके समान सर्व बन्धु जनोकी पूज्या है ॥४५॥ यह महा सुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण भरमें सब रोगोंका नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह वचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापिस आ रहा तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले। मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधर से कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पूछने पर चार ज्ञानके धारी, महास्नेही मुनिराज विशल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिभुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अनङ्गशरा नामकी एक कन्या थी जो गुण रूपी आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह बहाने वाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था। कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमान पर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर चूर किया

त्रिधा पर्णलक्ष्याऽस्ती पुनर्वसुनियुक्त्या । अटवामागता स्वैर नाम्ना श्वपद्वीरवाम् ॥५५॥
 महाप्रतिमपाकारा महाविद्याभृतामपि । दु प्रवेशा कृतध्वान्ता महाविटपसङ्घट्टे ॥५६॥
 नानावल्लीसमाहितविधिधोतुद्रपादपाम् । पल्लवोद्गासितैर्मुक्ता मातैरिव रवे कर् ॥५७॥
 तरुश्वरमर्द्रापरिपन्थासिंहादिसेविताम् । उच्चान्वचरचोर्णो महाविवरसङ्घातम् ॥५८॥
 अरण्यानीं गता सेय महाभयममागता । कान्ता शिखेव दापस्य सौदति स्म वराकिका ॥५९॥
 नदातीर समागम्य कृत्वा दिगवलोकनम् । महाम्नेदसमायुक्ता स्मृतवन्तु स्म रोदिति ॥६०॥
 तेनाह लोकपालेन देवेन्द्रप्रतिभासिता । सुचक्रवर्तिना जाता महादुर्लभितामिका ॥६१॥
 विधिनः शरणेनेमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वन दु ग्रनिराश्रयम् ॥६२॥
 हा मात मकर लोफ ख पालयमि विप्रमा । कथं मामपरिप्राणा विपिने नानुरूपसे ॥६३॥
 हा मातस्तापसा दु ख कुक्षिधारणपूर्वकम् । विपद्य साम्प्रत कस्मात् कुर्ये नानुरूपयनम् ॥६४॥
 हा मेऽन्त करणच्छायापरिवर्गगुणोत्तम । अमुक्ता वृणमप्येक कथं त्वग्रसि साम्प्रतम् ॥६५॥
 जातमात्रा मृता नाऽह कस्मादुत् स्वस्य भूमिका । अथवा न विना पुण्यैरिवान्निवृत्तमाप्स्यते ॥६६॥
 किं करोमि क्व गच्छामि दु निनीं सन्नयामि कम् । क वरयामि महाऽरण्ये कथं तिष्ठामि पादिना ॥६७॥
 रयन् किमेव सम्प्राप्त जन्मेदं मरके मया । सैव किं स्यादह कोऽय प्रकार सहस्रोद्गत ॥६८॥
 एवमादि चिर कृत्वा विप्रलाप सुविह्वला । पद्मनामपि तामाणा मनोद्वयकारणम् ॥६९॥

जा रहा था ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाका शरद् फाल्गुन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुने द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलक्ष्या नामक त्रिधाके सहारे स्वच्छासे उतरती हुई वह श्वपद नामक अटवीमें आई ॥५५॥

तदनन्तर जो घड़े घड़े त्रिधाघरोंके लिए भी भय उत्पन्न करने वाली थी, जिसमें प्रवेश करना कठिन था, घड़े घड़े वृष्टीकी सघन माड़ियोंसे जिसमें अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृक्ष नाभा लताओंसे आलङ्कित थे, पल्लवोंकी सघन उग्रासे दूर का हुई सूर्यके निरणोंने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा मिर्हे आदिसे सेमित थी, जहाँकी कठोर भूमि ऊँची नीची थी, और जो घड़े उड़े गिलासे सहित थी ऐसी उस महा अटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई बेचारी अनगसेता दीपककी शिखाके समान काँपने लगी ॥६६-६८॥ नदीके तीर आकर और सन दिशाओंकी ओर देख महाग्नेदसे युक्त होनी हुई यह वृद्धुर्जीजनोंको चितार चितार कर रोने लगी ॥६९॥ वह कहती था कि हाय मैं लोफनी रक्षा करने वाले, इन्द्रके समान सुशोभित वन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महाम्नेहसे लालित हुई । आज प्रतिपूल देखे—भाम्यकी विपरीततासे इस अनस्थाको प्राप्त हुई हूँ । हाय जिसका देहना भी कठिन है ऐसे इस वनमें आ पड़ी हूँ क्या कलें ? ॥६९-७०॥ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सन लोफकी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझ पर क्या क्यों नहीं करते हो ? ॥७१॥ हाय माता ! गर्भ धारणका वैसे दुःख सहकर इस समय क्या क्यों नहीं कर रही हो ? ॥७२॥ हाय मेरे अन्त करणके समान प्रवृत्ति करने वाले तथा उत्तम गुणासे युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक क्षणके लिय भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥७३॥ मैं दुःखिया क्या कलें ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूँ ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनो कैसे रहूँ ? ॥७४॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा मरकम मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं वही हूँ अथवा यह कौनसो दशा सदसा प्रकट हुई है ? ॥७५-७८॥ इस प्रकार चिरकाल तक विलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गई । उसका वह विलाप मूर पशुओंके

क्षुत्तृष्णापरिदम्बाङ्गा शोकसागरवर्तिनी । फलपर्णादिमिर्तृत्तिमकरोद्दीनमानसा ॥७०॥
 अरण्याम्बु जलपदानां शोभासर्वस्वमर्दन' । हिमकालस्तथा निन्ये ध्रुव कर्मानुभावेन' ॥७१॥
 श्रस्तपशुगणस्तोमः शोपितानेकपादपः । सोढस्तथैव रूक्षाङ्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तथा ॥७२॥
 स्फुरच्छाद्यचिरञ्ज्योतिः शीतधारान्धकारितः । घनकालोऽपि निस्तीर्णः प्रवृत्तौघो यथा तथा ॥७३॥
 निश्चाय स्फुटित चामं शीर्णैश्च मलावृतम् । वर्षोपहतधिप्राम स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥
 सूर्यालोकहतच्छाया स्त्रीणैव शशिनः कला । जाता तन्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥
 कपित्थवनमानम्र फलैः पाकाभिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुष्याय करुण सा स्म रोदिति ॥७६॥
 जाता चक्रधरेणाऽह प्रासावस्थामिमं वने । ध्रुव कर्मानुभावेन सुपापेनान्यजन्मना ॥७७॥
 इत्यभुदुर्दिनाभूतवदना धांचितछितिः । फलान्यादाय सा शीता पतितानि स्वपातः ॥७८॥
 उपवासेः कृशोभूता पर पट्टाष्टमादिभिः । अभ्युना वाकरोद् बाला पारणामेकलिकाम् ॥७९॥
 शयनीयगतैः पुष्पैर्यां स्वकेशच्युतैरपि । अग्रहोत् खेदमेवासी स्थण्डिलेऽश्रोत केवले ॥८०॥
 पितुः सङ्गीतक भुक्त्वा या प्रबोधमसेवत । सेष शिवादिनिर्मुक्तैरधुना भीषणैः स्वभैः ॥८१॥
 एव वर्षसहस्राणि क्रीणि दुःखमहासहा । अकरोत्सा तपो बाह्य प्रासुकाहारपारणा ॥८२॥
 ततो निर्बेदमापन्ना त्यक्त्वाहार चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा भिता सङ्गोष्णनामसौ ॥८३॥

भी मनको पिघला देने वाला था । ६६॥ तदनन्तर भूख व्यासकी बाधासे जिसका शरीर कुलस गया था, जो निरन्तर शोक रूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रोंसे निर्वाह करने लगी ॥७०॥ वनके कमल समूहकी शोभाका सर्वश्व हरने वाला शीत काल आया सो उसने कर्मका फल भोगते हुए व्यतीत किया ॥७१॥ जिसमें पशुओंके समूह सासे भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रूक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने वसी प्रकार सहन किया ॥७२॥ जिसमें तीव्र बिजली काँध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ॥७३॥ कान्ति हीन, फटा, दुबला, बिलखे बालोंसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीने चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ॥७४॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है वसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ॥७५॥ परिपाकके कारण धूसर वर्षा से युक्त फलोंसे मुके हुए कैद्याओंके वनमें जाकर वह बार बार पिताका स्मरण कर रोने लगती थी ॥७६॥ मैं चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमें इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरे किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ॥७७॥ इस प्रकार अधिरक्ष अश्वघोषसे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ॥७८॥ बेला तेल आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानीसे ही पारणा करती थी सो भी एक ही बार ॥७९॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशोंसे च्युत हो शय्या पर पड़े फलोंसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवी पर शयन करती थी ॥८०॥ जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥८१॥ इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा बीच बीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ॥८२॥ तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गई तब विरक्त हो उस धीर वीराने चारों प्रकार

बाह्यं हस्तशताद्भूमि न गन्तव्यं मयेति च । जग्राह नियमं पूर्वं श्रुतं जैनेन्द्रशासने ॥८४॥
 नियमावधितोऽन्ते पद्मरात्रेऽथ नभश्चर* । लब्धिदास इति श्वातो बद्रित्वा मेरुमात्रजन् ॥८५॥
 तामपश्यत्ततो नेतुमारमे तां समुद्यतः । पितुः स्थानं निषिद्धञ्च तथा सहैग्नोन्मितः ॥८६॥
 लब्धिदासो लघु प्राप्तः सकाशं चरवर्त्तिनः । सम तेन समायातस्तमुद्देशमसौ गतः ॥८७॥
 अथ तामतिरीद्रेण शैलुनाऽतिस्थवीयसा । भयमाणागमसौ दृष्ट्वा समाधानप्रदोऽभवत् ॥८८॥
 प्राप्तसल्लेखनां चीणां सवृत्तामपरामिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चर्चा निर्वेदमागतः ॥८९॥
 समं पुत्रसहस्राणां द्वाविंशत्या गतस्पृहः । महावैराग्यसम्पन्नः श्रमणन्मुपागतः ॥९०॥
 कन्या स्वर्धे क्षुयात्तेन प्राप्तेनातिस्थवीयसा । भक्षिताऽन्नगरेणागात्पत्नी सानकुमारताम् ॥९१॥
 जानयाऽपि तथा मृत्युं न समुत्सारितः शयुः । मामृत्स्वल्पापि पीडाऽस्य काचिदित्यनुजग्मया ॥९२॥
 उत्साहं येचरान् मरुथे समस्तांश्च पुनर्वसुः । तदानङ्गशरामिष्टामपश्यन्विहावनी ॥९३॥
 हुमसेनमुनेः पार्श्वे गृहीतं श्रमणमतम् । अत्यन्तदुःखितस्तपसा तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥
 कृत्वा निदानमैतस्याः कृतेऽथ प्रोक्षपञ्चतः । सुरो जातरप्युतश्चायं जातो लक्ष्मणसुन्दरः ॥९५॥
 प्रपञ्चा सुरलोकाच्च जाताऽनङ्गशराचरो । मुनेय द्रोणमेघस्य विशल्वेति प्रकीर्त्तिता ॥९६॥
 सैतस्मिन्नगरे देवो भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन सज्जाताऽ यन्त्रमुत्तमा ॥९७॥
 परमं ज्ञानवारीद तेन तस्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तथा येन महातप ॥९८॥

का आहार त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली ॥८३॥ उसने जिन-शासनमें पहले जैसा सुन रक्खा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे बाहरकी भूमिमें नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेखनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियाँ व्यतीत हो चुकीं तब लब्धिदास नामक एक पुत्र मेरु पर्वतकी बन्धना कर लीट रहा था सौ उसने उस कन्याकी देखा । तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कह कर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्त्तिके पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थान पर आया ॥८७॥ जन वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमें तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्त्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सद्यः प्रकारकी इच्छा छोड़ महानैराग्यसे युक्त हो वार्द्धस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूमिसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खाई हुई वह कन्या मर कर ईशान स्वर्गमें गई ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमें समस्त विशाधरोंको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपाथ अनङ्गशराको नहीं देखा फिरहकी भूमिमें पड़ बहुत दुखी हुआ । अन्तमें उसने हुमसेन नामक मुनिराजके समीप दिग्भ्रम दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३-९४॥ पहलेकी अनङ्गशरा देवलोकसे च्युत हो राजा द्रोणमेघकी यह विशल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९५॥ महागुणोंकी धारण करने वाली विशल्या इस नगर देश अथवा भरत क्षेत्रमें पूर्वकर्माके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई है ॥९६॥ यतश्च उसने पूर्व भवमें उत्सर्ग सहित महातप

अनेन वारिणाऽमुस्मि वेशेऽय विपमोऽनिल । महारोगकरो यात जय शासितविष्टप ॥६६॥
 कुतोऽयमादशो वायुरिति पृष्टेन भाषितम् । मुनिना भरतायैव तदा कीतुकयोगिने ॥१००॥
 गजाद्वाजरादेव विन्ध्यो नामा महाधन । अयोध्या सार्यवाहेश्च खरोष्ट्रमहिषादिभि ॥१०१॥
 मासानेकादशामुष्या वज्रगयांसौ स्थित । तस्यैकमहिषस्तीव्ररोगभारेण पाण्डित ॥१०२॥
 पुरमप्ये महादु ख कृ वा काल व्रणान्वित । अकामनिर्जरायोगादेवभूयमशश्रियत् ॥१०३॥
 जातो वायुकुमारोऽसावश्वकेतुर्महाबल । बाय्वावर्त्त इति रयातो वायुदेवमहेश्वर ॥१०४॥
 श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलगतो महान् । असुरो मासुर क्रूरो मनोयातक्रियासह ॥१०५॥
 भञ्जसा सावधिज्ञान प्राप्तपूर्वपरामभवम् । सोऽह महिषकोऽभूव प्राप्ताऽयोध्या तदा व्रजा ॥१०६॥
 क्षुत्क्षणापरिदिग्वाहो महारोगनिषादित । रथ्याकर्दमनिर्मग्नस्ताडितो जनसपदा ॥१०७॥
 कृत्वा मे मस्तके पाद तदाऽप्यासाज्जनोऽलिल । पतितस्य विचेष्टस्य निर्दयो विडमलाञ्छितम् ॥१०८॥
 अचिरात्प्रिग्रह घोर तस्य चेत्त करोम्यहम् । अनर्थकं सुर व मे तदेव जायते महम् ॥१०९॥
 इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन् सदेशे क्रोधपूरित । प्रावर्त्तयदसौ वायु नानारोगसमावहम् ॥११०॥
 सोऽय नातो विशल्याया वारिणा प्रलय क्षणात् । भवति हि बलायातो बलिनामपि विष्टपे ॥१११॥
 यथा सत्त्वहितेनेद भरताप निवेदितम् । भरतेनापि म तद्व-मया ते पञ्च वदितम् ॥११२॥

किया था इसलिये उसका यह स्नानजल महागुणासे सहित है ॥६८॥ इस देशम जिसने सब लोग पर शासन जमा रख्या था तथा जो महारोग उत्पन्न करने वाली थी ऐसी विषय वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गई है ॥६९॥ 'यह वायु ऐसी क्या हो गई ?' इस प्रकार पूछने पर उस समय मुनिराजने कीर्तुहलको धारण करने वाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

वि ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगराम ग्यारह माह तक रहा । अनेक वर्षसे सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोगके भारसे पीड़ित हो नगरके बीच मरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१-१०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ । बाय्वावर्त्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवाका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमें निवास करने वाला देदीप्यमान, क्रूर और इन्द्रानुसार क्रियाआको करने वाला वह बहुत बड़ा भयनवासी देव था ॥१०४-१०५॥ अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्णभवम प्राप्त हुए पराभवको जान लिया । उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । भूल व्यास आदिसे मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगासे पाण्डित हुआ मैं भार्गवी कीचडमे पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे । उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मलक पर पैर रखकर जाते थे ॥१०६-१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयकर निग्रह नहीं करता हूँ—वदला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका बडप्पन युक्त देव पर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगाको उत्पन्न करने वाली वायु चलाई ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान जलके द्वारा क्षण भरम विनाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानाके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह क्या सत्त्वहित नामा मुनिन राजा भरतसे जिम प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुक्तसे कही उसी प्रकार है राम । मैं

अभिपेक्षन्त तस्या तदा नेतुमतिविरम् । यत्नं कुरुत नास्त्यन्या गतिर्लक्ष्मणजीविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जदैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।

महाभूतना पुण्यकरोदयेन भवयुगामो विदितोऽमुदाया ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्त परमा जनास्ते येषा महापत्तिसमागतानाम् ।

जनो मृत्युद्वयनाम्नुपाय रवे समस्तस्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यपि भीरविपेणाचार्यमोक्षे पद्मपुराणे विशल्यापूर्वभयामिधान नाम चतु पटितम पर्व ॥११६॥

आपसे कहो है ॥११२॥ इसलिये शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल लानेका यत्न करो । लक्ष्मणके ज्ञात होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गीतम हन्ामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जागृत प्रदान करने वाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महापत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्जरल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके पूर्वभक्त वर्णन करने वाला चौसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥११६॥

पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतान्दोर्वचनं ध्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसमद । समं विद्याधराधोरैविस्मितस्तमपूजयत् ॥१॥
 अजनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृता । अयोध्या गमिनं कृत्वा सन्मग्न निश्चितं द्रुतम् ॥२॥
 ततश्चित्तितमात्रेण ते ययुर्यत्र पार्थिव । भरतं प्रवरं कीर्त्यां प्रतापी गुणसङ्गत ॥३॥
 सुसस्यो धायमानस्य सहसास्यासुखासिका । मा भूदिति सुखं गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥
 ततः सर्वातमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भावसमारूढमुत्तस्थौ कोशलेश्वर ॥५॥
 ज्ञापितां सेवितद्वारास्ततस्तस्मै समागता । वैदेह्या हरणं प्रीतिर्निपातं लक्ष्मणस्य च ॥६॥
 भयं शोकरसादुमात् ऋणमात्रभुवः परम् । राजा क्रोधरस भेजे परमं भरतश्रुति ॥७॥
 महाभेरीध्वनिं चाशु रणप्रीतिमकारयत् । सकला येन साकेता सम्राज्ञाऽऽकुलता परम् ॥८॥
 लोको जगाद् किं न्येतद्वृत्ते राजसन्नि । महान् कलकल शब्दं श्रूयतेऽत्यन्तभोषण ॥९॥
 किन्तु रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमति पर । अतिचार्यसुतं प्राप्तो भवेदापातपडित ॥१०॥
 कश्चिदङ्गता कान्तां त्यक्त्वा सद्यश्चमुच्यत । सन्नाहनिरेषोऽन्य सायके करमर्पयत् ॥११॥
 सुग्धबालकमादाय काचिदङ्गे मृगेक्षणा । हस्तस्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम् ॥१२॥
 काचिदप्याकृतं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना । सुसमाश्रयते कान्तं शययामैकवास्रगम् ॥१३॥

अथानन्तरं प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचनं सुनं जिन्हें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान् भामण्डल तथा अङ्गदको अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामण्डल आदिने सुखदायी सगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनको हरण करने वाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीनको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगनेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥

अथानन्तरं ऋणमात्रमे उत्पन्नं हुए, अतिशय उग्र शोकरससे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमे प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलताको प्राप्त हो गई ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमे अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाला महान् कलकल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमे निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अकम् स्थित कान्ताको छोड़ कच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमे ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर निशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इधर उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वरा पतिसे हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रामे नींद नहीं आ रही थी । रणभेरीका शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा

पाथिवप्रतिमं^१ कथिद्वनी काव्तामुदाहरन्^२ । कान्ते पुद्गलपथे^३ ङेरे किमर्पादमशोमनम् ॥१५॥
 राजालये समुपोतो लक्ष्यते जाल्वलित । सद्यद्वा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च सहिता ॥१६॥
 नीतिज्ञे सतत भाग्यमप्रमरी सुपण्डितैः^४ । उत्तिष्ठतिष्ठ गोपाय स्वायतेय प्रपन्न ॥१७॥
 शानकौम्भानिमान्बुधमान् कण्धौतमयास्तथा । मणिरसकङ्कदांश्च कुक्कु भूमिगृहातरे ॥१८॥
 पट्टवस्त्रादिमण्डूनिमान् गमालयान् द्रुतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुग्धिन मुग्धिन कुक्कु ॥१९॥
 रघुभोपि सुमश्रान्तो निद्वारणितलोचन । भारह्य द्विरद् गाम्र घण्टाङ्कुरान्निम् ॥२०॥
 सचिवे परमैर्युक्ता शस्त्राधिष्ठितपाणिभि । विमुञ्चन् बहुलामोद चन्द्रमवरवत्त्व ॥२१॥
 भरतस्थालय प्राप्तस्तथाऽग्नये नरपुङ्गवा । शङ्खदस्ता सुगनद्धा नरेन्द्रहिततपरा ॥२२॥
 यक्ष्यताम् नरेशाना पुढाय स्वयमुपतः । विनाताधिपति प्रोक्तं नत्वा मामङ्गलादिभि ॥२३॥
 दूरे लङ्कापुरी देव गन्तु नार्हति सा विभु । क्षुब्धोमित्रलज्जो धोरो वर्धत सागराऽन्तरे^५ ॥२४॥
 मया किं तर्हि कर्त्तव्यमिति रात्रिं हनस्वने । उद्धारित विशल्यायाश्चरित तैर्मनाहरम् ॥२५॥
 भयप्रमथन नाथ पुण्य जावितपालनम् । द्रोणमेघमुनास्तानवाऽरिदान द्रुत मय ॥२६॥
 प्रसादं कुक्कु वास्वामो वावस्त्रादेति भास्कर । इतोऽग्निमयन शक्या द्रुग तिष्ठति लक्ष्मण ॥२७॥
 भरतेन ततोऽन्वाकिं किं वा ग्रहणमम्मसा । स्वय मा सुभगा तत्र पातु द्रोण्यवामन्ना ॥२८॥
 मुनीशान ममादिष्टा तत्स्यैवासी सुमामिमा । स्मारल्लमुत्तम सा हि करय वाऽग्न्यस्य युग्यते ॥२९॥

मिली—उससे सटकर पडा रही ॥१३॥ राजाजी तुलना प्राप्त करने वाला कोई घना मनुष्य अपनी खांसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्या सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभवनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथोंसे सवार तैयार खड़े हैं और ये मनुष्यमत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनाका सदा सावधान रहना चाहिये । उठो उठो घनको प्रयत्न पूर्वक छिपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चाँदीके घट तथा मणि और रत्नाके पिटारे तलगृहके भीतर कर दो ॥१७॥ देशमी पन्न आगिसे भरे हुए इन गर्भगृहोंको शीघ्र ही घन्ट कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पडा है उसे ठीक तरहसे रखो ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घनझाया हुआ शत्रु भी घंटाका शब्द करने वाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा । शत्रु, हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियासे सहित था, बहुलसी मुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसके चर्र चञ्चल-चञ्चल हो रहा था । शत्रुनेके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कनचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्पर थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९-२०॥ अयोध्याके राजा भी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तब भामण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२१॥ हे देव ! लङ्कापुरी दूर है, यहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं है, जिसकी लहरें और शस्त्र क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयकर समुद्र बीचमें पडा है ॥२२॥ तो मुझे क्या करना चाहिये, इस प्रकार राजा भरतने कहने पर उन सजने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२३॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोण-मेघकी पुत्रीका स्नानचल पापको नष्ट करने वाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करने वाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥२४॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य बंदिव नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जायेंगे । शत्रुओंका संहार करने वाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२५॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री रख्य ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२६॥ मुनिराजने कहा है कि यह उन्हींकी वल्लभा होगी । यथार्थमें वह उत्तम स्त्रीरत्न है सो अन्य किसने योग्य हो सकती है ? ॥२७॥

ततो द्रोणधनाहूस्त सकाश प्रेषितो निज । स चाऽपि कुपितो योद्धु मानस्तम्भसमुद्यत ॥२६॥
 सधुव्यास्तनयास्तस्य सन्नद्धा सचिवै सह । परमाकुलता प्राप्ता महादुर्लभितम्रिया ॥२७॥
 भरतस्य ततो मात्रा स्वय ग वा महादरम् । प्रतिगोपमुपगता स तेन तनयामदात् ॥२८॥
 सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखर निजम् । आरोपिता महारथ्य कान्तिपूरितदिम्बुखा ॥२९॥
 महत्प्रमथिक चान्य कन्याया सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूताना कूल गामि सम तथा ॥३०॥
 ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता सप्राममेदिनाम् । अर्घ्यादिभि कृतार्घ्यहर्ष सर्वे खेचरपुत्रवै ॥३१॥
 अवतार्णा विमानाप्रान्तत कन्याभिरावृता । चारुचामरसद्भातै र्योज्यमाना शनै सुखम् ॥३२॥
 पश्यन्ता तुरगान् द्वारे भक्ताश्च वरवारणान् । महत्तरै कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिभानमा ॥३३॥
 यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथाऽमज सीम्य सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३४॥
 प्रभापरिकर शक्तिस्ततो लक्ष्मणवत्स । चकित्वा द्रुष्टयोपेव कामुकात् परिनि स्ता ॥३५॥
 स्फुरत्स्फुरिह्रवहा च लक्ष्म्यन्ता नुत नभ । उत्पत्य वायुपुत्रेण गृह्णाता वेगशालिना ॥३६॥
 दिव्यस्त्रारूपसम्पन्ना तत सङ्गतपणिफा । सा जगाद् हनूमन्त सम्भ्रान्ता बद्धवेषु ॥३७॥
 प्रसाद नाथ सुखस्थ न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुसितास्मद्विधाना हि प्रेम्णाणां स्थितिरिदृशी ॥३८॥
 अमोघविजया नाम प्रज्ञानेरहक स्वसा । विद्या लोकत्रये रचिता रावणेन प्रसाधिता ॥३९॥
 कैलासपर्वते पूर्वं बाली प्रतिमया स्थिते । सन्निधी जिनविद्याना गायता भावितामना ॥४०॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२६॥ प्रचण्ड बलको धारण करने वाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो क्षुब्ध हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियाके साथ साथ तैयार हो गये ॥२७॥ तब भरतकी माता केकयाने स्वयं जा कर उसे बड़े आदरसे समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री देदी ॥२८॥ कान्तिसे दिशाओको पूर्ण करने वाली उस कन्याको भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥२९॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशल्याके साथ भेजीं ॥३०॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गई सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सन्मान किया ॥३१॥ तत्परचात् जो कन्याओसे घिरी थी और जिसपर सुन्दर चमराके समूह धीरे धीरे मुख पूर्वक मेलते जा रहे थे ऐसी विशल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३२॥ द्वार पर खड़े घोडा और मदनोन्मत्त हाथियाको देखती, हुई वह आगे घड़ी । बड़े बड़े छोम उसकी आज्ञा पालन करनेमें उत्पन्न थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३३॥ महा भाग्यशालिनी विशल्या जैसे जैसे पास आती जाती थी वैसे वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुखदशा को प्राप्त होते जाते थे ॥३४॥

तदनन्तर जिस प्रकार द्रुष्ट ग्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करने वाली शक्ति लक्ष्मणके वत् स्थलसे बाहर निकल गई ॥३५॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको छापती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनूमानने चढ़ल कर उसे पकड़ लिया ॥३६॥ तब वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड़ कर हनूमानसे बोली । उस समय वह घबड़ाई हुई थी तथा उसके शरीर से कंपकंपी लुट रही थी ॥३७॥ उसने कहा कि हे नाथ ! प्रसन्न होओ मुझे छोड़ो इसमें मेरा दोष नहीं है हमारे जैसे सेवकोकी ऐसी ही निन्द्य दशा है ॥३८॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघ विजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञासिद्धी वहिन हूँ और रावणने मुझे सिद्ध किया है ॥३९॥ कैलास

निजे मुने समुत्पद्य शिरातन्त्रीं मनोहराम् । उपसंगयता दिव्य जिनेन्द्रचरितं शुभम् ॥४२॥
 उन्धाऽहं दरावश्रेण धरणागाराव्रत । कम्पितामनतं प्राप्ताश्रमोदं विघ्नं २ परम् ॥४३॥
 अनिच्छन्प्रप्यसी तेन रचमा परमेस्वर । मा परिमोहितं कृष्टान् म हि प्रदण्डुविधि ॥४६॥
 साऽहं न कस्यचिद्भक्त्या भुवनेऽत्र व्यपोहितुम् । विराट्यामुन्दरामेका मुखा दुःमहतेनमः ३ ॥४७॥
 मन्ये परानये देवान् बलिनो नितरामपि । अनया तु विरोगाहं महारा दूरगोचरा ॥४८॥
 अनुष्ण भास्कर कुर्यादशान शरालक्ष्मणम् । अनया हि तपाऽयुष्म चरितं पूर्वजन्मनि ॥४९॥
 शिरीषकुमुमासार शरीरमनया पुरा । निर्युक्तं तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःमह ॥५०॥
 एतावतैव सत्पार सुपार प्रतिभाति मे । ईदृशानि प्रमाप्यन्ते यत्तर्जनाह जन्तुभि ॥५१॥
 वर्षाशीतार्धर्षीरैर्गह्वानसुतु सहै । एषा न कश्चिता तन्वा मन्दस्त्वेव च्छुट्का ॥५२॥
 अहो रूपमहो सारवमहो धर्मदह मन । अशक्यं प्यानुमप्यस्या सुनपोऽभ्याह्वानार्ज ॥५३॥
 सर्वथा जितचन्द्राणा मतेनोद्गृहते तप । लोकत्रये जगद्येकं धर्मेदं षण्माहशम् ॥५४॥
 अथवा नैव विज्ञेयमाश्रयमिदमोदशम् । प्राप्यन्ते येन नित्राग किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥
 पराधानक्रिया साऽहं सपमा निचिताजया । यन्नामि स्व पञ्च सारो चम्यता दुविचरितम् ॥५६॥
 एव कृतममालासा तपश्च शक्तिदेवताम् । विमृश्यावस्थितो बोति स्वमन्येऽद्भुतचरित ॥५७॥

पर्वत पर पहले जन्म वालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तब रावणने चित्त-प्रतिमाभासे समीप भावनिमग्न हो मधुरगान किया था और अपनी भुजाकी नाडी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान्‌का दिव्य पत्र शुभचरित वीणाद्वारा गाया था । रावणकी भक्ति के प्रभावसे घरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उमने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था । यद्यपि राजसोंका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि घरणेन्द्रने प्रेरणा कर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था । यद्यार्थमे राजग किसीसे कोई पल्लुग्रहण करनेमें सदा सजुचित रहता था ॥४३-४८॥ यह मैं, इस समारंभे दु सह तेजकी धारक एक निशल्याको छोड़ और किसीका पकड़में नहीं आ सकता ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस निशल्याने दूर रहने पर भी मुझे प्रयत्न कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वजन्में ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वजन्में अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमें लगाया था कि जो प्राय मुनियोंके लिए भा कठिन था ॥५०॥ मुझे इतन हा कार्यसे ससार सारभूत ज्ञान पड़ता है कि इसमें जीरा द्वारा ऐसे ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीन वायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयकर वर्षा शीत और घामसे यह कृशाङ्गी सुमेरुकी चूलिकाके समान रज्जुमात्र भा कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहा इसका रूप घन्य है, अहो इसका धैर्य घन्य है और अहो धर्ममें दृढ़ रहनेवाला इसका मन घन्य है । इसने जो तप किया है अन्य त्रिर्यो उसका ध्यान भी नहीं कर सकती ॥५३॥ सर्वथा जिनेन्द्र भगवान्‌के मतमें ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीन लाखोंमें एक जुटा ही जयपत रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥५५॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, हमने मुझे तपसे जीत लिया है हे सन्तुष्ट ! अर मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुश्चेष्टा चामाकी जाय ॥५६॥ इस प्रकार वार्तालाप करन वाला उस शक्तिरूपा देवताको छोड़ कर तत्त्वका जानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपना सेनामें स्थित हो गया ॥५७॥

सुता तु द्रोणमेघस्य द्वियालकृतदेहिना । पादपद्मद्वयं पादौ प्रणम्य विहिताञ्जलिः ॥५८॥
 विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशसना । वन्दिता खेचरैरम्यैराशीर्भिरभिनन्दिता ॥५९॥
 शत्रुस्येव शची पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्ष्मणा । अवस्थिता महाभोग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥
 मुग्धा मुग्धमृगानेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसंभारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥
 परिध्वज्य रहो नाथ सुखसुप्तं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसवाहनसुचारुणा ॥६२॥
 गोशीर्षचन्दनेनैवमन्वलिपत सर्वतः । तथा पद्ममपि वीडाकिञ्चिक्कम्पितपाणिना ॥६३॥
 शेषा कन्या यथायोग्य शेषाणा खेचरेणिनाम् । चन्दनेनास्पृशन्वार विशल्याहस्तसङ्गिना ॥६४॥
 विशल्याहस्तसस्पृष्टं चन्दन पद्मवाक्यत । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीत यथाक्रमम् ॥६५॥
 शीतल ॥ समाधाय कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्वृतिं परमां प्राप्ताः शुद्धात्मानो गतउवराः ॥६६॥

उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः चतविचत्तज्ञा द्विपास्तुरङ्गाः पदचारिणश्च १ ।

अभ्युक्षितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशल्या नवभास्कराः ॥६७॥

जन्मान्तर प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।

उत्थाप्यते स्म प्रवरं नितान्तं सङ्गीतकैर्वैष्णुनिनादगताैः ॥६८॥

तत शनैरुत्पुसितोरुवच्चा नेत्रे समुन्मील्य तिग्मिन्द्रस्तात्रे ।

विचित्रबाहुः शनकैर्निकुण्ठ्य लक्ष्माधरोऽमुञ्जत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलंकृत था, जिसने श्रीरामके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोंसे जिसकी प्रशंसा की गई थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्ष्मणोंको धारण करने वाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गई जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास इन्द्राणी ही खड़ी हो ॥५८-६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली मृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें दृष्टिबी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिङ्गन कर उन्हें सुकोमल हस्त कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखने वाले गोशीर्ष चन्दनसे खूब अनुलिप्त किया तथा लज्जासे कुछ कुछ कोंपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१-६३॥ शेष कन्याओं ने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीराम की आज्ञा अनुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनकी सूँघकर तथा आदर के साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए । सबकी आत्माएँ शुद्ध हो गई तथा सबका उबर जाता रहा ॥६६॥

इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीरके धारक जो अन्य योधा हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जा कर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरमें युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको बांसुरीकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल वक्षःस्थल धीरे धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी मुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोल कर तथा मुजाओंको संकोचित कर मोहरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥

रैवन्धोषपाद्गङ्गागिरामिनामी रमयिर्नि देव इवोद्यकायः ।
 उयाय ऋष्टः ककुभो निरोप्य जामो गतो राजग इयुराच ॥३०॥
 ततः प्रफुल्लाम्बुजलोचनेन महाभिनन्द भजनाऽप्यनेन ।
 उदाररोमात्रमुककैनेन प्रोक्तः परिष्वज्य लम्बद्वेन ॥३१॥
 कृतार्थवत्तात दद्यान्ननोऽप्यो ह वा भवन्तं विवहार शक्या ।
 स्वमप्यमुखाग्रदरितेन जीवं मूयोऽभवतः संस्तुनकन्यकायाः ॥३२॥
 निःशेषनश्चास्य निरेदितं लब्धुन्याहतिप्रेरगवस्तुतम् ।
 भर्तृमादवयंमुदात्तमात्र सुविस्मयैर्वाभ्यवमुन्दराक्षैः ॥३३॥
 तावत् दिव्यगोत्रविलासिनेत्रां शरत्पद्मेन्दुसमानवक्त्राम् ।
 शतोदरां दिग्गजकुम्भरोमिस्तनूपां नूतनयौवनस्याम् । ३४॥
 शरीरप्रदामिव मन्मथस्य श्रीदो विशालान्मन्मथिनगाम् ।
 संपृष्ट शोभासिन्धु मार्गलोकां विनिर्मितां कर्मभिरकतार्ताः ॥३५॥
 तां वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकन्यामचिन्तयद् विस्मयगन्धर्वित् ।
 लक्ष्मीदिय किन्तु सुरेश्वरस्य कान्तिर्तु चन्द्रस्य तु मानुदीप्तिः ॥३६॥
 व्यापन्तमेव परिगम्य योधास्तमेवभूषुः कुशलप्रधानाः ।
 स्वामिन् विवाहोपक्रमेतया ते हृष्टं जनो बान्धवि सङ्गतोऽपम् ॥३७॥
 हृत्स्मितोऽप्यावगादत् समीपे समंशये पुनर्मिदं कथं नु ।
 कबुः पुनस्ते ननु वृत्त एव स्वरोऽजया ते प्रकटस्तु नमोऽन ॥३८॥

जिस प्रकार उपपाद् शय्याको छोड़ कर उत्तम शरीरका धारक देव उठ कर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिमें छोड़ खड़े हो गये और दिशाओंकी ओर देव ऋष्ट होते हुए बोले कि यह रावण कहाँ गया ? ॥३०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उत्कट रोमाञ्चोंसे जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे वड़े भाई श्रीरामने आलिंगन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्तिके द्वारा आपको भार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥३१-३२॥ तत्परचात्र अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जाम्बव और मुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृन्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया-सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥३३॥

तदनन्तर जिनके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रङ्गके कमलोंके समान सुरोभित थे, जिसका मुख शरद्वस्तुके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उद्गर कुरा था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुरोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्थामें स्थित थीं जो, मानो शरीर-धारिणी कामकी क्रीड़ा ही थी, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिने कर्मा ने एकाग्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥३४-३५॥ ऐसी समीपमें स्थित उस विशाल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥३६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणको देख, मङ्गलाचार करनेमें निपुण स्त्रियों उनसे बोली कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आकर विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥३७॥ यह सुन लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोंका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार

मवत्प्रभावत्तसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ भज स्वमस्याः ।
इत्यर्थेनादौरवतश्च वाक्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७३॥

मालिनीवृत्तम्

सगविरचितसर्वरक्षाप्यरुत्तन्वयोगः पवनपयविहारिस्कोतभूतिप्रपञ्चः ।
अभवदमरसम्पत्कल्पितानन्दतुल्यः प्रथमभुवि विशालचमणोद्वाहकल्पः ॥८०॥
इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मभ्युदाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्वयसम्बन्धभाजो विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥८१॥

इत्यापे श्रीरविपेणाचार्यभोके श्रीपद्मचरिते विशाल्यासमागमाभिधानं नाम पञ्चपटितमं पर्व ॥६५॥

उचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥७८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो । इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरव-पूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७९॥ तदनन्तर जिसमें क्षणभरमें समस्त प्रशासनीय कार्योका योग किया गया था, विद्याधरोने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव सम्पदासे कल्पित आनन्दके समान था ऐसा विशाल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव युद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवस्था को मात करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, श्री रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें विशाल्याके समागमका वर्णन करने वाला पैंसठवों पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः



श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

[अ]

अथकान्तेन हृदय	२६५	अचिन्त्ययच्च चौरपा	१३७	अतिगन्धोऽहमप्यत्र	१०८
अगुनेन वर कण्ड	१४८	अचिन्त्ययच्च नो माघी	४५	अतिप्रहृष्टोऽस्य	३५६
अगुकेन समालम्ब्य	१४६	अचिन्त्ययच्च पद्मोऽन	२७५	अतिभूतिप्रभृतयो	६३
अगुकेनास्त्रुरण्येन	१४६	अचिन्त्ययच्च पश्यामि	२३	अनिभूतिश्च तदेतोः	६२
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च	२७४	अचिन्त्ययच्च मे कात्या	२३८	अतिमत्तज्ञानाग्नौ	५०
अकल्पय स्वभावेन	२६१	अचिन्त्ययच्च रामन्त्री	२५३	अनिमपुत्ररय करामिपातै	२२०
अकल्पात् तेयमुत्तुङ्ग	१३७	अचिन्त्ययच्च सम्प्रान्त-	३०३	अतिमृच्छतारमानो	३३१
अनीतिरिति निन्द्येय	२७३	अचिन्त्ययच्च मुन्यञ्च	२७४	अतिमृदुभुजमाला	१४
अदृष्टपच्यरीनेन	१०१	अचिन्त्ययच्च हा कष्ट काम	२६५	अतिरीर्य. समस्तेषु	१५५
अद्वीगिस्पर्शोऽसौ-	६४	अचिन्त्ययच्च हा कष्ट प्राप्तो	२३	अतिरीर्य किमेतत्ते	१६३
अद्वैतसत्त्वगम्भीर	३०३	अचिन्त्ययच्च ही साधु	१५२	अतिरीर्यमुनि हृष्टा	१६८
अक्षोहिण्यस्तत्त सप्त	२७४	अचिन्त्ययच्च वार्ता	३४२	अतिरीर्यस्तनोऽनोचञ्च	१६५
अक्षोहिण्या प्रकीर्त्यानि	३५८	अचिन्त्ययच्च मुन्यद्वे	२४१	अतिरीर्या तथा बुद्धौ	१५७
अक्षोहिण्यमहत्वाणि	३५७	अचिरातिग्रह घोर	४०६	अतिरीर्याऽतिबुधोर	१५६
अगाधदिव्य भृङ्गाणां	२१२	अज्ञातचित्तिता नून-	१४६	अतिवीर्याऽतिवीर्याऽय	१५६
अगृहीतैव सताह	३६३	अज्ञानानो विशेष या	२७०	अतिरीर्याऽत्र पद्मेन	१६४
अग्निर्केतुर्नियोगेन	२०७	अज्ञितदामर गन्ध	२२३	अतिरीर्याऽनि दूतेन	१५८
अग्रतः प्रवृत्त्यास्य	३०१	अज्ञातमिदमप्राप्त	१४१	अतिरीर्या महाघन्य	१६७
अग्रतः प्रविष्टो तस्मिन्	३८५	अज्ञातलोककृत्तान्ता	५	अतिरीर्या कपा कम्पा	१६४
अग्रनन्त्यरितो जातः	३८५	अज्ञाता एव ये कार्य	१६१	अतिवेगसमुत्पाता	३६६
अग्रनो भृगुरत्युग्रः	१८५	अज्ञातैरिदमस्माभिः	१५६	अतिशयपरम विनिहत	३१
अग्रतोऽनग्रहं तस्य	६६	अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य	२७२	अतीतागामिशोकाम्या	३८
अग्रप्रयाणरूप्यस्ता.	३५६	अज्ञानदापतो नाथ	२७७	अतीने गणरात्रे च	२०३
अग्रप्राथ यन्मन्याना	७३	अज्ञानयोगमेतस्य	१६१	अतीतर नीनित कोरा	१०२
अग्रप्रमथन नाथ	४०६	अज्ञानाऽन्यो विलङ्घः स	२०७	अतुम् परमाहारै	३४१
अन्न इतिमनुग्रीर	२०३	अज्ञासीत्तापविमानः	४०६	अतुम् क्षीमह्लोषे	३४१
अन्नाजानदृष्टीना	४६	अज्ञानाजिदेहाश्च	४०८	अतो जनकमरण्य	१
अन्नाग्नेनुना तेन	३१५	अज्ञानाजनयस्ताव-	३७५	अतो न ता स्वय देवि	२५६
अचलं नाम विरपातो	२०६	अद्वैतासन् विमुञ्चन्तः	२६१	अतो नरवपुन्यन्त	३६१
अचिन्त्ययच्च किं नाम	२३६	अणुव्रतघः साधु	११५	अतो ब्रवीमि राजस्त्वा	१६
अचिन्त्ययच्च किं म्रेत	२६	अणुव्रतघरो यो ना	१३८	अतो ब्रवीमि राजस्त्वा यद्- १०८	
अचिन्त्ययच्च किं सीता	२८१	अणुप्रानि सख्य	६१	अत्यन्त तदह मन्ये	३०६
अचिन्त्ययच्च को न्येप	५८	अतः सत्यमुद्दिश्य	३२१	अत्यन्त तूर्धरादिषा	७५
अचिन्त्ययच्च विव्राता	२३०	अतस्त्रिजयं ताव	१५६	अत्यन्त यज्वीरस्य	३५२
अचिन्त्ययच्च ते नून-	३१	अतिजामिह काले	२२१	अत्यन्तलुद्ध निर्लज्ज	२४५
		अतिदीनहृतायवा	२२६	अत्यन्तधनरूपेन	३४

अत्यन्तदीनवदनः	२४२	अथ रत्नजटी ऋतः	२४८	अथाशाल्म्विद्याया	३१८
अत्यन्तदुर्लभा लोके	२७३	अथ राजसुतासमीरित	२१६	अथाससाद कैष्किन्ध	३४४
अत्यन्तदुस्महा चेष्टा	६६	अथ लङ्केश्वर वीरं	३५१	अथासन्नत्वमागच्छद्	२३१
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः	१२८	अथ लब्धाम्बुदम्रात	१७५	अथासांवाञ्जो गच्छ	३०८
अत्यन्तविषमीभावं	४३	अथवा किं मनो व्ययं	४२	अथासौ ज्ञातसद्भावा	२
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या	१२७	अथवा क्षयमप्राप्ते	१८	अथासौ साधुमुगल	३१३
अत्युग्ररुर्मनिर्मांके	६८	अथवात्यन्तमेवेद	११३	अथास्य व्रजतो व्योम्नि	३१७
अत्यूर्जितो महासैन्यौ	३८२	अथवा दयितो रत्या	२४६	अथास्य वायुपुत्रेण	३७६
अन किं क्रियते साधोः	१०७	अथवा न मुनेर्वाक्य	३१५	अथास्य द्यतदुःखेन	२०४
अत्र विभाति योमगङ्गन्त	२१८	अथवा निखिले लोके	२५५	अथाहूतः पुनः प्रातः	२७७
अत्राग्निहोत्रशालाया-	१३३	अथवानेकशो दृष्टो	२६६	अथेक्षाचक्रिरे तस्य	३४७
अत्रान्तरे जगादैवं	८	अथवा नैव विशेष	४११	अथेक्षाचक्रिरे मुक्त	६०
अत्रान्तरे तमुद्देश	२६१	अथवा मयि विश्वस्ते	३८	अथेन्द्रजितवीरेण	३३६
अत्रान्तरे द्रवो मूर्छा	७६	अथवा मर्तुमिष्टं ते	३८६	अथेदुवारिधाराभि	२१६
अत्रान्तरे परिप्राप्तः	२३६	अथवा रामशोभेन	२६८	अथैकान्ते गृहस्थास्य	२५१
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता	४७	अथवा विरहव्याघ्र	१२३	अथैनमूचिरे वृद्धाः	२६०
अत्रान्तरे निदेशाजः	६२	अथवा शुद्धतत्त्वस्य	१२१	अथैवं दुःखमापन्ने	६३
अत्रान्तरे समागत्य	२३७	अथवा सप्तसैन्येन	१६	अथैवमिति तत्सर्वं	१७
अत्रान्तरे स सम्भ्रान्त-	४०१	अथ शोकप्रमादुप्रात्	४०८	अथोचो सिंहनादाख्यो	३४६
अत्रान्तरे मुरूपान्यो	१२५	अथ सुप्रोवमाहत्य	२७६	अथोत्सार्य कण्ठधादीन्	३६७
अत्रावसीदतो देव	१२१	अथ सद्ब्रह्मानमारुढौ	१८०	अथोद्यानगतानार्य	३३५
अथ वृद्धमयादोषः	२६६	अथ सेनापतिर्नाम्ना	२४६	अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ताः	१८५
अथ गेहोऽपि लभ्येत	७७	अथामर्कतिमाप्त्वीक-	३६४	अथोपलालन सस्य	२८१
अथ त स्वयतिरामान	३२२	अथाञ्जनात्मजोऽपृच्छ	३१४	अथोद्धत्य चिर पादौ	१८१
अथ तद्ब्रह्मसम्भूत-	१८३	अथातरथो सनिर्ग्रन्थौ	३१३	अदः पश्यति कैलास-	१७२
अथ तत्र क्षण भीत्वा	८६	अथान नगरे राजा	१४७	अदलादाननिर्मुक्तो	६६
अथ तामतिरीद्रेण	४०५	अथात्रैव वनोद्देशे	२०१	अदीघोपेक्षिता तेन	२२८
अथ ते त्रिदशामिक्षयाः	१३३	अथानरण्यनतारी	१६६	अदुष्टमानसः पश्यन्	२४
अथ तौ परमारण्ये	६४	अथानरण्यराजस्य	६१	अदृष्टतनुमिर्देवै-	३१५
अथ त्व साधयस्वये	१६१	अथान्तरिक्षे देवाना	२६६	अदृष्टावनिच्यार्थं	५६
अथ दक्षिणतो दृष्टा	३६५	अथान्ते तस्य निम्बिश	२२७	अद्रुतैर्जितमूर्धानो	६४
अथ नात्यन्तदूरस्थ	२४१	अथाप्येवविदारस्य	६१	अथ केयूरदष्टो मे	३६६
अथ नानाद्रुमदामु	१७८	अथाम्यर्णस्थित ज्ञात्वा	३५१	अथ ते निशितैर्वाणै-	२४५
अथ पद्म समानौक्य	२७७	अथार्कजटिनः सुनु-	२४८	अथ ते रावणः क्रुद्धो	३१६
अथ पद्मोऽतिरीर्यस्य	१६७	अथाश्चमित्र वस्तु	२८८	अथस्वीनममुं काय	४६
अथ प्रशान्तवैराता-	३२१	अथावोचत सीनेशः	२२७	अथाप्यस्योददायस्य	२०५
अथ प्रत्येपि नो राजन्	११२	अथावोचततः पद्मो	११४	अथेन्द्रगृह्यः कस्य	२३२
अथ भीतिपरिप्रस्ताः	२८८	अथावोचततः सीता	१२६	अथैव त दुर्गाचार	२३२
अथ मेरीनिनादेन	५२	अथाशङ्काभिनृणात्मा	२७२	अथाष्टा च मुग्धाणि	३२३

अवतय पुरा शक्ति	४६	अनिच्छयाय विघ्नस्ते	२३२	अत्र च परम ताभ्या	३३५
अवर्गपरिणामेन	३७१	अनिर्वायं समात्मक	१६	अन्नं वरगुण भुक्त्वा	१७१
अवस्तस्या क्षितेरथा	७	अनीक्रिया दश प्रोक्ता	३५८	अप्यत्र पञ्च कौशल्या	३५५
अवस्तात् स्फुटिता वाप्य	३३८	अनुकूलारिभि पापे	२०१	अयजामसु ये दारा	६२
अधानदिपुमुद्भूय	३१६	अनुगत्य सुतू तौ	१६७	अयथा वज्र महीचारा	२५४
अधानलक्ष्मणस्तथा	२०	अनुवा लक्ष्मणा यम्य	३५	अयग तिथिरेत्या	१६६
अधिक माममानाङ्गौ	३८५	अनुदरो दृढरथ	३६७	अन्यगथ तमुद्देश	२४
अधिच्ये न कृते तस्मिन्	३७	अनु वरस्तु विहर	१६०	अन्यगथ महीपाल	१६७
अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे	६६	अनुयमगुणधरमनुपमकाय	३२	अन्यगथ सुखासीन	१५५
अधीश्वर स यद्वाणा	१३६	अनुपान्तिमयादा	३४१	अप्यत्र परिश्रमश्च	३१५
अधुना त्व मया ज्ञात	१४४	अनुपयातुनामस्य	८३	अप्यत्र प्रथित क्षोण्णा	१८६
अधुना त्वमि दापादधे	३२२	अनुवचमहाबाहा	२६४	अप्यत्र योगमाश्रित्य	६१
अधुना दशये शीघ्र	४००	अनुवचमिदं हास्य	२६२	अप्यत्र रतिरीलस्य	३३४
अधुना धेनुमित्र्यास	१४५	अनुमचस्व मां तात	७७	अन्यदा वज्रकर्णाऽय	१०६
अधुना भज लाक्ष्म	३२६	अनुराग त्कटेभृत्यै	३५६	अन्यगवधिना ज्ञात्वा	१६३
अधुना रावण क्रुद्ध	३४६	अनुलम्बश्च तस्याग्न	२०४	अन्यथा सा पुर सत्पथा	१११
अप्यर्थं तस्य पत्न्या	६६	अनुष्ठित इत्या मातु	२२८	अन्यदा सिंहनगर	६६
अप्यत्रमान गुहणा	६३	अनुप्य भास्वर कुया	४११	अन्यस्यैव मया शस्त्र	३६३
अधुन देहभागादि	६०	अनुदरेति विख्याता	१८५	अथा गुणयती नाम	२ ६
अत्राय घर्कैर्मनै	१०४	अनुसस्तुश्च त नाना	६०	अन्यायमीदृश क्तु	८१
अनङ्गमुमा कृत्रा	३००	अनेकशोत्रचरणा	३५७	अस्या मुरवती नाम	२७६
अनङ्गमुमा लब्धा	३३०	अनेकमुद्रनिभग्न	२६५	अन्यास्तनोबुरे कोऽपि	११८
अनतिप्रतिष्ठा काचि	३६२	अनकरलक्ष्मण	१२०	अये च याथा क्षत	४१२
अनयुचैर्धनं ज्ञायै	१६६	अनेकशो मया प्राप्ता	६२	अन्ये जगुरिय किमस्माक	४०
अनन्तपद्मानोति	६८	अनेकाकारवक्रादथ	३१७	अन्ये जगुरिय नून	४०
अनन्तर नृपादेशात्	११२	अनेन भूभृता श्रेष्ठै	१६७	अयेषु सन्ततक्राधा	३७४
अनन्तरीर्षतथाश्च	१६३	अनेन क्षात्रियाऽपुष्टिहृ	४०६	अन्येषु सन्ततमाहूय	३००
अनन्तरीर्षयागात्र	२६८	अनेन माधुना पश्य	१०६	अयेऽपि शकुना क्रूर	३६५
अनन्तार्यसम्पन्नान्	२६५	अनेनामृतकल्पेन	११५	अन्येऽन्येव महायथा	३६०
अनयमानसामौ हि	१८१	अननैर तता युक्ता	३०२	अथा य दत्तनेत्र च	५६
अनयशरणजन	५७	अत कुवा शिशुगण	२१४	अथान्यभल्लगानान	६२
अनरण्ये च रा पश्य	४	अतर पित्य शरस्या	३५६	अयो यमभिमतैव	२६७
अन र्यत्रमदृश	६६	अन्तरङ्ग प्रतीक्षारो	१२६	अन्यो यस्य यय द्राइ	२७६
अनयाऽनञ्चित्तन	३५३	असुरेण प्रभोरात्रा	३३४	अन्योऽथाहृतमेतेषा	३७४
अनादत प्रभूत च	२३०	अन्तर्द्धा सेतिते ताभ्या	३८२	अवगायति लक्ष्मी	१८१
अनाग्रमन्तिर्मुक्त	६८	अतर्द्ध च सन्तुष्टा	२३०	अचयत्रतमस्माक	५०
अनाग्रश्चापि त नात्रे	३६४	अते तस्या महारण्ये	७६	अन्वर्षस्तस्मात्ते च	२६२
अनारतमिति ध्यायन्	२६	अने लक्ष्मणस्तन	१२७	अन्विष्यती प्रभाते नो	१७६
अनिच्छन्त्यमी तेन	४११	अधीभूतो दशास्यस्य	३८१	अन्विष्य विद्वत्तस्तन	३६४

अपराधिणि कारुण्य	१२२	अब्रवीदस्ति कौशाम्बी	१३०	अमुष्मिन् वस्त्रभवने	१२६
अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्य	११२	अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते	१३४	अमुष्य व्यसन कृत्वा	२३७
अपमानेन दग्धस्य हृदयस्या-	४६	अब्रवीत् पद्मनाभश्च	२६०	अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य	१८४
अपरः कृतसनेता	८६	अब्रवील्लन्धसश्च	२७७	अमृतादपि सुखादैः	२६४
अपराधयिमुक्तस्य	११५	अमग्नमानशृङ्गेय	१७३	अमोघविजया नाम	४१०
अपराधानिमान् श्रुत्वा	३४०	अग्न्याना गतिः क्लिष्टा	६८	अम्ब मा गाद् विषाद्	७६
अपराधाधिगमनं सन्	२६८	अमाव्यी च तथा भाव्यी	६७	अम्बरं भानुकर्णस्य	३८२
अपरे त्रयया रेचि-	८८	अभिज्ञानादिक सर्वं	३४४	अम्भोविदारविज्ञान-	८६
अपरेर्मुग्धाद्भूत	३८८	अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा	३८६	अयं कुङ्कुमपङ्केत	२२७
अपरे शयरा रेजु	२०	अभिप्राय ततो शास्त्रा	२८८	अयं कञ्चित्फलभरनम्रादयः	२१६
अपरोत्तरदिग्भागे	१४७	अभिलक्ष्य शिराज्जाल	४८	अयं प्रयत्नादिव चित्रिताङ्गो	२१४
अपरा मानमुत्तुल्य	८६	अभिलप्यति सन्तापो	३७४	अयं प्राप्नोऽयमायातो-	११६
अपश्यश्च समुत्थाय	१५०	अभिवाञ्छति मत्तुं वा	३६३	अयं मदालसेक्षणः	२१३
अपश्यद्य तद्वृद्धं	२२६	अभिपिञ्चत मे पुन	७३	अयं मृग इवोद्विग्नो	१५०
अपश्यद्य नरभेष्ट	३०२	अभिपेक्षं जिनोन्द्राणा कृत्वा	६७	अयं शरणमायातो	२७५
अपश्यद्य परिस्फीता	२६	अभिपेक्षं जिनोन्द्राणा विधाय	६७	अयं स वर्तते कालः	२६१
अपश्यद्य मनश्चौरी	४६	अभिपेक्षजल तस्या	४०७	अयं स लक्ष्मणः खयातो	२१७
अपश्यद्य महामोह-	२३६	अभिपेक्षप्रभावेण	६८	अयं सत्यमुद्य मुक्तरा	२२१
अपश्यद्य लताजालै-	३२४	अमीतिदानपुण्येन	६७	अयत्नेनेष्ट सा तेन	१७४
अपश्यद्य विसाराणा	२२७	अभूत सर्वशोक्स्तर-	२२५	अयमन्यश्च विषयो	१४५
अपश्यता च तस्यान्ते	१७८	अभूता चूर्णने देव	४८	अयमस्य महान् लाभो	२१६
असर्वांमुतो देशा-	११६	अभ्यङ्गोद्वर्त्य मुस्तातं	१३१	अयमायामि देवेति	१५०
अपि चानुनमानुति-	७७	अभ्युत्थानादिकामस्य	२७२	अयमिच्छाकुसम्भूतो	३६
अपि दिनकरदोषिः कौमुदी	१४	अभ्युत्थानाभियानाभि-	२००	अयास्यद्यदि नैताभ्या	८७
अपि द्रष्टु न ये शक्ये	५५	अभ्युज्झितमतिमानी	३८८	अयि देवि क्व यातासि	२१६
अपि नाम पुनः क्रीडा	३६६	अमन्यन्त सम्भूय	३५४	अयि पापे किमित्येषा	११४
अप्रीत्यन्त प्रजाः सर्वाः	३३	अमात्य भूतमाहूय	३	अयि भद्रतिमद्योऽष्टो	३६६
अपुण्यया मया नून	२२८	अमात्यपदनं धीक्ष्य	१७३	अयि मुञ्चे मुक्कण्डेऽस्मिन्	१४६
अपुष्पलोकमहात	२६६	अमी ततः समागत्य	३३६	अयि मृदे न पुण्येन	१७०
अपुष्पं परिष्कृत्य	३४५	अमी निरागतः क्षुद्रा	१०८	अयि मुन्दरि हर्षस्य	२५७
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमी मयाकुप्य म्प्रेच्छा	२१	अयोमगोदितं चेत	२३१
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमीभिरनुयातेऽह	१५६	अयोमयामिद तेन	२६२
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमीभिरद्वरैः पद्मः	२७६	अरक्ष्यदेवतायुजा	१४८
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमी लङ्काभिता राजन्	२२५	अरक्ष्यमपि रम्यं	२५०
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमीयामन्य आकारो	२६६	अरण्यात् त्रिप्लवः प्रातो	६१
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमीपु र्जाटचारुणि	१६६	अरण्याना गिरिर्भूति	१५२
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अमी ममीगणेरिते बरोष्ठि	२१६	अरण्यानीं यना सप	४०३
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अनुमिन्नीन्वयं	२१३	अरण्यान्नुज्ज्वलानां	४०४
अपुष्पं ततः पद्मः	१०६	अनुष्य पुस्तकमांनि चित्र	२८६	अरण्ये तत्र निम्नं ये	१३३

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्	२४१	अगतीयं ततो वृक्षाद्	२६	अशानिमे गता. क्वाति	३५८
अस्या कर्पिताङ्गोऽमी	५४	अगतीयं तुरङ्गाच्च	६४	अशोषोपितं कृत्वा	४५
अरुण घण्ट कविल इरितं	२१५	अगतीयं मन्त्राद्यात्	२७	अशो गतानि सप्त्या	३५८
अर्क कीर्तिमो भूत्या	३६५	अगतीयं मन्त्रादायु	६५	अमदग्य अग्नि मातङ्गा	३४
अर्कमिच्छन्तः सोऽग्नि	३०६	अगतीयः समीपे च	२६४	अमल इव त द्रष्टु-	८३
अर्णवाह धनुर्गत्स्य	३५३	अगतीयस्ततोऽबोचद्	२५	अममातङ्गाः तारच	३१३
अर्थेन प्रिप्रदीनस्य	१४४	अगतीयेण निर्गत्य	८३	अममातङ्गिन्द्रियमुप	८४
अर्थाऽय दुस्तोऽत्यन्त	२७१	अगती पूर्णकलशाः	१६५	अममातोपयोग्य	२२६
अर्धद्वयतश्चक्षुः	४	अगती च सचेष्टा	१६१	अमातुलितमात्रज्ञ	३०६
अर्धरात्रे तदा स्पष्टे	१५०	अगतीहस्ततो देशा-	३२६	अगतीऽप्यमहोऽत्यन्त	१६०
अर्धचन्द्रो जिनप्रेमा	३६८	अगतीक्य मुनीनित्य	१८६	अगतिभिः सिताभिश्च	१३६
अर्धितः पौषगायातो	१२	अगती यदि मोक्षया	१९६	अगतिप्रज्ञा याता	७
अर्धरात्रिका दृष्टा	३६३	अगती ममाङ्गानि	२५२	अगतिप्रज्ञा चक्षुः	७
अर्धसप्ताहनामाय	३६३	अगतीदत्ततो दृष्टा	३७५	अती दृताऽप्यदा राश	१८४
अर्धस्वर्गोदयश्चान्ये	२८६	अगती या गतामेता	३२८	अती पवनपुत्रोऽग्नि	३१७
अर्धितः पुण्यवत्यै च	६०	अगतिस्ततोऽप्यमनेति	१४३	अती प्रमत्तकीर्तिर्मे	३११
अर्धक च दृष्टाति	११	अगति च प्रिये कर्मदा	४६	अती मोक्षयिता तस्य	३७१
अर्धच्छासनदेवीन	६६	अगतीवर्गोत्संज्ञातः	१५६	अति कौञ्जपुर नाम	७८३
अर्धस्त समतिप्रम्य	१४०	अगतिम मती काचिद्धर्तु-	३६२	अति ते दुहिता राजन्	३२
अर्धस्तलिङ्गस्युत्पन्ना	३५	अगतिद्विपरमार्थरेवमर्थेन	२३१	अति वेणातदे मेही	२६०
अर्धतो मङ्गल सन्तु	२६६	अगितित्वानयोर्मेद-	२७५	अत्यन्त कनयो नाम	४२
अर्धं कान्ते रुदित्वा ते	३८	अगतीक्यपायसी तासा	३१४	अत्यन्त प्रमो नाम	२०७
अलम्पनचन तस्य	२६८	अगतीक्यमणः पद्म	१२०	अत्यन्त भित्ति नाम	२५
अल तापानि सद्गते	३०६	अगतीपारेण तातस्य	७४	अत्यन्त लक्षणामोघी	२८८
अल प्रतिमयाकारा	१८२	अगतिप ततः किञ्चिदी	३३४	अत्र वनोऽग्निर्गो	३८०
अल रुदित्वा नान्येन	२३२	अगतिः सर्वमासादो	२०२	अत्राहमनमाह	३५७
अर्धं वरुने रुदित्वा ते	२५४	अगतिः कावतोऽप्योऽह	६३	अस्मद्द्वारसपायातो	३१४
अगतीरोदय नाम	२२४	अगतिपरस्तुम्यत्ता	१३६	अगती च भन पूर्व	६०
अगतीचनसकाशः	४१	अगतीक्यालिनी नाम	२६३	अस्माक बहवः सन्ति	३४६
अगतीय ततस्तस्मात्	१३०	अगतीहाना सरम-	६८	अस्माकमन वसता	१६७
अगतीय कुमारीयं	५५	अगतीद्विद्वन्वक्तव्याः	१५२	अस्माकमपि नारीणा	८२
अगतीय ततो धर्म	१३८	अगतीप्रमो महासेन्यः	२६७	अस्माभिः सह युष्माक-	८८
अगतीहानधर्मोना	२६५	अगतीयैस्तिन्त्रिहीनाभि-	२११	अस्मिन् भगवत्ये राजन्	६७
अगतीहोऽप्यमदीयः नव	२०६	अगतीयान् शाल्यप्रोषा	३३७	अस्मिन् महीधरे रम्ये	१७६
अगतीरितमीरिंक	४१	अगतीरुदः स तं दृष्टा	१०७	अस्मिन् राघव नाकामे	१३४
अगतीर्णः किमेयः स्या-	३५५	अगतीरुदः सम लम्नाः	३७६	अस्मिन् सुगन्धेऽरण्ये	२०६
अगतीर्णा विमानाग्रा-	४१०	अगतीऽप्यनीसनीसज-	३५८	अस्मिन्नागचरेऽप्येया	२२०
अगतीयं गजात्तन	१६४	अगतीहानसहस्राणि घेनूना	१४६	अस्मिन्नुच्चैर्निर्जराः	२१५
अगतीयं ततः क्रुद्धो	३८०	अगतीहानसहस्राणि पत्नीना	३५६	अस्य गङ्गदेशेयु	२१५

अस्य पोरसमुद्रस्य	३३०	अग्रजः प्रोष्ठिभो राजा-	१५६	आत्मीयवल्गुमरुच	२५१
अस्याः पुरः समासत्रा	१३८	आकारमात्रमनैत	२५	आत्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा	३०३
अस्याः शृणु यदावृत्त-	१६०	अकुल्य रक्षता चैता	२४८	आदरेण च तैः वृष्टः	२५
अस्या च ये गताः सिद्धिं	२६५	आकुलो मन्त्रिमिः साक	२६५	आदरेणानुवृत्तश्च	१३६
अस्या मगजता तेन	३०८	आकूपारसमं तेन	३३७	आदित्यश्रवणेनासौ	३८१
अस्या द्वारत्रय पुण्यां	१३८	आकृष्टो नगरीमध्य	१५८	अत्रिणेन स रामेण	२०३
अस्याहेयाः शुभ्राः नेचित्	२१६	आकृष्य कर्मुक कूर	४१	आनयाम्येय सत्कन्या	५६
अस्योपरि परिबन्ध	२४८	आकृष्य हुरिका नेकि-	११७	आनयेयमितः क्षिप्र	१०५
अह त्वा लोकप्रपात्	२८३	आकृष्य सागरजल	३१४	आनागिकृद्हीतोऽमी	३५५
अह पुनरुत्तारमा	१०६	आक्रोशः सारण पापः	३७४	आनायितः विता मूल्या	१२१
अहयुयमायन्त	३०८	आकृष्य च क्रमात् सर्व	३१६	आनन्दं सर्वलोकास्य	१६६
अह ॥ लक्ष्मणो मुख	१४६	आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा	१५६	आनन्दोद्यानमाश्रित्य	२०८
अहमार्थं गमिष्यामि	३११	आगच्छाशु ममाम्बाय	११३	आपत्तरमणीयानि	५०
अहस्त विह्वलः कन्या	६३	आगत जनक शत्र्या	३०	आपूर्वमाणवर्णनी	८३
अहिंसानिर्मलं द्वार	१४०	आगतश्च द्रुत भूयः	२३३	आशुष्टया न मे किञ्चि	७४
अहिता प्रवर मूल	८	आगतो यश्च सैन्येन	२१	आसप्रचारणन्याय-	३८
अहिसारतनादाय	६६	आगत्य नाक्तः केऽपि	१३५	अभिमुख्यगत मृत्युं	३६१
अहिदेयमहीदेवी	३५५	आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या	१५६	आभ्रानाभ्रातकालोभ्रा-	३३३
अहा कान्तिमुख्येय	८६	आगमिष्यति मे पुत्रो	२२६	आयातोऽभिमुख तस्य	३६०
अहां जितेश्वरे भक्ति-	३१४	आग्रहः स चिरामोहा	६२	आयान्त्येन सती कर्माद्	२३०
अहा ते वरम माहात्म्य	३१०	आचार्यमार्गगत च	३	आयान्दृष्टिषा स्लेष्ठा-	१५५
अहोऽद्यैकादश ज्ञात	३२४	आचार्यस्तु निमित्तेपी	५१	आरण्यरुस्तदा हली	३१४
अहो धैर्यमहो त्यागो	३०५	आचार्येणैत्रिम्युक्ते-	१६६	आरण्यतृणपानम्य	१०८
अहो परमधन्येय	८२	आरादानेन चारोपान्	३५६	आरब्धुं प्रसभ कार्यं	२३६
अहो परममाहात्म्यो	३	आरादानेन तृष्टोऽमी	२७	आरुह्य च रथं मिहे-	३०६
अहो परमिदं विन	३३०	आज्ञापयति नगरे	१५५	आरुह्य तेन मुक्तः सो-	२६१
अहो पराक्रमो मद्र	३११	आज्ञापयत्यमी देवा	११६	आरुह्य वासिता मद्रा	५२
अहो प्रीतिरहो भक्ति-	८२	आज्ञापयत्यमी देवो भवन्त	१५७	आरुद्रा त्रिचरन्त्येन	२११
अहो प्रीतिरुमायां	४२	आज्ञानेन ततः सीता	२३२	आरोह देवि मे रक्षणे	३१६
अहो महानुभावोऽयं	८१	आदोऽमीदृश दृष्ट्वा	१७	आरोहन्ती गिरि देवी	१८०
अहो महान्तः परमा वनास्ते	४०७	आदुष्टीकृन् द्रुतं चाह	८१	आर्तलेन सद्गुःगेन	३००
अहो मे ययुना तेन	३०	आतिथेयाः स्वभावेन	१०१	आर्धदेशाः परिचरन्ता	१६
अहो रूपमहो सत्त-	४११	आतयानुगत मूल्य	१६२	आर्धनेताञ्जनरामान्	१५
अहो रूपमिदं लोके	३२५	आत्मभेषे समः पद्यः	२६३	आर्धे विद्याभूता कन्याः	२३
अहो वीर्यमहो रूपं	१७५	आत्मभेषेयनो जृम्भ	२६३	आत्मने यदि नो यष्टि-	४६
अहो यो विमला बुद्धि-	३१६	आत्मभेषेणोऽभिधानश्च	२६२	आत्मनोऽपहृतो मृदो	११६
अहो शक्तिरहो रूप	३०५	आत्मनोऽपहृताः कर्म	२५७	आग्निज्ञिता मनश्चोर्वी	६०
[आ]		आत्मनोऽपहृतमन-	१६६	आग्नीयमानवाधारा	३१८
आः पार दक्षिणदुःख-	२८२	आत्मीय राजमाधाय	५८	आलोच्य शम्भुमहाव	११६

आलोक्यावधिनेत्रेण	३८३	आस्ता स्वामिनि ते वाक्या	१६५	इति ता मुर्तौमुच्ये	१२
आनयोः किल दारार्थं	१८८	आस्तुणद् योक्ष्य तस्मिन्-	३६७	इति ता वचन भुक्ता	३२६
आवयोरधुना भ्रात्रोः	२०७	आस्तुगानमयो द्रष्टु	११८	इति टीनमना गच्छन्	१३१
आनास्यतिर्गोऽपश्य-	१६१	आस्त्राल्यमारयाभ्येन	१०	इति प्यात्रा पुत्रेऽमुष्मिन्	४०६
आवृतास्ते समुत्तः	३६५	आस्त्रादित महावीर्यं	६२	इति प्यात्राऽलोकिन्या	२३७
आशा च मज्जमानस्ता	२४८	आस्त्रादमानो निजयेच्छ्रयासौ	२१०	इति प्यात्राऽऽदीक्ष्य	२४७
आशापरायण नित्य-	१४१	आहवेऽमिमुखीभूत	३८८	इति प्यायन् मद्राभीत्या	१०५
आशीनिपाग्निभूतेय	२६०	आहार मोक्तुसामस्य	३३०	इति प्यायन् विनिश्चित्य	६१
आशुकारामुराकारा	३७२	आहारदानपुर्येन	६७	इति निगदति पक्षे केनयी	२२२
आश्चर्यं मोक्षतः कष्ट	१६२	आहारो वायुपुत्रेण	३३३	इति निगदति राघवोत्तमे	२१८
आश्चर्य्य ज्ञानको देवि	१७५	आहार्यैर्विधिषे. शास्त्र-	२००	इति निजचरितम्यानेऽरूप	३६५
आश्रयस गच्छ विश्रब्धः	२०६	आहिताग्निद्विजस्तन	१३३	इति निर्युहदेशेषु	८७
आश्रयसितश्च नापीधै-	१८	आहुरन्ये समुद्धारः	२६६	इति निर्बेदमापन्ना	६०
आश्रयित्वोत्तर तीर	२२४	आहूताऽथ हितै पुष्पि	१२०	इति पूर्वभन ध्यानात्	२०१
आश्रयाद्य इव स्वस्य	३५३	आहो वयस्यञ्छ्रित्वा	२३५	इति प्रष्टः ममाधानी	३२८
आपादधवलपट्टम्याः	४५	आह्वयन्त सुमन्त्रदाः	३९६	इति प्रणे मशतेजा	६७
आर्तलौकिकमर्यादाः	३७१	आह्वय स मयाऽऽचि	४०१	इति प्रशस्तार्पितभाविता	३८६
आसन्न च परिहाय	२८६	इ		इति प्रशस्य त स्नेहा	३११
आसन्नाना च वल्लीना	१८१	इच्छाचने च देवेन्द्र	५६	इति प्रसन्नता प्राप्ते	२२३
आसन्नोऽय महाप्रामो	१३३	इच्छाकुचशसम्भूता	३५	इति बहुविधवाचा	३६०
आस-महेन्द्रसमामे	२५५	इच्छाकूणा कुल श्रीमद्	७६	इति मङ्गलनिस्त्वानै	२६६
आसीच नन्दनच्छाये	३३४	इच्छामात्रादपि क्षुद्र	२५३	इति मनयमाणस्य	१६१
आसीत् दृष्टेवष्टम्भ	४८	इच्छामि विशद आतु	१५७	इति राक्षः पुरः कृत्वा	५
आसीदतिशुभे तस्मिन्	४०	इतः क्षमापन्न मेरो-	६	इति वनगह्वरान्यपि प्रयाताः	१५४
आसीदश्लु कुमारेषु	४०	इतरोऽपि खलीकुरुं	१६५	इति विहाय निरस्तं	२०५
आसीदनन्तवीर्यस्य	२५६	इतश्चेतश्च निस्तीर्णं	११८	इति विद्याधरी वाक्या	४००
आसीदनुममालोक्य	२८६	इतश्चेतश्च निस्तीर्णां	५६	इति निरमयमापन्न.	३०३
आसीद् यदपति श्यातः	२६२	इतस्ततश्च तत्रार्चा	२५१	इति विशितमुचेष्टाः	४१४
आसीद्देन्द्रमुष्टेऽपि	३१०	इति कृत्वा स्मृति क्षातु	१४२	इति सवेगमापन्नः	३०३
आसीदस्याप्रिमाहात्म्य	३०४	इति केचित् समाचार	१४१	इति सञ्चिन्त्यन् मुदः	१०
आसीद् रथ्योपशान्माक्या	३२२	इति गत्या गतीः भुत्वा	१६४	इति सञ्चिन्त्ययन्ती सा	१५०
आसीनमज्जन्तावेन	३४५	इति गायति दैत्येन्द्रे	३२	इति सञ्चिन्त्य कामार्तः	२१७
आसन् मम वपुः शैल-	४८	इति चापैदयनाय	१५४	इति सञ्चिन्त्य जग्राह	१०६
आसीन्मया कृता वाङ्मा	१६५	इति चिन्त्यतस्तस्य सुमायौ	१८	इति सञ्चिन्त्य जायायै	१५२
आसीन्मे शीर्णपठित	१४५	इति चिन्त्यतस्तस्य प्रसन्ने	१२०	इति सञ्चिन्त्य तामङ्गा	२३६
आस्ता तावदिद राज्य	६४	इति चिन्त्यतस्तस्य सञ्चारात्	२८६	इति सञ्चिन्त्य निर्धाता	३८२
आस्ता तावदिद वक्ष्ये	४	इति शाल्ता क्षम कर्तुं	१०	इति सञ्चिन्त्य निश्चन्द्री	१४६
आस्ता तावन्मनन	१४४	इति शाल्ता महादुःख	८	इति सञ्चिन्त्य ससाधु	२२६
आस्ता तावन्मनुजनिताः	३८४	इति तद्वचन भुत्वा	३२७	इति सञ्चिन्त्य सन्त्यय	१६०

इति सञ्चिन्त्य सम्भ्रान्त	२४८	इत्युक्ते परिषमना	११७	इत्युक्त्वा मोचयित्वा त	१३५
इति सञ्चिन्त्य सा बाला	१४८	इत्युक्ते पादयार्तुतो	१५८	इत्युक्त्वा रथमारुह्य	१५६
इति सञ्जातचेष्टासु	३६२	इत्युक्ते पायिवोऽवोचत्	३७	इत्युक्त्वाभिक्षितु क्षिप्र	१६२
इति सम्भाषिते तस्या	१६२	इत्युक्त्वाऽभिदधे तात किं	७६	इत्युक्त्वावस्थित्यग्नि	२४५
इति सुमित्रम्	२२०	इत्युक्त्वाऽभिदधे तात हृषीक	७७	इत्युक्त्वा वायुसम्भूत	३११
इति सुनिहितवृत्ता	३४३	इत्युक्ते मुञ्चती वाग्ध	७५	इत्युक्त्वागार्यमाणाय	१३३
इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे	४०७	इत्युक्त्वा रघुचन्द्रेण	३००	इत्युक्त्वागार्यमाणाय	२१७
इतो हण्यति हणो	६४	इत्युक्ते रक्षसि स्थित्वा	३५	इत्युक्त्वा त्रिकथा कर्तुं	२६१
इत्यग्निगम्य निचक्षणमुख्यै	३७३	इत्युक्ते रामदेवोऽपि	१४७	इत्युक्त्वा विररामासौ	५७
इत्यधुर्दुर्दिनीभूत	४०४	इत्युक्ते वदती सीता	३३५	इत्युक्त्वा विष्णुरिह	३६३
इत्याचार्यस्य वचन	६	इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्य	१२२	इत्युक्त्वा शिरसा पागौ	१३६
इत्यादिर्धनान्युक्ता	३६	इत्युक्ते वचन याति	३३०	इत्युक्त्वा समिधामार	१३७
इत्याद्यालापससक्त	१७०	इत्युक्त्वा वचन सीता	३३१	इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा	१६८
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य	५४	इत्युक्ते विस्मय प्राप्ता	६२	इत्युक्त्वासी सुतनया	५६
इत्यासन्न तयारासी	२४५	इत्युक्ते वैरसम्भवा	२४४	इत्युक्त्वा स्मद्भुक्तम त	२५८
इत्युक्त्वा कण्ठ पायत्	२२७	इत्युक्ते सीतया सार्धं	१२६	इत्युक्त्वा स्वग्रह गत्वा	१६१
इत्युक्त्वा कुपिता राजा	१७३	इत्युक्ता श्रुतिमासाद्य	६३	इद कर्मविचित्रत्वाद्	२०६
इत्युक्त्वा क्षाधसरत्	३४१	इत्युक्त्वाऽप्यनुक्रमेण	२८७	इद च प्रत्ययेत्यादि	३०६
इत्युक्त्वा प्रकृत्काध	११६	इत्युक्त्वाऽप्यवस्थित्य	११३	इद जनो य मुविशुद्धचेता	६६
इत्युक्त्वा साञ्जलिं पक्षी	२०६	इत्युक्त्वाऽभिदधे तात	७७	इद तदण्डकारण्य	२१५
इत्युक्त्वास्तेन यातोऽसी	२२४	इत्युक्ता मत्ताने कृत्वा	१६५	इद ते कथित देव	११३
इत्युक्ता सम्मदोपता	२४८	इत्युक्ता लक्ष्मणोऽमाणीत्	२४७	इद नाथ महाश्चर्यं	२२५
इत्युक्ता कुपितावाच	३२६	इत्युक्त्वा कङ्कच्छन्न	२३५	इद पर चेष्टितमाति	१६६
इत्युक्ता लिप्यती क्षाणी	७५	इत्युक्त्वा क्षमयित्वा	१६६	इद बाल्यमिदं बाल्य	११५
इत्युक्ता वागसम्भार-	२५७	इत्युक्त्वा चरितार्थं सन्	२६	इद शिखरिणो मूर्तिर्न	१०८
इत्युक्तास्ते गता मोह	२८८	इत्युक्त्वा दक्षमानाद	१५८	इदमेव शरीर मे	२५७
इत्युक्ते कण्ठान्निष्ठ	११३	इत्युक्त्वा दुःखभारेण	१२८	इन्द्रीवरनिभेनाय	१७६
इत्युक्ते कौरमायात	११७	इत्युक्त्वा दीपण सैन्य	२४४	इन्दुरिर्मर्जयच्छन्द	१७७
इत्युक्ते कवसम्भार	३०६	इत्युक्त्वागानन्दवाप्येण	६५	इन्द्रायुषा गनरास	१६७
इत्युक्त्वा कोऽति नाऽर्थ	३४	इत्युक्त्वा निरपेक्षो तौ	८६	इन्द्रियप्रभय सौख्य	१०८
इत्युक्ते चतुरैरिवै	२५०	इत्युक्त्वा परमं मित्र	२३४	इन्द्रियाण्यमृत सन्	२०६
इत्युक्ते जननेनैता	३२	इत्युक्त्वा परमादिगता	२४१	इन्द्रियैर्विचितान् प्रच्छ	१०७
इत्युक्त्वाऽन्तमस्त्रि	६६	इत्युक्त्वा पादय कान्ता	१८३	इन्द्रेण साधिता यो न	३५८
इत्युक्ते द्वित्र उरयाप	३	इत्युक्त्वा पाशमन्त्रया	१४६	इत्येक पत्नरश्चैव	३७१
इत्युक्ता मया देवि	२४६	इत्युक्त्वा पुनरप्यासीत्	२४१	इमकण्ठो गगनस्था	१३५
इत्युक्ते सर्वान् मत्वा	२८५	इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य	६५	इमं चन्द्रगति भुक्ता	५८
इत्युक्ते निभिता शला	७३	इत्युक्त्वा प्रगति कुर्वन्	१३१	इमं यन्निता इन्द्रा	१४२
इत्युक्ते परमं तप	१२८	इत्युक्त्वा भावन पागौ	७६	इमं दुर्गुणस्तमे	११४
इत्युक्त्वा परिशुद्धेन	४००	इत्युक्त्वा मुक्तिऽस्त	३७८	इमामन्त्रिमाहारा	२१६

इमानप्रतिमाकारा	२३६	उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति	२३३	उत्ताह परमं विभ्र-	२७४
इमे द्विये पलकुमुमैरल-	२१८	उग्रभाटस्तथा मुन्दगः	३६४	उत्ताहयन् हृत्तुच्छं	१५६
इमे वाणासने कर्तु-	३६	उचित किमिदं कर्तुं	३२४	उत्तेहे रागो यद्दुध	३७८
इमैर्मिगदितैः क्रोधात्	३४०	उच्चारयति नो शब्द-	१७२	उदात्तेष्वसस्तस्य	३६०
इय च तत्र शोकेन	७८	उच्चवचा दिति वेगात्	४८	उदारभट्टकामिनो	११८
इय च पुनरशोकेन	७५	उच्चगाम ततो लोक	१६४	उदारे विभिने देव	३८१
इय च शाक्यमाज्ञा	७८	उच्चयिन्या ददावध-	१२२	उदारे सति सौभाग्ये	३७
इय ते प्राणतुल्येति	२४१	उद्धृतः किनेय स्याद्	११	उदाहृतमिदं भुत्वा	७१
इय नः सुमनी माता	८७	उत्क्रिन्नितरा दृष्टो	३४८	उदीचीनं प्रतीचीनं	२५४
इयं मनोहराकारा	३२०	उत्तमपञ्चगव्यक्षिणदेह	३१	उद्गतं भवने वह्नि	३५२
इय यमालयं पाप	३१६	उत्तमपञ्चगव्यक्षिणा	३२७	उद्गता बद्धकवचाः	३८८
इयम यत्र मे काल	१३०	उत्तमा उपकुर्वन्ति	३६७	उद्गीर्णमानने नैव	६४
इयमेतदयं बल्लरी	१७८	उत्तरियाशुकस्येद्व्यं	२६३	उद्घातितकपादानि	२५६
इरा नाम ततस्तेन	३३२	उत्तिष्ठति पुनः शल्यः	२६४	उद्दामान मनोरोग	२७
इष्टनस्तुविज्ञातेन	२३८	उत्तिष्ठ मञ्च नि शेषाः	३७	उद्दामाऽसौ मरुताग-	३३४
इह चमरीगणोऽयमिति	२१६	उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः	६४	उद्देशित्युद्देशोद्यै-	१०८
इह तावदल भोगै-	१६७	उत्तिष्ठैव यथायैव	१०५	उद्दिष्टदन्तिदन्ताग्र	३६२
इह यन् क्रियते कर्म	१६७	उत्तिष्ठेत्तिष्ठ मद्र त्व	१०५	उद्यन्तमन्यदा भानु	३३४
इह संप्रेरितः कालः	१६७	उत्तिष्ठेत्तिष्ठ मा भैषी	१३१	उद्यम्य नर्तकी लल्ल	१६४
इहानि महाभाग	३१५	उत्तीर्णः सरित पद्मो	८६	उद्यानं पुमहाइव	५१
इहानि निजिते लोके	३०४	उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो	३६१	उद्यानमिव निषाता	१०३
इहासीद् भारते वार्ये	७०	उत्तीर्णं प्रसृतः सते	१०८	उद्यानानि सुरम्याणि	१३७
इहैव लोके निर्यतं ययौ	३८६	उत्तीर्णं निहितक्रीडा	१०६	उद्याने निर्यते तत्त्व	१७०
		उत्तीर्णं स जनो नागात्	१२५	उद्योगेन विमुच्यता	२६६
		उत्तीर्णं स्वरथाद्वीर-	३८२	उद्दुष्टतनकचुत्कार	८८
		उत्थाय पञ्चनामेन	३००	उद्दुष्टोऽयमनो पापः	३४०
		उत्थाय सहसा दृष्ट्वा	२४६	उद्देश्यकारण भद्र	५
		उत्थायान्तिकमागत्य	२२६	उद्देश्यविपुलावर्ते	५४
		उत्थायान्यापदेशेन	२३०	उद्देशानन्दसम्भ	३०१
		उत्तस्य च रये तस्य	३१०	उद्देश्य दनिताहु-	३६१
		उत्तस्यः कनकाभाया	१८८	उन्मत्तवक्त्रप्राह-	८८
		उत्तस्यो विमलाख्याया	१८६	उन्मत्तवारणस्तन्ध-	१०२
		उत्तस्य वायुपुत्रोऽपि	३३७	उन्मूल्यमिदं यन्त्र	३१८
		उत्तुल्लनयनो लोक-	१६८	उन्मूलितमहागना	३३८
		उत्तुल्लनेत्रराजीवाः	१५१	उपकस्यतेऽस्य नगर	२२०
		उत्तुल्लमलराजीवाः	१६२	उपकारः कृतस्तस्याः	२२८
		उत्तमः स महाज्ञाता	१५३	उपगम्य ततः सीता	३२७
		उत्सार्यं खेचरान् सल्ये	४०५	उपचारो यथायोग्य	१५३
		उत्सार्यं चोरसल्यं ता	१०४	उपनिन्ये शुभा कन्या	१६७

[ई]

ईदृक्कराकमादृष्टो	२३
ईदृक्शीलगुणोपेता	११५
ईदृक्त्वमपि वाञ्छामि	३६६
ईदृक्त्वमपि शूराणा	६०
ईदृयो नाम नाथस्य	४७
ईदृयो चरिते कृत्ये	३२२
ईदृयो समरे जाते	३६२
ईदृक्काचिदमिहाय	३३६
ईदृक्काचिदमिहाय	५६

[छ]

उक्तं च गुरुणा भद्र	२०८
उक्तं च रामिना तस्य	१२८
उक्तं तातेन यत्तस्य	६५
उक्तं प्रत्युक्तमालाभिः	५५

उपमानविनिर्मुक्त	१८१	उपान गौतमी राजा	१	ऋद्धया परमया युक्त.	१०६
उपयोगा बगोदय	१८४	उवाच च गणस्वामी	१३६	ऋध्याभिगच्छतस्तस्य	३०१
उपयोगेति भाषास्य	१८४	उवाच च गतिः केच	३१७	ऋधम सतत परम वरद	३१
उपरिष्ठात् करिष्यामि	६६	उवाच च ग्रहाः सर्वे	३४२	ऋषिसम्बन्धमुद्भूतान	५८
उपशुं परि सरक्तो	२६३	उवाच च चिरात् सोऽह	२४४	[ए]	
उपलब्धयद्वितिरच	२८७	उवाच च परिक्रिभ-	१७४	एकक भीमोऽरण्ये	२२८
उपलब्ध च वृत्तान्तं	१५१	उवाच च प्रिये नून	२३४	एकत्रैवैव सा तेन	२३५
उपलम्भास्य वैराग्य	१४६	उवाच चेदमेक मे	२८३	एकतो दधितद्विष्टि-	३६३
उपवासपरिधानत्	१४०	उवाच जनका घोरः	३४	एकदेशानह सस्य	२६९
उपवासादिहोनस्य	८	उवाच पयिको देव	२०६	एकमत्तौहिणीना	३५७
उपवासो कुर्याभूता	४०४	उवाच रावणो देवि	२५८	एकलाल सदाशमि	३५८
उपविगच्छ विधिना	२७१	उवाच सद्धमणः शक्या	१७३	एकस्तावदय ध्वस्तो	३६४
उपविणोऽर्कसङ्काशो	३४०	उवाच श्रेणिकोऽपैर	३७१	एकल पुष्पादारो	१०५
उपविश्य विनीतास्ता	२७६	उवाच श्रेणिको भूप	६७	एकस्मिन्पितः कुक्षौ	५६
उपविशमाङ्कमारोग्य	७६	उवाचासावहो वृद्धा	२६६	एकस्मादपि जैनेन्द्र-	६८
उपसङ्गत्य सरम्भ	३६१	उपितोऽनेकशो बीबो	२८६	एका रात्रि वसामीति	१११
उपसर्गादिवरते	१८२	उपित्वा गच्छतां तेषा	१०१	एका वेलाभिह ततो	१२३
उपससुश्च ते सर्वे	२६४	उप्यदीर्घातिनि स्वासत्	१६	एकाकिनमसौ हाता	२४४
उपसृज्य च ता कथा	३२१	[क]		एका नानासपत्नीना	३३२
उपसृत्य ततो स्वेर	१८१	कचिरे तस्य भूखास्त	११४	एकान्तत्रक्षचर्य वा	२०८
उपसृत्य भय त्यक्त्वा	१४३	कनुष्येऽन्यनारीभिः	४०	एकस्ने च तेनाति	१२५
उपात्तुपयो जननामन्तरे जनः	१८७	कनुष्ये विवेकस्था	२३४	एकीभूय च ते सर्वे	२७३
उपात्तुमनोऽगमा	४२	कनुश्च देव गुह्येन	१२०	एके च वचन प्रोक्तु	२६७
उपादाय च ते शूरा	३६	कनुश्च राक्षसाः सोऽय	३७५	एकेन वासुपुत्रेण	३५६
उपाध्यायेन चानौवो	१८६	कचे न कुन्दसकाशैः	१४३	एकेन साधुना तत्र	२५५
उपायः सर्वथा कश्चि-	३६७	कचे च तेष्विनानेन	२८५	एको रथो गजश्चैव	३५८
उपायश्चित्तपतामाशु	२६	कचे चन्द्रमरीचिश्च	३४६	एत मुञ्चन्त्वमी देया	१६६
उपादारम्भमुत्स्य	१५१	कचे च वासुपुत्रेण	३२८	एतयोः स्तुवतोरर्थं	१४९
उपालिप्तमिदं किं स्यात्	१३७	कचेऽपराधिता श त्व	७६	एतश्च वनमाधाता	३५४
उपासीनस्य चाल्पत	१०६	कचे यमुल्लोकोत्	१६४	एतश्च सर्वरोगाया	२६२
उपासिदैहि देशेति	६६	कचे निर्भीरुणो नत्वा	३५६	एतच्चाप्यभिमानेन	२५६
उपागता पति किं स्यात्	३२	कचे वेता हृतस्मान	११	एतत् चेत् कुदये सर्वं	१३१
उपागतमहादाह	४०१	कर्णपादमर्चोप्रीय	१३४	एतत्तस्मान्निनः प्रीते	३४०
उल्काभिर्नु जगद्भ्यास	२०५	कर्णो मन्त्रा सह प्राप्तः	६२	एतत्तद्विनाशिन्य	१४६
उल्कालाद्गुणदिव्याख-	३४६	[छ]		एतत् परमसि यद् विप्र	१३७
उल्कालाद्गुणाणि त	३१०	कनुनेन च रूपेण	२०३	एतत्सर्वं मम प्रातः	३२८
उल्केव सप्तकादित्य	३१६	कण्ठा तचिरं भीत	६८	एतन्न कुरुते पशु	१०५
उल्लस्यतेऽति वृद्धेऽ	७	ऋद्धया च परया युक्तो	१८५	एतन्न वरनाथस्य	१०१
उल्लस्य सुमहात्म्य	१४७				

एतस्मिन् कुमुदैः पूजां	३३४	एव चिन्तयस्तस्य	२८२	एवं स गदितो दध्यौ	११०
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२४४	एव चिन्ता परे तस्मिन्	३१	एव सङ्गान् सावसानान्	२५१
एतस्मिन्नन्तरे जाते	२५८	एव चिन्तामुपेताया.	७४	एव मुहु खितमति	३
एतस्मिन्नन्तरे दिव्य	३८५	एव बन. परा भक्ति	४५	एव हि बाधिता तेन	३३२
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२७२	एव तयो. सनात्ताय	५६	एवमशु शुच मुञ्च	७६
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः पद्मः	१८	एव तथार्थशासुदे	३६०	एवमस्त्विति तेनोक्ते तार	५८
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः रत्न	२५८	एवं विरहृतो माया	२५८	एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्यु	१६४
एतस्मिन्नन्तरे माधु	६	एव तौ चारुचानानि	१८८	एवमस्त्विति भागित्या	१२२
एतस्मिन्नन्तरे यवनरथान्ते	२७१	एव तौ विदितान्तरौ	१८७	एवमस्त्विति समाप्य त	३०६
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२८१	एव दुर्गाते जाते	२६७	एवमस्त्विति सभाष्य देवी	१२
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२७१	एव धर्मिणि देहेऽस्मिन्	१८६	एवमस्त्विति सभाष्य वृषो	११४
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३१६	एव ध्यातवानुपधातौ.	२७५	एवमस्त्विति सभाष्य प्र	३६४
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३८१	एवं नानाविधैः	२५६	एवमस्त्विति सभाष्य	२०७
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	४११	एव निगद्य शास्त्रायां	१४६	एवमस्त्विति सभाष्य	१६७
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१६३	एव निश्चिन्तित्या	८५	एवमादिहृतात्ताया.	११६
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२८०	एव परममाहार	३३३	एवमादि गदन्तले	८८
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२६७	एव प्रमातवमये	५२	एवमादि चिर हृता	४०३
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१६५	एवं प्रमां करोमिति	१३१	एवमादितर भूरि	३०१
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३४८	एव प्रवर्तनीकृतयोग्य	३६८	एवमादिभिराणै	३६३
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१५६	एव प्रवर्तमान त	३५३	एवमादिमहादाया	६६
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३६	एवं प्रवर्तमानमये	१६५	एवमादीनि वस्तुनि	१४२
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२६६	एव प्रवर्तमानमये	२५६	एवमाद्या नित्या निष्ठा	२६५
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३६४	एवं प्रवर्तमानमये	२२६	एवमाद्या पुराभिव्यथाः	३५७
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३६८	एवं प्रवर्तमानमये	२०८	एवमाद्या. सुवदन	२८६
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३१०	एव प्रवर्तमानमये	३०७	एवमाद्या महाबोध	२५०
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२०१	एवं प्रवर्तमानमये	४०४	एवमादिमुदिते याता	११४
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१६३	एवं प्रवर्तमानमये	१५७	एवमादिद्रुजितेनापि	३८१
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२३६	एवं प्रवर्तमानमये	१२३	एवमादिद्रुजितेनापि	११६
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	४११	एवं प्रवर्तमानमये	३५६	एवमादिद्रुजितेनापि	१४६
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१६७	एवं प्रवर्तमानमये	२८६	एवमादिद्रुजितेनापि	२६०
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३६६	एवं प्रवर्तमानमये	११७	एवमादिद्रुजितेनापि	२६०
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१६३	एवं प्रवर्तमानमये	३६३	एवमादिद्रुजितेनापि	१६२
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	३८६	एवं प्रवर्तमानमये	२६८	एवमादिद्रुजितेनापि	२३२
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१००	एवं प्रवर्तमानमये	२७०	एवमादिद्रुजितेनापि	२५२
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२०१	एवं प्रवर्तमानमये	३६८	एवमादिद्रुजितेनापि	१२३
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	७१	एवं प्रवर्तमानमये	४०७	एवमादिद्रुजितेनापि	१३३
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	१६६	एवं प्रवर्तमानमये	३०१	एवमादिद्रुजितेनापि	८०
एतस्मिन्नन्तरे निरपत्ते	२६६	एवं प्रवर्तमानमये	३५८	एवमादिद्रुजितेनापि	३८

एवमुक्तो जगादासौ	७५	कदम्बवित्तपौ भीमो	३६४	कर्मभारगुरुभूता	१४१
एवमुक्त्वा तथा कृत्वा	१४२	कदम्बैस्तिष्कैर्ज्यै-	२११	कर्मविचेष्टितमेतदमुष्मिन्	३२३
एवमुक्त्वाभिमनेन	१६३	कदाचारसमुद्रे त्व	३४१	कर्मानुभावतस्तच्च	३७
एवमुक्त्वा मरुपुत्र-	३२३	कदानु विषयास्त्यक्त्वा	५०	कलं प्रवरनारीभि-	५८
एवमुक्त्वा शुचा अस्त	१४५	कनकस्याग्रजो राजा	५८	कलाकलापनिष्णातो	४२
एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं	२८३	कानने सीतया साक-	१२५	कल्पोद्यानसमच्छाय-	१८५
एवमुद्गतसदृष्टि-	१४१	कनीयास्तस्य धर्मोऽय-	६६	कल्पिताः पुरुषोभादयाः	३४६
एवमुद्वेगमापन्नो	१४३	कनीयानसि स त्वं मे	३८६	कल्लोला इव निर्जग्मुः	१२७
एवमेवाकिना तेन	११७	कन्दमूलफलाहार	२१	कश्चित् परगृहं प्रातो	८६
एवमेवेति सोऽथोचद्यद्	३२२	कन्यया मुदितश्चौरः	२	कश्चित् सुरतल्लिङ्गाङ्गं	८६
एष राज्ञधनुच्छाय-	११८	कन्या स्वयं क्षुधाचैन	४०५	कश्चित् सन्ध्यायं दन्ताग्रैः	३६१
एष प्रक्षुपकारं मे	२७५	कन्याभिर्घटकैः स्वादु	१०१	कश्चिदङ्कगता कान्ता	४०८
एष ममोपकरोति सुचेताः	३७३	कन्यामेकामुपादाय	१६७	कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा	३६१
एषा मध्ये न पश्यामि	२६८	कन्या स्वयंवरा साध्वी	५५	कष्टं चिन्तितमेतन्मे	२६६
एषा क्रौञ्चरवा नाम	२१६	कपिकेनुरुवाचेद	२७६	कष्टमेककयोर्जाति	१६०
एषा गन्तासि वैधव्यं	३३२	कपित्थवनमानस	४०४	कष्टावस्था ततः प्राप्तं	१३१
एषा नीला शिला स्यात्तिमिर-	२१६	कपिध्वजबल तेन	३७८	कस्यं कस्य कुतो बाऽसि	४००
एषा यातानेकविलासा-	२१८	कपिमौलिभृतामीशं	३४२	कस्त्वसौ भविता लोके	३१५
एषाऽसौ विजनेऽरण्ये	३०८	कपोतभृङ्गराजश्च	२१२	कस्मादयं जनोऽस्माकं	२७२
एषोऽपि दुःखः परमो महीध्रः	१६८	कमण्डलुशिलाकूर्च-	१३३	कस्मेचित् पूष्यैर्गुण्यं	८६
एहि वरस निज रूप	२२८	कमलजालकराजितमस्तकः	२१४	कस्य पुण्यवतो गोत्र-	१७०
एषामगच्छ क्व यातोऽसि	१५०	कमलनिकरेष्वथ स्वेच्छ कृता	२१७	काश्चिच्छ्लेष्टे धाणोपैः	२०
एषामगच्छ (म) यातोऽसि	२३६	कञ्जोजेन सताकारि	७०	काश्चिदन्यान्पधातेन	११७
[ओ]		कन्यानः कमसो भूत्वा	६३	काश्चिदभ्रुतवृत्तान्तान्	२८५
ओदनच्छादिते हेम-	३५५	कयानोऽयं सुरो हर्ता	६३	काश्चिद् विशातवृत्तान्तान्	२८५
[क]		करञ्जकुष्ठकालीयै-	२१२	काको नदा इति ख्याता	१३०
कचिद्वाचन निर्दग्ध-	१२६	करवालीकरानूर-	१८२	का क्व कामिस्त्वया दृष्टा	३६
कचेपु काश्चिद्वद्व्य	११७	कराब्जमुड्मलाङ्केन	१६६	काचिज्जगाद ते नाथ	३६१
कटकस्य प्रसादेन	२६३	करिवालकरुणान्ति-	१८६	काचित् सन्नाहकदस्य	३६१
कटिखनमणिप्रायाः	१६	करुणं बहु कुर्वन्त्यः	१२०	काचिदिन्दुमुखी वामे	३३६
कथं जानासि देवीति	१५०	करेण हृदयं मार्ष्टि	२६४	काचिदीर्घ्यां कृतं त्यक्त्वा	४०८
कथं त्रिभुवनख्यातो	३४	करेणोरयतीर्थाऽसौ	५२	कचिदुत्तानित मनुं-	३६२
कथं निरुत्तरा युव-	२४०	कर्णकुण्डलनयाश्च	३३५	काचिदूचे यथेततो	३६२
कथं मे न भवेद्भर्ता	७४	कर्णकुण्डलनामान	२०३	काचिद्वस्तुते भर्तुः	३६२
कथं वा तत्र मन्त्रोऽयं	१११	कर्णयोरतिदुःखानि	१४३	काचिन्नित्यमानानि	३६३
कथं वा मुच्यते पारै-	६	कर्ता रोगसदृक्षाणा	४०२	कातरस्य विपादोऽसि	५६
कथाभिः श्विनयुक्ताभिः	१५१	कर्तुं प्रायुक्तकार यो	३०५	का तस्य बुद्धिर्मयायेतु	३०५
कथितं ते महाराज	२८५	कर्मपाशैर्यथा जीवो	३६२	कान्तापियैर्गदावेन	२०५
		कर्मभक्त्या विनेन्द्राणा	६८	कान्तिभासि मुक्तं दृष्ट्वा	३२७

कान्ते रामपुरी किं नो	१४१	किं वा दुर्गं समाश्रित	१६	किञ्चिद्वेद्यमतीं भ्राम्यन्	२६६
कामराहृष्टहीतारामा	२३७	किं वा दुष्टं द्विजा वेचि	२३५	किञ्चिद्वेद्यस्ततोऽनोचन्	३७३
कामाग्निः कामराशिश्च	३६४	किं वा मदिरादुष्ट	३२८	कीटग्राम मया नाय	३८
कामाविषा पर दाह	७७	किं वृथा गर्जसि क्षुद्र	२४५	कीटयो वा सनी सीता	३०२
कामार्थाः मुञ्चतां सर्वे	३६६	किं स्वादुमुखायाऽय	३१७	कीर्तयन्ती गुणान् भूय	२३८
काय म्येच्छो महाशयु	१३१	किङ्कराणामन पत्न्यो	३६१	कीर्तित्व निजा पालना	३३०
कारण यदतिकान्ता	५६	किङ्किणीबालयुनानि	१६५	कुञ्जिनातोऽपि पुनश्च	१२
कारागार्युर्मिका स्वार्था	११०	किञ्चिन् किल गगभाज	२२६	कुङ्कुमप्रविशिताङ्गा	७२
कारुण्यं हिर मुञ्चाश्च	११६	किञ्चिन् पञ्चविधागेन	६१	कुङ्कुमेदने दत्तैः	११३
काल कर्मेश्वरो दैन	८२	किञ्चिन् सम्प्रान्तधीराति	३३६	कुत किं राजपुत्रीति	२१२
काल देवो च विहाय	१७६	किञ्चिदाह्वये दत्त	२६४	कुत भद्रानिनुत्तस्य	६८
काले तत्रैव नेष्यन्ते	१२३	किन्तु तद्विरहोदार	३४५	कुत समागत कल्प	१७३
कालेनाथ मुत देवो	१०	किन्तु ययौ निरायेऽस्मि	४०८	कुत समागतावेती	१७०
काले मर्त्यतिशान्ते	२०५	किन्त्वय वर्तनेऽत्रैव	१६१	कुतोऽन्यपुण्यं क्षिप्तं	१६०
कालो नाम यमो वायु	११६	किमङ्गदो गनो मेघ	२७२	कुतोऽनमीदृशो वायु	४०२
कालो नैव विपादय	२४६	किमञ्जनानुन गत्वा	२६६	कुन्तामिनोमरुच्छन	२६१
कारिचक्षुःकण्डना पुना	१०२	किमन दहनात्तेन प्र	३१८	कुन्दाविमुक्तकल्पा	१६५
कायायमाहृता चाह	१४२	किमन बह्मनोत्तेन समु०	३३१	कुमनेस्तन धीरेया	१२१
काष्ठान्नयनामक्ता	७२	किमत्रैव करोम्यन्या	८१	कुमारा परमाभाहा	३६
क्लि करिष्यति यः शत्रु	३६६	किमधीतैरिहानर्था	१८८	कुमाराभ्या सम गन्तु	८२
किं करोमि क्व गच्छामि	४०३	किमनेन निचारेण	८१	कुमारे च हृता माता	१६३
किं करोमि क्व गच्छामि		किमय वनदेवीभि	१५०	कुम्भकर्णेन्द्रकिमुल्लै	३५३
विद्वर	१४३	किमय शनविनाय	३७८	कुम्भीयाकाप्यमारुपात	७
किं कार्यं पशुनश्चैव	१७	किमिति स्वविनाशाय	१६३	कुम्भादावगापवा	७
किं किं मो ब्राह्मण इति	१३६	किमिदमिह मनो मे किं	२३१	कुर्वन्तीन् लनालीला	२६३
किं किमेतदहो नाथ	२३४	किमिय जानकी नैरा	२८१	कुर्वन्तो सा मशकट	१८७
किं तद्धर्मार्थकामेयु	१६२	किमेतदिति प्रष्टश्च	२६६	कुर्वन्तु सर्वथा देवा	४००
किं विद्युत मुप्रिःकाः	३३६	किमेव रमने मुदे	११६	कुर्वेन मुक्क भद्र	१६५
किं तस्मिन्नुमि वैदेही	२६७	किमेवा नगरी नाका	१३७	कुल मोन च सश्राप	३२७
किं न प्रतिमये शीम	२८६	किमेवा नर्दति क्षोणी	२४६	कुलपर्वतकुचेयु	२८५
किं न सप्र न किं द्रष्ट	६२	किम्यत् कथयिष्यते	३६५	कुलपर्वतसमुत्ता	२५२
किं नापाकुन्ता घसे	२५४	किम्यत्पि तनाऽनीते	५०	कुलगत निमज्जन्त	८४
किं तु दु मेचरे. सख्ये	३०८	किमिच्छ च पुर गता	३१६	कुलमेक विनायक	४२
किं नो गृहिण किं भागे	८६	किमिच्छस्वामिनोऽन्येऽपि	३४७	कुलियोदरनामा च	४६३
किं पुनश्च माहात्म्य	१५	किमिच्छाधिपतिर्वाति	३४८	कुलाग्रनगरेऽप्य	१३६
किं मोतोऽपि न इमि ता	३६०	किमिच्छाधिपतेः सैन्ये	३७८	कुसमन्ध परित्यज्य	३४
किं वा कृतार्थना प्राप्त	२८२	किमिच्छाग्निपुरारज	३५३	कुसुमप्रदण याजार्	१६१
किं वाऽप्यन्तर्जुमात्तेन	२४२	किमिच्छेद्रेन्द्रबिन्दुरौ	२५०	कुचोऽप्यदितवद्वक्त्रौ	१०५
किं वा न कृत्य बहुभाषिने	२२	किमिच्छेयाः समालास्य	३६०	कुर्मपुष्टमदृतेष्व	३०३

कूलेषु सरितामद्रेः	१३५	केचिज्जगत्कुलाः पेतु	४०	क्रमेण मानिनस्ते च	४०
कृच्छ्राभियमय शोक च	१२६	केचित् रेवेलमासाद्य	६०	क्रमेणातीत्य शिविरं	११६
कृत कृतमहो साधु	३०१	केचित्पन्नगवातेन	४०	क्रमेलकमहारावा	३६८
कृत तैरात्न श्रेयो	१०८	केचिदध्वजखेदेन	८७	कन्यादा विरस रेसुः	१८२
कृत परेणाप्युपकारयोग	३००	केचिदस्त्रविनिमुक्ता	३६१	क्रीडास्वपि त्रया देव	८६
कृत सौमित्रिणा नून	१७५	केचिदूर्चुर्यदि स्थान	४०	क्रुद्धः सिद्धोदरो यत्ते	११०
कृतपूर्वोपकारस्य	३६७	केचिद्विज्ञाञ्जनच्छायाः	१६	क्रुद्धा इव पर तीव्राः	४०१
कृतप्रचिन्तनामेव	३२५	केसकीवृत्तिरजसा	२२३	क्रुद्धाचक्रधरादाहा	४०२
कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः	४४	केतुकल्पनदृष्टेन	३७६	क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन	३७८
कृतसान्वनमधुघ्नै	६१	केतुतोरणमालाभि	४३	क्रुद्धो अगर्ज सुग्रीवः	२७१
कृतस्मिताऽसावगदरसमीपे	४१३	केयूररत्नजगित्	२५५	क्रूरकर्मभिरन्यैश्च	२०४
कृतस्वार्थोपकारस्य	३२६	केवलज्ञानसम्भूति	१८३	क्रूरस्वःपदयुक्तेषु	१६६
कृतान्तमेव निरुद्ध	३७	केवलो द्रोक्षमेघाह्वः	४०१	क्रोधसस्रवचित्तेन	३३६
कृतान्तापकृत कि ते	२२८	केयल्यास्यात् समुद्भूता	१८८	क्रोश क्रोश शनैस्तत्र	१६६
कृतापणमहाशोभ	३०२	केशभार मयूरीषु	२८२	कथ गतास्ता नु नर्तक्य	१६८
कृता मया प्रतिश्रेय	११३	केसरैश्चन्दनैनापै-	२११	कवचित्तालादिभिर्द्वै-	१२६
कृताथर्वसातदशाननोऽसौ	४१३	कैकसीनन्दनोऽवोचद्	३२४	कवचिदिदमतियनवरनग	२१५
कृतार्धमापणव्यास्य	२४४	कैकसेयी सुतस्नेहाद्	२२६	कवचिदुरुमदगजपातित-	२१५
कृतावप्रहमेव तमुवाच	६६	कैनासपर्वते पूर्व	४१०	कवचिदिनं कवचित्पद्म	२११
कृती चपलनेगश्च	३०	कैव वार्ता ग्रथिण्या नु	२८	कवचिदध्रमरसह्यातै-	१७८
कृती सुग्रीववैदेहौ	३८१	को दोषः कर्मसामर्थ्या	१६४	कवचिद् बह्विशिलाकार-	२१०
कृत्य किंचिद्विशदमनसा	२६८	को दोष इति सञ्चिन्त्य	१२५	कवचिद्विद्विमसकाश	१७८
कृत्वा करपट मूर्ध्नि	२५३	कोऽन्धः कृप समापन्नो	२३२	कवचिद् विभ्रान्तसत्त्वक	२१५
कृत्वा चैत्ये नमस्कार	६	कोपकमपृथक् चास्य	३४७	कवचिन्नाट्य कवचिद् गीत	१६६
कृत्वा II विरध भूयो	३७५	कोऽपराधो यदास्माक	८६	कवचिन्नाशीररीभाति	१६६
कृत्वा निदानमेतस्याः	४०५	कोपहितसमायुक्ता	३४०	कवचिन्नली कवचित् पीत	१०३
कृत्वापराधक पूर्व	८६	कापेन तप्यमानस्य	२०४	कथ तत् क तत् प्रिये सावि	२००
कृत्वा पुरस्तरान् पद्म	६४	कोऽप्युद्दामतयोद्यान	३३६	कथ महासम्पदो देवैः	३४
कृत्वा पुराणवस्तुनि	१६२	कोऽप्येव पुरुषो नाथ	११८	कथ मे पापाधुना याति	२४
कृत्वा पूजा जिनेन्द्राणा	१६१	कोलाहलेन रम्येण	२१२	कथ यातमधुना तत्ते	३३१
कृत्वा बालतपः कष्ट	१८८	को वात्र नृपतेर्दोष-	४६	कथ वयं क्षुद्रसामर्थ्याः	२८८
कृत्वा मे मस्त्ये पाद	४०६	को वा प्राव्रज्यकालोऽस्या	३	कथ सौमित्रिः कथ सौमित्रि-	३९६
कृत्वा मुनिभूत भृत्य	१३२	काऽसौ नाथेति तेनोच-	२०७	कथासौ महामुनिः कथासा	१६७
कृत्वा मरुती पूजा	१६८	कौतुकं तल्लिकाकीर्ण-	१६७	कथेदानीं गम्यते साधु	२४४
कृत्वेदमहीदृशं सैन्यं	११६	कामाच यौवन विभ्रद्	१११	क्षण चिन्तामयः स्थित्वा	१६४
कृपाण यारदासे	२०	कामादिरिजये जाता	३०२	क्षण बाणाः क्षण दण्डाः	३६२
कृशोऽरि गवाक्षेण	२५२	क्रमेण गच्छन्श्चास्य	१७५	क्षण स्थित्वा च कृतान्तै	३२
कृष्णसर्पा मृतस्य	२०३	क्रमेण ताम्रमस्यन्त-	६०	क्षण स्थित्वाऽदिरम्याणि	१६६
केकयानन्दन- धीमान्	१५८	क्रमेण प्रणमन् साधू	१८६	क्षणविरचितसंज्ञाप्यकर्त्तव्य	४१४

क्षणादग्निमिरालोचय	२०२	[ग]	गिरिः सप्तभिद्ययानै	२६२	
क्षणाद्यिवर्तते यानत्	२३६	गच्छ क्षिप्र निज घाम	१३१	गीतब्रह्मिणमुक्तानि	२७२
क्षणेन प्राप्य संज्ञा च	३०	गच्छन्त तं महामाग्य	३०१	गीतनर्तनगादिनै	६८
क्षन्तस्य दुरित किञ्चि-	१६८	गच्छतस्तस्य वातेन	२८२	गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता	७२
क्षन्तस्य देव यत्किञ्चि-	१४७	गजदन्ताग्रभिन्नस्य	३६२	गीतानुगममभ्यन्न	१८२
क्षपितारिः समाहृतः	३७५	गजध्वजसमालङ्घ्यौ	३६६	गीर्णानुकुरदेशाभ	३२५
क्षान्तयार्था वृन्दमव्यस्था	३	गजगान्निविमानस्था	३२२	गुडेन सर्पिणा दध्ना	१६६
क्षितिगोचरदूतोऽय	३४२	गजवीभक्तनामानौ	३६४	गुणश्रुत्यनुरागेण	२७६
क्षिप्रं समर्प्यता सीता	३५१	गजाल्लग्नगरादेत्य	४०६	गुणान्तिर्भवति जगैरब्ध	३१६
क्षीणमत्यमिरामाङ्ग	३४४	गजोऽयमव्य शैलाम-	३६	गुणोच्चारणसत्रोद्यः	११५
क्षुत्तृष्यापरिदग्धाङ्गा	४०४	गङ्गाविपस्यमेतोऽयौ	२०४	गुप्ता बहुविधै, सैन्यै	१५
क्षुत्तृष्यापरिदग्धाङ्गो	४०६	गतश्च लक्ष्मणः पद्म	३२६	गुरुः प्रावाच यचन	६
क्षुदतिनुदशार्दूल-	१०२	गताऽऽगता च सा तस्मै	२६३	गुरुणा च यथादिष्ट	२०८
क्षुद्रशक्ति समासक्ता	२६६	गताया व्यसन घोर-	३२६	गुरुपूजा परा कृत्या	६१
क्षुद्रस्याय शिखी जातु	२६१	गते साधौ तयोयोग्य	१०६	गुरुभिवार्यमाणोऽपि	२२६
क्षुब्धः स्वासनकम्पेन	१६०	गद्या कृत्वा जलिरिदं	१२५	गुरुत्वे न यो मास	८
क्षुब्धकूपारनिर्घोषा	२११	गत्वा कथितमक्षेमः	३८३	गुरुवाक्यानुरोधेन	२३४
क्षुब्धकूपारनिस्त्रानं	४१	गत्या पवनपुत्रेण	३४६	गुरुपदेशयुक्तोऽमी	१३८
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः	३७२	गत्या पवनवेगेन	६४	गुरुन् परिजन वृद्धान्	३४१
क्षेत्रशतमुद्रभूताः	२२५	गत्वा प्रबोधयिष्यामि	३०५	गुरोस्तस्य प्रसादेन	१०
क्षेपिष्ठं प्रमदारत्नं	२६	गत्वा महेन्द्रकेतुश्च	३११	गृह प्लावितुमारुढवा	१२७
क्षेमङ्करनरेशशत्रु	१६०	गत्या रा यावदन्विष्य	४६	गृहाण सदित् देवि	४६
क्षौणीक्षौम पर प्राप्ता	३६८	गदाप्रहरण विमुद्रकना	३८३	गृहाण प्रहरागच्छ	३६०
क्षौमणो धृगुरुद्धामा	३६४	गम्भीरो दौन्दुभो धीरो	३०२	गृहाणेनन्तस्तस्य	२६३
क्षमागोचरस्य निर्वय	२७	गदहाधिरतिश्चासौ	१६०	गृहाभमे महावत्स	७६
[घ]		गदडेन्द्रस्य तोष च	३८६	गृहियमंसमामत्ता	६६
घञ्जगदस्य पण्डोऽय	२४२	गदस्मकेतनै तस्मिन्	३८५	गृहीतगमनक्षेत्रे	३४७
घट्गुण्युलीढदेहश्च	२४५	गदस्मपद्मातेन	३८५	गृहीतबलराज्य तं	५
खड्गिण खड्गसमुद्गीढ	१०३	गर्जितैरिति घीराणा	३६१	गृहीतश्चायमेतेन	२२७
खरदूषणनामा त्वं	२३३	गर्मत्रासपरिक्लेश-	२२५	गृहीतसायकं दद्वौ	२२७
खरदूषणशोकेन	२५६	गर्मस्य एव चैतस्मिन्	१६३	गृहीतादरसर्वस्वो	३७८
खरेण सद् सप्राम	२४५	गर्भे च तौ विदेहाया	६	गृहीत्वा च परा पूजा	३०
खर्जूरैरिष्टगुदेगन्धै-	२००	गले तदशुनेनैव	११६	गृहीत्वा च प्रमोदेन	११
खलीकारस्ततः पूर्व-	१८६	गतमरण्यत्राताना	२००	गृहीत्वा समयेनास्य	१६५
खिलोऽसौ धरणी दुःख	६१	गवेयवत यत्नेन	२४७	गृहीत्वासौ ततो रागा	१५५
खेचरा भूचराश्चैते	५६	गहनान् कोक्किलपान्	२६३	गृहोपकरण भूरि	११३
खपात मयमहादैव	३६०	गहनेषु समलेषु	२८५	गृहानु कचित्तुमुप्य	१२०
खपाते शशिपुरे स्थाने	६६	गाढप्रहारदुःशार्तः	३६३	गृहता गृहना कोऽयं	२३
खपातो यनगतित्सीनो	३४६	गायनोत्तराण्येव	१८१	गोपण्यरवसम्पूर्व	१०४

गोत्रक्रममायात-	४६	चक्षुस्तत्र द्रुत केचि	४०	चलिताश्चञ्चल्यग्रीवाः	२६१
गोपुर च समासीद	११४	चण्डनिक्रमसम्पन्ना	२०३	चान्दनेन द्रवेणैता	२६६
गामायुमावृत्तान् काश्चिन्	२६६	चण्डसौदामिनीदण्ड-	३७६	चापं यावद्द्वितीयं स	३०६
गोशार्चचन्दनेनैव	४१२	चण्डातक समुद्रिद्य	१२७	चारणयियमुयानं	२६२
गण्यदप्रमित वनेन्दु	३५६	चण्डोर्मिमालयाऽयन्त	२४१	चारुपुरनिधवाना	१७
प्रस्तागक्षमसैन्यासौ	३८६	चतस्रो यस्य सम्पन्नाः	३५	चारुनयप्रयुताना	२५८
ग्रस्यमान निज सैन्य	३७६	चन्दनादिभिरालिते	३३३	चारुश्रीरिति विदग्धता	२७६
ग्रहण या भवद्भिः किं	३५	चन्दनार्चिसर्वाङ्गः	३२७	चित्तोत्तमपकरी पद्म	२४०
ग्रहनक्षत्ररश्मि-	१३५	चन्दनेन विलितस्य	६५	चित्तोत्तमा समायुक्त	५
ग्रामप्रेतमदग्नेषु	८७	चन्दनेन स दिग्धाङ्गो	२१०	चित्रं श्रेष्ठिक ते वागाः	३६२
ग्रामाक्षायनराशिमः	१०५	चन्दनैरद्वैतैश्च	२१२	चित्रं सुग्रीयराजो मा	२७०
ग्रामे तनैव जातोऽस्मि	१४५	चन्द्रकान्तेद्रनीलान्तः	१८०	चित्रकूटः सुदुर्लभः	१०२
ग्राणा निश्चूर्ण्य तद्रत्न	३५५	चन्द्रविम्बमियाचूर्ण्य	११५	चित्रशायपसङ्गाते	२१२
ग्राहमहत्तचारविपना	२१७	चन्द्रम कान्तरदना	२३६	चित्रमासीददृश्वाना	३०१
ग्रीमहामरक वार	१३५	चन्द्राशुरप्रतीचात्तां	३६७	चित्रमिद परमत्र नृलोके	३२३

[घ]

घटस्तनरिमुक्तेन	३३६	चन्द्राभा नाम चन्द्रारुपा	२७६	चिन्तयत्येवमेतस्मिन्	३२०
घणिता सा ततस्तेन	११०	चन्द्रोदरमुत्त. सोऽथ	२४७	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	७१
घनकान्तलनः प्राक्षे	१३५	चन्द्रोदरमुत्त प्राप्य	३५६	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	१६६
घनच्छायादृतभद्र	२६१	चरणै कर्णिकारैश्च	२११	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	२७२
घनराहनरीरोऽपि	३०८	चरमागधरं दृष्ट्वा	१६३	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	२६२
घनानामिप सङ्गास्ते	११८	चरित निरगाराणा	५६	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	५०
घृणाशान् सप्रथापेद	१०	चविमिर्पातसंभिरश्च	२१२	चिन्तयेव इतच्छायः	३४४
घृतक्षिपिदि जात	११५	चतुःपट्टिसहस्राणि	१६०	चिन्तयित्वा प्रनादेन	१६०
घृतव्यादिभिः काश्चित्	३३३	चतुःश्लोकपेती	१८	चिन्तास्य नित्य मगधाधिया-	६६

[च]

चकार ध्यातुलीभूता	२३३	चतुराननयोगेन	३८६	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	२११
चकारोदने चन्द्र-	२४	चतुर्दशसहस्राणि	२२५	चिन्तयत्येवमेगस्मिन्	२६०
चननकचतुस्तामि-	३६६	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिर कृतरणोऽधाय	३७५
चननकचराशामि-	३८८	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिर प्रार्थयमानोऽपि	३१५
चननकचसरत-	३२०	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिपत् कमलिनीगेह	२२१
चतुः परम मुद्र	३१०	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिपदुरगत कश्चिद्	८६
चत्रराकृतच्छाया	५४	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिपन्मानुषनिमुक्ते	२१०
चत्रशनि गदापट्टि	२६१	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिपयति कथ मेऽपि	२८२
चक्रमताहनिषेय	३७६	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिपय रक्षित मान	२६२
चक्रम मृता युक्तं	१५८	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिह्नानि शिखरानि	३४०
चक्रमेगमिन्नमुद्र	३१६	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चूडामणि मुक्तशायं	१४७
चक्रमेगमिन्नमुद्र	३१६	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चूडामणिमिर्म चोद	३३५
चक्रमेगमिन्नमुद्र	३१६	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चूर्णनाननिमानेन	४०२
चक्रुः नानिमुद्रमा-	३१७	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चैत्तान्नानं मनाताय	६८

चैत्थालय प्रमाते तं	१२३	वनमुत्तराययेय	१४१	वानयाऽपि तथा मृत्यु	१०५
चैत्थान्यैरलु तुङ्गे-	३४६	वनस्यात्रात्रिकस्यापि	१८२	वानन् सकलमर्थादा	२६०
च्युतोऽन. पुष्कलावशा	६६	वनस्पोत्तमार्थमाणस्य	८३	वानत्रपि कथं सत्	२६१
च्युती ती सुन्दरी नाका	१८८	वनाना स्मिपयर्कर	१४५	वानाभि नाप ते भाव	३३५
[छ]					
छत्रचामलम्पू	६७	जनोऽभिदितपूर्वा यो	२३०	वानास्येय त्रिपाम ते	३६६
छायया तुङ्गयुक्ताया	१७८	जन्तुकेक एवाथ	७४	वानु क्षितितले न्यस्य	२४४
छेकहसारिचरं प्रसा	१२७	जन्तूना दुःखभृषिष्ठ-	२५६	वानुन्यस्तमुदुःखस्त	१७५
[ज]					
जगतो गुह्यभूतस्य	३११	जन्मन. प्रभृति वृः	१०६	वामाता रुद्धमणाऽय ते	१५१
जगद्गुरुर्यमन्याऽन्य	२५	जन्ममृत्युजरात्युग्र	२७२	वामात्रेऽपि सुसम्पन्न	११५
जगाद च किमस्यापि	१७३	जन्ममृत्युजराव्याधौ	८४	वाम्भूनदमयान् कुम्भान्	१७
जगाद च कुदूतस्य	१५८	जन्मान्तर प्राप्त इनाथ	४१२	वाम्भूनदमयो वागत्	३५२
जगद च न देव एता	१२०	जन्मान्तराज्जतस्यास्य	१६५	वाम्भूनदमुनायाश्च	३७७
जगाद जाननीनाथ	१५६	जन्मान्तराजितनाथ	३७५	वाम्भूनदस्ततोऽवाचत्	२६०
जगाद मद्र नो वेष्टि	२४६	जम्बूद्वीपमहीप्रस्य	२८६	वाम्भूनदादय सधै	२६४
जगाद प्रगता यातिः	३४५	जम्बूद्वीपस्य जगतो	२२४	वाम्भूनदो महानुद्धि.	२६४
जगाद सुनिमुखस्त	१८६	जम्बूमापी शितानीरो	३६४	वायते शान्तानेन	६७
जगाद रावतः किं तु	२३५	जय यर्षस्य नन्देति	२५३	वायते प्राप्तकम्पाना	५३
जगाद घञ्जर्णश्च	११४	जयशब्दसमुद्बोध्य	२६५	वाया न्यग्रोधजा भित्ता	१०४
जगाद वाऽतिदृष्टता	१३६	जराधीनस्य मे नाथ	४८	वायावैरप्रदीतोऽय-	२३७
जगाद निहसन् भूमृद-	१०७	जरारागविहीनाब्ध	२२५	विधासन्त तमालोक्य	१८७
जगाद व्याकुलः किञ्चि	२५६	जल प्रार्थयमानाना	७	वितपन्ना ततो मीता	१७६
जगाद श्रेणिशो नाथ	१	जलमुद्रुदनिस्सार	५०	वितपन्ना ततः प्राप	१७४
जगादाथ यथावृत्त	२६६	जननाश्वरथारुढा	३१६	वितरसगतिं कान्त	२१०
जगादानी ममलु भो	७३	जातमात्रा मृता नाह	४०३	वित्वा तमपि तदग्राने	३४६
जगादेति च तर्जकः	३	जातमुर्वतल सम्यक्	५१	विनमार्थप्रवीणासी	३००
जगादेन्द्रजितः मृदः	३७६	जातरूपधरो कान्ति-	१८०	विनशासनवर्णेण	११३
जगाम च तमुद्रेका	२४१	जातश्चाभिमुखः शक्तेः	१७१	विनानर्चति यो भक्त्या	६६
जगी च वाप्यदूणास्या	२६०	जातस्य नियतो मृत्यु-	६२	विनेन्द्रचिह्निते मार्गे	३२८
जगान जानुना काश्चित्	११७	जाता चक्रवरेणाऽह	४०४	विनेन्द्रशासनासत्ता	४०२
जह्वावेगास्तमुग्रद्वी	३३८	जाता मनस्विनीदेव्याः	६३	विनेन्द्रसमता याताः	२६५
जननः जनकं हृष्टा	१८	जाताया सुप्रसन्नाया	१४७	बोमृतमलभिर्मुक्त	२२३
जनक. कुत्रिमाश्वेन	६०	जाता मिश्रद्वयशेषु	१६३	बीर बीरकमेरुदण्ड-	२१२
जनकस्तु सन्नेदाज्ञः	३६	जाता सा विपये कस्मिन्	२३१	बीरन् पश्यति भद्राणि	२४६
जननेन च मायेता	१५	जानुचिद्विचरन् व्याप्ति	४००	बीरत्येवानरण्यस्य	१६३
जननेन ममासंख्यै-	१११	जातेन ननु पुत्रेण	७६	बीरराशिरनन्तोऽय	६८
जनने बालस्याया	५५	जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्र	१३२	बीरलोकमिम वेष्टि	२४२
जननेऽतोचदत्तन्त-	३४	जातो वायुकुमारोऽसा-	४०६	जीवित घनितामिष्ट	७७
		जातो हेमप्रभो पद्मौ	१०२	जीवितस्तेऽमुल्लुप्य	२०४
		जानस्या सह सन्गन्ध	१६६	जीवितस्य समवेकः	८०

जीविताया परित्यज्य	३६७	तं क्लृप्ताकुन्दरी भूयो	३२०	ततः क्षणमसौ सद्-	२०४
जीविताया समागम्य	२८७	त विमर्षमदामोद	११०	ततः क्षणात् परित्यज्य	२२६
जीर्णस्त्रावरोपाक्षा	६२	त दृष्ट्वा सुन्दराकार	१७३	ततः क्षुब्धपगानाय	१७५
वृम्भोत्तान्तीकृतोरको	२६५	तक धूसरसर्पज्ञ-	२८६	ततः खेचरपृष्ठोऽसौ	४०२
जैन व्याकरण भुक्त	१८७	तच्छ्रुत्वा भूपतिवत्स्यै	१६१	ततः पञ्चमुक्तोऽवोच-	२६६
शतनिश्चेषकर्तव्या	१५०	तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत्	२६१	ततः पद्मः समुत्तथी	४०
शतनिश्चेषपूतान्ते-	१५१	तच्छ्रुत्वा वचन सद्यः	३२४	ततः पद्मप्रभोऽवोच-	१७७
शतमेव हि देवस्य	३००	तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो	३०१	ततः पद्मो जगादैद	८६
जातरचातुर्भक्ति प्राप्य	२७१	तच्छ्रुत्वा विविध विभ्र-	२८७	ततः पद्मो जगादैता	२२६
शास्त्रा तदीदृश कर्म	२०४	तच्छ्रुत्वा समुपाख्यात	२९४	ततः पद्मो जगादैर् किं न	६५
शास्त्रापहृतमात्मान	२३८	तच्छ्रुत्वा सुतया पत्नी	२०८	ततः पद्मो जगादैव तां न-	१४३
शान्तिप्रसन्नमौ	२००	तच्छेन कथितं रम्य	१६८	ततः पद्मो जगादैव विभ्र-	७६
शानभगनहरेः कान्ते	३२०	ततः कपिभवावेव	२७४	ततः पद्मो निवार्यता	१६०
शानविनाशरहित-	२	ततः कपिभजैर्बोधा	३१६	ततः पद्मोऽपि तस्यागौ	७८
शापिताः सेवितद्वारा	४०८	ततः कर्मणि निर्हुंते	१२६	ततः परं परिगता-	३३०
शापते वै वि नापापि	४००	ततः कर्मानुभोवन	१६३	ततः परममिच्छुक्ता धनुषी	३६
षोडशैर्वै गते तस्मिन्	१८३	ततः करतलसङ्घ-	१५	ततः परममिच्छुक्ता धार्ता	४२
षोडशैर्वै गते कान्ते	१४८	ततः करिणमाह्व	१६४	ततः परादुर्गुणीभूता	१६
उपेक्षताकृतादृष्टासाया	६२	ततः कलाकलाप्रज्ञा	७४	ततः परिकरं कदम्बा	२६५
उपरस्तया सदितभद्रो	१५१	ततः कल्याणमाख्या	१२६	ततः पर्यव्य विविने	२४२
उरोग्राननमकरा-	३७४	ततः कान्तकस्थर्श-	११	ततः पल्लवनीशुक्तान्	३८६
उरुद्वारारुद्रिते	७	ततः कविध्वज सैम्य	३८८	ततः पल्लवकान्ताभ्या	१५०
उरुद्विगुहचक्रमाशु	३०२	ततः कार्मुकिकान् दृष्ट्वा	३३६	ततः पुण्योदयातपः	३८२
उरुद्विगुहचक्रमाशु	२५६	ततः कालानलाकारो	२०४	ततः प्रमुषितोऽवोचद्	४७
[झ]		ततः कालो गतः कनापि	५४	ततः प्रणम्य भूयोऽसौ	२०४
भर्भराशेतुक गुणाश्च	३६८	ततः किञ्चिन्मधुम्बाद	२५७	ततः प्रत्युपकारं कं	३३
[ङ]		ततः क्लिष्टपरीः मरिः	३३७	ततः प्रमुष्णागुहलोचनेन	४११
हुटीकिरे च भक्त्याभ्या	१८०	ततः कुमारकोपस्त	३८६	ततः प्रमुदविचेन	१५२
[ट]		ततः कुक्षिगुहा तस्याः	३१८	ततः प्रभृति बामाक-	३१५
दोषितश्च स मावाह्वः	२८	ततः कुक्षिमण्डलोम	३६	ततः प्रभृति सत्तोऽसौ	२०१
दोषित्वा वक्रकर्णस्तः	२७४	ततः कुत्ता जिनोद्गाणा	३६	ततः प्रमदसम्भार-	२००
[थ]		ततः कुत्वा जिनोद्गाणा पूजा	१६७	ततः प्रमदलो माता	७६
त कपिपञ्चमालोभ्य	१२२	ततः कुत्वा रणकीडा	२७८	ततः प्रमत्ति पान्द्रा	२०८
त कीदृन्त जना दृष्ट्वा	२८६	ततः कैयपि ते दृष्टाः	१५१	ततः शत्रुदमोऽप्येन	१७४
त च विराप श्रुतान्त	१४८	ततः मोक्षपरीनाम्नः	१५७	ततः शनैरुन्मुषितोऽरुद्रा	४१२
त च सिंदरय धुरा	२३७	ततः मोक्षपरीताम्नो	२४६	ततः शरदुर्गित्वा	२२३
त दृष्टं धनुःपाणि	७०	ततः मोक्षपरीनेन	२४५	ततः शाल्वेदः सता-	१२५
त दृष्ट्वा मारुतिर्या-	३१८	ततः क्रिदेन सन्धयो	२७४	ततः शुद्धमोक्षः सन्	२८
त भर्भराशेतुक	३६३	ततः क्षण निवृत्त्यैवौ	१२६	ततः शोचति निःश्वसन्	२४

ततः शोणितधाराभि-	२३३	ततः सौरमसद्वद	४०१	ततस्तथैवमित्युक्ते	२५५
ततः श्रुत्वा कुमारं त-	२५	ततः स्थित्वा क्षणं किञ्चिद्	३२४	ततस्तस्मात्पुण्यवपय	८४
ततः श्रेणिकं वैदेही	३२६	ततः स्थित्वा पुरस्तस्य	३६	ततस्तान् रावणोऽनोच	८८
ततः सहा समासाद्य	२२८	ततः स्पन्दनमारोप्य	१७५	ततस्तान्पसता प्राप्य	१६३
ततः सगारयन् सैन्य	२०	ततः स्वपुरुषात्क-	२३८	ततस्त्रिषंक्षु मुचिर	३०२
ततः संवेगमापद्य	४	ततः सगमन्यथाभूत-	२०२	ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ	११४
ततः सख्या विमुक्तासौ	२८४	ततः स्वयंवरोदन्त	५६	ततस्तुष्टोऽवदत्सदमः	११५
ततः सङ्गीनमाकर्ण्य	४०८	ततः सैर भयाद् प्रदो	२४	ततस्ते कथयाश्नु-	५५
ततः सदनयातामो	४५	ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा	२७	ततस्ते कस्यमाङ्ग	१८१
ततः स विज्ञानाद्योऽपि	२	ततश्चन्द्रायणोऽनोचदीय	३२	ततस्तेऽत्यन्तविनस्ता	१३०
ततः सतिदिपारुद-	१५३	ततश्चन्द्रायणोऽनोचद्वोमान्	३२	ततस्तेन सुभृत्येन	५
ततः सभातृक पक्ष	२७८	ततश्चपलवेगाख्य	२७	ततस्तेन समुद्रिष्ट	१३८
ततः समन्तादनुगाल्य	३१२	ततश्च माधवीतुङ्ग	२६	ततस्ते निम्नगा दृष्ट्वा	८८
ततः समानुलम्बान्तः	३६६	ततश्च श्रुतवृत्तान्तो	३१६	ततस्ते पुनरित्युक्त	८६
ततः समुत्सुकः पक्षः	२८८	ततश्च विनयी गत्वा	१२१	ततस्ते ब्रह्मवृत्तेन	३७७
ततः समुद्रवातेन	२४६	ततश्चामीकरानेक	२११	ततस्ते भूमहीम्राय	१०२
ततः सम्भाषणं प्राप्य	२२६	ततश्चालीकमुप्रीयः	२७६	ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा	१८१
ततः सतमस्तन	११८	ततश्चित्तमानेन	४०८	ततस्ते मुरासम्पन्न	१२६
ततः सर्वममृदीना	४५	ततश्चिरं वन भ्रान्त्वा	३२६	ततस्ते परवैद्यक्यैः	२५५
ततः सर्वहितोऽनोचन्	६२	ततस्तं वादय शाल्वा	२५७	ततस्तेर्विदिधाकोशैः	३४२
ततः सर्वान्मुद्रालो	१८	ततस्तं बालकं वान्त	११४	ततस्ते तदिगरी गाःवा	१६०
ततः सद्यम्भमग्नान्तः	२८२	ततस्तं शोकमारेण	५६	ततस्ते परया क्षुब्ध	१८६
ततः सनार पद्माभः	२७७	ततस्तं निघुदुद्योत	२८३	ततस्ते सम्भ्रमी शाल्वा	१८१
ततः स हृष्टरोमाङ्गो	१८	ततस्तद्वामनेन	१३६	ततस्त्वयेति प्रष्टेन	३३५
ततः सागरगम्भीरः	१५८	ततस्तदमाकर्ण्य	४०२	ततस्तान्परीताङ्गो	३००
ततः सायससम्भूतो	२३०	ततस्तद्विद्विर्वा शारा	३४६	ततो गणधरोऽनोचच्छृणु	२८३
ततः साहसगत्यादयः	३००	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा श्रेचरा	३४७	ततो गणधरोऽनोचच्छृणुत	३७१
ततः सिद्धोदरं पद्मो	१२०	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोक-	१३३	ततो गणधरोऽनोचच्छृणुत	२९४
ततः सिद्धोदरं मूर्ध्ना	१२०	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा रिमय	२७५	ततो गत्वा मया साधो	१४०
ततः सिद्धोदरोऽनोचदी-	११६	ततस्तद्वचनाद् गत्वा	११३	ततो ग्रहणहीतरस्य	२५
ततः सिद्धान्तमग्नद्व	५३	ततस्तद्वद्रीक्षुर्गत्वा	३७६	ततो मुख्यचः प्राप्य	२०६
ततः सिद्धान् प्रमोदाब्ध्या	२६६	ततस्तत्रिनदं श्रुत्वा	३१८	ततोऽगुलीयक तस्या	३२५
ततः सोमाऽनरीत्यम्-	१३४	ततस्तन्मण्डलप्रान्त	३४७	ततोऽभिन्तपदेताम्या	२२६
ततः सुमीनमुत्थोऽपि	२७३	ततस्तन्मन्त्रिणोऽनोचन्	७३	ततो जनोपमोग्धाना	१०१
ततः सुमीनराजेन	३४४	ततस्तन्मन्त्रिणं कृत्या	२३५	ततो जन्मोत्पत्तस्य	१२
ततः सुमन्त्रे काले रजन्वा	१२८	ततस्तन्मुचदादित्य	३३७	ततो जपप्रवृत्तान	२४७
ततः सुमन्त्रे काले त्रिदिशौ	१७०	ततस्तन्मोक्षमित्युक्त्वा	२६३	ततो जिहीर्षया तस्य	१११
ततः सीमनमार्ग	२१३	ततस्तस्याः समामाष	१४८	ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा	३३४
ततः सीमननं राम	१०६	ततस्तस्या वचः श्रुत्वा	३३८	ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि	३०

तनाऽनिरुद्धार	४१	ततोऽनुक्रमतः काले	१४७	ततो लक्ष्मीधरे नम्रे	२२१
तनाऽन्यत्तमुत्तुम्भयौ	१०४	तनाऽनेकयामरहा	११८	ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छ	२३०
ततः सत्त्वविपण्णत्विमा	२३६	ततोऽनेन विपुत्राया	२८४	ततो लक्ष्मीधरोऽनाचि	१०५
तना दण्डिनमाहूय	३५६	ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य	१०४	ततो लक्ष्मीधरोऽनाचत् त्रिमयः १६	
तना दशरथः कृत्या	५६	ततोऽग्रमाननिर्दग्धः	१६३	ततो लक्ष्मीधरोऽनाचत् त्रिमयः ५६	
तना दशरथः श्रुत्वा	६४	ततोऽपरमुपादाय	३६०	ततो लक्ष्मीधरोऽनाचत्तन्नाम २८२	
तना दशरथाऽपृच्छत्	६०	ततो बहुविधैः शरैः	३६६	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत्तस्मी १६२	
तना दशरथाऽनाचत्	७४	ततोऽभयद् भृशं दुःखी	२६६	ततो लक्ष्मभागेन	१५८
तना दशरथाऽनाचत् प्रिये	७५	ततो भयाद्विशेषेण	४७	ततो लीलां यदन् श्या	१२५
ततो दृष्टुमिनिषाप	२७०	ततोऽभिमुखमेतस्य	३१८	ततो यानं समावृष्टं	६५
ततो दशरथाः १२६था	१७४	ततो मगधराजेन्द्रः	२२४	ततो विजयमर्षेण	२८५
ततो देवतरमासाथ	६१	ततो मगधराजेन्द्रः	१५	ततो विदितनिश्चये	१८१
ततो धनुर्ग्रहपान्ते	३८	ततो मत्तिसमुद्रेण	३५४	ततो विनयस्तत्तत्	२६१
ततो दर्पणमनन्त	२३	ततो मदनदासाग्निः	२६४	ततो विमोहितस्तेन	६४
ततो दशाननाऽप्येन	२४८	ततो मदनयाचाचि	१६१	ततो विभीषणो विद्वान्	३८१
ततो दुर्योधनमात्रास्य	१५२	ततो मन्दादरी कथा	२५५	ततो विभीषणोऽनोचत्	३८६
ततो दृष्टिर्माता तस्य	५६	ततो मन्दादरीसूनु	३८०	ततो विभीषणोऽनोचदिति	३५१
ततो द्वाणयनाहृतम्	४१०	ततो महाहृते जाते	३३	ततो विमन्ता प्राप्ते	२५६
ततो द्विजगणा ऊचुः	२८	ततो महादधिनाम्ना	२६८	ततो विशुद्धया बुद्धया	१२७
ततो नगराजनेन	३३६	ततो महादरः स्वैर	२५५	ततो विशेषविज्ञान	८३
ततो नताननं त्रिदिनं	२४७	ततोऽमात्यगणान्तस्थ	३६२	ततो विपमारापाण	१६८
ततो नडागिरीन् देशा	२६	ततो मुक्ताफलसूक्त-	३२८	ततो विपादिनः सर्वे	३६७
ततो नभः समुदाय	२६६	ततो मुदितसर्पश्रीतो	३८२	ततो विस्मयमापन्नाः	८५
ततो नभश्चरा ऊचुः	३३	ततो मृदुमहामाद-	१५०	ततो विलम्बमादाय	४१
ततो नभश्चराधीशो	३८५	ततो मृशानि पकरानि	१६६	ततोऽनुशेन सनीय	१२७
ततो नभस्वराः सूनु	३२६	ततो मधुनिर्माचैर	४००	ततोऽभ्युत्थनेनाणा	१५१
ततो नभो निपत्याया	१४२	ततोऽप्य सत्त्वयुर्मता	२७४	ततोऽमात्र रोदेन	५३
ततो नभश्चरसेनाया	५७	ततो यय नभादेशे	३२२	ततोऽमी कृपयाऽऽज्या	१३८
ततो नभेन सत्त्वयुः	३८६	ततो यथाचितस्थान	४२	ततोऽमी कृतकर्त्तृया	१४२
ततो नष्टेयुः सर्वे	३७६	ततो युगभित्तवासी	२००	ततोऽमी लक्ष्मणान्मय	२६
ततो नागाश्चमिहाना	३५६	ततो रथरथनासी	१८६	ततोऽमी श्रया युवा	१५०
ततो नागवतनेवा	२६०	ततो रथरथारूढौ	२७६	ततोऽमी पतिनः क्षरा	२८५
ततो निरपराधेन	४१०	ततो राज्ञोऽनयना	१७	ततोऽमी परमः क्षय	१२०
ततो निर्भर्त्तनं स्वस्य	१६३	ततो रामाधरच्छाये	१५२	ततोऽमी पद्मपराताद्	२७८
ततो निर्भर्त्तनं गवत	१३४	ततो रामः अभिगमाद्	५६	ततोऽमी बालचन्द्रेण	५
ततो निर्भर्त्तना मता	१०	ततो रथरथनाश	१६२	ततोऽमी मन्त्रिणां सुगन्ध	२७१
ततो निर्भर्त्तनमाश्रय	२३८	ततो रथरथनेन	१८४	ततोऽमी मुदितशुभ्र	३८
ततो निर्भर्त्तनमाश्रय	४०४	ततो रथरथनाशो	१४३	ततोऽमी विधुग नाम्ना	२०८
ततो निरुद्धार ता पापं	२६६	ततो सत्त्वयुः स्वयम्	३६७	ततोऽमी विनयी विनये	२८

तस्मात्क्षेपिनिमुक्त-	२६७	तस्या बहुलशर्वथा	८८	ताम्बूलप्रार्थनं यगात्	३८३
तस्माच्चदुर्गमसिद्धौ	२६८	तस्या सिद्धाभ्रमकृत्य	२६५	ताम्रचूडाः खर रेणु	५२
तस्माच्चान्त् प्रतीक्षेता	१२६	तस्या एव च वाक्येन	२६०	तार्यते दुःप्रतो यमा	७७
तस्मात्प्रेषितदूतोऽय	३५५	तस्यामिमुपता प्राप्य	२१०	तार्क्ष्यपक्षिनिमुक्त	३८५
तस्मादकीर्तिमभूति	२३६	तस्यामीक्षितमात्रायां	२३६	तावच्च गहडाधीशः	१६४
तस्मादन्यगरिणाण	११५	तस्यामेवमनस्याया	३२५	तावच्च तेन दुष्टेन	२३३
तस्मादवगम्यता धैर्यं	२४६	तस्या रूपेण चक्षूषि	१६२	तावच्च नरवृन्दस्य	१७५
तस्मादानय तो क्षिप्र	६३	तस्या रोषसि निभ्रम्य	८८	तावच्चन्द्रनखास्तु	२५०
तस्मादानोपता सीता	२६७	तस्यार्थपाणयो दाराः	२८३	तावच्च समतीताया	२५६
तस्मादुत्तिष्ठ तत् स्थान	२५०	तस्या वर्णनमेवाति-	२७८	तावच्चास्तसिपतादित्य	२२०
तस्मादेकं एवाह	८०	तस्यात्तरितमायान्त्वा	३१६	तावच्छिरसि सक्तुदा	२४५
तस्माद् बुद्धिं रणे त्यक्त्वा	२६७	तस्यै जगाद् वृत्तान्त	३२२	तावच्चा. सिद्धसमाध्या	३१४
तस्माद् भोग भुवनविकट	३५०	तस्यैतद्भवन भद्रे	१४३	तावच्चोयदराहेन	३३६
तस्माद्येनैर सप्राप्ते	२७०	तस्यैवाभिमतो भूत्वा	१३१	तावत् त्रिवर्णाञ्जलिनासि	४१३
तस्माद् द्रव्यादिलोभेन	३५५	तस्योपरि समाकृष्ट	२६२	तावत्पदान्तरस्याया	२५६
तस्मान् महाबल दीप्त	२६६	ता प्रतिष्ठ पुराधीराः	४०२	तावत्सरागत दृष्टा	११२
तस्मिंश्च सूर्यदेवस्य	३५५	ता विनष्टधृति दृष्टा	२३२	तावत्ससायक कृत्वा	२७८
तस्मिन् कालगते पद्म	२३६	ता वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयो	४१३	तावद् दुन्दुभयो नेदुर्गते	२०१
तस्मिन् दशाननात्तामिः	२६३	ताडितः कामरागेन	१२५	तावद् दूषणपञ्चरा-	२५४
तस्मिन् देव मया सार्द्ध	३३४	ताडितः स्मरवाणैश्च	१६१	तावदुत्तिष्ठ गच्छावः	११४
तस्मिन्मरसप्राप्ते	२५०	ताडितो वज्रनकेण	३७६	तावदेतौ स्वयं गरवा	१८१
तस्मिन्मात्रता प्राप्ते	३५८	तात तात न ते युक्त	३७८	तावद्रणमुखेऽभाणीद्	३६३
तस्मिन् रणशिरो याते	११८	तात रक्षात्मनः सत्य	७६	तावन्नुमुता साप्ती	३५२
तस्मिन् विमृष्टे	३१३	तातस्यास्य च को भेदो	३८२	तावन्मे नास्ति दुःप्रस्य	१४६
तस्मिन् विमानतुल्येषु	११३	तातेन धृतिवी दत्ता	७६	ताववि भ्रातरी तस्मिन्	१८७
तस्मिन् शिलातने रम्ये	५१	तातेन भरत स्वामी	६६	तावलोक्त्य ततो राजन्	३६६
तस्मिन् सञ्ज्ञानकीराम-	११४	तातेन भ्रातृवत् यत्	७८	तावच्च निस्सीमसौभाग्या	३१६
तस्मि दत्ता स जैतेन्द्रो	३२६	ता दुःप्रवेतरः सर्वा	३३२	तासामाकुलिश काचि	३३६
तस्मि सैकान्तयाताय	१६१	तान् वीक्ष्य शोभन्तस्तान्	५४	तासामेयोर्द्धभागेषु	२८२
तस्य कूल्यदुर्मेदिचनैः	२८८	तान् समापततो दृष्ट्वा	३७४	तिनराकारदेहोऽय	२७८
तस्य क्रोशचतुर्भाग	३१३	तान्नुत्तापसा वृद्धा	१०२	तिष्ठिरच्छदनच्छाय-	७२
तस्य तद्वचन भूत्वा	३१७	तान्यद् ज्ञातुमिच्छामि	६७	तिष्ठन्तस्ते ततोऽप्यर्ण	१३५
तस्य राज्ञसैन्यस्य	२३४	तापसप्रमदा दृष्ट्वा	१०२	तिरोधान गता क्वारि	७१
तस्य राज्येधुना ज्ञाते	३३	तापसा जटिलान्नय	१०१	तिर्यग्मरकटु.नागिनि	६०
तस्य रजुल्लिङ्गसंघर्षा	३८०	तावस्योऽनश्यमस्माभि-	१०२	तिष्ठ स्वेच्छयेदानी	२४६
तस्य स्मरगिनिना दीप्त	२६५	ताम्यमगजुमारेण	३८२	तिष्ठ तिष्ठ महाशय	२४८
तस्याः पुण्ड्रस्य रहसि	१६१	तामस्ययक्तो नेतु	४०५	तिष्ठ तस्मिद् कुवांगः	१५६
तस्याः भोगीयरासाहा	२६	तामेव च पुनर्यत्नां	३४७	तिष्ठन्तमिह मृग्य चेदेत	३५३
तस्या प्रयातमात्रायां	२३०	तामेव सरसी रम्यां	१२५	तिष्ठामि पावो मरुदु न-	६६

दधानानोदृशः कोऽस्मिन्	२४१	दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य	३४५	दृष्ट ब्राह्मणि यातेन	१३६
दद्यावान् भङ्गवान् योऽपि	८	दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य	२६७	दृष्ट मया कदाप्येत	५६
दयिता रामदेवस्य	२४८	दीर्घसूत्रो भवानेव	५४	दृष्टपूर्वं मनोहारि	२४१
दयिता सान्द्रपिक्रिय	१३	दुःख तिष्ठति मे तातः	१२८	दृष्टादृष्टेति किं वक्षि	२४१
दयिते नियते यावन्	४७	दुःखतापितसर्गाङ्गा	३०८	दृष्टान्तः परकीयोऽपि	२०६
दर्पणादिनिभूय तत्	८३	दुःखस्य यावदेकस्य	३८	दृष्टिगोचरमाने तु	१०५
दर्पणा बुद्धुदाबल्यो	१६५	दुःखस्य यावदेकस्य नाव	२४२	दृष्टेन केन कार्येण	४७
दर्पसम्पूरितश्चापिन्	१०३	दुःखार्णवतट प्राप्तो	२४७	दृष्टया कञ्चित्करेणान्य	३३८
दर्शयंस्तामथोत्पृष्टा	२४०	दुःखिताना दस्त्रिणा	५	दृष्ट्या कमलगर्भं च	७०
दर्शनस्य त्रिगुहिरव	१०६	दुःखिणः पूर्णचन्द्रश्च	३६७	दृष्ट्या कञ्चित्कराजस्तान्	१६१
दर्शिताशेषवित्तोऽमा	१६७	दुःख्युः दुर्विमर्शेण	२४०	दृष्ट्या गणेश्वरीमृदि	६३
दशवर्षसहस्रायुः	६३	दुःखेन दीधितिरिन्द्रोऽ	११५	दृष्ट्या च दूरतः सीता	३२५
दशव्यामायता वृद्धा	२६२	दुःखतमनातिनीयेण	१६०	दृष्ट्या च प्रमदामेका	१३७
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य	१०६	दुर्गसागरमध्यस्था	२६५	दृष्ट्या त कामभोगार्तं	१०७
दशाननसहायस्य	३३०	दुर्धने विजने राजन्	३३१	दृष्ट्या त पतित भूमौ	३६४
दशास्वस्थस्य नगरी	३४६	दुर्विदग्धैः खगैर्माभूत्	२७६	दृष्ट्या त पुरयो हृष्ट-	१०५
दशास्यशासन स्थकरा	३७६	दुर्लभः सङ्गमो भूयः	३०६	दृष्ट्या तमीदृश रामो	२२७
दशास्यन्वासित धीक्ष्य	३७७	दुर्लभादप्यलं तस्मान्	३०६	दृष्ट्या तमुत्तमाकार	२३५
दहति त्वचमेवाकां	६६	दुश्शीलया तया नून	२३५	दृष्ट्या तमुदगत वीरं	३७७
दह्यमान तथाप्येव	४	दुष्टनृस्योदयस्थस्य	३६६	दृष्ट्या तमुद्यत गन्तुं	८१
दह्यमानान् वृष्टान् काश्चित्	२६६	दुष्टचेष्टाभिमा तावत्	१७२	दृष्ट्या तस्य सितच्छत्रं	१८
दाम्भिकस्यातिभीतस्य	२६०	दुष्टया किं तथा वृत्त्य	६	दृष्ट्या तत्सुमहत्त्वम्	२०
दारिद्र्यान्माविष्टो लोकः	६४	दुष्टत्रिद्याधरः कोऽपि	२७२	दृष्ट्या ता वक्ष्यतीदं त्वं	२०७
दारुप्रामे तु त्रिमोऽभूद्	६२	दुष्टत्रिद्याधरानेक-	२८६	दृष्ट्या तान् कुपितोऽग्रयन्त	१३३
दावानलसम यस्य	१३३	दुष्टः शक्राशनि कालि-	३६०	दृष्ट्या देत्याधिप प्राप्त	३१
दायेन मदता राजन्	३१४	दुष्ट्यप्रतिपक्षेन	१३६	दृष्ट्या परमराजेन	६५
दिककुमार इषोदारे	२२५	दूतः पितुः सत्राशान्मे	१२६	दृष्ट्या प्रतिदिन दग्ध	२२७
दिदृक्षुस्त्वा महाराज	१७२	दूतत्वेनागत सीता	३३१	दृष्ट्या यज्ञधर पूर्वं	३०३
दियमस्य गते यामे	२०७	दूताहृतः समायातः	३३६	दृष्ट्या संरक्षरैः पृष्टः	११६
दियमो द्वाटशोऽभ्यर्क	३१५	दूति सीता वन ब्रूहि	२६३	दृष्ट्या सातिशयावेप	२०५
दियगन्धानुत्तिस्य	२२६	दूतोऽस्मि शक्रतुल्यस्य	१५७	दृश्यते नेक्ष्यते भूयः	१३
दिपरीतामरधरो	३०४	दूर देश यदनापि	२	दृश्यते बन्धुमप्यरथः	३७३
दिपनीरूपसमजा	४१०	दूरदुःखाय दृष्टेव	३०३	दृश्यते वैरनेतस्मिन्	३५५
दिप्यहाराभर दृष्टा	१७२	दूरादेव च तौ दृष्टा	१३६	देवदुन्दुभिनाटोऽमा-	२०२
दिप्या शक्तिरिव शकरा	३६७	दूरादेव समालोच्य	१२६	देवदेव्यं त्रिनं मुक्ता	१०६
दिप्येः सनत्तैर्गोति-	२६३	दूराध्वरिभिन्नाङ्गो	१५५	देवदेवी नृधमेन	२८७
दिशः सर्गाः समार्षीर्य	१५१	दूरे च सरमो दुर्गे	२८	देवार्चनेन सा दृष्टा	२८१
दिशरूपनिनादेन	१५३	दूरे मृदापुरी देव	४०६	देवि तत्कन्यदुःख	४७
दीप्तं धुःमार्तिर्दरप	१६७	दूयगो भद्रगः कौगः	३६७	देवि दृष्ट्यात्तमरनाकं	१२०

नद्या गिरावरण्ये वा	७८	नवयौवनसपूर्णा	३३	नानापक्षिकुलम्बर-	१०३
नद्येषा विमलजला-	२१८	नवयौवनसंभूत-	२५	नानापुष्पकृतामोदा	२२३
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा	१०६	नवयौवनसपञ्जा	१७२	नानापुष्पफलाकीर्णं	१०३
ननाश भयपूर्णां च	२१	न वर्तते इदं कर्तुं	१६२	नानाप्रकाररत्नाशु	२२४
ननु ते शतमेवैतद्यथा-	३२१	नवसङ्गमना कश्चि-	८६	नानाप्रहरणान् वीरान्	१२६
न नो निवर्तते चित्त	८६	न विष्णुः स किमस्माकं	१६४	नानाभूषणयुक्ताङ्गौ	१६६
नन्दिद्योयोऽन्यदा धर्म-	६६	न विनश्यन्ति कर्माणि	३७३	नानामृगवृत्तजघनसुरक्त-	२१४
नन्दिवर्धनकाले ते	७१	न वृत्ताज्यायते मार्त	६	नानायागविमानास्ते	३४८
नन्द्यावर्तपुरी रामो	१५६	नवेन सगमेनास्या	१७४	नानायुद्धकृतध्वान्ता	२०
न प्रसादयितुं शक्यः	२३८	नवो बद्धो यथा पत्नी	३८२	नानायुद्धमहस्तेषु	२५०
नभःसमुत्पत्तौ ती	२०६	न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद्	१८१	नानायुद्धाश्च सङ्क्रुद्धा	२७७
नमश्चरत्तमायोगे	३१६	न शृणोति स्मरप्रस्तौ	१६२	नानायुधविचिह्नाना	३५६
नमश्चरैः सम पूजा	५६	नष्टशङ्कसमादाय	२२७	नानारत्नाशुसम्पर्क-	१५३
न भेत्तव्यं न भेत्तव्य इति ता	२१४	न सा क्षितिर्न तत्तोय	६२	नानारूपसमाकीर्णं	२६
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं निवर्त-	१४३	न ह्याख्यता विरोधेन	१७	नानालतोपगूढानि	१७१
नमोऽन्धकारित कुर्वन्	१३५	नाकाले म्रियते कश्चि-	२५४	नानावर्णविमानाग्र-	३६८
नमोविहरणीं लब्धिव	१६०	नागपाशैरिमो बद्धो	३८२	नानावस्त्रसमाश्लिष्ट-	४०३
नमस्कारं च कृत्वास्या	१३८	नागा सिंहादयोऽप्यत्र	२०१	नानावृत्तलताकीर्णं	१६६
नमस्कारं जिनेन्द्राणां	१६१	नागाविद्याहनारुद्धौ	३८५	नानावृत्तलताकीर्णं	१६५
नमस्कृत्य मुनिं श्रेष्ठ	६४	नागेन्द्र इव हस्तेन	२६४	नानाशस्त्रकरेण्येषु	११७
नमस्यत जिन भक्त्या	१८७	नागैरञ्जनशैलभैः	११२	नानाशस्त्रपुरं न देशो न	२०५
नमस्त्रिलोकवन्द्येभ्यो	१४२	नातिदूरे ततो दृष्ट्वा	२६	नानाशस्त्रपुरं न देशो न	४०२
नयनाना समानन्द	३०२	नात्रयुक्तमनशात्रु	२३५	नारकाग्निमयप्रस्ताः	७
न यस्य बलध्वान्ते	४	नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चि	२४४	नारदः परम विभ्रदम्भ-	१३
न यावदधना याति	१६०	नाथ ! युक्तमयुक्तं वा	२७	नारदोऽनुपदं तस्या	२३
न युक्तमधना विस्र	८१	नाथ वार्धायता ताव-	१५०	नारायणसमेतेन	१६३
न ये भवप्रभवविकार-	२४३	नाथ ! वेदय मे स्थानं	३७	नारिकेलमातुलिङ्गाद्यैः	२६२
नरकप्रतिमे धारे	१८३	नाथ शूरस्त्वमेवैकः	१६८	नालिपेरैः कपित्थैश्च	२१२
नरप्रधानदीप्तिस्ते	१८६	नाथ ! सतिशयोऽय मे	२०६	नाशकनोदनरण्यस्तं	४
नराणां मानदग्धानां	१६६	नाथाज्ञापय किं कृत्य	७३	नासावातोऽननस्तत्र	१३
न रात्रौ न दिवा निद्रां	२४	नाथानर्थसमुद्गमेन	२६	नास्त्यर्थाङ्गुलमार्तोऽपि	७
नरास्ते दयिते इत्याद्या	३६२	नाथावापलु वामेया	३८५	नास्त्येव मरणे हेतु-	२६४
नरेन्द्र पश्य केनापि	२०३	नाथे तथा स्थिते तस्मिन्	६३	नि-शङ्क द्विपत्रिकान्तः	३२७
नरेभक्त्यभी सत्य	१७६	नादो चर्वकः पापो	३६७	नि शेष दूत पश्यत	३००
नरेशः सुमुगत्तत्र	१६०	नानाजनपदाकीर्णां	१७०	निःशेषनश्चास्य निवेदित	४१३
नरनीलप्रभृतयः	३०४	नानाजनोपमोग्येषु	१७८	निःसर्गत्तारकाकार-	३६३
नरेणोरत्य हन्तो वा	३६६	नानाजन्यमशान्तिं	७३	निःसृताधुसर्गात्ती	१८८
नरो मीनो तटिद्रव्यो	३४६	नानाजानीश्च वृत्ताणां	२६	नि-स्व-द्वामोचरः कोऽपि	२५७
नरमेघप्रतीकाशे-	३१३	नानानिर्व्यूहसम्पन्नं	१७२	निदिश्यते हि कामामौ	७७

पतत मा समालोक्य	४०१	पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चै	३६	परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य	२२०
पतत् वीक्ष्य तदा राजा	५७	पद्माऽवदत् मेऽन्यामि	२६०	परित्यक्तनरद्वेषा	१७३
पताहातारणैश्चित्र	५६	पपात नमसो वृष्टि	१५१	परित्यक्ताऽहोर्माध्वे	१०६
पतितस्याद्य नो रूपे	१६३	पप्रच्छ परिसा चैष	२३२	परित्यक्तोत्सपतिधि	१४०
पतितात्परवृक्षीध	३१३	पप्रच्छ मगधाधीशो	२८३	परित्यक्तातिरीर्यस्य	१६४
पत्तनग्रामसवाह	२०३	पयसा संस्कृतै काश्चि	३३३	परिदेवननिस्वान	२४८
पत्तय पतिमिलयन्ता	२४४	पयोमुच केचिदमी	२२१	परिदेवनमारब्धे	२४६
पत्ति प्रथमभट्टऽन	३५८	पर च विस्मय प्राप्ता	११	परिदेवनमेव च चक्रे चना	१२
पतिन्निगुणिता सेना	३५८	पर प्राप्य प्रबाध स	२७०	परिदेवनमेव च चक्रे पुनक	६५
प नीमशानरस्यास्य	२४७	पर विस्मयमापन्ना	१६०	परिदेवनमेव च चक्रे विह्वल	३८
पत्न्या जननराजस्य	६	पर साधुप्रसाद च	३८३	परिदेवनमेव ता	७६
पत्युर्मर्त न जल्यस्तु	२७३	परचक्रसमा कान्ता	२२४	परिभ्रस्तासिलद्वेष	६५
पद्मयन यच्छामि	४६	परदारान् समाकाक्षन्	२५३	परिप्राप्याधमपद	५
पदातिमी रथेनामी	१५६	परदारमभिलाषाऽय	२६०	परिषार्य महावीर्यं	२६६
पदाथान् सर्पजागदन्	५३	परपक्षक्षय कर्तुं	३८५	परिध्वज्य महाभीत्या	१५२
पद्म सीतानुगो भूना	१७६	परम भाजितश्चाक्ष	१४५	परिध्वज्य रक्षो नाथ	४१२
पद्म लक्ष्मणसयुक्त	७५	परम सर्वभावाना	७३	परिता त्वनमूरिम्या	८२
पद्मरैमुचिलि तैश्च	२११	परम सुदरे तन	१२५	परिसा त्व्य सुत कान्ता	२७
पद्मगर्भं लब्ध्वा च	१०४	परम स्नानवारीद	४०५	परिसान् योक्तमैत्राक्यै	२४६
पद्मगर्भं लब्ध्वा यस्मिन्	२३	परमशितिशिलौघरश्मि	२१७	परपैश्छदनात्तैश्च	२३८
पद्मगर्भं लब्ध्वा यथा	४२	परमापदि तीक्ष्ण	३२६	परेण तेजसा युक्ता	१८०
पद्मश्च सीतया साक	१५१	परमेऽथ निशीथे ते	१२३	पर्णलब्धौ ततो विद्या	१०
पद्मनाभ मुमिताज	३६८	परयापि कृताशस्य	२५८	पर्यन्ता मर्हो रथैर	१४७
पद्मनाभस्तदाऽगात्री	३८६	परलाभादिहैतस्य	१०८	पर्यन्त यमुधाभेता	२६२
पद्मनाभस्ततोऽराच	२६७	परसीयममाश्लेष	३६१	पर्यट्य पृथिवीं सर्वा	३६६
पद्म पद्म महावाहो	३८१	परस्परं च दुश्चिन्ता	३६५	पर्यस्ता भूतले कचि	३६१
पद्मरागामो नरऽन	२०२	परस्पर समालाप	३५५	पर्यस्तानि न कि तानि	७१
पद्मश्च तापुयाचैन	१२३	परस्पर समालोक्य	३०३	पयातिनास्त मृष्टाना	८४
पद्मस्य प्रगति कृत्वा	१७६	परस्परकृत्त दु र्ग	८	पल्लवरसंश्लेष्टाभ्यां	२०६
पद्मस्याङ्गुन्यातामी	३४५	परस्परकृताद्याौ	२४५	पवनक्षयराजस्य	२६६
पद्मस्त्रिगुणिते रथे	३२५	परस्परकृताक्षौ	३१०	पवनस्य मुता न ह्य	३४०
पद्माभरण शरभरा	३६४	परस्परमिषाताद्वा	३५४	पदस्यात्मज रथाता	२५०
पद्मनाभिकणाभि	३६२	परस्परं स्पसस्येयु	१८७	पदाभामैकधार्यस्य	२४२
पद्मे द्विरनन्तरं सा	१११	परस्परं स्पसस्येयु	१६२	पश्चात्ताराजनेनाल	६४
पद्मं चरणमिच्छति	२८७	पराङ्मणेन धैर्येण	३३०	पश्चात्तरां राक्षसां	२१६
पद्मं जगत् तां देवि	१८३	पराङ्मुखतादौ कलाभि	२१	पश्चात्तिरे सनादीर्ग	२०५
पद्मं नाव मुपा यस्य	३५	पराङ्मिष रथा नाथ	३२१	पद्माङ्गुलकामाभरण	४८
पद्मं तस्मिन्नाभिमि	३६५	पराङ्मानत्रिणा गन्ध	४११	पश्चिमाया इषाराणा	१२
पद्मं तस्मिन्नाभिमि	५४	परायै य पुस्तक	३८६	पश्चात् प्रोदया दृष्ट्या	३०८

पश्य त निमर्चयुक्तं	२३३	पाथाभेनैव ते गात्र	११६	पुस्तलात् नरेशाना	१७४
पश्यताम्परधानोद्ध-	३५६	पितर तादृशं दृष्ट्वा	७४	पुस्त्य दक्षिणे भागे	२७४
पश्यतैन महाभीम	११८	पितरौ परिरमैण	८१	पुस्त्यात्पन्तदुर्गात्मात्	११२
पश्यन्तो तुरगान् द्वारे	४१०	पिता तद्वचन श्रुत्वा	७७	पुरा वरिन्नाकार-	४८
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ !	२००	पिता दशरथो यस्य	३०५	पुराकृतादतिनिचितात्	३१६
पश्य पापस्य माहात्म्य	२२६	पितानायाऽनया पुनः	८०	पुरातन च कृतान्त	६७
पश्य मातरमुग्रिभूत्वा	८२	पितुः पालयितु सत्य	७८	पुरानेस्त्र सप्तमे	२५५
पश्य सीता कथ याति	८२	पितुः सङ्गीतक श्रुत्वा	४०४	पुरा योऽनेरुमामादौ	२१०
पश्यात्मीयं पति युद्धे	३३२	पितुरन्ते ततो नीनः	५६	पुरा त्रिशष्टि चरित कृता-	३१२
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा	३३६	पितुर्भ्रातुरच दुःप्रेत	३००	पुरा ससर्गतः प्रीतिः	१
पश्यानुष्य मशानुमान-	२१३	मिन्द्र कस्यचिद्वयमं	३६३	पुरुषः काऽन्वसौ लोकै	१७१
पश्यात्माक जुगुप्साभि	४७	मिन्द्रि पञ्चवर्णानि	४५	पुरुष सम मे माता	२२६
पश्येमे निम्नरा धृष्टाः	१३४	पुण्डरीकाक्षतप्रेण	१३७	पुरे कारयितुं शोभा	२७८
पाण्यगुनीयर्षी सीता	३३५	पुण्ड्रेक्षुजादस्यन्ना	१०४	पुरा माक्ष्यामि सेनस्य	१२०
पाताल किं मरेनीता	१४६	पुण्यक्षपात् परिभ्रष्टौ	३७२	पुरोहितो गन्धो नातो	७०
पातालाकुसिततः किं वा	१०	पुण्यस्तन इमाः श्लाघ्या	४६	पुण्यकाम समारोप्य	२६१
पात्रदानप्रभावेण	२११	पुण्यस्तो महोत्साहाः	५०	पुण्यचूडो महारक्तो	३६४
पात्रदानमदौ दानं	३३५	पुण्यानुभावेन महानराणा	३५७	पुण्यप्रस्तरपूर्णाः	८२
पात्रदानानुभावेन	२०१	पुण्येन रूप्येन सीरुष	७२	पुण्याणि गन्धमाहार	२४
पात्रदाने ध्रुवैः शीतैः	३७३	पुत्रः प्रकाशसिद्धय	२	पुण्याद्रेस्वतीर्गस्य	३३७
पादनाडितभूमागा	३३२	पुत्र राक्षसं तस्या रूप्य	९३	पुण्यैर्जल्यलोद्भूतै-	१०३
पादन्यासेर्धुष्टुष्ट-	१६२	पुत्रत्यो भनत्योऽत्र	८४	पूरिताङ्गलिमयता	३४५
पाट्याना किमेतेषा	२२४	पुत्राभ्या सह सम्मन्त्र	८४	पूर्णं जगतिष्ठति जन्तु-	३०७
पादमार्गप्रदेशेषु	३३८	पुत्रोऽपि पुरी यामः	६५	पूर्वं सनत्कुमारारुपः	१४४
पादमूले तपो नीत्वा	१४१	पुत्रोऽनरक्षराक्षस्य	३५	पूर्वकर्मभानुभावेन प्रेरित-	२६२
पादरिन्यासमात्रेण	३४२	पुनः पुनः समाहूय	३०६	पूर्वकर्मभानुभावेन सिधति	३०१
पात्राष्टमभिननेषु	३३८	पुनः पुनरपृच्छन्त्य	२८८	पुनं चने छद्मनीमायः	२१६
पादोदकप्रभावेण	२०२	पुनः पुनरपृच्छत् सा	१५२	पुनर्जन्मनिवास्येऽस्मिन्	५७
पानकानि त्रिचित्राणि	१२६	पुनरन्येर्मर्देः शीघ्र	३६६	पुनर्द्वारमदो यत्तु	१३८
पापकर्मपरिक्लिष्ट-	१०८	पुनश्च माच्छतेः पाश्चं-	२७४	पूर्वद्वारेण सचारे	३६८
पापघातकर सर्व-	१०७	पुनश्च रात्रोऽगोचत्	१२१	पूर्वमेव तु निर्यातो	१८
पापामरुमनापुत्र	२५३	पुनश्चाधित्यगुद्धे	२४८	पूर्वमेव हृता कष्टमा-	५५
पारगः सीतया सार्व	६०	पुनश्चोपाच मस्त	६५	पूर्वानुमन्यसदक्रोध	३८८
पार्थिवः प्रतिमः कश्चि-	४०६	पुनश्चनैव गान्धार्या	७०	पूर्वारायतदायवा	१५
पात्र्यन् स भिज सैन्य	३६२	पुनाति प्रावने चाय	७६	पूर्वो ऽ प्रत्युनी नाकात्	३७२
पाशकोऽनान्तरे नरा	२८	पुरःकृत्वातिगीर्गस्य	१६६	पूर्णा यस्य करेकप्रे-	४
पाश्र्वस्थः पञ्चनामस्य	३४८	पुरःप्रवृत्तयोऽनाह-	१५३	पृच्छन्ती श्री घरा तस्य	१११
पाश्र्वस्थया तया रेजे	४१	पुरग्रामममासीणां	१६६	प्रथिनीति प्रिया तस्य	१२७
पाश्र्वे कमन्त्रान्ताया	६३	पुरमध्ये महादुःग	४०६	प्रथिनी महिनी तोप-	१३२

पृथिव्यः सति सप्ताथो	१०७	प्रतिपद्यस्व तत् द्विप्र	२५७	प्रभाते तद्विनिर्मुक्त	१७०
प्रथुस्थायिपत्वाद्	२६२	प्रतिपन्नैस्तत् सर्वे	२६८	प्रभापरिकरा शक्ति-	४१०
पृथश्च लक्ष्मण कृत्स्न	२२७	प्रतिबुद्धास्तथा तेऽथ	३७८	प्रभामण्डलमादाय	६४
पृष्टा च सा मयारपात	१३६	प्रतिमा यो जिनेन्द्राणा	६८	प्रभामण्डलमायात	३५६
प्रष्टतश्चास्य सानन्दा	३४२	प्रतिमा विन्तु जैनेन्द्री	३१७	प्रभाव तपसः पश्य	१६७
पौदने नगरेऽन्विथ	३	प्रतिमावस्थितान् काश्चि	१८४	प्रभिन्न वारण तावद्	२०६
प्रकीर्णक जनानन्दं	२६२	प्रतिसन्ध्येति तज्जाया	१३०	प्रभीष्यते वराकोऽयं	१७६
प्रकीर्णक महीपृष्ठे	२६२	प्रतीक्षारो विलापोऽन	३६७	प्रभुर्महाबलो भोगी	२७१
प्रकारेणामुना शत्रू	२६८	प्रतीच्छारिन्दमेदानो	१७४	प्रभूतदिवसप्राप्त	६४
प्रकृतेऽस्मिन् त्यमाख्यान	३५५	प्रतीच्छैवैक्यसि महुं चे	१७३	प्रभ्रष्टासुरलोकाच्च	४०५
प्रचण्डनिस्त्र्यदण्डाः	२६१	प्रतीत प्रणिपत्यासौ	११३	प्रमदमुपगताना योयिता	१३
प्रचण्डैर्विगतद्वगण्डैः	२५८	प्रतीता सनमस्कारा	१३२	प्रमदाभिख्यमुद्यान	२६३
प्रच्छन्न प्रेषिता दूती	२	प्रतीन्दोर्वचन भुजा	४०८	प्रमादरहितस्तन	१६१
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम-	७	प्रतीहारा भगः शूरा	१३६	प्रमादान्द्रवतो जातो	३३५
प्रज्ञातेन तया वत्स	३११	प्रत्यावृत्त्य च सम्भ्रान्त	२८४	प्रयच्छति स्वय नान्न	६८
प्रज्ञात्तरमानन्दा	२१	प्रत्यासन्न सतः कृत्वा	१३२	प्रयतोऽह्नि क्षापाया च	२०८
प्रज्ञाभि पृथिवोपष्टे	६२	प्रत्युगच स त मीति	१८७	प्रययौ परया द्युत्या	१०७
प्रज्ञामु रक्षितारनेत	१६	प्रत्येक पञ्चभिः सति-	१५६	प्रयाणतूर्यसघात	३५७
प्रज्ञामु विप्रनष्टामु	१६	प्रत्येति नाधुना लोक.	३३४	प्रयाहि भगवन् भानो	१४८
प्रजिनाय च सर्वानु	३२५	प्रथम निर्गतोदात्त-	३६४	प्रयोगकुरालश्चाव	३८०
प्रणम्य त्रेकया सान्त्र	६५	प्रथम वातिना हर्ष-	३४४	प्रलम्बाम्बुदबुन्दोद	३०६
प्रणम्य च जगौ राम	२७६	प्रथमा चन्द्रलोकाख्या	३१४	प्रलम्बितमहाबाहू	३१४
प्रणम्य निजगद्वन्द्य	१२१	प्रथमाम्बा ततस्तस्य	२८५	प्रलयाम्भोदसम्भार-	३६३
प्रणम्य पादयाः साधु	२०२	प्रथमे गोपुरे नील	३६८	प्रभवति गुणसस्य येन	१३
प्रणम्य भरतायासौ	१६७	प्रथित. सिंहकटिना	३७८	प्रवर रथमारुह्य	१४८
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि	३११	प्रधानैर्दिव्यस्त्रूना	२५३	प्रवरभवनमुक्षिप्यत्यु	१४
प्रणम्य विधिना तन	१८३	प्रदोषा पाण्डुरा जाता	५२	प्रवाच्य चार्पित लेख	६४
प्रणम्य शिरसा तस्य	६१	प्रदेशमीत्तरद्वार	३६८	प्रवाच्य माहतिर्वाणं	३२१
प्रणम्य श्वमुख श्वभू-	८१	प्रदेशा नगरोपेता	२८६	प्रयातपूर्णतामोष-	४१
प्रणम्य सर्वभावेन	८४	प्रदेशान्तरमेतस्मिन्	३५४	प्रवाहेणामृतस्येव	२७६
प्रणामानसाम्यो हि	२८३	प्रदेशे स त्वया करिषन्	३२८	प्रविशन्त च त दृष्ट्वा	२७२
प्रणामरहित दृष्ट्वा	१७३	प्रदेशे सप्तमे राज	३६८	प्रशिरान् विपुल सैन्य	१६
प्रणिनत्य गुरु मूर्ध्ना	६	प्रदापे सस्तर कृत्वा	१५०	प्रशिरश्च च पुर दुर्गं	११२
प्रशिपत्य च भावेन	८७	प्रधानमम्बन्धमिदं हि	३७०	प्रशिरश्च नगर भुत्वा	११२
प्रणेमुश्च सम तेन	३१४	प्रपद्यस्व च धीरत्न	३६७	प्रविष्टे मास्तेर्गैह	२६६
प्रपाशश्चानुपगच्छ	६६	प्रपद्येद्द जिनेन्द्राणा	४	प्रवेशितस्य चास्थान्यां	३३६
प्रतिश रमारयस्तरय	२८३	प्रपात्य भूतले भूयां	८	प्रवृत्तश्च महाभीमः	१८
प्रतिशाय सदेदानीं	७५	प्रपीड्यते च यन्त्रेण	७	प्रशमस्य स्वय कीप-	८१
प्रतिनदी भवन् साधो	२८७	प्रपुष्प च शिरात्तेन	६५	प्रशरमुश्च ते सीता	८७

प्रशान्तगुणमभूयै	३०३	प्रातःकोधिरसौ पद्मी	२०६	फलैर्दुर्निवे- पुणै	१०१
प्रशान्तावस्थित इत्या	२३३	प्रातराध मुन दृष्टा	३०६	[व]	
प्रशान्ता मर मा पीडा	२०८	प्रातश्च तामरणानी	६४	वदस्तथापि यो वृत्ते	२६१
प्रेषित- पद्मनाभश्च	३२६	प्रातमल्लेखना स्त्रीणा	४०५	उद्धान्यनमसा पक्षे	३६५
प्रमत्तवदना भवु-	२२६	प्राप्ते काले वर्मणामानु	३६६	वद्धा परिकर पुष्पिभिः	१६५
प्रमत्तमानसो मयः	१८३	प्राप्ते विनाशकालेऽपि	३४१	वयान स्थापयार्थ	३६०
प्रमत्त साधुना हनु-	५५	प्राप्ता दूष्यदृष्टार	४००	अन्धपि न मत्तवृत्ते	६४
प्रमादः साधुना तस्य	१०६	प्राप्ता भवत्प्रभादेन	६२	अन्धुल्लेहमय बन्ध	१०६
प्रमाद कुक्कुराद्यु	११०	प्राप्तो नानावचनमयना	१२४	बभञ्ज त्रयित काश्चि	३३७
प्रमाद कुक्कुराद्या-	१०६	प्राप्य च वाममारमीय	२६४	उभूय चादितस्यापि	१८४
प्रमाद कुक्कुर मा कुक्कुरं	१००	प्राप्य सौ गुणमभूयै	३३	उत्त वाग्रमुख दृष्टु	३१८
प्रमाद कुक्कुराद्यामा	४०६	प्राष्टृकालगत्रा मेर	२२३	वन्देऽपि कर्त्तव्य	१४७
प्रमादलो मुनिजनै	२६७	प्राप्तये यत्र मयवन्	५	उत्तीयान् रात्रय स्वामी	२५७
प्रमादलोत्तर वानेऽपि	३४०	प्रमादगिरिमागमि	१७१	बलिध्वस्ततर्कश्च	३७७
प्रमेद वदित्तवत्त	४७	प्रमादप्रार तम	२७२	उत्तेऽस्मिन् मार्देशीया	३५६
प्रमेद देवि कंठ्यापि	४७	प्रमादशिल्पश्छाया	१६५	उदित्तिध्वान्तकैरित्थ	३४४
प्रमेद देवि भूतारो	२५०	प्रियगुणित्वा परव	२१३	उदित्तिनिर्वयी दृष्ट	३०६
प्रमेद नभ मुद्राय	४१०	प्रियर निरहे प्राणान्	१०३	उदित्तेत्यल्लयस्यास्य	२७६
प्रमुनमेव कृता	६१	प्रिया जीवति ते मन्त्रे	३४८	वदुःख पा नरेशा य	१६
प्रमृगं विमानं मन्त्रः	३६७	प्रियापरिमन्त्र कश्चि-	३६३	वदुनाय किमुत्तेन	११७
प्रमृगं च विमुक्तं	२८४	प्रियान्तरप्रिमान	३४५	वदुनाय महारीणा	३५७
प्रमृगं विनि चाराच	११६	प्रिये त्व विदु चात्रैर	८०	वदुप्रकारैर्मरणीर्जनो	१००
प्रमृगं च वनमेता-	१७६	प्रिये मा गाः पर शान	१०	वदुमि वृत्तमानाऽसौ	३०२
प्रमृगमिममेरं मे	३६३	प्रीतिरर्पनमभ्य	१०६	वदुते मार्गारार्षस्य	३४७
प्रमृगं कारि ना नारी	३७	प्रीतिरर्पनमपि पुमान्	२६०	वदुधुनाऽत र्मजा	६६
प्रमृगं परमा गा र	३३१	प्रिया परमया दृष्टा	७४	वाजिना वारणा मत्ता	३७६
प्रमृगं विमुक्तं केन्द्र	५१	प्रिया विमानायामि त्वा	३२६	वाल्- गृह्यन्तमा वार	१७
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	३५३	प्रिया वरार्ति गृह्य	८०	वालनील तन्त्रगान	३७६
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	१०४	प्रमनिर्भगुणं	३०१	वाञ्छुद्विगि स्वामिन्	२६०
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	१०३	प्रमि भातुमार्ग	६४	वाञ्छानां प्रविदूनेन	१७४
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	६	प्रमि काश्यां दूत	३८	वाञ्छिगिरि इति त्रयातः	१२७
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	७३	प्रमृगं वरद्वारमेन	३६४	वाञ्छुद्विगि सारंश	६१
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	३६१	[फ]		वालयात् प्रवृत्ति दुष्कर्म	१३०
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	१६४	वर्ष व्यानञ्चनुभंय	६८	वाल्वा इत्यसताद् भूमि-	४०५
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	३०	वर्ष प्रवृत्तिगृह्य	६८	वाल्वाभितान्त्र	२०४
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	१८३	वर्ष वदतदृष्टि	६८	वाल्वाभितान्त्र	२६०
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	३६	वर्षावृत्तमानमा	३३६	वाल्वाभितान्त्र	३३६
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	१३०	वर्षावृत्तमानमा	२१२	वाल्वाभितान्त्र	३७०
प्रमृगं विमुक्तं वरद्वार	७१	वर्षावृत्तमानमा	१०३	वाल्वाभितान्त्र	३४६

बुद्धिमानसि धन्योऽसि	१२१	भयेन स्तनतस्तस्या-	१७६	भय्याम्भोजमहासमुत्तर-	३८६
बोधिस्तेन दाक्षिण्या-	२६८	भरतः शिञ्जणीयाऽयं	६५	भाग सर्वं परित्यज्य	७८
ब्रवीत्येवममो यावत्	६४	भरतस्ये विदग्धाप्ये	६०	भागो न भरतस्तस्य	१६०
ब्राह्मणी विनिश्चयैतं	१४०	भरतस्य किमाकृत	८२	भाग्यवन्तो महासत्ता-	६०
ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च	१८४	भरतस्य जयेनात्र	१६०	भामण्डल प्रतिबुद्धाः	३६५
ब्रूयते नास्ति वृष्णा न	८	भरतस्य ततो मात्रा	४१०	भामण्डलकुमारस्य	५४
ब्रुवत्या अपि सीताया-	१२६	भरतस्य निरुण्डस्य	२६७	भामण्डलेन समन्व्य	६४
ब्रुवदिति महाद्वष्टः	१४३	भरतस्य मया नाथ-	४२	भामिनी जनकस्यासीद्	१
बृद्धश्चक्रिणो हस्ते	४५	भरतस्याखिले राज्ये	७६	भारती न विशत्याहा	१६७
बृहत्केतुस्तनोऽसौचत्	५५	भरतस्यालयं प्राप्त-	४०६	भार्या मित्रतो तस्य	२८४
बृहज्जटी बृहत्नाथी	३७२	भरतावाग्निरौचिष्णु	१५८	भावपुण्यैर्जिनं यस्तु	६७
बृहद्गतितनूजस्तु	११०	भरतेन तनोऽराचि-	४०६	भाव प्रत्यसे किं त्व-	२०१
बृहद्वादितनिर्घायि-	१६	भरतो जयति श्रीमान्	१६४	भाषमाणे गुणानेव	१७५
[भ]		भर्तारं दुःखयुक्तेव	२५४	भासा भूषणजातानां	३०२
भक्तिभिः पूजयमानोऽपि	८३	भर्तुर्भूयिताङ्गस्य	२७३	भास्कराभाः पयोडाहाः	३५६
भक्त्या वल्लभ्युद्धार यः	६८	भरतो या गतिः सैव	३४६	भास्वद्वकिशतानीर्ण	१७२
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि	३१	भरत्कीर्तिलताजाले	२६०	भिन्नं यैर्धर्मद्वयेन	१८१
भगवंस्तत्प्रसादेन	५८	भरतप्रभातज्ञनसर्गशिघ्र	४१४	भीममोगिमहद्रोग	३३७
भगवन्तौ कृता नक्त	१८४	भरत्या यन्मयी भ्राता	५६	भीमो भीमर्षो धर्मो	१६७
भगवन्नयमत्यन्त	२०२	भवत्या रमणोद्याने	२५३	भीषितानां दरिद्राणा-	२
भगवान् स हि सर्वत्र	५८	भवत्या वाञ्छितं कृत्वा	३६२	भुञ्जे देशं मया दत्त-	११३
भगिनी दुर्नत्वा तस्य	२२५	भवद्विरुक्तमैः प्रीति	३६६	भुक्त्वा भोगान् दुरुक्तादान्	७७
भग्नं पुण्यनगोद्यानं	३३६	भद्रक्षुब्धलस्त्यान-	३६१	भुक्त्वा राज्यं विरं कालं	१८६
भग्नोद्धवापणध्रेणिः	३३८	भद्र घीरा प्ररीयणा	४००	भुपुण्डीः परशान् वाणान्	३१०
भग्नः शरसीत्येऽस्मिन्	१६	भग्नं यस्तु जैनेन्द्रं	९८	भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा	५८
भग्न ऐवराधाना	५६	भवनेऽराधिना स्मृत्या	६	भूतोऽयं भरिता वारि	११६
भग्न मुद्रितसङ्गं तेन	३४३	भवन्त तादृश वीर	३६६	भूमिगोचरिणो मर्या-	१८३
भग्नता चन्द्रहासेन	२२८	भवन्त शरणं भक्तः	३५४	भूमिसम्प्राप्तसीर्ण	३४२
भग्न तान्तरुण पुत्र	७६	भवन्तमेव वृद्धाभि	१०८	भूयो जन्मविश्राल-	३८८
भग्नत्वेन तथा देशं	१५७	भग्नद्वारस्य पूर्वोक्तान्	१६०	भूयो भूयो बहू व्यावन्	२४२
भग्न सर्गाः त्रिधाः पुन-	२७	भग्नान्तकस्य भग्न	८३	भूयो विषादमागत्य	२४०
भग्नमान निजं सैन्य	३८६	भग्नारम्भा मम स्मृत्या	७३	भूरिशोऽयप्रहारचन्द्र-	५२
भग्नं करग्राहानां	२२६	भग्नानि ह्युपधारस्ते	६४	भूरिरेषु निरातमुपैति	३७३
भद्र किं स्मिय स्तमः	६४	भवार्णारसमुचीर्णा-	२६५	भृगुयावतप्रिस्ता	१८०
भद्र ते कुशलनाथ	१२१	भविष्य कृतज्ञेन	३३१	भृगुयाना भविष्यन्ता	८८
भद्राः किं किमिति ब्रूये-	१८५	भविष्यती जगत्पारी	१६३	भृगो भूता विपुलैर्द्वै	११०
भद्रे कोऽह प्रमादस्य	१६२	भग्नबीजा यमामाद्य	६०	भग्नमान वयं हृष्टा	३६६
भद्रोत्तिष्ठ वसतुः गं	२२७	भग्नता पश्यतानुष-	२६६	भेरीगुणरसीगार्य-	५२
भग्नभाषेणो मृदन्नाथ	३६८	भग्न भो यावदापानि	६६	मेरीगुणरस्यः विद्धि-	३८८

भोगमागरमनोऽनौ	२७८	मन्त्रपस्थातिवृद्धस्य	२७३	मयाय सट्टो मन्वे	२७१
भोगैर्नास्ति मम प्रयोजन	१७७	मद्राक्यादुच्यता भाना	३०६	मया शिशुतया किञ्चि-	३११
भो भामण्डलमुप्रीवौ	३६७	मद्रिषोभेन तता वा	२८२	मयार्ध-मन्त्रधीभाजा	१४०
भो भो निर्गन्ध मा गास्त	२०४	मपुर व्रुषते काश्चिद्	१०२	मया स्नेहानुरगेन	७०
भो भो महीधराधीरा !	२४१	मध्ये च गहनस्यास्य	२२६	मयि स्थिते समीपेऽस्मिन्	७६
भो भो सुविभ्रमाः सर्वे	२८५	मध्ये तस्यापि विपुल	२२६	मयूरमालनगरे	१५
भो वृक्षारचमकच्छाया	२४०	मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य	२८८	मयेति गदित वाक्य	२५७
भूत्यन्व दशवक्त्ररन	३३१	मध्येऽयमस्य सैन्यस्य	३१	मवेत् शासन जैनं	१३६
भ्रकुटिं कुटिला यस्य	२८६	मध्ये यस्य नदी भाति	१३३	मयेऽमर्जिनं पूरं	२५४
भ्रमश्च सपिदार्य-	१३६	मनुष्यभाचमुकर	२०१	मयैरं सतत पृथो	४०२
भ्रमश्चिञ्चनैर्भूगै-	३३४	मनुष्यलोकासाद्य	१६८	मयाथा न च नामेय	७६
भ्रमयिता द्विनौ याव-	१३४	मनुष्याणां पशूनां च	२५६	मयादानां यथो मूल-	३२८
भ्रमरप्रावृत्तैर्गुच्छैः	३२५	मनोरथं पुरस्कृत्य	२८६	मर्यदार्थां यथा कश्चित्	३८१
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च	३२६	मनोरथशतैः पुन	७६	मन्यथपरिकां प्राप्य	१६६
भ्राजते नयमानः सन्	७६	मनोविषयमार्गेषु	१८७	महतः सरस्तस्य	१२५
भ्रातरो वाश्चिमुप्रीवौ	२७०	मनोहरैर्यद्भैर्भाति	२६३	महता शोकभारेण	१४६
भ्राता मम मृधे भीमे	२४२	मन्दोद्यमसत्कार	२७०	महतापि प्रयत्नेन	८८
भ्राता ममाय सुहृदेव वश्यो	३५७	मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वांन्	८०	महता मोहपदेन	२५३
भ्राता रिमीपणो यस्य	२८६	मन्त्री जाम्बूनक्षोऽनोचत्	३०६	महदाश्चर्यमेतन्मे	३७१
भ्रातृशब्दमन्त्रा पादौ	२५४	मन्त्री माता च मे वेत्ति	१२८	महाकल्लोऽसङ्कारा	३७६
भ्रातृश्वधुपरिध्वज	८०	मन्यरैश्चाकसञ्चारै-	१६२	मन्त्रजन्मधरध्वान-	४१
भ्रातृभिः स पितृभ्यां च	२६२	मन्दमास्तनिक्षितैः	२१२	महातारधस्तावन्	२६३
[म]		मन्दोदरि परं गर्गं	३३१	महातामसशरन् च	३६२
मकरप्राहननादि	३२८	मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य	२५७	महातुरङ्गसमुच्चैः	३०९
मकर-दरसारगद-	१२१	मन्दोदरी ततोऽनोचत्	३३१	महादे-पातुमे तस्य	१८८
मक्षिकाच्छदनच्छात	४८	मन्दोदरी ततोऽनोचच्छूराः	३३०	महाशक्तिन्दरास्याज	८८
मगधेन्द्र ततो धातिः	३२४	मन्दोदरी सुत तावदभि-	३८२	महानयानिति पुरुषु ए	२४२
मगधेन्द्रस्ततोऽपुच्छत्	३५८	मन्दोदरीमुतोऽप्येव	३६३	महानिर्भरगम्भीरान्	२११
मगिनारणरम्येषु	१३८	मन्मथावृष्टिनि-शेष	१६२	महान्तश्च पुरस्कारा-	१६
मगिपीठस्थित सौम्य	८३	मन्ये पराजये देवान्	४११	महान्तस्तस्य सञ्जाता	२६३
मण्डलाग्र समाक्षिप्य	१६४	मन्ये तस्य मुरेशोऽपि	३७	महापुरुषयुक्तं ते	१२६
मतिशान्तोऽग्नौ तत्पद्म	३५४	मन्ये यथानुगन्धेन	२४६	महानिधानरत्नका-	२६३
मत्तारण्यन्ताग्र-	३६१	ममात्मजमुदासीनं	२४५	महापदि निमग्नस्य	३३०
मत्ताः त्रैमरिणोऽरप्ये	३४०	ममापि सदृशा दृष्ट्वा	१२१	महापूतमिति भुत्वा	१६४
मत्तैर्गिरिनिभैर्नाभि-	३७२	मयदैत्यात्मजा तीन	३३२	महाप्रकृष्टपूरस्य	२३७
मटनादङ्कुरसन्ताप	३७४	मया किं तर्हि कर्त्तव्य	४०६	महाप्रतिभयाकारा	४०३
मदनैर्गदिरैर्निम्नै-	२१२	मया जन्मानि भूरीणि	६७	महाप्रभावसम्पन्न	३०३
मदीय रूपमासाद्य	२७४	मयानुमोदितस्तेऽय	११	महाभेरीध्वनि चाशु	४०८
मद्रादृष्टे रिति राशौ	३६४	मयापि पुन जातोऽभि	२२८	महाभोगो महातेजा	१५५

मृदङ्गनयमुरज	१६७	यया मञ्ज समागत्य	१५७	ययुर्मिर्महपैरये	३६५
मृदुमदमयद्वुरमल	२१६	यया भयशतै पित्रा	१३३	ययी सिद्धिनीला	३६०
मृगमाना निपतुस्ते	२०	ययाभूता मुनर्धर्म	१८०	ययाभरमुन पार्थे	६६
मृत्युक्लान्तमयुना	७३	यया मे नचिदेतस्मिन्	१५५	यन्त सर्गति मृदात्मा	३१७
मृत्युवाननि काक्षा	३१४	यया यया महाभाग्या	४१०	यन्त्रिगुल्मधर सरये	३६०
मेघकाण्डानि वस्त्राणि	१६५	यया रक्षाकरद्वीप	६६	यत्माद्युज्जगत्सत्य	२१०
मेघनाहनवारेण	३७६	ययाग विदित तेन	२८५	यस्मिन् दधिमुग नाम	३१३
मेघशृङ्गप्रतीकाश	३६५	ययानस्थितभावाना	२०५	यस्मिन् विद्यते पया	१६६
माहारिकण्ठक हित्वा	१८७	ययाभुति परिहाय	८७	यस्य चारणकयाना	१६४
म्लेच्छनिघाग्नात् स्तोत्र	३४	यया सत्त्वहितेनेद	४०६	यस्य देश समाश्रित्य	१७
म्लेच्छे किं ग्रहण क्षुद्रै	३४	यया रश्यामि ते मात	८०	यस्य सर्पस्य सम्पन्नाद्	२०३
म्लेच्छोऽय हन्तुमुद्युक्ता	१८७	ययेष्ट दीयमानेनु	१७५	यस्या कृते क्षत्तारस्य	३६६
[य]		ययात्पाचरन् राज-	२२६	यस्या गर्भप्रपन्नाया	४०२
य कराति विमाक्या	६७	यदन द्रविण निश्चि	१९८	यस्या रात्रौ धनोद्देशे	१४८
य पुन शीलसम्पन्नो	८	यदर्थे मत्तमातङ्ग	३५२	यस्यातपनमाश्रये पूर्ण	२८६
	६८	यदाशापयतीत्युक्त्वा	४२	यस्यातपन्नमालक्य शरणि	३६०
	१४०	यदाशापयतीत्युक्त्वा	१६७	यस्याथास्तरयमिनाणि	१४४
	३४६	यदि दृष्टिप्रसाद मे	२५२	यस्यालोक्य तत्रा सरये	३०३
	३७२	यदि नाम न वलैन्य	३३	यस्यातिरजमुत्पन्न	२३४
				यस्याम्नगनि दग्धाणि	१६६

महामहिषशृङ्गाग्र-	१०२	मातापितृमुद्धन्मिन्	२०८	मिनाणि द्रविण दारा	१८०
महाम्बुदप्रतीकाशा	३६८	मातामह समादाय	३१०	मिथिलानगरीतोऽह	३२
महायोगेश्वराभोरा	१८१	मातालिंग्यागदत् सीता	६६	मिथ्यादर्शनमुत्ताना	३७१
महारथवरैर्नाना	३६८	माता विप्रेण तौ हन्तु	३५५	मुक्तमान ॥ पापेन	८
महार्णवरवाभैर्य	३५१	मातु सहादरा भ्राता	६	मुक्तावण्यरूपस्य	१०७
महालोचनदेवस्य	३८३	मानरो भव देवो वा	१२०	मुक्ता कथा रश्मिर्नि	३३२
महावष्टम्भमुस्तम्भा	१६६	मानुषत्वं परिभ्रष्ट	२४०	मुक्तादामसमाकीर्ण	२६६
महाविनयसम्पन्न	१२५	मानुषद्वीपमासाद्य	१४०	मुक्तिक्षान्तिगुणैर्मुक्ता	१६
महाविनयसम्पन्नो	८१	मानुष्यकमिदं जात	१६६	मुक्त्वा नान दृष्ट्वासङ्ग	२१६
महाशक्तिमिम शठ	२४४	मान इतैरिमैर्गाक्यै	२६७	मुक्त्वा त्रिभुवनाधीश	१०६
महाशीतपरीतस्तप	३५२	माभूतस्मिन् कृतकाये	२६७	मुग्धबालकमादाय	४०८
महाश्रद्धान्वितस्वान्ता	३३३	मा भैषीभद्र मा भैषी	२८७	मुग्धा मुग्धमृगानेना	४१२
महासवेगमुक्तेन	२०५	माभैष्ट नतो राजा कृत्वा	१८५	मुञ्चते समये यस्मिन्	६
महासाधनसामन्त	१६८	माययाह्वयचैन	११०	मुञ्चते सुदृढ चासा	७०
महिमान पर प्राप्य	३८३	माया सुग्रीवसन्देह	२६८	मुञ्चजानन्दनेत्राभ्य	२०२
महीतले समस्तेऽस्मिन्	२८५	मायाविनिहते क्षुद्रै-	२३४	मुञ्चैन रश्मि क्षुद्र	११४
मुहुः प्रेषितङ्गुतोऽयमद्य	३४६	मायासहस्रसम्पन्नो	२७५	मुदितै किङ्करैर्भैरी	१७
महेन्द्र निभूत श्रुत्वा	३११	मा यासीद्विषे सजास	२५८	मुनयो य समाश्रित्य	१४०
महेन्द्र केतुरत्युग्र-	३४६	मारयामीति तेनाकृत्वा	५७	मुनि नि प्रतिकर्माण	२०१
महेन्द्रजितसशश्च	२८६	मारस्यात्यन्तमृदुभि	२५२	मुनिरायातमान सन्	५२
महेन्द्रजिदसौ बाणै	३६२	मारितास्मि न किं तेन	१२	मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थे-	१६३
महेन्द्रसदृशैस्ताव	२५३	मारीच सिंहजघन	३७४	मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य	१४१
महेन्द्रोऽय महावीर्यो	३१०	मारीच सिंहजघन	३६४	मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै	१४२
महेन्द्रोदयपात त	५८	मारीचोऽमलचन्द्रश्च	३५१	मुनीना यस्त केवाशि	७७
महेन्द्रभूमिश्चर	२३६	मा रोदी सौम्यकर्त्रे त्व	३२१	मुनीशेन समादिष्टा	४०६
महोदरस्य वातेश्च	३७७	मार्गं तत्र कियन्त चि	१०४	मुनी सुगुह्यगुताख्या	२००
महोरगाङ्गना कि स्याद्	२५	मार्तण्डमण्डलच्छायो	५१	मुनेश्चास्तिप्रशस्त्य	१३८
महाम वपितस्ताम्भा	१३	मालिन नष्टमालाक्य	३७५	मुनेस्तस्य प्रभावेण	२०५
मासपण्डाममगन्धो	१८२	माली तस्याग्रतो भूतो	३७५	मुमुचुश्च घन शस्त्र	३३७
मासाशानानिवृत्ताना	१४४	मा वीवधाऽस्य लक्ष्मीमन्	१६४	मुहुस्तामीक्षते क या	२६
माणिक्यशकलाङ्गानि	२३५	मा वजीरङ्गदैव्य त्व	१६५	मुहूर्तं मन्त्रिभि सार्धं	२७५
मातर भ्रातरी चैवा	३५५	माश्वसीदीर्घमुष्ण च	७८	मुहूर्तंऽप्य चतुर्थे तु	३३३
मातर शरस्य प्राप्ता	३०८	मासमानमुपित्वातो	६६	मूर्खनाभि स्वैरग्रभि	१६२
मातरौ दु पिते एते	६३	मासानेकादशामुष्या	४०६	मूर्तिनिर्मुक्तमेवैत-	२०१
माता च वनमालाया	१५२	मागोपवासिनौ वीरो	२००	मूर्तिमन्तमिषानङ्ग	३२०
माता त मूर्छिता दृष्ट्वा	६५	मास्याक्षीर्लक्ष्मण देव	३६७	मृगारोभुजजङ्घादी	१८२
माता पिता च ते वत्स	६२	माहात्म्यादमुनो राजन्	२१	मृगध्वजो रणार्मिश्च	१६६
माता पिता च पुत्रश्च	६	माहेन्द्रिरय सम्भ्रान्ता	३०६	मृगीत्य सरसा प्राप्ता	६३
मातापितृसमायोग	३११	माहेन्द्रिमुदितो भूयो	३०६	मृगेन्द्राविष्ठितमान-	२६७

मृदङ्गवयस्यमुरज	१६७	यथा मज समगत्य	१६७	ययुभिर्महौग्नौ	३६५
मृदुमकराक्षधुरमन्त्र	२१६	यथा मन्त्रतैः विप्रो	१६३	यथा मिदुर्गन् नीलो	३६०
मृगमाना निपेनुत्ते	२०	यथा भूतो मुनेर्धर्म	१५०	यथोषधमुनेः पार्थ	६६
मृत्युक्त्राण्यमुत्ता	७३	यथा मे त्रैविदेन्मिन्	१५५	यन्म सान्ति मृदात्मा	३१७
मृत्युजीवननिःसृज्वा	३१४	यथा यथा मद्रामाया	४१०	यन्मिदुर्गन्तर, मन्त्रे	३६०
मेघकाण्डानि वज्राणि	१६५	यथा रत्नाम्नीय	६६	यन्मादशुजगत्सदृश	२१०
मेघनाहनधारेण	३७६	यथायद् विदित तेन	२८५	यन्मिन् दमिमुग नाम	३१३
मेघशृङ्गप्रतीकाश	३६५	यथावस्थितव्याजना	२०५	यन्मिन् विज्ञेय शशा	१६६
मोहारिषण्डर हित्वा	१८७	यथाश्रुति परिज्ञाय	८७	यन् चारणकन्याना	१६४
म्लेच्छनिर्घातात् स्तोत्र	३४	यथा सत्तद्धितेनेद्	४०६	यस्य देश समाश्रित	१७
म्लेच्छैः किं ग्रहण क्षुद्रै	३४	यथा स्रगामि ते मात	८०	यस्य सर्वस्य सम्प्रदाद्	२०३
म्लेच्छोऽय हन्तुमुत्तुतो	१८७	यथेष्ट दीयमानेषु	१७५	यस्याः कृते क्षत्रोत्तर	३६६
[य]		यथाक्षमाचरन् राज-	२२६	यस्या गर्भप्रपन्नाया	८०२
यः करोति विमानया	६७	यत्न द्रविण मित्रि	१२८	यस्या गत्री यनोद्रेष्टे	१४८
यः पुनः शीतसप्तर्षी	८	यत्थै मत्तमातङ्ग	३५२	यस्यातपनमात्र कन पूर्ण	२८६
यः सन्देहकल्केन	६८	यदाज्ञायतीत्युक्त्वा	४२	यस्यातपनमात्र कन शरदि	३६०
यः क्लिप्तिधियेलाया	१४०	यदाज्ञायतीत्युक्ते	१६७	यस्याथास्तस्य मित्राणि	१८८
यः यः देशं विहितमुज्ज्वा	३४६	यदि हृदिप्रसाद मे	२५२	यस्यालं कप तडा सत्पे	३०३
यः योद्य चायते कोपे	३७२	यदि नाम न तलैन्य	३३	यस्यानिर्गतपुरात	२३८
यः योद्य जायते चित्त	३७२	यदि भोगशरीराम्ना	११०	यस्यास्तस्य मित्राणि	१६६
यः इदं कलिगुणकीर्तन	१४६	यदि मे निश्चरापेत	२७६	यातोप किमुतागानि	१०५
यत्क्षेपेन कृते तक्षिमन्त्र	१५३	यदिमो शाभिनी मुवे	१७०	यत्कृत् येन कृत कर्म	४३
यत्क्षु नाशा नरेशाना	४०६	यदि वाङ्मयि जीरत	२५५	यामात्नेन सन दुःख	८२
यजन्ते भाषत सन्तो	१६	यदि सा वैधस सुखि	२५५	या येन भाविता बुद्धि	३४१
यतोऽनया जित पद्म	१७१	यदीय देश नामाणि	२८८	यायन कुर्वते पूजा	३१४
यतोऽय दण्डको देश	२०५	यदोपन्यसे चाना	३२२	यावत्तस्य च तामा च	२३
यत्तद्वत्प्रदस्ताभ्या	३७२	यद् आप्तातपसाङ्गी	१४६	यावत् तिष्ठन्ति ते सन	१३३
यत्प्रातः य यदा येन	५०	यद्दर्शं दुःखिताङ्गी	६१	यावत्तस्मिन् नरेन्द्रस्य	२६३
यन् विष्णुपूज्याना	५७	यन्नेन सम सत्ता	३२१	यान्तरस्यति त मुन	२४६
यन् यन् पदम्भास	१६६	यन्था निमित्त पूर्ण	१८८	यावत्तस्यति सवात	३६३
यन् यन् समुद्रेणै	१६२	यन्प्रातःपूर्वकर्माणु	२५१	यावत्प्राप्त मि नो वाता	३५३
यथा किल द्वये लोके	३२४	यन्पुष्पशम याव	१५८	यावत्पुष्पीयभाचनी	३८१
यथा निल निनीताना	११६	यन्नेन वायुगोऽन	१८३	यावत्प्राप्तने स्वाभा	३२६
यथा निल समतोऽय	४०१	यद्विद्यामस्तान	३८६	यान्देन वदत्येवा	४७
यथा शापयसि स्वप्न	१६१	यद्बुद्ध दण्डकादग्न्य	३५६	यान्देव घनिलाने	२०५
यथा शापयमीत्युक्त्वा	३०६	यदौद्रमूति मुचिर विचित्र	१३२	यान्देवममो पद्म	३८१
यथा त्वद्विहारे जाला	१४६	यन्नेन श्रमणा सर्वे	२४०	यावदेवोऽप्यर्पितो न	२०३
यथा नन्दोऽश्वरे द्वीपे	४५	यन्नेनहुवनक्षोद्रे	२६८	यावद्दश. समाधान	३८२
यथाधिपेन रामस्य	१३६	यन्नेनहुवनक्षोद्रे	२००		

यावन्न मुञ्चति प्राणान्	२६०	यो भूतिरूपमन्युश्च	७१	रथैः प्रभास्वरैर्दिवैः	६६
यावन्नेच्छति मा नारी	२५६	या रतिं परनारीपु	६६	रत्नं प्राप्य वने भीमे	२४०
यावन्नोपद्रवः कश्चि	३३४	यो लोकहितमुद्दिश्य	३५	रत्नविन्यस्तचित्तेन	११०
यावन्तः केचिदन्ये तु	३६८	योऽसौ परमया शक्त्या	२०५	रमण्या महामोदान्	२६
यावन्तो भुजने केचि	३१५	योऽसौ विमोषणः ख्यातः	२६८	रमणात्मजपञ्चत्व-	२५४
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान्	२५६	योऽसौ विमुचिरित्यासीत्	६३	रमते काचिदपि चित्त	१८०
यिथासोः शस्त्रहस्तस्य	३६३	यो रामलक्ष्मणौ नाम	२५७	रमते जीवन्पति.	१८६
युक्त मुच्यतेरुश्वै	३३६	[२]		रम्य चैत्यगृहं तत्र	२७८
युक्तमुक्तमत तात	१६०	रत्तच्छृणु विमुञ्चन्त	३६१	रम्येष्वन्नितम्बेषु	६०
युक्तमेवातिरीर्यस्य	१५६	रत्तच्छिरस्त्राणाः	१६	रम्ये सुविपुले द्वये	६४
युक्ता भरन्तमन्यस्य	२६	रत्तशिलौघरश्मिनिचिता	२१७	रथः किमेव सिंहस्य	२३४
युगान्तकालमौघ-	३१७	रत्ताशोकप्रकाशेन	२०४	रविणा दिवसस्यान्ते	८३
युद्धार्थमुद्गतापेती	३५३	रत्तावन किं तत्	३६१	रविरश्मिकृतोद्योत	३३३
युद्धान्ता वसन्तश्च	३६८	रत्नप्रभृतिषु रत्नाच्ये	२२५	रहितश्चानया रामो	२६०
युद्धे च मानस कृत्वा	३१८	रत्नसामन्तसङ्घातो	३७५	रहिता शतपत्रेण	३२५
युद्धे हसरथ तत्र	३४६	रत्नमिदं मत तस्मात्	२३६	रहस्यमिदमेकं च	२२४
युग्मगर्भमाम्बाता	१६०	रत्नसा वानराणां च	३५६	रहस्यमेतस्समन्त्र	२६४
युक्त्युद्गरजग्लीना	१७०	रत्नतय पितृगोक्य	१६६	रत्नसानामधीशेन	२२४
युग्मयाः क्षुरतार्जल	२०७	रत्निता येन मे प्राणा	३३	रत्नसैः पक्षपारावै-	१८२
युरित्प्राभृतालेख	२८६	रत्नाभिर्लेखितं दृष्ट्वा	३७७	राधवाकृतनुप्राप्ते	३४७
युग निमीषणेनाथ	३५४	रणप्रत्यागत धीर	३६१	राधवो रथमारुढो	१६
युग्मान् प्रवीमि सत्त्व	२५८	रणभेरीनिनादेन	३५१	राजधैर्यात् कुतोऽप्येव	२३४
ये जन्मान्तमस्त्रिणाति	१७६	रणसत्तारजकेऽसौ	३७६	राजन्मर्त्यमुदयसमय	२६८
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः	३५३	रणसज्जाततोपेण	३६३	राजन् दारुणानङ्गलता	२७२
येन व्यापादिता वस्ते	२४८	रणाजिरे परं तेजो	२४५	राजश्च साधवित्वा तं	५
येनासीन् समरे भीमे	२८७	रतिं न लभते वनापि	३	राजन् वज्रघ्नतः क्रुद्धः	३१८
येनैवेन्दुनलानाथो	३३१	रत्न पुरुषरीराणां	३६६	राजन् विचित्ररूपोऽय	१४४
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः	१५२	रत्नकाञ्चनधाशि च	२०६	राजपुत्रर प्राप्ता	२६१
येऽन्येऽप्येवेषण वरुं	२४६	रत्नमुच्छलमानूना	१२	राजपुत्रि परीक्षस्य	३६
ये शिवाहोस्तत्र द्रष्टु	४३	रत्नत्रयापादितचारु-	१६६	राजपुत्र्या सम बाली	६३
येषु त्रिभक्त्युद्गता	६३	रत्नमाश्रित् क्रिमारुणा	७०	राजमार्गेऽद्विसप्तशतान्	१४१
येषां न भोजनं दत्ते	१४०	रत्नमाली पुनर्नाना	७१	राजाधिराजतादिल्टः	१५५
येषां निरतिरेकाणि	२५३	रत्नजातायनैर्गुण	२६	राजानमागत शाला	४६
यैः संसारसमुद्रस्य	१४२	रथाप्रारुढमायान्त	७०	राजा भूत्वा पुनः शत्रु	६
यं जनग्राष्टम भाग	२०४	रथात्ते विगता शीघ्रा	३०६	राजात्ये समुद्योतो	४०६
योजनानां यनेनानि	१५२	रथादुत्तीर्णं पद्माक्षः	१७६	राजः पुरोहितस्यास्य	१
यो भिजेन्द्राक्षये दीप	६७	रथान्तर समाकृष्ट	३६४	राज्यं च सयदीनस्य	१८६
यो ना परमन्त्राणि	२६०	रथाद्वतारणाकृद्वाः	३६०	राजोऽन्यस्य मुता नाम्ना	१८६
यो निर्गमयिष्यो पुनः-	२६४	रथे दिवाकरस्यापि	२८	राज्यं पालय वत्स हन-	७६

यनितामृतमत्त मे	२४०	बहन् परममावन	११०	विस्तृताङ्गान् महायोधान्	३४४
यनिते सप्तमेतच्च	२४७	बाष्पो मद्भचनादेव	१४६	विमहेऽविमहे वापि	३७२
यनेऽतिभोगे कष्ट	३००	वातायनस्थितैषाणि	१६०	विष्णुमाननयन	५२
यनेऽस्मिन् जलनिगुक्त	२४०	वातेनापहतै सिन्धो	२६६	विष्णुस्य नमः तस्य	१२
यत्न या जितेन्द्राणा	६७	वातहिताग्नेर्यामा	१६१	विचारेण न व हृत्य	३२६
य यानान् महानागान्	१७५	वान्त्यभोगमुत्	३०४	विनिश्चात्तुर्द्वाश्च	१७१
ययत्तशयिनिरे ते	७८	वानरीये क्षमालोक्त्र	३८८	विचित्रशिलरा यन	२११
ययत्तशयिता लायन्	२३७	कामे भुजे गुणेष्व	३४८	विनिश्चयनदोहै	१४५
यत्त तद्वनने शीते	१३५	वायस पृथ्वि प्रीया	२८१	विचित्रै कृष्टिमते	३४६
यत्त पुष्पक-द्वयै	१४	वायसा अपि गच्छन्ति	३५	विचि यैव द्रुत गजा	२४
यत्त सप्रति त यच्छ	७४	वायुवा ह्यिमाणेन	२१२	विशेषितमिदं व्यर्थं	१८३
यत्तमात्र सत्रेण	१६४	वायुपुत्र हुत ग ग	३०६	विश्वज्ञक-कुका भ्रष्ट	२३२
यत्तमात्रयातास्तु	७२	वायुशावसमैरश्वै	३०७	विश्वज्ञाचपकवच	३६४
यत्तमिदं मृधे मृदु	३२०	यारणै सप्तभिर्गोभि	१३७	विश्वज्ञासिमापय	७
यत्तमानवरो ग व	१५३	यारणा मेरुका तस्य	३४८	विश्वज्ञाप्रभुगान् काश्चत्	२६६
यत्तम हारमुत्तु प	१३५	यारुरेन ततोऽप्लव	३८०	विश्वज्ञा मन्तगस्तन	१४६
यत्तवारणमारुह्य	१५२	वाता ययी गतो बाव	२६०	विश्वज्ञापनचातुर्ति	२६८
यत्तस्त्रीजनमुद्राने	३३६	वार्ता समागता भवु	३२६	विश्वज्ञपथि देव त्वा	१५
यत्तजननगभावा	१५५	वायभाणाऽपि य नन	२०२	विश्वज्ञ कथित रत्न	१४१
यत्तकामदर्शना	२०	वाहदगतप्रसादेन	१२२	विश्वम्भनमिदं कथमा	६४
यत्तारुमहिष पात्र	२०	वाहिरित्यस्तु सम्प्राप्त	१३२	वित य सकल लोक	२३६
यत्तते किमि मात	८२	वाहति वाऽन विद्यात	२७०	विताविर्विचिना ध्वरतो	३७५
यत्तनेऽनुनित राट	८२	पातमानो मुहु भू	१२६	विदग्धनगर चाप	९
यत्तमान महाशक्त	३४४	वासय युक्त कश्चि	४५	विश्वज्ञो विजया मेघ	६१
यत्तैव महासौ वै	१८	वाहनावस्तसम्प्राप्त	३८६	विदेशगमनोद्युत	८१
यत्तारातमुक्तानि	२२३	वाहिनी वाणि गुल्मानि	३५८	विदेशा तु हते पुन	१२
यत्तारातावैशारै	४११	वाटोऽह भरतस्यापि	१७३	विदेशेति प्रिया तस्य	२५
यत्तानी वरते वृद्धि	४६	विशतिपात्राणा यस्या	३५६	विदेशे धात्रीगण्डे	६६
यत्तानिभुजमरै स्तारै	३१३	विशतिनाशराणा च	३७	विदेशे पीडरीकारये	४०१
यत्तारै वायुपुत्रस्य	३१६	विश्रवास्त्यति सीता	३२६	विशया तपनादन च	३६२
यत्तारीभूतेषु सिद्धे	३७७	विश्वलीभूतनिश्चय	४१	विशयाऽनित्यपुथापि	३६२
यत्तान्तिष्ठाभिरप्ये	१८५	विश्वस्य पुत्रसन्तातान्	२२३	विशया वर्णन्यासी	४०३
यत्तभूति सप्त तेन	१८४	विश्वस्यपनाम्नात	२०६	विशयावचयुक्त च	३१८
यत्तभूतिचरेणाप	१८७	विश्वस्यमनादेह	३२०	विशयाको शकविद्याति	३६४
यत्तुता येन दानेऽह	२५८	विशाला लायन् वाति	३६७	विशया रक्तमादीना	२६०
यत्तान्तिष्ठितेनूना	२६१	विश्रीणास्तण्डुला माया	१०४	विशयाधरमहामनि	४१२
यत्तान्द्रासालागानि	१२६	विश्रान्त स च शम्भोव	१२०	विशयाधरमहामनि	२५०
यत्तान् चानमान त	२३२	विश्रान्तपुरुषाष्ट	४६	विशयाधरे समागय	४२
यत्तान्ती दर्पमुद्राशुचै	२३३	विश्रान्ताय तया तस्मै	४२	विश्रान्तशिवस्यै	३०५

त्रिप्रेणात्यन्तपरम	४६	वेल्गधरपुरस्यामी	३४८	शक्नोति सुखधीः पातुं	२५३
विष्टवान-दजननी	५२	वेश्या कामलता दम्पु	३११	शक्रपासादसङ्काश	३४२
विस्तीर्णां प्रवरा सम्प	३५१	वेश्याचरणयोश्चासौ	३६२	शक्रभूतिरयागादी	३५८
विस्तर्णेन किमुत्तेन	२	वेष्टितः किङ्करैः क्रूरै	३४२	शमस्येव शची पार्श्वे	४१२
विस्मये जगत शक्ता-	३२०	वैदेहि तन न ज्ञातः	३३०	शक्रायुचभ्रुतिर्यत्ते	१२०
त्रिस्मिता गापुराग्रस्था	११८	वैदेहि भयसम्पन्ना	१८१	शङ्कितो भातकोद्वीपो	२६७
त्रिस्मित्य मुचिर राम	३०४	वैदेही सज्जरेवोचे	१७६	शच्येव रहित शक्र	३०३
त्रिहरन्ती ततः क्षाणीं	१७०	वैदेह्याः शरण देव	६६	शतानि वरनारीणा	३५
त्रिहाय लौकिक मार्गं	१४२	वैदेह्या सज्जतो रामः	२२४	शतानि सप्तविस्तीर्णां	२८८
विहितातिथिसम्माना	१०६	वेनतेयाज्ययोगेन	३६२	शतुप्नोऽपि सुसन्ना-तो	४०६
बोद्धस्व माहात्म्यमिदं	६६	वैराग्यादयथा ताते	१५८	शतुन्दमकृतकन्दौ	१७६
वीक्षित परम रूप	६२	वैवस्वत शशाङ्को नु	१०५	शतुशब्दममृष्यन्तो	१८
वीक्ष्यभन वासरे, स्वलौ.	२६६	व्याक्षेपो मे कुत- कश्चि-	४६	शनैः प्रसन्नता याते	१५३
वीणा च सतिभायाङ्के	१८१	व्याघ्रयुक्तरिमैलुगै	३६४	शनैः शनैस्ततः कम्प	२४
वीणातन्त्रोत्तद्विज्ञाणा	२६६	व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादि	८६	शनैर्विहरमाणा ती	१७८
वीणादिवादनैस्तासा	२८१	व्याघ्राननै- कृतोत्पात	२५६	शन्दोऽय शोकसम्भूत	२६०
वीणावेणुमृदङ्गादि	१५३	व्यापाद्यते न किं दुष्टः	३४०	शम्बूक- साधितो येन	२३३
वीरपत्नी प्रिय कान्ति	३६१	व्याताशेषजगत्कीर्ति-	१६६	शम्बूकस्य वध युद्ध	२६६
वीरा बोद्धु दत्तचित्ता	३६६	व्यालाजगद्वा विपतो	६६	शम्बूको नाम सन्दर्च	२३५
वृत्रेण मारिता मेयी	२०७	प्रजता बन्धुदत्तेन	२८५	शम्भु- स्वयभुश्चन्द्रार्का	३७४
वृक्षैर्विवाजिता वरुण	३३६	प्रज तावत्परमा दह्य	६३	शयनान्यासनैः साक	१६६
वृताः सामन्तचक्रेण	३४८	प्रजति विभिनिथागा	३६५	शयनासनवादिन	२११
वृत्तान्तमिममालोक्य	४२	प्रजतोश्च तयारुद्रा	१४२	शयनीयगतै- पुत्रै	४०४
वृत्तान्तमीदृश भुक्त्वा	२०८	प्रजन्तो लीलया युक्ता	१०३	शयितारुच यथास्थान	२६६
वृत्तान्तभ्रमगात्तस्मा-	७१	प्रजन्ता वाहनैश्चित्रै	३५४	शरच्चरितच्छ्रुत	३८१
वृत्तान्तेनामुना कस्य	२६६	प्रज स्यात्पयमिम लेख	१३	शरत्कालः परिप्राप्तः	५४
वृत्तान्ताऽय च सज्जातो	२०६	प्रजानय अनन्यौ नौ	२२१	शरधारः क्षिपत्यदिमन्	२७८
वृथा रादिपि निरुतेत	३२१	प्रतमानतगादानै	६८	शरशक्तिशतघ्नीभि	३२०
वृथागवत मा किञ्चि-	७३	प्राडा प्रजति मे चेत्-	२६६	शरीरच्छायाया तुल्याः	७२
वेगनिक्षिप्तनि रोष	२८२	[श]		शरीरच्छायाय मन्मथरा	४१३
वेगनिर्मुक्तदुःखाराः	११७	शकुन्तया मृगाश्चामी	१०८	शरीरमानधारी तु	५
वैगनात्ततन्त्रस्य	३३८	शक्तिः पलायिता करागि	४०१	शरीरयात च विधाय	२२०
वेणीरन्ध्रयुनिन्द्याय-	३४५	शक्तिं दधनानि परा	२६८	शरीररथमुमुक्ताः	१८७
वेणुगन्त्रीममाशुः	३२७	शक्तिं य- पाणिना मुक्ता	१७२	शरीरिणार्थं एतस्मिन्	१८६
वेणुतादादृशमाश्च	३६८	शक्तितोमस्वनामि	३३५	शराः शरैरुत्थन्त	३२०
वेधैः श्यामन्ताभिरच	२१२	शनिमुद्गरचक्राणि	२३५	शरै निहितदृष्टि त	४१
वेदिबाणपुण्डरीकाभै-	३०८	शक्तिशक्तिनरद्वय	४०१	शर्यदी भगवन् यारा	१४८
वेदिताममनन्तारद्	२६६	शक्त्या मुद्यत पात्रानि	२५६	शल्यभूतोऽस्य शिरस्य	२६७
वेदि निर्मन्त्रोन्मत्ता	३०६	शक्त्या दृज गत भूमि	३६६	शस्त्रिमादृष्टगद्गद-	३७६

शस्त्रान्वकारिते जते	२३७	शौणमा द्विरदाः पेनु	२३५	श्रुता धर्मं मुनेः प्राप्त.	३
शस्त्रिवृन्दावृते तस्मि	१७२	शोकनिस्मरणे हेतु	१३	श्रुतानरण्यपुनस्य	१४८
शान्ताम्बलकाग्रन्त	७२	शोकापुलजनाकीर्णे	३००	श्रुता पङ्कजगागायाः	३०१
शास्त्रानेपरिचिह्नाना	३७८	शोनावर्तनिमग्ना ता	३८	श्रुता परचमूर्त्य-	३६३
शास्त्रामृगधनो तावत्	३६६	शोको हि नाम कोऽप्येष	२४९	श्रुता परजल प्राप्त	३०६
शातकौम्भानिमान् कुम्भान्	४०६	शाचत्युन्मुनदीनाणा	२६४	श्रुतावीर गुनारोन्	२७३
शार्दूलसङ्घतैस्तुङ्गै-	३६७	शोमयापहतस्तस्या-	२३०	श्रुता प्राप्तं हनूमन्त	२७४
शार्दूलस्नाहित. पूर्व	३७५	शौर्यगर्माग्रायुज	३६६	श्रुता सिंहरज पद्मा	३२६
शासन यच्छता नाथौ	१३१	शौर्यमाहात्म्यसमुक्त	३०३	श्रुता स्य स्य इत नाथ	३७४
शासनस्य जिनेन्द्राणा-	५७	शौर्यातिगर्वसमुद्रा-	३६५	श्रुतैव कौतुको कञ्चि	१७१
शास्त्रानुगतमस्तुद्ध	३५१	श्येनयुरैष लघुभ्रमरक्षो	२१४	श्रेयस्करपुरस्सामी	४०६
शिथिलीभूतनि शेष	३२८	भद्रासवेगहीनाना	६८	श्रेष्ठेन विदुषा तेन	२८७
शिरसो मुण्डनैः स्नाने	६	भ्रम इत्यापि भूयासं	११	श्रोतु समुपतस्थैर्न	६७
शिरीषकुमुभासारं	४११	भ्रमणा ब्राह्मणा गावः	१३४	श्लाघामित्यतिरीर्यस्य	१६७
शिलायामिह ये मिथ्या	०६६	भ्रमादिदु खपूर्णस्य	६	श्वसत्यशुगणस्तीव्र	४०४
शिवं सौम्याननो वास्य	३५१	भ्रातृकोऽय निर्नीतात्मा	२०६	श्वसुराभ्या ततो जाला	२८४
शिथार्निपक्ले प्रीति	३४	भ्रीनन्धावर्तनगरा	१५५	[प]	
शीतल त समाप्राप	४१२	श्रीमास्तायन्मस्तुनः	३३२	पल्लण्डा वैरपि ज्ञाणी	१६५
शुच्यज्ञया च वैदेक्षा	२००	श्रीमानयमसौ राजा	३०३	पद्मि सप्तःसरैः साम्रै	३१५
शुद्धात्मा भगवान्ध्वे	६०	श्रीमान् जनकाजस्य	५८	पद्म स्नातुमम्पन	७२
शुद्धात्मा ध्रुवने सोऽन	११५	श्रीप्रभामण्डलोऽप्येक	५६	पद्मैरूपदशैश्च	३३३
शुभे काश्चित्प्रतीक्ष्य	१२८	श्रीरत्नधनस पुनः	३५३	[स]	
शुशुभाते तत्तात्पन्त	२५०	श्रीरत्नमन्त्रितसम्पूर्ण	३०३	सक्रुद्धभागिभागोभा	१७४
शुधूपा भनतः कृत्वा	१६२	श्रीशैलप्रसूतिर्नरै	३८५	सक्रुद्धास्तनवास्तस्य	४१०
शुष्मागङ्गतमरोषे	३१३	श्रीशैलस्य गित्युच्चै	३१३	सक्रुद्धनीष भू राजा	१७६
शुष्कपत्रादिनस्तन	१०१	श्रीसन्धो बयो भानुः	३६	सक्य विदुर्नष्ट हृष्टा	३१६
शर नादिगोश्रोतु	३३१	श्रुत केसरिज कृच्छ्र	३०८	सगतिन समुत्ता	१६३
शराः परम सामन्ताः	३५३	श्रुत सन न तस्मिन्	१३६	सधारलमित्रताम्नोद	३६८
शृणु देवि यतोऽरथा-	३७	श्रुत चेस्ति जिनेन्द्राणा	४६	सज्ञा प्राप्य ततो हृष्टि	२३६
शृणु नाथ । दयाधार ।	१६२	श्रुतुदिरिति ख्यातो	१५७	सदण्णो महामत्तौ	२७३
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यथा	६७	श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो	२३	सधानयजितान् वर्णान्	४८
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि गम्य	१५	श्रुता सङ्गीतनिराणा	६२	सध्याप्रवृत्तकाशान्	२६
शृणु शृण्वति तत्राय	१७१	श्रुता नेत्रलिन. पद्म	१६५	सप्तदशदन्तुणीर-	३६८
शृणु मारुधनुष्टेन	७८	श्रुता चैत्रनिध त च	२०७	सन्ध्यासेन तनु त्यक्त्वा	६६
शृणु मुन्दरि मन्त्राय-	२५५	श्रुता त मिथिलाधीराः	१५८	सप्रपुत्र्य प्रणाम च	४००
शृण्वरित मृत्तिरात्रत्या	२८४	श्रुता तदिन्द्रविद्राक्य	३५२	समापितं म रामेण	६४
शेष मातृजनं नत्वा	८०	श्रुता तद्वचन तस्या	२३०	सरस्व राजपुत्रीं त्व	२३५
शेषाः कन्या यथायोग्य	४१२	श्रुता तद्वचन लिभता	१३५	सरस्व जनक प्रीताः	१६
शेषामिन ततो मूर्ध्नि	२८६	श्रुता तावदक्ष तार	२४६	सरम्भवशममुक्त	३१६

सदृशो माममाश्रोऽस्य	२८	स तयोः प्रणतिं कृत्वा	१२१	सन्मानैर्बहुभिः शश्वत्	२६७
ससारधर्मनिर्मुक्तान्	२६५	सतालशब्दं जनजात्मजाया	२१०	सपत्नीभिरपि प्रीत-	४७
समारोऽतिचिरं भ्रान्त्या	२०५	स तूयं धनुरादाय	७६	सपुरस्कारमारोप्य	२६४
संसारं न परः कश्चि	७१	सत्यं यदीदृशः कथातः	२६०	सप्तकक्षादृष्टसम्पन्ना	३६८
ससारे मुक्तिरं भ्रान्त्या	६०	सत्यनेनुगर्णायोन	६१	सफेनवलया लसत्प्र हृदवीचि-	२१६
संमिक्षुर्गृह्यसश्चे	२२८	सत्यव्रतधरः सगिम्-	६६	समानुरञ्जनी यावत्कथेय	७६
सहितामिव कामेन	२३६	सत्यश्री कमला चैव	३४६	समाया पितुरध्माकं	२०८
सकम्पद्वयया सीता	४१	स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	१२०	सभावापीविमानाना-	३३८
सकलविषयनिर्गततीर्थयः	४३	स त्वं नाथ जयघोषं	५०	सद्भाववशापेन लज्जा	१२६
सकपाय तपः कृत्या	९	स त्वं निष्कण्टकं तात	७८	समं करतलैर्हन्तु-	३३२
सकृत्पारं मुहुः कुर्यान्	४८	स त्वं भूतिमृगो जातो	७०	समं किं परिवर्गेण	१२४
सगि पश्यात्य धीरस्य	११६	स त्वं रत्नजटी पूर्व-	२८७	समं कुलिशकर्णेन	१२४
सग्री त्वं मूर्ख्या तस्या	७६	सत्प्रत्यागादिवृत्तीना	१८	समं दशाननेनास्य	२६८
सद्योऽन घनमालायाः	१५१	सत्पुत्रोऽथ भगव्यो वा	२७५	समं पुन सहस्राणां	४०५
सद्योऽनेन पथा दृष्टी	१७०	स दृष्टो नीयमानः सन्	१३१	समं साहसयानेन	२७८
सग्रावभिः परैर्भानो-	१०७	सदर्पेर्निगतैर्यथै	३६६	समं लक्ष्मणस्याथ	२८७
सङ्क्षेपं तयोर्थावद्	१२१	सदा करोति सर्वस्मै	३२७	समन्तकुसुमं ताव-	२६२
सङ्कटोऽकटतीक्ष्णाम-	३१७	स दृष्टातिशयोपेतां	२०१	समयं शृणु भूनाथ	३६
सङ्कल च ता तेन	३०२	सद्गन्ध विपुलं स्वच्छ	३३३	समये नारदस्तस्मिन्	२३
सद्ग्रामाभिमुखोऽभार्यः	३६२	सद्भावान् प्रणयात्पतिः	१	समयेऽस्मिन्नतिनान्ते	२२१
सद्ग्रामे तारकां नद्यौ	२६७	सद्भूतगुणमन्वीक्षे	१२१	समये हि कृते तेन	३५६
सद्ग्रामेऽभिमुखो भ्राता	३६४	सद्यो विनयनम्राज्ञां	१७४	समयेः मान्द्यवित्तेति	१६६
सद्ग्रामे रिक्तः पृष्ठे	३६१	सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा	१५०	समर्थितप्रतिज्ञासां	३३२
सद्ग्रामात्पुत्रमुत्पमस-	३८१	सनःकुमाररूपोऽपि	२५८	समरसम्यं जनाः शुभकर्मणः	४४
स चाह च सुतम्याशु	१३	स नाजानाद् द्विप न क्षमा	३८०	समयलोकिमुत्तममिदं	४३
सन्निवाः सन्निधेः साक	३७५	सन्नुष्टोऽङ्गगतं ताम्यो	३२६	समस्तं च समाख्यात	३११
सन्निधेः परमपुनः	४०६	सन्त्यस्मिन् विविधा भ्रात-	२२०	समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः	१७१
सन्त्येष्टाः पृथग्मानास्ताः	१२३	सन्त्यामरमयानाङ्गा	८८	समाश्रितद्वोऽप्य-	१०५
सन्त्येष्टद्विभुङ्क्ता	१०१	सन्त्येष्टानं शरं यीक्ष्य	३३०	समाश्रये स्वल्पाणि-	२४
सन्त्यापि जीमूती	१८३	सन्तिदेशं च सुमीय	३०७	समाधानोपदेशेन	१६१
सन्त्यापि दृश्यते व्यापा-	१२२	सन्तिहाना निजे नाये	२७४	समाने जानकी तस्मिन्	३५२
सन्त्यामोदनात्वाय	२८३	सन्देशतामिच्छेद्वि	६०	समासाशनदृश्यं	२०६
सन्त्यापि परमा भूनिः	१६५	सन्धियु च्छिद्यमानेषु	६	समाशानुपनिष्टोऽमी	३५४
सन्त्यान्ती तनुदेशं	२२६	सन्ध्याया रजिता प्राची	२५६	समालम्ब्य विनान् गन्धेः	६७
सन्ध्यायेन शून्यप्राप्ति-	२३१	सन्ध्याहारः सुपेक्ष्य	२६६	समालम्ब्य कुमारगता	२६
सन्ध्याय गेदमी सैन्ये-	३६५	सन्ध्याकालेऽप्य ये केचित्	१६१	समाश्रय्य समीपे च	११२
सन्त्यां चिन्तयन्ती त्वा	३४५	सन्ध्यासमाभ्रमद्वायं	३२२	समाश्रय्य च सर्वत्र	२४०
सन्त्यापि निशेप-	१६७	सन्ध्यालोकाद्व्याप्ये	५४	समाश्रय्यमिदं नीत्या	१४३
सन्त्यापि परमा भर्ता	२०६	सन्त्यापि विविधैर्विदो	१४५	समाश्रय्य च मनुजो	२८०

समासाद्य च ते सर्वे	२७८	सर्पानिगता चीना	६	सशल्पाय दरिद्राय	११२
समाहितमतिनाना	३८०	सर्पजात निशम्यैव	२६४	समागमा मही देवि	३३२
समित्फलप्रसूनार्थ	१०२	सर्वते चस्त्रिभुजान	३५६	सस्यत् त्विगि चक्षु	२८६
समिदर्थ प्रघातेन	१३६	सर्पता मरण दुःख	४६	सस्यानि कृष्णान्यानि	१०४
समापता च सम्प्राप्ता	१८७	सर्पेन चगति रयात	२६५	सस्यानि बहुव्यापण	८७
समाधाभय बोधाच्च	२५८	सर्पथा जिननद्राथा	४११	सस्यैर्गुह्यकारैश्च	२१२
समीचीयूय दूतश्च	२७६	सर्पथा परमात्साहो	२३६	सस्मिता ह्यनितैस्त्वया	१६०
समुद्यतालक्षैर्भामै	१८०	सर्पथा प्रातस्तथाय	२६१	सहस्रमतिनामाध	२६७
समुद्रजलमध्यस्थ	२४८	सर्पथा शुद्धमावाध	२६५	सहस्रमविस्त्र चायन्	११०
समुद्रावर्तभूल्युप	३५४	सर्पथा सुखमा पुम	२६२	सहस्रमरुपशायि	२६१
समुद्रावर्तसज्जन	३७	सर्पप्राणिहिताऽनाच	६०	सन्ध्यामरूपपश्य	२०६
समेति यधुलाऽऽस्य	६५	सर्पभाण्डेन तौ रत्न	३५५	सहस्रैरगतान्याभि	१५६
सम्पद्भिरैवमाथाभि	२६१	सर्पभूतहिता नाम	५१	सहायरहितत्वन	२८४
सम्भूय च पुनर्मुक्त	३४६	सर्पमन्त्रप्रवर्तु	१४०	सहायैर्मृगराजय	३३७
सम्पूर्णच द्रवदन	८४	सप्तमत्त समासन्न	१२६	स हि रावणगट्टेन	२६५
सम्पूर्णाना परममहत्ता	५३	सर्वलोकेभ्य नेत्राणि	१६१	सहानन्दमते शिष्य	१४६
सम्पूर्णैर्दुसमानोऽपि	२३३	सप्तगन्धराधाश परा	२५७	साकार्यपुरनाथाऽय	३६
सम्प्रहरितस्तदा ह्यग्नौ	३०६	सर्पगन्धराधीशस्त्रि	२३३	साक निजयमुत्पया	१५६
सम्प्रहारा महान् पातस्तथा	२७६	सर्पगन्धारी समुद्रिन्ना	३४५	साक विभक्त्या देवा	१६०
सम्प्राप्त परम क्राय	१६१	सर्पशास्त्रार्थं चास्तु	२३०	सागरा नरगारा च	१०६
सम्प्राप्तश्च महानाल	५१	सर्वसारथ्य दुर्जुदि	३६७	सागराचर्ममपरे	१५६
सम्प्राप्य च चिरात् सता	३८६	सर्वसौम्ययुक्तस्य	२०४	सागराचमरकस्तु	१४१
सम्प्राप्य साधनस यस्मा	१५७	सर्वस्मृतिमहाचार्यै	२३६	सागरान्ता मही यय	२८७
सम्भाषणे कुण्डानि	१०१	सर्वस्वामरनौ रयात	५७	सागरागारमल्युग्र	३५६
सम्भ्रान्तमानस निश्चि	३५१	सर्वस्वनापि य पूज्या	३४०	सागरायाजिनमत मा	१७६
सम्माना जयगिरश्च	३६७	सर्वा प्रियास्तदा तस्य	४५	साग्राभिश्चाग्रास्त्राभि	३०३
सम्मेद च ब्रजन्ती ता	१८७	सर्वाकारसमानीतो	२८१	सा जगौ चातु पद्मस्य	१३७
सम्यग्दर्शनमात्रेण	६१	सर्वातिथ्यसमेतास्व	१०२	साथो धर्मेण या युता	१४४
सम्यग्दर्शनरत्न स	६६	सर्वाद्रसमेतश्च	७१	साधनेन तत्प्रण	१५६
सम्यग्दर्शनहीना या	१६६	सर्वानामन्य नित्यम्य	६६	साधुगोभ्रातृकीर्णा	१६
सम्यग्दृष्टि पुनर्जन्तु	८	सर्वासामन शुद्धाना	८४	साधुचमुने पार्श्व	१६१
संयोज्य सर्वता नागै	३६२	सर्वेषा भूयुता नाथ	७४	साधु दानाद्विरिज्ञेने	३७१
सरस्वाश्च तत्रे काल	५१	सर्वेषामेव जावाना	१५२	साधनानि भगवत्तेषा	६१
सरस्युनिद्रपद्माणि	२८१	सर्वापायि गानन	२६७	साधुपूर्वभय भुजा	१६४
सराभि पद्मजाड्यानि	२२३	सर्वपद्मादितामूल	१६६	साधुप्रपादतस्तरन	१०६
सरायमुनि रम्याणि	१३७	सर्विमुच्यानुवाच्यैव	१५५	साधुम्यामुक्तमित्येत	२०६
सत्स्वर्गतदुर्गामु	४	स ब्रजन्तु गुह्यानाचि	२०७	साधु साधु त्वया चिन	१६५
सपन् मीता समुत्थिय	३२७	सशखन्युनिस्त्वान	४३	साधु साध्विति देवाना मधुर	४१
सर्पिणा जिननाथाना	६७	सशदैर्गतै स्थलै	३४२	साधु साध्विति देवाना मधुरा	२०१

साधु साध्विति सस्मित्य	३१६	सिंहोदर इति ख्यातो	१०६	सुग्रीवरूपसमुत्तः	३२६
साधुसेनाप्रसादेन	१६४	सिंहोदरप्रभृतयो	१३२	सुग्रीवरूपसम्पन्नं	३०५
साधूनामग्रतः पूर्वं	२३८	सिंहोदरमहिष्योऽथ	११६	सुग्रीरस्य वचः श्रुत्वा	२७४
साधूपसर्गमथने	३३६	सितकीर्तिसमुत्पत्ति-	८१	सुग्रीवाकृतिकीरेण	३००
साधोः कमलगर्भस्य	७०	सितचन्दनदिग्धगा	२६४	सुग्रीवाकृतितिर्मुक्तं	२७७
साधो केनाभि पृष्ठस्य	३५२	सितानामातयनाणा	३०१	सुग्रीवागमने तेन	२७०
सा निरांशुशिला येन	२६६	सितासितावणाभोज-	२१२	सुग्रीवाद्याः समासीना	२६७
सानुस्मयी स्वभावेन	३७१	सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति	६८	सुग्रीवेण प्रतीक्षश्च	३०२
सानुजः सानुज पद्मो	२१	सिन्धवः स्वच्छक्रोलाला	२२३	सुग्रीवोऽप्यभिसक्तात्मा	२७०
साऽनरीतु समतिनान्त	३२२	सीतया सह रामस्य	३२२	सुरोराणि प्रसार्यन्ता	२६७
सा भामण्डलचन्द्रेण	४१०	सीतया शोभितं पार्श्व-	१०६	सुचिरं देवभोगोऽपि	७७
सा भामण्डलसहाय	३२	सीतया सहितस्तस्थी	१२६	सुचिरं प्रथितं लोके	१२७
सामन्तैरथ सन्नद्धै	११७	सीता चाक्लिष्टसौभाग्या-	१६६	सुतं स्वैर समादाप	२८४
सामन्तैर्दुर्भिरगत्वा	६१	सीता तन विशुद्धाक्षी	६०	सुतरा तेन वाक्येन	१४७
सामाधिकं पुरस्कृत्य	१३८	सीतापतिस्ततोऽनोचदिति	२२०	सुता जनकराजस्य	२६०
सामोरगिरिव. श्रुत्वा	३४४	सीतायाः शोक्तताया	२५२	सुता तु द्रोणमेवस्य	४१२
सापेदैर्भूजशेदभूतैः	६७	सीताया वदनाभोज	३०५	सुतारामवनद्वारं यो	२७४
सापने रविशामख्ये	३२६	सीता लक्ष्मोचरश्चैव	८६	सुतारेति ततोऽनोचत्	२७३
सा यावदपृष्टीकृत्य	३१६	सीताशरीरसम्पर्क-	२८१	सुतारौ सङ्गता बल्लौ	१७८
सायाह्ने सीम्भवपुरो	२६६	सीता सीतेति कृत्स्नस्य	२६४	सुतैर्दशरथोऽमीभि-	३६
सारङ्गदयिताभिश्च	२६३	सीतोवाच कुशीलस्य	२५८	सुतोऽभूत् भद्रधारिण्यो	६६
सारङ्गेऽपि सार्धं	१३४	मुकुमारशरीरोऽमी	२६२	सुतो यस्याङ्गदामिष्यः	२७१
साररेवविधैराङ्गीः	३८	सुनेतुः प्रतिमुद्रः सन्	२०७	सुरीचोऽपि तयोः कालो	१७८
सा लक्ष्मणकुपारेण	२६६	सुनेतुस्मिनेतुश्च	२०७	सुदुर्लभमिदं प्राप्य	३५२
सा प्रियाबलगम्भीरा	३१६	सुनेशतनवाः पूर्वं	३४८	सुदुष्कर विरोधाना	१०६
सातोच्चस्त्रिय पराशरि	११	मुक्त दशयस्त्रस्य	३४०	मुनिभित्तानामपि सत्रराणा	३७०
सायाचदस्तु नामैव	११	मुप प्रसादतो यस्य	३३०	मुन्दरि पश्य वराह	२१४
सायोज्ज्वलपुरीषैः	१६१	मुप ससत्तारक्षेष्ट	२४७	मुपीररभुजो धीराः	३६८
साह दुःखमदस्याणा	२३३	मुत्तरीतो यगो वायुः	३३५	मुपीररभुजो धीरो दुर्दार-	३६०
साह न परपथिच्छ्रया	४११	मुयेन च प्रयुता सा	५७	मुन तममिना हृत्वा	१८४
साह पूर्वहन्ता पायाद्	२२६	मुयेन पाप्मिता क्षोणी	५०	मुनस्योत्थाप्यमानस्य	४०८
साहमस्यामस्याया	३२८	मुयेन प्राप्य भिद्रा च	३८५	मुनाजगरनिश्वासा	१०२
सिद्धिमुन गनारुद्रः	३६४	मुपोदर्थो निमग्नत्व	३५१	मुनभा नाम मे माता	४००
सिद्धसारणयार्द्र	१३८	मुगन्धिभिर्महाभोजैः	२६४	मुभद्रो मुनिमद्रश्च	१५६
सिद्धसाप्रसूरीराम	१८२	मुगन्धिमालयभ्रातृ-	३०४	मुभूमश्चभृद् भूता	१४४
सिद्धसमृद्धसाहोद-	३७४	मुगुनिभ्रमणोऽनोचद्	२०२	मुभूरिचरित पात्र	२०१
सिद्धानां भविष्यन	२४०	मुपीरः सचिरीः साक	३५७	मुभूय तेन वद्धिः स	३१४
सिद्धानि महायोगी	३१०	मुपीय कैतुनगर-	२६७	मुभदान् भयुरेकत्र	१२३
सिद्धे करीन्द्रबीजाङ्क-	१५८	मुपीयमेव मुपीशे	२७६	मुनिनाब्रह्मणोऽनोच-	२४७

स्फुट यातोऽमि हा वत्स	२२८	स्वशरीरेऽपि निस्सगा	१४१	हा तप्त क्व प्रयातोऽमि	३००
स्फुटिताधरपादान्ताः	७२	स्वसद्यमरोपन्न	६७	हा देवि किमिदं मुग्धे	४६
स्फुरच्चण्डाचिरञ्जयोतिः	४०४	स्वसार च समालिङ्ग्य	६६	हानिः पुरुषकारस्य	३२६
स्फुरत्स्फुलिङ्गज्वाला च	४१०	स्वसारमेवमाश्वस्य	२५४	हा पुत्रो मुमहावीर्यो	३६६
स्फुरद्भुजगभिस्सारि-	३१७	स्वस्ति स्वस्तिन्कोदार-	१५५	हा भद्र लक्ष्मण प्राप्त-	३६६
स्मरन् मोता मनायाता	२६४	स्वस्मिन्निहितचेतस्के	२२०	हा भ्रातः परमोदार	३६६
स्मरन्प्रालेपनिर्दय	२६४	स्वाध्यायनिरतानन्यान्	१८६	हा भ्रातः प्रथम दृष्टो	६४
स्मरेषु हतचित्तोऽनौ	२८३	स्वामिने चावदन्नत्वा	३०	हा मया पुण्डरीकाक्षौ	१५५
स्मित्ता च म जगादाय	१४३	स्वामिनो दशवक्त्रस्य	२६६	हा मातः कोऽयमत्रेति	२३
स्मर्यमाणोपदेशोऽनौ	२०६	स्वामिना दृष्टिमार्गस्थाः	३१६	हा मातः पश्यतामुग्ध	२०२
स्वन्दनैरांशैः सिद्धे	३६५	स्वामी त्व परमोऽस्माभि-	२४७	हा मातः सखल लोक	४०३
स्वन्दनैर्विधैर्यानैः	३५६	स्वामी भरतखण्डाना	२८७	हा मातस्तादृश दुःख	४०३
स्वन्दनोद्वादिनागाहि	३७६	स्वाहारेण क्वचिच्युताः	१६६	हा मेऽन्तःकरणच्छाद्य-	४०३
स्वच्छनोन्नाम्बरधर-	३०४	स्वेच्छ्या तेषु यातेषु	१४७	हार स्वयम्भामिहर्ष	१४७
स्वजन नैव ती पक्षि-	१८६	स्वेच्छ्या पर्यन्तस्ते	२११	हारराजितरत्नका	१५३
स्वजनस्थश्मने जाता	२६१	स्वैर स्वैर जनकतनया	१२४	हा वत्स विधिरोगेन	३६६
स्वनाथरचनात् साधरी	३२६	[ह]		हा सीत इति भाषित्वा	२३६
स्वराकादपि पारीयान्	३०५	हसकुलाभकेनपटलप्रमिल	२१७	हाहाकारं नृपाः कृत्वा	३८
स्वप्नः क्रियेय सम्प्राप्त	४०३	हसस्तारात्तसरमि	६३	हा हा मातः किमेतन्नु	२०५
स्वप्नप्रतिमैश्वर्य	१८६	हसीय पद्मिनोन्वण्डे	२२६	हाहाहीकारगम्भीरः	३३८
स्वप्नमेव गु पश्यामि	१३७	हत महोपकारेण	३३	हिंसाधर्मविहीनाना	१६
स्वभावमागत दृष्ट्वा	२७७	हतान् हन्यते पूर्व	३७२	हिंसाया कारणं घोरं	९
स्वभावविद्याममरसा	२२५	हता शत्रून् समुद्रवृत्ता	३५२	हितं करोत्यसौ स्वस्थ	१०८
स्वभावाजं सप्रान्ता	६१	हनूमान्पल रेजे	३०४	हिमादत हवात्पर्य	४८
स्वय दुर्मतिना साध्वं	३४१	हनूमानिति विख्यातः	३३०	हुताशनशिखागौर	३०
स्वययराभिध नृप	४२	हनूमानिषुभिस्तस्य	३०६	हुतभायो द्विजो दीन-	२
स्वयमेव गमिष्यामि	२२१	हनूमान्यायदेतेन	३३६	हुता तत्र मया जाया	५७
स्वयमेव च सुप्रीयः	२८६	हन्ता सत्तप्तहस्ताणा	१०७	हुदयगारमुद्दीर्घ	२४१
स्वर्गादिय तनोऽनस्तत्	१२६	हरिवाहननामाऽय	३६	हुदये स्थापिताः कृच्छ्रा	४८
स्वर्गे राज्यं दशमीति	१७१	हस्त हस्तेन सत्पूरय	२६५	हे सुयोगे मुद्धर्ष्य ते	३६७
स्वर्ग इत्यनया बुद्ध्या	२६७	हस्तप्रहस्तमद्भीरी	३७४	हेममुग्धोपमं गात्रं	३०१
स्वर्गमप्यर्जितं पाप	१०	हस्तप्रहस्तसामन्ता-	३६६	हेमनानामणिरनीतः	२८८
स्वर्गनेन मुहनेन त्र-	७१	हा कष्टं देव कम्मात् त्व	२३६	द्विपमाणामथ प्रेक्ष्य	२३८
स्वर्गारामरि हृक्त्वा	३०५	हा धान्त इति कुञ्जश्च	६१	ह्लादनश्चयलश्चो-	३६५

अमाजनत्वं तु गतोऽसि शाठ्या-

द्वर्षस्य तेनाहमितो ब्रजामि ॥ ७ ॥

अथास्य सरमसमपितमतिविहृतपदनमभिद्रवन्तं बल्लभं श्वान तत्रागतमभिप्रदर्शयन्
पुनरुवाच—अयं चात्र महाराज अमानुषः साक्षिनिर्देशो दृश्यताम् ।

अयं हि पूरं पटुचाटुकर्मा

5

भूत्वा मयि श्वा मयतोऽनुवृत्त्या ।

आकारमुत्पद्यतया त्विदानीं

त्वद्भानसूचा भवितैः करोति ॥ ८ ॥

त्वत्तः श्रुतं किञ्चिदनेन नूनं

मदन्तरे शक्तिरिच्छित्कृत्स्नम् ।

10

अतोऽनुवृत्तं ध्रुमिलसनेन

त्वप्सीतिहेतोरनुर्जापितृत्तम् ॥ ९ ॥

अथ स राजा तत्प्रत्यादेशाद्रीडानामितरदनस्तोन चास्य मतिनेपुण्येन समानर्जित-
मनिर्जातसंगो नेदानीं शाठ्यानुवृत्तिरुवाच इति बोधिसत्त्वमभिप्रणम्योवाच—

K 145

त्वदाश्रया काचिदमूकपैषा

15

सप्रस्तुता नः सदसि प्रगल्भैः ।

उपेक्षिता कार्ययशान्मया च

तश्चम्यतां निष्ठं च साधु मा गाः ॥ १० ॥

बोधिमत उवाच—नैव खल्वहं महागज असंसारप्रवृत्तत्वादक्षमया वा प्रणुयमानो
गच्छामि । न त्वय महागज अयस्वानकाल इति न निष्ठामि । पश्यतु भवान् ।

20

निमग्न्यमानादपि ह्रीनशोभे

यायां न सन्कारविधौ सयं चेत् ।

सङ्गादगत्या जडतान्त्रशङ्का

नन्वर्धचन्द्राभिनयोत्तरः स्यात् ॥ ११ ॥

प्राप्तममोऽयं निधिरत्र तेन

25

यास्यामि नाप्रीयभिततचित्तः ।

एकानमानामिहता हि मयु

पूर्वोपकारा न समीभवन्ति ॥ १२ ॥

अश्लिष्यमानस्तु न पर्युपास्य-

भोयार्यिना शुष्क इन्दोदयानः ।

30